द्वैमासिक

अप्रैल १९५८

# अनेकान्त

भगवान आदिब्रह्मा, आदिनाथ (बड़े बाबा), कुण्डलपुर

समन्तभद्राश्रम (वीर-सेवा-मन्दिर) का मुख पत्र

# विषय-सूची





# अनेकान्त को सहायता

२१) सेठ कश्मीरीलालजी (कश्मीर वालों) ने अपने सुपुत्र विनोद कुमार जी जैन (इंजीनियर) का विवाह ला० महावीर प्रसाद जी अग्रवाल मेटलवर्क्स रेवाड़ी की पुत्री चि० कुमारी प्रमिला के साथ जैनविधि से ३० अप्रेल को सम्पन्न हुआ। उस सुअवसर पर ७५१) के निकाले हुए दान में से २१) अनेकान्त को सधन्यवाद प्राप्त हुए।

२१) रायबहादुर सेठ हरखचन्द जी पाण्ड्या रांची के लघुभ्राता नारायचन्द जी की सुपुत्री चि० सरोज कुमारी के विवाहोपलक्ष में निकाले हुए ५४१) के दान में से इक्कीस रुपया अनेकान्त को सधन्यवाद प्राप्त हुए। आशा है इसी तरह अन्य महानुभाव भी धार्मिक एवं सामाजिक अवसरों पर अनेकान्त को सहायता भिजवाने का प्रयत्न करेंगे।

व्यवस्थापक **'अनेकान्त'**

**वीरसेवामन्दिर २१ दरियागंज, दिल्ली।**

# अनेकान्त के ग्राहकों से

अनेकान्त के प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि अनेकान्त का २१वें वर्ष का प्रथमांक उनकी सेवा में पहुंच रहा है। कृपया अंक मिलते ही २१वें वर्ष का वार्षिक मूल्य ६) मनीआर्डर से भिजवा कर अनुगृहीत करें। अन्यथा अगला अंक वी० पी० से भेजा जावेगा।

व्यवस्थापक **'अनेकान्त'**

# स्वास्थ्य-कामना

वीर सेवामन्दिर के संस्थापक वयोवृद्ध प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार एटा में बीमार हो गये थे। उनकी अवस्था ९२ वर्ष की है, इस वृद्धावस्था में भी वे बराबर लेखन कार्य करते हैं। और योगसार की प्रस्तावना लिख रहे हैं। अनेकान्त परिवार उनकी स्वास्थ्य कामना करते हुए उनके चिरजीवी होने की कामना करता है।




**अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपया।**

**एक किरण का मूल्य १ रुपया २५ पं०**

ओम् अर्हम्

# अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष २१ किरण १ | वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६ | वीर निर्वाण सवत् २४९४, वि० सं० २०२५ | अप्रेल सन् १९६८

## स्वयम्भू स्तुतिः

स्वयंभुवायेन समुद्धृतं जगज्जडत्वकूपे पतितं प्रमादतः ।
परात्मतत्त्व प्रतिपादनोल्लसद्वचो गुणैरादि जिनः स सेव्यताम् ॥१

—पद्मनन्द्याचार्य

**अर्थ**—स्वयम्भू—स्वयं ही प्रबोध को प्राप्त हुए जिस आदि (ऋषभ) जिनेन्द्र ने प्रमाद के वश होकर अज्ञाननारूप कुएँ मे गिरे हुए जगत के प्राणियो का परतत्त्व और आत्मतत्त्व (अथवा उत्कृष्ट आत्मतत्त्व) के उपदेश मे शोभायमान वचनरूप गुणो से उद्धार किया है उस आदि जिनेन्द्र की आराधना करना चाहिए।

**भावार्थ**—इस पद्य मे प्रयुक्त 'गुण' शब्द के दो अर्थ है—हितकारकत्व आदि गुण तथा रस्सी। उसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार कोई मनुष्य यदि असावधानी से कुएँ मे गिर जाता है तो इतर दयालु मनुष्य कुएं में रस्सियो को डालकर उनके सहारे से उसे बाहर निकाल लेते है। इसी प्रकार भगवान आदि जिनेन्द्र ने जो बहुत से प्राणी अज्ञानता के वश होकर धर्म के मार्ग से विमुख होते हुए कष्ट भोग रहे थे उनका हितोपदेश के द्वारा उद्धार किया था—उन्हे मोक्षमार्ग मे लगाया था। उन्होने उनको ऐसे वचनो द्वारा पदार्थ का स्वरूप समझाया था जो कि हितकारक होते हुए उन्हे मनोहर भी प्रतीत होते थे। 'हित मनोहारि च दुर्लभ वचः' इस उक्ति के अनुसार यह सर्वसाधारण को सुलभ नहीं है ॥१

— ० —

# यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन

**डा० गोकुलचन्द आचार्य, एम. ए. पी-एच. डी.**

पाणिनी के विषय मे सोमदेव ने एक महत्त्वपूर्ण जानकारी दी है। इनके पिता का नाम पणि या पाणि था। इसीलिए इन्हे पाणि पुत्र भी कहा जाता था। गणित को सोमदेव ने प्रसख्यात शास्त्र कहा है। सोमदेव के समय प्रमाणशास्त्र के रूप मे अकलक-न्याय की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। राजनीति मे गुरु, शुक्र, विशालाक्षा परीक्षित, पाराशर, भीम, भीष्म तथा भारद्वाज रचित नीतिशास्त्रों का उल्लेख है। सोमदेव ने गज विद्या मे यशोधर को रोमपाद की तरह कहा है। रोमपाद के अतिरिक्त गजविद्या विशेषज्ञो मे इभचारी, याज्ञवल्क्य, वाद्धलि (वाहालि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख है। कुल मिलाकर यशस्तिलक मे गज विद्या विषयक प्रभूत सामग्री है। गजोत्पत्ति की पौराणिक अनुश्रुति, उत्तम गज के गुण, गजो के भद्र, मन्द, मृग और सकीर्ण भेद, गजो की मदावस्था, उसके गुण-दोष और चिकित्सा, गज परिचारक, गज शिक्षा इत्यादि के विषय मे सोमदेव ने विस्तार मे लिखा है। मैने उपलब्ध गजशास्त्रो से इसकी तुलना करके देखा है कि यह सामग्री एक स्वतन्त्र गजशास्त्र के लिए पर्याप्त है।

गजशास्त्र की तरह अश्वशास्त्र पर भी सोमदेव ने विस्तार से प्रकाश डाला है। राजाश्व के वर्णन मे केवल एक प्रसग मे ही पर्याप्त जानकारी दे दी है। रैवत और शालिहोत्र अश्वशास्त्र विशेषज्ञ माने जाते थे। सोमदेव ने अश्व के इकतालीस गुणो की परीक्षा करना अपेक्षित बताया है। यशस्तिलक में इन सभी गुणों के विषय में पर्याप्त जानकारी दी गयी है। अश्वशास्त्र के साथ तुलना करने पर यह सामग्री और भी महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध होती है।

रत्नपरीक्षा मे शुकनास का उल्लेख है। वैद्यक या आयुर्वेद मे काशिराज धन्वन्तरि, चारायण, निमि, धिषण तथा चरक का उल्लेख है। रोग और उनकी परिचर्या नामक परिच्छेद मे इनके विषय मे विशेष जानकारी दी है।

ससर्ग विद्या या नाट्यशास्त्र, चित्रकला तथा शिल्पशास्त्र विषयक सामग्री भी यशस्तिलक मे पर्याप्त और महत्त्वपूर्ण है। ललितकलाये और शिल्प विज्ञान नामक तीसरे अध्याय मे इस सामग्री का विवेचन किया गया है।

कामशास्त्र को सोमदेव ने कन्तुसिद्धान्त कहा है। यशस्तिलक मे इसकी सामग्री यत्र तत्र बिखरी है। भोगावलि राजस्तुति को कहते थे।

काव्य और कवियों मे सोमदेव ने अपने पूर्ववर्ती अनेक महाकवियो का उल्लेख किया है। उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तहरि, भर्तृमण्ठ, कण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, भास, बोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ तथा राजशेखर का एक साथ एक ही प्रसग मे उल्लेख है। सोमदेव द्वारा उल्लिखित ग्रहिल, नीलपट, त्रिदश, कोहल, गणपति, शकर, कुमुद तथा केकट के विषय मे अभी हमे विशेष जानकारी नही उपलब्ध होती। वररुचि का भी एक पद्य उद्धृत किया गया है।

दार्शनिक और पौराणिक शिक्षा और साहित्य की तो यशस्तिलक खान है। प्रो० हन्दिकी ने इस सामग्री का विस्तार से विवेचन किया है, हमने इसकी पुनरावृत्ति नहीं की।

परिच्छेद ग्यारह मे आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। सोमदेव ने कृषि, वाणिज्य, सार्थवाह, नौ सन्तरण और विदेशी व्यापार, विनिमय के साधन, न्याय आदि के विषय में पर्याप्त सामग्री दी है। काली जमीन विशेष उपजाऊ होती है। सुलभ जल, सहज प्राप्य श्रमिक, कृषि के उपयोगी उपकरण, कृषि की विशेष जानकारी तथा उचित कर कृषि की समृद्धि में कारण होते है। तभी वसुन्धरा पृथ्वी चिन्तामणि की तरह शस्य सम्पत्ति लुटाती है।

वाणिज्य में सोमदेव ने स्थानीय तथा विदेशी व्यापार

का उल्लेख किया है। स्थानीय व्यापारके लिए प्राय एक चीज का अलग-अलग बाजार या हाट होता था। बडे-बड़े व्यापारिक केन्द्र पेण्ठास्थान कहलाते थे। देश-देश के व्यापारी आकर इन पेण्ठास्थानो मे अपना रोजगार करते थे। पेण्ठास्थानों का सचालन राज्य की ओर से होता था या किसी विशेष व्यक्ति द्वारा। इनमें व्यापारियो को हर तरह की सुविधा दी जाती थी। मध्ययुग मे जो व्यापारिक प्रगति हुई उसमे इन मडियो का विशेष हाथ था।

भारतवर्ष मे व्यापार करने के लिए जिस प्रकार विदेशी सार्थ आते थे उसी प्रकार भारतीय सार्थ टाडा बाधकर विदेशी व्यापार के लिए निकलते थे। सोमदेव ने ताम्रलिप्ति तथा सुवर्णद्वीप के व्यापार को जाने वाले सार्थो का उल्लेख किया है।

सोमदेव के युग मे वस्तु विनिमय तथा मुद्रा के मध्यम से विनिमय की प्रणाली थी। पिछड़े क्षेत्रो मे वस्तु विनिमय चलता था। मुद्राओं मे सोमदेव ने निष्क, कार्षापण तथा सुमन का उल्लेख किया है। निष्क वैदिक युग मे एक स्वर्णाभूषण था, किन्तु बाद मे एक नियत स्वर्ण मुद्रा बन गया। मनुस्मृति मे निष्क को चार-सुवर्ण या तीन सौ बीस रत्ती के बराबर कहा गया है। कार्षापण चादी का सिक्का था। मनुस्मृति मे इसे रजत पुराण और धारण कहा है। पुराण का वजन बत्तीस रत्ती होता था कार्षापण की फुटकर खरीज भी होती थी। सुवर्ण निष्क की तरह एक सोने का सिक्का था। अनगढ सोने को हिरण्य कहते थे और जब उसी के सिक्के ढाल लिए जाते तो वे सुवर्ण कहलाते थे। मनुस्मृति के अनुसार सुवर्ण का वजन अस्सी रत्ती या सोलह माषा होता था।

सोमदेव ने न्यास या धरोहर रखने का भी उल्लेख किया है। आचार, व्यवहार तथा विश्वास के लिए विश्रुत व्यक्ति के यहां न्यास रखा जाता था। यदि न्यास रखने वाले की नियत खराब हो जाये और वह समझ ले कि न्यास धर्ता के पास ऐसा कोई प्रमाण नही, जिसके आधार पर वह कह सके कि उसने अमुक वस्तु उसके पास न्यास रखी है, तो वह न्यास को हडप जाता था।

भृति या सेवावृत्ति के विषय मे लोगो की भावना अच्छी नहीं थी। विवश होकर आजीविका के लिए सेवावृत्ति स्वीकार भले ही कर ली जाये, किन्तु उसे अच्छा नही माना जाता था।

ग्यारहवें परिच्छेद मे इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन है।

परिच्छेद बारह मे यशस्तिलकमे उल्लिखित शस्त्रास्त्रो का विवेचन है। सोमदेव ने छत्तीस प्रकार के शस्त्रास्त्रो का उल्लेख किया है। इन उल्लेखो की एक बडी विशेषता यह है कि इनसे अधिकाश शस्त्रास्त्रो का स्वरूप उनके प्रयोग करने के तरीके तथा कतिपय अन्य बातों पर भी प्रकाश पडता है। धनुष, असिधेनुका, कर्तरी, कटार, कृपाण, खड्ग,कौक्षेयक, या करवाल, तरवारि, भुसुडी, मडलाग्र, असिपत्र, अशनि, अकुश, कणय, परशु या कुठार, प्रास, कुन्त, भिन्दिपाल, करपत्र, गदा, दुस्फोट या मूसल, मुद्गर, परिघ, दण्ड पट्टिस, चक्र, भ्रमिल, यष्टि, लांगल, शक्ति, त्रिशूल, शकु, पाश, वागुरा, क्षेपणिहस्त तथा गोलधर के विषय मे इस परिच्छेद मे पर्याप्त जानकारी दी गयी है।

तृतीय अध्याय मे सब चार परिच्छेद है। इनमें ललित कलाओ तथा शिल्प विज्ञान विषयक सामग्री का विवेचन है। परिच्छेद एक मे सगीत, वाद्ययन्त्र तथा नृत्यकला का विवेचन है। सोमदेव ने यशोधर को गीतगन्धर्वचक्रवर्ती कहा है। यशोधर का हस्तिपक, जिसकी ओर महारानी आकृष्ट हुई, सगीत मे माहिर था। संगीत और स्वरलहरी का अनन्य सबध है। सोमदेव ने सप्त स्वरो का उल्लेख किया है।

वाद्य यन्त्रो में यशस्तिलक के उल्लेख विशेष महत्त्व के हैं। वाद्यो के लिए सम्मिलित शब्द आतोद्य या। सगीतशास्त्र की तरह सोमदेव ने भी वाद्यो के घन, सुषिर, तत और अवनद्ध, ये चार भेद बताये है। सोमदेव ने तेईस वाद्य यन्त्रो की जानकारी दी है। शख, काहला, दुदुभि, पुष्कर, ढक्का, आनक, भम्भा ताल, करटा, त्रिविला, डमरुक, रुंजा, घटा, वेणु, वीणा, झल्लरी, वल्लकी, पणव, मृदग, भेरी, पटह और डिण्डिम, इन सभी के विषय मे यशस्तिलक की सामग्री से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सगीतशास्त्र के अन्य ग्रन्थो के तुलनात्मक

अध्ययन के आधार पर इन वाद्य यन्त्रों का इस परिच्छेद में पूरा परिचय दिया गया है।

नृत्यकला विषयक सामग्री भी यशस्तिलक मे पर्याप्त है। सोमदेव ने लिखा है कि सम्राट् यशोधर नाट्यशाला में जाकर कुशल अभिनेताओं के साथ अभिनय देखते थे। नाट्य प्रारंभ होने के पूर्व रंगपूजा की जाती थी। सोमदेव ने इसका विस्तार से वर्णन किया है।

यशस्तिलक मे नृत्य के लिए नृत्य, नृत्त, नाट्य लास्य, ताण्डव तथा विधि शब्द आये है। नृत्य, नृत्त और नाट्य देखने में समानार्थक शब्द लगते है, किन्तु वास्तव मे इनमें पर्याप्त अन्तर था। दशरूपक मे धनजय ने इनके पारस्परिक भेदो को स्पष्ट किया है। नाट्य दृश्य होता है, इस लिए इसे 'रूप' भी कहते है और रूपक अलकार की तरह आरोप होने के कारण रूपक भी। काव्यो मे वर्णित धीरोद्धत आदि प्रकृति के नायकों, नायिकाओ तथा पात्रो का आगिक, वाचिक आहार्य तथा सात्विक अभिनयो द्वारा अवस्थानुकरण नाट्य कहलाता है। यह रसाश्रित होता है। नृत्य भावाश्रित और केल दृश्य होता है। ताल और लय के आश्रित किए जाने वाले नर्तन को नृत्त कहते है। इसमे अभिनय का सर्वथा अभाव रहता है। लास्य और ताण्डव नृत्त के ही भेद है। इस परिच्छेद मे इस सम्पूर्ण सामग्री का विशद विवेचन किया गया है।

परिच्छेद दो में यशस्तिलक की चित्रकला विषयक सामग्री का विवेचन है। सोमदेव ने विभिन्न प्रकार के भित्ति चित्रो तथा धूलि चित्रो का उल्लेख किया है। प्रजापति प्रोक्त चित्र कर्म का सदर्भ विशेष महत्त्व का है। उसका एक पद्य भी उद्धृत किया गया है।

भित्तिचित्र बनाने की एक विशेष प्रक्रिया थी। भित्ति चित्र बनाने के लिए भीत का पलस्तर या उपलेप कैसा होना चाहिए, उसे कैसे बनाना चाहिए, उस पर लिखाई करने के लिए जमीन कैसे तैयार करना चाहिए—इत्यादि का मानसोल्लास मे विस्तृत वर्णन है। सोमदेव ने दो प्रकार के भित्ति चित्रो का उल्लेख किया है—व्यक्ति चित्र और प्रतीक चित्र। एक जिनालय मे बाहूबलि, प्रद्युम्न, सुपार्श्व, अशोक राजा और रोहिणी रानी तथा यक्ष मिथुन के चित्र बनाये गये थे। प्रतीक चित्रों मे तीर्थंकरो की माता के सोलह स्वप्नों के चित्र थे। श्वेताम्बर साहित्य मे इनकी सख्या चौदह बताई गई है। ऐरावत हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, लटकती हुई पुष्प मालाये, चन्द्र-सूर्य, मत्स्ययुगल, पूर्ण कुभ, पद्मसरोवर, सिंहासन, समुद्र, फणयुक्त सर्प, प्रज्वलित अग्नि, रत्नो का ढेर और देव विमान ये सोलह स्वप्न तीर्थंकर की माता बालक के गर्भ मे आने के पहले देखती है। प्राचीन पाण्डुलिपियो मे भी इनका चित्राकन मिलता है।

रगावली या धूलिचित्रो का सोमदेव ने छह बार उल्लेख किया है। चित्रकला मे रगावलि को क्षणिक चित्र कहते है। इसके धूलिचित्र और रसचित्र दो भेद है। आजकल इसे रगोली या अल्पना कहा जाता है। प्रत्येक मागलिक अवसर पर रगोली बनाने का प्रचलन भारतवर्ष मे अभी भी है।

प्रजापति प्रोक्त चित्रकर्म का एक विशेष प्रसग मे उल्लेख है। पद्य का तात्पर्य है कि जो कलाकार प्रभा मण्डल युक्त तथा नव भक्तियो सहित तीर्थंकर का चित्र बना सकता है वह सम्पूर्ण पृथ्वी का भी चित्र बना सकता है।

चित्रकला के अन्य उल्लेखो मे ध्वजाओ पर बने चित्र, दीवालो पर बने सिंह तथा गवाक्षों से झाकती हुई कामिनियो के उल्लेख है। इस परिच्छेद मे इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

परिच्छेद तीन मे यशस्तिलक की वास्तुशिल्प विषयक सामग्री का विवेचन किया गया है। सोमदेव ने विभिन्न प्रकार के शिखर युक्त चैत्यालय, गगनचुबी महाभागभवन, त्रिभुवन-त्रिलकनामक राजप्रासाद, लक्ष्मीविलासतामरस नामक आस्थानमडप, श्री सरस्वती विलास कमलाकर नामक राजमदिर, दिग्विलयविलोकनविलास नामक क्रीड़ा प्रासाद, करिविनोदविलोकनदोहद नामक वासभवन, गृहदीर्घिका, प्रमदभवन तथा यन्त्रधारागृह का विस्तृत वर्णन किया है।

चैत्यालयों के शिखरो ने सोमदेव का विशेष ध्यान आकृष्ट किया। सोमदेव ने लिखा है कि शिखर क्या थे

मानो निर्माण कला के प्रतीक थे। शिखरो की अटनि पर सिह निर्माण किया जाता था। मणिमुकुर युक्त ध्वज स्तंभ और स्तंभिकायें, सचित्र ध्वज दण्ड, रत्नजटित काचन कलश, चद्रकान्त के बने प्रणाल, उज्ज्वल आमलासार कलश और उन पर खेलती हुई कलहस श्रेणी विटको पर बैठे शुक शावक, इन सबके कारण शिखर और अधिक आकर्षण का केन्द्र बन रहे थे। सोमदेव की इस सामग्री को वास्तुसार, प्रासादमडन तथा अपराजित पृच्छा की तुलना पूर्वक स्पष्ट किया गया हे।

त्रिभुवनतिलक प्रासाद के वर्णन मे सोमदेव ने प्राचीन वास्तु शिल्प की अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी है। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल मे सूर्य और अग्नि मन्दिर की तरह इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, चन्द्र आदि के भी मन्दिरो का निर्माण किया जाता था।

आस्थान मडप को सोमदेव ने लक्ष्मीविलास नाम दिया है। गुजरात के बडौदा आदि स्थानों मे विलास नामान्तक भवनो की परपरा अब तक सुरक्षित है। मुगल वास्तु मे जिसे दरवारे आम कहा जाता था, उसी के लिए प्राचीन नाम आस्थान मडप था सोमदेव ने इसका विस्तृत वर्णन किया है।

आस्थानमडप के ही निकट गज और अश्वशालाएँ बनाई जाती थी। राजभवन के निकट इन शालाओं के बनाने की परंपरा भी प्राचीन थी। राजा को प्रात. गजदर्शन शुभ बताया गया है, यह इसका एक बडा कारण प्रतीत होता है। फतेहपुर सीकरी के प्राचीन महलो मे इस प्रकार की वास्तु का दर्शन अब भी देखा जाता है।

सरस्वती विलास कमलाकर सम्राट् का निजी वासभवन था। क्रीडा पर्वतक की तलहटी मे बनाये गये दिग्वलयविलोकन प्रासाद मे सम्राट् अवकाश के क्षणों को आनन्दपूर्वक बिताते थे। कारिविनोदविलोकनदोहद आजकल के स्पोर्टस्-स्टेडियम के सदृश था। मसिजविलासहसतिवासतामरस नामक भवन पटरानी का अन्तःपुर था। यह सप्ततलप्रासाद का सबसे ऊपरी भाग था। इसके वर्णन में सोमदेव ने बहुमूल्य और प्रचुर सामग्री की जानकारी दी हैं। रजतवातायन, अमलक देहली, जातरूपभित्तियाँ, मरकतपरागनिर्मित रगावलि, सचरणशील हेमकन्यकाये, तुहिनतरु के वलीक, कूर्चस्थान इत्यादि का विश्लेषण किया गया है।

दीर्घिका और प्रमदवन के विषय मे भी सोमदेव ने पर्याप्त जानकारी दी है। दीर्घिका राजभवन मे एक ओर से दूसरी ओर दौडती हुई वह लम्बी नहर थी, जिसे बीच-बीच मे रोककर, पुष्करणी, गधोदक कूप, क्रीडा वापी आदि मनोरजन के साधन बना लिए जाते थे और अन्त मे जाकर दीर्घिका प्रमदवन को सीचती थी। दीर्घिका तथा प्रमदवन दोनो के प्राचीन वास्तु-शिल्प की यह विशेषता बहुत समय तक जारी रही और भारत के बाहर भी इसके उल्लेख मिलते है। इस परिच्छेद मे इस सबके विषय में विस्तृत जानकारी दी गयी है।

परिच्छेद चार मे यन्त्रशिल्प विषयक सामग्री का विवेचन है। यन्त्रधारागृह के प्रसग मे सोमदेव ने अनेक प्रकार के यान्त्रिक उपादानो का उल्लेख किया है। कुछ सामग्री अन्य प्रसगो मे भी आयी है।

यन्त्रधारागृह के निर्माण की परपरा का क्रमशः विकास हुआ है। समरागण सूत्रधार मे पांच प्रकार के वारिगृहो के उल्लेख है। सोमदेव ने यन्त्रधारागृह का विस्तार से बर्णन किया है। यहा यन्त्रजलधर या मायामेघ की रचना की गई थी। विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियो के मुह से निकलता हुआ जल दिखाया गया था। यन्त्रपुत्तलिकाएँ, यन्त्रवृक्ष आदि की रचना की गयी थी। यन्त्रधारागृह का प्रमुख आकर्षण यन्त्रस्त्री थी, जिसके हाथ छूने पर नाखाग्रो से, स्तन छूने पर चूचुको से, कपोल छूने पर नेत्रो से, सिर छूने पर नाभि से चन्दन चर्चित जल की धाराएँ बहने लगती थी। सोमदेव ने पखा झलने वाली ताम्बूलवाहिनी यान्त्रिकपुत्तलिकाओ का भी उल्लेख किया है अन्तःपुर के प्रसंग मे यन्त्रपर्यक का उल्लेख है। इस परिच्छेद मे इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे यशस्तिलककालीन भूगोल पर प्रकाश डाला गया है। यशस्तिलक मे सैतालीस जनपद, चालीस नगर और ग्राम, पाँच वृहत्तर भारत के देश, पंद्रह बन

और पर्वत तथा बारह झील और नदियों के उल्लेख है। इसमे कुछ सामग्री ऐसी भी है जो सोमदेव के युग मे अस्तित्व मे नही थी। ऐसी सामग्री को सोमदेव ने परम्परा से प्राप्त किया था। मैंने इस सम्पूर्ण सामग्री का पाच परिच्छेदों मे विवेचन किया है।

पहले परिच्छेद मे यशस्तिलक मे उल्लिखित सैतालीस जनपदो का परिचय है। अवन्ति, अश्मक, अन्ध्र, इन्द्रकच्छ, कम्बोज, कर्णाट या कर्णाटक, करहाट कलिंग, क्रथकैशिक, काची, काशी, कीर, कुरुजागल, कुन्तल केरल, कोग, कौशल, गिरिकूटपत्तन, चेदि चेरम, चोल, जनपद, डहाल, दशार्ण, प्रयाग, पल्लव, पाचाल, पाण्डु या पाण्ड्य, भोज बर्बर, मद्र, मलय, मगध, यौधेय, लम्पाक, लाट, वनवासि, बग या बगाल, बगी, श्रीचन्द, श्रीमाल, सिन्धु, सूरसेन, सौराष्ट्र, यवन तथा हिमालय इन सैतालिस जनपदो मे से यशस्तिलक मे कई एक का एक बार और अधिकाश का एक से अधिक बार उल्लेख हुआ है। इस परिच्छेद मे इन सबका परिचय दिया गया है।

परिच्छेद दो मे यशस्तिलक उल्लिखित चालीस नगर और ग्रामो का परिचय है। अहिच्छत्र, अयोध्या, उज्जयिनी, एकचक्रपुर, एकानसी, कनकगिरि, कर्काहि, काकन्दी, काम्पिल्य, कुशाग्रपुर, किन्नरगीह, कुसुमपुर, कौशाम्बी, चम्पा, चुकार, ताम्रलिप्ति, पद्मावतीपुर, पद्मनिखेट, पाटलिपुत्र, पोदनपुर, पौरव, बलवाहनपुर, भावपुर, भूमितिलकपुर, उत्तर मथुरा, दक्षिण मथुरा या मदुरा, मायापुरी, मिथिलापुर, माहिष्मती राजपुर राजगृह, वल्लभी, वाराणसी, विजयपुर, हस्तिनापुर, हमपुर, स्वस्तिमति, सोपारपुर, श्रीसागर या श्रीसागरम्, सिहपुर तथा शखपुर, इन चालीस नगर और ग्रामो के विषय मे यशस्तिलक मे जानकारी आयी है। इस परिच्छेद मे इनका परिचय दिया गया है।

परिच्छेद तीन मे यशस्तिलक मे उल्लिखित वृहत्तर भारतवर्ष के पाच देश—नेपाल, सिंहल, सुवर्णद्वीप, विजयार्ध, तथा कुलूत का परिचय दिया गया है।

परिच्छेद चार मे यशस्तिलक मे उल्लिखित पद्रह वन और पर्वतो का परिचय है। सोमदेव ने कालिदासकानन, कैलास, गन्धमादन, नाभिगिरी, नेपालशैल, प्रागद्रि, भीमवन, मन्दर, मलय, मुनिमनोहरमेखला, विन्ध्य, शिखण्डिताण्डव, सुवेला, सेतुबन्ध और हिमालय का उल्लेख किया है। इन सबके विषय मे इस परिच्छेद मे जानकारी दी गई है।

परिच्छेद पाच मे यशस्तिलक मे उल्लिखित सरोवर तथा नदियो का परिचय दिया गया है। सोमदेव ने मानस या मानसरोवर झील तथा गगा, यमुना नर्मदा, जलवाहिनी,गोदावरी, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, लोणा, सिन्धु और सिप्रा नदी का उल्लेख किया है। इस परिच्छेद मे इनके बारे मे जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

पचम अध्याय यशस्तिलक की शब्द सम्पत्ति विषयक है। यशस्तिलक सस्कृत के प्राचीन, अप्रसिद्ध, अप्रचलित तथा नवीन शब्दो का एक विशिष्ट कोश है। सोमदेव ने प्रयत्नपूर्वक ऐसे अनेक शब्दो का यशस्तिलक मे सग्रह किया है। वैदिक काल के बाद जिन शब्दो का प्रयोग प्राय समाप्त हो गया था जो शब्दकोश ग्रन्थो मे तो आये है, किन्तु जिनका प्रयोग साहित्य मे नही हुआ या नही के बराबर हुआ, जो शब्द केवल व्याकरण ग्रन्थो मे सीमित थे तथा जिन शब्दो का प्रयोग किन्ही विशेष विषयो के ग्रन्थो मे ही देखा जाता था, ऐसे अनेक शब्दो का सग्रह यशस्तिलक मे उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त यशस्तिलक मे ऐसे भी अनेक शब्द है, जिनका सस्कृत साहित्य मे अन्यत्र प्रयोग नही मिलता। बहुत से शब्दो का तो अर्थ और ध्वनि के आधार पर सोमदेव ने स्वयं निर्माण किया है। लगता है सोमदेव ने वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक, व्याकरण, कोश, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, ज्योतिष तथा साहित्यिक ग्रन्थो से चुनकर विशिष्ट शब्दो की पृथक्-पृथक् सूचिया बना ली थी और यशस्तिलक में यथास्थान उनका उपयोग करते गये। यशस्तिलक की शब्द सम्पत्ति के विषय मे सोमदेव ने स्वय लिखा है कि "काल के कराल ने जिन शब्दो को चाट डाला उनका मैं उद्धार कर रहा हूँ। शास्त्र-समुद्र के तल मे डूबे हुए शब्द-रत्नो को निकालकर मैने जिस बहुमूल्य आभूषण का निर्माण किया है, उसे सरस्वती देवी धारण करें।"

प्रस्तुत प्रबन्ध मे मैने ऐसे लगभग एक सहस्र शब्द

दिये हैं। आठ सौ शब्द इस अध्याय मे है तथा दो सौ से भी अधिक शब्द अन्य अध्यायो मे यथास्थान दिये है। इस अध्याय मे शब्दों को वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक आदि श्रेणियो में वर्गीकृत न करके अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है। शब्दों पर मैने तीन प्रकार से विचार किया है—१. कुछ शब्द ऐसे हैं, जिन पर विशेष प्रकाश डालना उपयुक्त लगा। ऐसे शब्दो का मूल सदर्भ अर्थ तथा आवश्यक टिप्पणी दी गई है। २. सोमदेव के प्रयोग के आधार पर जिन शब्दों के अर्थ पर विशेष प्रकाश पड़ता है, उन शब्दो के पूरे सदर्भ दे दिये है। ३. जिन शब्दो का केवल अर्थ देना पर्याप्त लगा, उनका सदर्भ सकेत तथा अर्थ दिया है।

शब्दों पर विचार करने का आधार श्रीदेव कृत टिप्पण तथा श्रुतसागर की अपूर्ण सस्कृत टीका तो रहे ही हैं, प्राचीन शब्द कोश तथा मानियर विलियम्स और प्रो० आप्टे के कोशो का भी उपयोग किया है। स्वय सोमदेव का प्रयोग भी प्रसगानुसार शब्दों के अर्थ को खोलता चलता है। श्लिष्ट, क्लिष्ट, अप्रचलित तथा नवीन शब्दोंके कारण यशस्तिलक दुरूह अवश्य लगता है, किन्तु यदि सावधानी-पूर्वक इसका सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो क्रम क्रम से यशस्तिलक के वर्णन स्वय ही आगे पीछे के सदर्भों को स्पष्ट करते चलते है। इस प्रकार यशस्तिलक की कुजी यशस्तिलक मे ही निहित है। सोमदेव की इस बहुमूल्य सामग्री का उपयोग भविष्य मे कोश ग्रन्थो मे किया जाना चाहिए।

इस तरह उपर्युक्त पाच अध्यायों के पच्चीस परिच्छेदो मे प्रस्तुत प्रबन्ध पूर्ण होता है।

सोमदेव के समग्र अध्ययन के लिए इस समय जो सर्व प्रथम महत्वपूर्ण कार्य अपेक्षित है, वह है सोमदेव के दोनो उपलब्ध ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करण तैयार करने का। ऐसे सस्करण जिनमें इन ग्रन्थों से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्री का उपयोग किया गया हो। अपने अनुसधान काल मे मुझे निरन्तर इसकी तीव्र अनुभूति होती रही है। अभी तक दोनो ग्रन्थों के जो सस्करण निकले है, वे अशुद्धि पुज तो है ही, अनेक दृष्टियो से अपूर्ण और अवैज्ञानिक भी है। इसके अतिरिक्त उनको प्रकाशित हुए भी इतना समय बीत गया कि बाजार मे एक भी प्रति उपलब्ध नही होती।

यशस्तिलक का एक ऐसा सस्करण मै स्वयं तैयार कर रहा हूँ, जिसमे श्रीदेव के प्राचीन टिप्पण, श्रुतसागर की संस्कृत टीका तथा आधुनिक अनुसधानो का तो पूर्ण उपयोग किया ही जायगा, हिन्दी अनुवाद और सास्कृतिक भाष्य भी साथ मे रहेगा। इस सस्करण के स्वरूप की साधारण परिकल्पना इस प्रकार है—

१ यशस्तिलक का मूल शुद्ध पाठ (प्राचीन पाण्डुलिपियो के आधार पर)
२. श्रुतसागर की सस्कृत टीका।
३ मूल का हिन्दी अनुवाद।
४. सास्कृतिक भाष्य।
५-६. प्रस्तावना मे यशस्तिलक की सम्पूर्ण उपलब्धियो का सर्वेक्षण तथा परिशिष्ट मे यशस्तिलक का विशाल शब्दकोश।

नीतिवाक्यामृत के सपादन का कार्य पटनाके श्री श्रीधर वासुदेव सौहानी ने करने की रुचि दिखायी है। आशा है वे इसे अवश्य करेगे। यदि किन्ही कारणोवश न कर पाये, तो यशस्तिलक के बाद इसे भी मै पूरा करूँगा। ●

# सोनागिरि सिद्धक्षेत्र और तत्सम्बन्धी साहित्य

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, एम. ए. (त्रय), पी-एच. डी.

सोनागिरि सिद्धक्षेत्र के श्रमणगिरि, स्वर्णगिरि, स्वर्णाचल, कनकाचल, कनकगिरि एव कनकपर्वत आदि नाम भी मिलते हैं। निर्वाणकाण्ड[1] मे स्वर्णगिरि से नग और अनगकुमार के निर्वाण प्राप्त करने का उल्लेख आया है। जैन इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् स्व० प० नाथूराम प्रेमी ने अनेक प्रमाणों के आधार पर राजगृह पञ्चपर्वतो मे श्रमणगिरि को नग, अनगकुमार का निर्वाणस्थल सिद्ध किया है, साथ ही उन्होने जैन एव बौद्ध वाङ्मय के आधार पर राजगृह के ऋषिगिरि का नामान्तर श्रवण या श्रमणगिरि को माना है[2]। प्रेमीजीको सोनगिरि के सिद्धक्षेत्र होने मे अशका थी ही, पर उन्हे इसकी प्राचीनता मे भी सन्देह था। उनके निबन्ध का अध्ययन करने से यह धारणा उत्पन्न होती है कि सोनगिरि का प्रचार सिद्धक्षेत्र के रूप १७वी शती के पश्चात् हुआ है। उन्होने स्वर्णाचल-माहात्म्य के प्रकाशित होने पर लिखा है—"ऐसा मालूम होता है कि यह सब करामात सौरीपुर या बटेश्वर के भट्टारक जिनेन्द्रभूषण (विश्वभूषण के शिष्य और ब्रह्म हर्षसागर के पुत्र) की है, जिन्होने अटेर निवासी दीक्षित देवदत्त से यह १६ सर्गों का सस्कृत काव्य वि० स० १८४५ मे बनवाया और उन्होने ही इसे सबसे पहले सिद्धक्षेत्र के रूप मे प्रसिद्ध किया[3]।"

प्रेमीजी के उक्त कथन को निराधार कहना तो अनुचित है; पर यह पुन. विचारणीय अवश्य है। सोनगिरि के सम्बन्ध मे जो उल्लेख उपलब्ध है, उनसे उसकी निर्वाण भूमि के रूप मे १५वी शती या इससे पूर्व की मान्यता सिद्ध होती है। वहाँ के मूर्तिलेख १३वी शती के उपलब्ध है, अत इस क्षेत्र की प्रतिष्ठा इसके पूर्व ही हो चुकी होगी। १५वी शती के अपभ्रश भाषा के विद्वान् कवि रइधू ने 'रिट्ठणेमिचरिउ' की प्रशस्ति मे सोनगिरि का उल्लेख किया। बताया है :—

> 'कमलकित्ति उत्तमखम-धारउ,
> भव्वह भव-अंबोणिहि-तारउ।
> तस्स पट्ट 'कणयद्दि' परिट्ठउ,
> सिरि 'सुहचंद' सु-तव-उक्कंठिउ[4]॥

अर्थात्— भव्य जीवो को ससार समुद्र से पार करने वाले उत्तम क्षमा के धारक कमलकीर्ति हुए। इनके पट्टधर शुभचन्द्र का कनकगिरि—सोनागिरि पर अभिषेक हुआ था। महाकवि रइधू ने कमलकीर्त्ति का निर्देश इस ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति में किया है।

> णंदउ सूरि सुगुरु 'सुहचंदो',
> 'कमलकित्ति-पट्टंबर चंदो॥

कमलकीर्त्ति और उनके पट्टधर शिष्य शुभचन्द्र का का निर्देश वि० सं० १५०६; १५१०; १५३० और १६३९ के अभिलेखों मे उपलब्ध होता है। कमलकीर्त्ति काष्ठासघी माथुरगच्छ और पुष्करगण के भट्टारक हेमकीर्त्ति के शिष्य थे। यथा—

सवत् १५०६ वर्षे ज्येष्ठ सुदी १५ शुक्रे काष्ठासंघे श्रीकमलकीर्त्ति देवाः तदाम्नाये सा० थिरू स्त्री भानदे पुत्र

---

१ अगाणगकुमारा विक्खा-पचद्ध-कोडि-रिसिसहिया।
सुवण्णगिरि-मत्थयत्थे णिव्वाण गया णमो तेसि॥
—निर्वाणकाण्ड (गाथा)
नग अनग कुमार सुजान, पाँच कोडि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि-शीश, ते वदौ त्रिभुवनपति ईस॥
— निर्वाणकाण्ड (भाषा)

२ जैनसाहित्य और इतिहास, हिन्दी ग्रथरत्नाकर कार्यालय, बम्बई, द्वितीय सस्करण पृ० ४३६

३ वही, पृ० ४३९

४ जैनग्रंथ-प्रशस्तिसंग्रह द्वितीय भाग, वीरसेवा मन्दिर, दिल्ली पृ० ८८

सा० जयमाल जाल्हण ते प्रणमंति महाराज पुत्र गोशल[1]।

+ + + + +

सं० १५१० वर्षे माघ सुदि ८ सोमे काष्ठासघे भ० कमलकीर्तिदेव अग्रोतकान्वये गर्गगोत्रे तारन भा० देन्ही पुत्र सदृय भा० वारु पुत्र खेमचन्द प्रणमति[2]।

+ + + + +

संवत् १५३० वर्षे माघ सुदि ११ शुक्रे श्रीगोपाचल-दुर्गे महाराजा श्रीकीर्त्तिसिंघदेव काष्ठासघे माथुरगच्छे पुष्करगणे भ० श्रीहेमकीर्त्ति तत्पट्टे भ० कमलकीर्त्ति तत्पट्टे भ० शुभचन्द्र तदाम्नाये अग्रोतकान्वये गर्गगोत्रे स०[3]…।

+ + + +

सं० १६३९ वैशाख वदि ८ चन्द्रवासरे श्रीकाष्ठासघे माथुरगच्छे पुष्करगणे भ० कमलकीर्त्ति देवाः तत्पट्टे भ० श्रीशुभचन्द्रदेवाः तत्पट्टे भ० यश सेनदेवा. तदाम्नाये[4]… ।

उपर्युक्त अभिलेखो से स्पष्ट है कि हेमकीर्त्ति के पट्ट पर कमलकीर्त्ति, कमलकीर्त्ति के पट्ट पर शुभचन्द्र और शुभचन्द्र के पट्ट पर यश सेनदेव आसीन हुए। भट्टारक कमलकीर्त्ति ने तत्त्वसार टीका की रचना की है। इस टीका मे जो प्रशस्ति अंकित की गई है, उसमे संघ, गण, गच्छ वे ही है, जो पूर्वोक्त अभिलेखो मे अंकित है। यहाँ कमलकीर्त्ति को भट्टारक क्षेमकीर्त्ति, हेमकीर्त्ति और सयमकीर्त्ति की परम्परा मे अमलकीर्त्ति का शिष्य लिखा गया है[5]।

एक अन्य अभिलेख से भी कमलकीर्त्ति का भट्टारक हेमकीर्त्ति के पट्ट पर प्रतिष्ठित होना सिद्ध होता है।

सं० १५०६ जेठ सुदि … शुक्रे श्रीचन्द्रपाटदुर्गे पुरे चौहानवशे राजाधिराज श्रीरामचन्द्रदेव युवराज श्रीप्रताप-चन्द्रदेवराज्यवर्तमाने श्रीकाष्ठामघे मथुरान्वये पुष्करगणे आचार्य श्रीहेमकीर्त्तिदेव तत्पट्टे भ० श्रीकमलकीर्त्तिदेव। पं० आचार्य रइधू नामधेय[6]…।

अतएव स्पष्ट है कि सोनागिरि क्षेत्र की भट्टारक परंपरा मे कमलकीर्त्ति और शुभचन्द्र के नाम इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह क्षेत्र वि० सं० १५०० के पूर्व सिद्धक्षेत्र के रूप मे मान्य था, तब शुभचन्द्र का कनकयद्दि—कनकाद्रि—पर अभिषेक हुआ। शुभचन्द्र के पश्चात् सोनागिरि के साथ भट्टारक यशस्सेन का सबंध रहा है। इन यशस्सेन द्वारा प्रतिष्ठापित एक दशलक्षणयन्त्र वि० स० १६३९ का प्राप्य है[7]।

कमलकीर्त्ति भट्टारक के दो शिष्य थे—शुभचन्द्र और कुमारसेन . सोनागिरि क्षेत्र का अधिकार शुभचन्द्र की शिष्यपरम्परा के अधीन रहा है। अत: वि० स० की १७वीं शताब्दी के मध्य तक माथुरगच्छ और पुष्करगण के भट्टारक यहाँ की गद्दी के अधिकारी रहे। सत्रहवी शती के उत्तरार्द्ध मे यह क्षेत्र कुछ दिनों तक बलात्कार गण की अटेर शाखा के भट्टारको द्वारा उपयुक्त हुआ। अभिलेखों के अध्ययन से ऐसा अनुमान होता है कि भट्टारक विश्वभूषण के समय तक गोपाचल, वटेश्वर और सोनागिरि ये तीनों ही स्थान एक ही भट्टारक परम्परा के अधीन रहे। एक स्थान का भट्टारक ही तीनों स्थानों की देखभाल करता था। सोनागिरि क्षेत्र मूलत' बलात्कारगण के भट्टारकों का था, अत विश्वभूषण से पश्चात् यहाँ की गद्दी पर स्वतन्त्र रूप से भट्टारक अभिषिक्त होने लगे। इस परम्परा में देवेन्द्रभूषण, जिनेन्द्रभूषण, नरेन्द्रभूषण एव चन्द्रभूषण प्रभृति के नाम उपलब्ध होते है।

निष्कर्ष यह है कि भट्टारको के सम्बन्धो का अध्ययन करने से सोनागिरि क्षेत्र की मन्यता १५वी शती से पूर्व

---

१ भट्टारक सम्प्रदाय, जैनसस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, वि० २०१४ लेख संख्या ५६०

२ वही, लेख सख्या ५६२

३ वही, लेख सख्या ५६३

४ वही, लेख सख्या ५६५

५ श्रीमन्माथुरगच्छ पुष्करगणे श्रीकाष्ठसघे मुनिः,
सम्भूतो यतिसघ नायकमणि. श्रीक्षेमकीर्त्तिर्महान्।
तत्पट्टाम्बरचन्द्रमा गुणगणी श्रीहेमकीर्त्तिर्गुरुः,
श्रीमत्सयमकीर्त्तिपूरितादिशापूरो गरीयानभूत् ॥१॥
अभवदमलकीर्तिस्तत्पदाम्भोजभानुर्मुनगणनुत-
कीर्त्तिर्विश्वविख्यातकीर्त्तिः।
शम-यम-दम-मूर्त्तिः. खड्गरातिकीर्त्ति-
र्जगतिकमलकीर्त्तिः प्रार्थितज्ञानमूर्त्तिः ॥२॥
—जैनग्रन्थ-प्रशस्ति सग्रह प्रथमभाग, वीरसेवा मन्दिर, पृ० १२३-१२४

६ प्राचीन जैनलेखसग्रह, सम्पादक बाबू कामताप्रसाद।

७ भट्टारक-सम्प्रदाय, सोलापुर, पृ० २२९ (लेखाङ्क ५६५)

की उपलब्ध होती है। अतः प्रेमीजी ने जो वि० सं० १८४२ के बाद सिद्धक्षेत्र के रूप में मान्य होने का अनुमान किया था, वह समीचीन नही है। पूर्वोक्त विचार विनिमय से इस क्षेत्र की प्रसिद्धि का समय १५वीं शती तक पहुँच जाता है।

सोनागिरि क्षेत्र पर संकलित प्राचीन ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ भी इस क्षेत्र की प्राचीनता सिद्ध करती हैं। यहाँ काष्ठासंघी चन्द्रकीर्ति के शिष्य भट्टारक अमरकीर्ति द्वारा विरचित 'णेमिणाहचरिउ' की प्रति प्राप्य है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल वि० स० १२४४ भाद्रपद शुक्ला चर्तुदशी है। सोनागिरि भण्डार में उपलब्ध प्रति का लेखनकाल वि० स० १५१२ है[1]।

पण्डित आशाधरजी ने स्वोपज्ञ सहस्रनाम की रचना की है। इस ग्रन्थ पर श्रुतसागर सूरि ने वि० सं० १५७० मे सस्कृतटीका लिखी है। इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि भी यहाँ के ग्रन्थागार मे प्राप्य है।

**प्रतिमालेख**

प्रतिमालेखो से भी इस क्षेत्र की प्राचीनता पर प्रकाश पडता है। यहाँ का मुख्य मन्दिर चन्द्रप्रभ स्वामी का है। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार वि० स० १८८३ मे मथुरा के सेठ लखमीचन्द द्वारा सम्पन्न हुआ है। इस मन्दिर मे जीर्ण मन्दिर के शिलालेख का साराश ग्रह्य कर हिन्दी मे पद्यबद्ध अभिलेख अकित किया गया है। यथा—

> **मन्दिर सह राजतभये, चन्द्रनाथ जिनईस।**
> **पोशसुदी पूनम दिना, तीन सतक पंतीस॥**
> **मूलसंघ अर गण करो (ह्यो), बलात्कार समुदाय।**
> **श्रवणसेन अरु दूसरे, कनकसेन दुइ भाय॥**
> **बीजक अक्षर बाँचके, कियो सुनिश्चय राय।**
> **और लिख्यो तो बहुत सौ. सो नहि परघो लखाय[2]॥**

इस अभिलेख मे संवत् ३३५ पौष शुक्ला पूर्णिमा का उल्लेख आया है तथा मूलसंघ बलात्कार गण के श्रवणसेन और कनकसेन नामक दो भाइयों का भी निर्देश किया है। विक्रम स० ३३५ तो अशुद्ध है; क्योकि बलात्कार गण का अस्तित्व दशमी शती के पूर्व के वाङ्मय मे नहीं मिलता है। इस गण का सबसे प्राचीन अभिलेख ई० सन् १०७५ का उपलब्ध है[1]। अतः स्वर्गीय प्रेमीजी ने वि० स० १३३५ का अनुमान किया था, पर कालगणना करने पर यह सवत् भी अशुद्ध प्रतीत होता है। हमारा अनुमान है कि **"तीन सतक पंतीस"** पाठ अशुद्ध है और इसके स्थान पर **"एक सहस पंतीस"** होना चाहिए। उक्त पाठ मे "दिना" शब्द भी विचारणीय है। ज्योतिष मे 'दिन' शब्द दो अर्थों मे उपलब्ध होता है—दिवस और रविवार। भारतीय परम्परा मे सप्ताह का प्रथम दिन रविवार को माना गया है, अत: कालगणना प्रसग मे 'दिन' रविवार का अर्थ बोध करता है। यतः प्रथम वारेश 'रवि' है, जिससे सामान्यतः वारेश के आधार पर 'दिन' रविवार के अर्थ मे व्यवहृत है। इस प्रकार अभिलेख से वि० स० १०३५ पौष शुक्ला पूर्णिमा रविवार को जीर्ण मन्दिर के निर्माण किये जाने का फलितार्थ निकलता है। कालगणना करने पर वि० स० १०३५ मे पौष पूर्णिमा भी रविवार को पडती है, अत. चन्द्रप्रभ स्वामी का प्राचीन मन्दिर वि० १०३५ मे निर्मित हुआ है। चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमा का स्थापत्य भी मध्यकालीन है, इस प्रकार की मूर्त्तियाँ खजुराहो के कालावशेषो मे भी उपलब्ध है। अतएव मुख्य मन्दिर का निर्माण विक्रम की ११वीं शती मे हुआ होगा।

सोनागिरि क्षेत्र मे अन्य प्राचीन मूर्तिलेख भी उपलब्ध है। यहाँ १६ सख्यक मन्दिर राजाखेड़ा (धौलपुर) के जैसवाल समाज का है। इस मन्दिर मे निम्नलिखित दो प्राचीन अभिलेख पाये जाते है :—१ सवत् १२१३ गोला-

---

१ जैनग्रन्थ प्रशस्तिसग्रह, द्वितीय भाग, वीरसेवा मन्दिर, पृ० ६६ प्रस्तावना

२ जैन साहित्य और इतिहास, बम्बई, द्वितीय संस्करण पृ० ४३५

---

१ स्वस्तिश्री चित्रकूटाम्नायदावलि मालवद शान्तिनाथदेव सम्बन्ध श्रीबलात्कार-गण मुनिचन्द्र-सिद्धान्त-देवर शिसिनु अनन्तकीर्ति-देवरु हेग्गडे केसव-देवङ्गे धारापूर्वक माडि कोटेवु प्रतिष्ठे पुण्य सान्ति।—जैन शिलालेख सग्रह द्वितीय भाग, २०८ सख्यक। यह अभिलेख बलगाम्बे मे चन्नबसवप्प के खेत मे एक भग्नमूर्ति पर उपलब्ध हुआ है।

पल्लीवसे सा० साबू सोढो, साधू श्री लल्लूभार्या जिणा, तयो सुत साबू दील्हा भार्या पल्हासस जिननाथं सविनयं प्रणमन्ति ।

+ + + +

२ सवत् १६४३ वर्षे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे (श्री) चारुणदीदेव तदन्वये श्री गोल्लाराडान्वये सा० नावे भार्या केवल एक पुत्र नगउ गोल्लासुत सेठ चल्लाती नित्य प्रणमन्ति ।

मूर्तिलेखो के अतिरिक्त इस मन्दिर मे दो-तीन अन्य प्रतिमाएँ भी ११-१२वी शती की कलासूचक है । मध्यकालीन पाषाण, स्थापत्य एवं अङ्गोपाङ्ग की आकृति 'नागर' शैली की है । अन्य एकाध मन्दिर में भी प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं ।

नीची पहाडी पर निर्मित मन्दिरो का स्थापत्य मुगलकला से प्रभावित है । यहाँ के गुम्बजो का आकार-प्रकार एवं कोणाकार तोरण मुसलमानी कला के अनुरूप है । प्राय. सभी मन्दिर सौ-दो-सौ वर्ष से प्राचीन प्रतीत नही होते ।

**सोनागिरि क्षेत्र सम्बन्धी साहित्य**

सोनागिरि क्षेत्र के सम्बन्ध मे कई पूजापाठ एव माहात्म्य सूचक रचनाएँ उपलब्ध होती है । भट्टारक जगद्भूषण के शिष्य भट्टारक विश्वम्भूषण ने वि. स० १७२२ के लगभग **"सर्व त्रैलोक्य जिनालय जयमाला"** नामक एक लघुकाय ग्रन्थ रचा है । इसमे सिद्धक्षेत्र और अतिशय क्षेत्र और अतिशयक्षेत्रों का विवेचन किया गया है । भट्टारक विश्वभूषण सोनागिरि के भट्टारक थे, अत: इन्होंने अपने उक्त ग्रन्थ का सोनागिरि की वन्दना से किया है :—

**सोनागिरि बुंदेलखंडे, आयातो चन्द्रप्रभखंडे ।**
**पंचकोडि रेवा वहमानं, रावनसुनु मोक्ष शिवजाणं ।३२**

+ + + + +

**मूलसंघ शारदबरगच्छे बलात्कार कुन्दान्वय हंसं ॥६६**
**जगताभूषण पट्टदिनेशं, विश्वभूषण महिमा जु गणेशं ।**
**लाडभव्य उपदेश सुरचिता, सद्वचने जयमाल सचीता ॥६७**

**सोनागिरि पच्चीसी ऐतिहासिक** रचना है, इसमे सोनागिरि क्षेत्र का सक्षिप्त इतिवृत्त वर्णित है । कवि भगीरथ ने वि० सं० १८६१ मे ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी को इसे पूर्ण किया है । इस कृति में क्षेत्र के मुख्य मन्दिर परिक्रमा एव अन्य मन्दिरो का वर्णन किया है । उन दिनों में इस क्षेत्र पर कार्तिक सुदि पूर्णिमा को मेला लगता था । कवि ने इस मेले का सजीव चित्रण किया है । यथा—

**मेला है जहा कौ कातिक सुद पूनौ को,**
**हाट हू बजार नाना भाँति जुरि आए हैं ।**
**भावधर वंदन कौ पूजन जिनेद्र काज,**
**पाप मूल निकंदन कौ दूर हू सं धाए हैं ॥**
**गोठं जेउनारे पुनि दान देह नानाविधि,**
**सुर्ग पंथ जाइवे कौ पूरन पद पाए हैं ।**
**कीजिए सहाय पाइ आए हैं भगीरथ,**
**गुरुन के प्रताप 'सोनागिरी' के गुण गाए हैं ॥**

कृति के रचनाकाल का निर्देश करते हुए बताया गया है—

**जेठ सुदी चौदस भली, जा दिन रची बनाय ।**
**संवत् अष्टादस इकिसठ, संवत लेउ गिनाइ ॥**
**पढं सुनं जो भाव धर, औरे देइ सुनाइ ।**
**मनवांछित फल कौ लिए, सो पूरन पद को पाइ ॥**

इस पच्चीसी मे कवि ने क्षेत्र के मन्दिरों का भी सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। क्षेत्र की वदना से अन्तरात्मा पावन हो जाती है और कर्म-कालुष्य नष्ट हो जाता है । भावपूर्वक वन्दना करने से विशुद्धता और पवित्रता के साथ मनोकामनाएँ भी पूर्ण होती है । क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय क्षीण होती है तथा ज्ञान, श्रद्धा, भक्ति की समृद्धि होने से परमानन्द की उपलब्धि होती है । कवि ने विवरणात्मक परिचय के साथ क्षेत्र का आन्तरिक महत्त्व भी अकित किया है । सिद्धक्षेत्र के रूप मे मूल्याङ्कन उपस्थित करते हुए तीर्थवदना को कर्मनिर्जरा का हेतु प्रतिपादित किया है ।

**'स्वर्णाचलमाहात्म्यम्'** सस्कृत काव्य की रचना कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न देवदत्त दीक्षित ने की है । ये भदौरिया राजाओ के राज्य मे स्थित अटेर नामक नगर के निवासी थे । इन्होंने भट्टारक जिनेन्द्रभूषण की आज्ञा से 'स्वर्णाचलमाहात्म्य' और सम्मेदशिखर माहात्म्य' इन दोनों ग्रन्थों की रचना की है । इस ग्रन्थ मे यौधेय देश के

श्रीपुर नगर के राजा अरिंजय के पुत्र नंग और अनंग कुमार की कथा वर्णित है। बताया गया है कि उस समय मालवदेश के अरिष्टपुर नगर मे धनञ्जय नाम का राजा राज्य करता था। इस राजा के राज्य पर तेलग देश के राजा अमृतविजय ने अकारण ही आक्रमण किया। धनञ्जय ने माण्डलिक राजा अरिञ्जय को अपने सहायतार्थ आमन्त्रित किया। अरिञ्जय के दोनो पुत्र नग और अनगकुमार ससैन्य अरिञ्जय की सहायता करने के हेतु अरिष्टपुर पहुँचे और युद्ध मे उन्होने अमृतविजय को परास्त कर दिया तथा उसे बन्दी बना लिया गया। बन्दी बन जाने से अमृतविजय के मन मे अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न हुई और उनका मन विरक्ति से भर गया। इसी समय अरिष्टपुर मे चन्द्रप्रभ भगवान् का समवशरण आया। भगवान् की दिव्यध्वनि प्रवाहित हुई। उनके उपदेश को सुनकर धनञ्जय, नंग, अनग आदि विरक्त हो गये और सभी ने जिन दीक्षा ग्रहण की। इस सन्दर्भ मे कवि ने चन्द्रप्रभ भगवान् के मुख से अमृतविजय और धनञ्जय की शत्रुता के कारण का वर्णन पूर्वभव की घटनाओ के कथन द्वारा निर्दिष्ट किया है। अपनी पूर्वभवावलि के श्रवण से ही धनञ्जय को वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ।

तदनन्तर भगवान् चन्द्रप्रभ का समवशरण विहार करता हुआ स्वर्णाचल पर पहुँचा। यहाँ बत्तीस लाख वर्ष तक भव्यजीवों को कल्याणमार्ग का वे उपदेश देते रहे।

अनन्तर आठवे अध्याय से कथा दूसरी मुड़ती है। उज्जयिनी के राजा श्रीदत्त और रानी विजया के कोई पुत्र नही था। राजा-रानी पुत्राभाव के कारण चिन्तित रहते थे। सौभाग्यवश वहाँ आदिगत और प्रभागत नामक चारण ऋद्धिधारी मुनिराज पधारे। उन्होंने राजा-रानी को सोनागिरि की यात्रा विधिपूर्वक करने का उपदेश दिया। राजा ने सोनागिरि की यात्राके लिए सघ निकाला तथा विधिपूर्वक ससघ उस पुण्य भूमि की वदना की। इसके फलस्वरूप राजा-रानी के सुवर्णभद्र नामका पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। वयस्क होने पर सुवर्णभद्र का विवाह सम्पन्न हुआ। कालान्तर मे नग, अनगकुमार मुनिराज उज्जयिनी पधारे। उनके उपदेश से श्रीदत्त ने दीक्षा ग्रहण कर ली और स्वर्णाचल पर जाकर तप करने लगा। नंग और अनंगकुमार के स्वर्णाचल से मुक्ति गमन के समाचार को सुनकर सुवर्णभद्र ने सोनगिरि क्षेत्र के लिए यात्रा सघ निकाला और वहाँ जाकर दीक्षा धारण कर ली। घोर तपश्चरण करने के उपरान्त उन्होने पञ्च सहस्र मुनियो सहित मोक्षपद प्राप्त किया।

सोनागिरि तीर्थक्षेत्र की यात्रा करने से सभी प्रकार की लौकिक इच्छाएं पूर्ण होती है। कवि ने बताया है—

**यस्यां कृतायां भावेन संसारे पुत्रकामिनाम्।**
**सत्पुत्र लाभस्तद्वाद्धि धनलाभो धनार्थिनाम्॥**
**धर्मार्थिनां धर्मलाभः कामलाभस्तुकामिनाम्।**
**मुमुक्षूणां मोक्षलाभो बहुनोक्तेन किं बुधाः॥**
**ईदृक् पदार्थो नैवास्ति यस्य लाभो न वै भवेत्।**
**वदमानाः पूजयंतो ये स्वर्णाचलमुत्तमम्॥**

—स्वर्णाचलमाहात्म्यम्, १६।२४-२६

सोनागिरि क्षेत्र की वन्दना करने से पुत्रार्थी को सत्पुत्र लाभ, धन के इच्छुको को धन लाभ; धर्माथियो धर्मलाभ एव कामार्थियो की कामना की पूर्ति होती है। अधिक क्या, इस पावन क्षेत्र का वन्दन करने से मुमुक्षुओ को मोक्ष की प्राप्ति भी सम्भव है। विश्व मे ऐसा कोई पदार्थ नही है जो स्वर्णाचल की वन्दना और पूजा करने वालो को प्राप्त न हो सके। जो भक्तिभाव पूर्वक इस क्षेत्र का पूजन-वन्दन करता है, उसकी पूजा प्रतिष्ठा देवो द्वारा होती है।

कवि ने इसी अध्याय मे स्वर्णाचल की यात्रा का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए इस क्षेत्र का पूजन-वन्दन को बत्तीस करोड प्रोषधोपवास का फलदायक लिखा है। यथा—

**यः श्रीस्वर्णाचलस्यात्र यात्रामिष्ट प्रदायिनीम्।**
**पापघ्नीं तथा पुण्यवर्द्धिनीं भव्यसत्कृताम्॥**
**कुर्याद् भावेन संयुक्तो द्वात्रिंशत्कोटिसम्मितैः।**
**यत्फलं प्राप्यते भव्यैर्व्रतैः प्रोषधनामभिः।**
**प्राप्नुयादिह संसारे तद्वदेव विनिश्चयम्।**
**तस्मादवश्यमस्यात्र यात्रा कार्या विचक्षणैः॥**

**—स्वर्णाचलमाहात्म्यम् १६।१२-१४**

इस प्रकार कवि देवदत्त ने सोनागिरि क्षेत्र की यात्रा

का विस्तारपूर्वक महत्त्व प्रतिपादित किया है। नंग और अनगकुमार का पुण्यचरित भी इसी काव्य मे पाया जाता है, अन्य किसी ग्रन्थ मे नही।

'सोनागिरि' क्षेत्र के तीन पूजा ग्रन्थ उपलब्ध है। सस्कृत भाषा मे कवि आशा द्वारा विरचित आठ पत्रों की यह पूजा है। पूजा में रचनाकाल का निर्देश नही है, पर भाषा शैली के आधार पर इसे सत्रहवी शती की रचना मानी जा सकती है।

हिन्दी भाषा मे इस क्षेत्र की तीन पूजा प्रतियो का निर्देश मिलता है। रचयिताओ के नाम इन पूजा प्रतिया मे अकित नही है और न रचनाकाल का ही स्पष्ट निर्देश है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थसूची चतुर्थभाग मे ग्रन्थसख्या ५५२१ और ५८६५ मे उक्त पूजाओं की सूचना दी गई है। ५८६५ सख्या के गुटके मे पावागिरि और सोनागिरि की इन दोनो ही क्षेत्रो की पूजा निबद्ध है।

### उपसंहार

सोनागिरि क्षेत्र निर्वाणभूमि है, इसका प्रचार पन्द्रहवी शती से व्यापक रूप में है। यो यहाँ पर ११-१२वी शती में मन्दिरों का निर्माण हो चुका था। चन्द्रप्रभ स्वामी का समवशरण लाखों वर्षों तक यहाँ रहा, अतः प्रधान मन्दिर चन्द्रप्रभ भगवान् का रहना तर्कसगत है। नग और अनंग-कुमार का सम्बन्ध सोनागिरि के साथ अवश्य है, अतएव इसके सिद्धक्षेत्र होने मे आशका नही है। यहाँ का मेरु-मन्दिर, जो कि चक्की के आकार का होने के कारण चक्की वाला मन्दिर कहलाता है, बहुत आकर्षक है। पर्वत के ऊपर का नारियलकुण्ड एव बजनीशिला यात्रियों के लिए विशेष रुचिकर है। पर्वत पर कुल ७७ मन्दिर और नीचे अठारह मन्दिर है। अधिकाश मन्दिर विक्रम सवत् की अठारहवी और १९वी शती के ही बने हुए है। इस क्षेत्र की विशेषता इस बात मे है कि यहाँ धार्मिक वाता-वरण के साथ प्रकृति का रमणीय रूप भी परिलक्षित होता है। कलकल निनाद करते हुए झरने एव हरित मखमल की आभा प्रकट करती हुई दूर्वा भावुक हृदयकोल्हज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।

हम क्षेत्र के अधिकारियों से इतना नम्र निवेदन भी कर देना अपना कर्त्तव्य समझे है कि वे वहाँ के मूर्तिलेख एव ग्रन्थ प्रशस्तियों को प्रामाणिक रूप में प्रकाशित करा देने की व्यवस्था करे, जिससे इस पुण्यभूमि का इतिहास लिखा जा सके।

—:o:—

# क्या कभी किसी का गर्व स्थिर रहा है?

रे चेतन! तू किस किस पर गर्व कर रहा है, ससार में कभी किसी का गर्व स्थिर नहीं रहा। जिसने किया उसी का पतन हुआ। फिर पामर! तेरा गर्व कैसे स्थिर रह सकता है। अहंकार क्षण मे नष्ट हो जाता है। जब सांसारिक पदार्थ ही सुस्थिर नही रहते, तव गर्व की स्थिरता कैसे रह सकती है? सो विचार, अहंकार का परित्याग ही श्रेयस्कर है। इस सम्बन्ध मे कविवर भगवतीदास ओसवाल का निम्न पद्य विचारणीय है:—

**धूमन के धौरहर देख कहा गर्व करै, ये तो छिन मांहि जांहि पौन परसत ही।**
**संध्या के समान रंग देखत ही होय भंग, दीपक पतंग जैसें काल गरसत ही॥**
**सुपने में भूप जैसें इन्द्र धनुरूप जैसें, ओस बूंद धूप जैसें दुरै दरसत ही।**
**ऐसोई भरम सब कर्मजाल वर्गणा को, तामें मूढ मग्न होय मरै तरसत ही॥**

# मानव जातियों का देवीकरण

**साध्वी श्री संघमित्रा**

जैनागमों मे उल्लेख है कि भगवान महावीर की मंगलमयी वाणी सुनने के लिए चार प्रकार के देव उपस्थित होते थे[1]।

(१) भवन पति, (२) वाणव्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक ये देव कौन थे ? उनकी क्या महत्ता थी ? क्या सस्कृति थी ? कहाँ रहते थे ? आज यह प्रश्न बहुत ही मीमासनीय बन गए है। भिन्न-भिन्न परम्पराओ मे देव शब्द से भिन्न-भिन्न बोध होता है। वैदिक दर्शन के व्याख्याता ऋग्वेद और पुराण इन दोनो के देव भी एक नही है। ऋग्वेद मे देव शब्द (Natural Powers) का प्रतीक है। उन्होंने सूर्य, चन्द्र, मरुत्, वरुण, अग्नि आदि की सचालित शक्तियों को देव रूप मे स्वीकार किया है। ऋग्वेद के देवो मे मानवीय सम्बन्ध नहीं होते थे। यद्यपि[2] ऋग्वेद की प्रार्थना में ऐसा गाया जाता है कि यम और यमी सूर्य की सन्तान है।. दोनो परस्पर भाई-बहिन है। यम दिन है और यमी रात। एक बार यमी वैवाहिक सम्बन्ध की याचना करती है लेकिन यम भाई-बहिन के पवित्र सम्बन्ध को सुरक्षित रखना चाहता है अत वह इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। इस पवित्र सम्बन्ध को युग-युग तक सुदृढ़ रखने के लिए यम और यमी कभी नही मिलते, यम आता है तब यमी चली जाती है और यमी आती है तब यम भाग जाता है। यही रात-दिवस का क्रम युग-युग से चला आ रहा है। दोनो का आज तक कभी मिलन नही हुआ। ऋग्वेद मे देव विषयक इसी प्रकार के सारे कल्पित सम्बन्ध है।

पौराणिक देवो मे मानवीय सम्बन्ध जुड जाते है। उनका परिवार होता है। सन्तानें होती है। जन्म मरण को धारण करते है। तथा वरदान और अभिशाप देने में भी सक्षम होते है। जैन परम्परा के अनुसार देव शब्द से उन प्राणियों का बोध होता[3] है जिनका निवास स्थान इस धरती पर नही है। जो या तो इस लोक से सहस्रों मील ऊँचे रहते है या सहस्रों मील नीचे, जहाँ मानव की पहुँच किसी भी प्रकार से नही है। उन देवो का शरीर सूक्ष्म परमाणुओं से बना होता है। वे समय-समय पर चाहे जैसा रूप परिवर्तित करने मे सक्षम होते है। उनके शरीर मे अस्थि, मास और रक्त जैसा कोई तत्त्व नही होता। इसलिए वे सदा युवा बने रहते है, बहुत ही ऋद्धि सम्पन्न प्राणी होते है उन्हे इस धरती की दूर से ही गध आती है।

भगवान महावीर की परिषद मे उपस्थित होने वाले क्या ये ही देव थे ? इस प्रश्न के सदर्भ मे हमे कुछ चिन्तन करना है।

जैन दृष्टि से देवो के क्रम मे सबसे पहले भवनपति आते है इनके दस प्रकार है।

(१) असुर, (२) नाग, (३) विद्युत, (४) सुपर्ण, (५) अग्नि, (६) वायु, (७) स्तनित, (८) उदधि, (९) द्वीप, (१०) दिग्।

इन दसो मे असुर कुमार का स्थान सर्व प्रथम है। असुर कुमार की चर्चा वैदिक, बौद्ध और जैन तीनों परम्पराओं मे रही है। इतिहास के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि किसी समय यहाँ पर तीन मुख्य जातियाँ निवास करती थी। देव, असुर और मानव[4]। बाल्मीकि रामायण मे आया है कि देव, असुर और मनुष्य इन तीनो जातियो के हथियारों को चलाने में राम बहुत ही निपुण थे[5]।

---

१. औपपातिक अध्याय १

२. The Sphiny Speakes Ch. IV P. 27.

३. जीवाभिगम देवताधिकार।

४. औपपातिक अध्याय १

५. देवासुर मनुष्याणां सर्वास्त्रेषु विशारदः।
सम्यग् विद्या व्रत स्नातो-यथावत्साङ्ग वेदवित् ॥३४॥
वा० रा० आयोध्याकाण्ड सर्ग २।

मनु की सन्तान मानव, दिति की मन्तान दैत्य, (असुर) और अदिति की सन्तान देव जाति मे प्रविष्ट हुई। यह अदिति कौन है ? महर्षि यास्क ने निघण्टु मे पृथ्वी के २१ नाम गिनाए है उसमें एक नाम अदिति भी पृथ्वी का नाम है। अदिति को देव माता भी कहा है[१]। इससे स्पष्ट होता है कि देव जाति को जन्म देने का सौभाग्य इस पृथ्वी को मिला। पौराणिक अभिमत यह है कि दिति और अदिति काश्यप की पत्नियाँ थी। अदिति से देव और दिति से दैत्य (असुर) पैदा हुए[२]। ये परस्पर सौतेले भाई थे इसलिए बार-बार युद्ध हुआ करते थे। प्रत्येक शब्द का समय के साथ उत्कर्ष और अपकर्ष होता है। असुर शब्द आज अभद्र अर्थ मे प्रयुक्त होता है पर उस समय सर्वत्र ऐसा नही था। असुर वे थे जो सुरा नही पीते थे। नशा नहीं करते थे। सुरा नही पीने के कारण ही उनका नाम असुर पडा था[३] इससे लगता है यह बहुत ही सभ्य जाति थी इसमे खान-पान का उच्चस्तरी विवेक था। बहुत सभव है कि अनेक प्राणो का सरक्षण करने के कारण भी उन्हे असुर कहा गया हो। असून्-प्राणान् रक्षतीति-असुरः।

पौराणिक साहित्य में देवासुर का सग्राम बहुत ही प्रसिद्ध है। असुर एक बहुत ही बलवान जाति थी। जब देव और असुर का प्रथम सग्राम हुआ तो असुरो ने सुरो को बुरी तरह से हरा दिया था। असुर के गुरु शुक्राचार्य थे उनके पास एक ऐसी विद्या थी कि सग्राम मे घायल असुरो को पुनः शीघ्र ही स्वस्थ बना दिया जाता था। असुरों को जीतने का साहस देवों मे नही था।समुद्र मन्थन के समय देव-असुरों के बीच एक भयंकर सग्राम छिड़ा था। विश्व के इतिहास मे यह सग्राम बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ क्योकि इस समय दैत्य सस्कृति एक ओर इडोनेशिया से अमेरिका तक तथा दूसरी ओर अफ्रीका और इजिप्ट तक फैल गई थी[४]। अभी-अभी इडोनेशिया मे खुदाई होने से दैत्य सस्कृति के बहुत से चिह्न प्राप्त हुए है। यह

१. हिन्दू देव परिवार का विकास खण्ड १ पृ० ५१
२. वा० रा० बालकांड सर्ग ४५ श्लोक ४०
३. वा० रा० वाल का० सर्ग ४५ श्लोक ३८
४. The S. S Ch. IV P. 31

सग्राम देव और दैत्यों के बीच अमृत को लेकर हुआ[१] था। इस सग्राम में भी असुरो से देव हारने लगे तब विष्णु के पास गए। विष्णु ने दधीचि ऋषि से हथियार मागने की सलाह दी। दधीचि ने अपनी अस्थि का एक टुकड़ा देवों को दिया[२] और विश्वकर्मा ने शस्त्र बनाया। उसी शस्त्र प्रयोग से देवो ने असुरो को पराजित कर दिया था। इस पराजय के बाद असुर पाताल में चले गए।

वैदिक परम्परा और जैन परम्परा दोनो के अनुसार असुरो का निवास स्थान पाताल माना है लेकिन यह पाताल कहाँ था यही एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। हिन्दू पुराण मे सात पाताल माने गए है—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल[३]।

जैन दर्शन मे बताया है कि धरती के निम्नस्तरीय भाग मे पाताल है। इतिहास की दृष्टि से भी पाताल की कल्पना वर्तमान पृथ्वी के निम्नस्तरीय भाग मे है। जहाँ आज भी असुर जाति के ध्वसावशेष प्राप्त है। धरती का पर्वतीय भाग ऊर्ध्व भाग होता है। तिब्बत, चीन और उसके आस-पास के प्रदेश पर्वतीय भाग पर बसे हुए है। तिब्बत को संस्कृत साहित्य म त्रिविष्टप कहा जाता है। त्रिविष्टप[४] नाम स्वर्ग का है। इसे ऊर्ध्वलोक मे भी माना है। इससे स्पष्ट होता है कि तिब्बत, चीन और उसके आसपास का भाग उर्ध्वलोक मे सम्मिलित थे। और यही स्वर्गभूमि थी। यहाँ पर देवसंस्कृति का विकास था। वनवास करते समय ऋषि भारद्वाज ने कहा—चित्रकूट पर्वत पर बहुत से ऋषि सैकडो वर्ष तप कर महादेव के साथ स्वर्ग को चले गए थे। आप वही पर निवास करे। विष्णु त्रिविष्टप के अधिपति थे[५]। हिन्दी

१. बा० रा० वालकाड सर्ग ४५ श्लोक ४०
२. भागवत—६ अध्याय ६-१०
३. स्कन्द पुराण—महेश्वर खड—१ अ० ५० श्लोक २।३।४
४. स्वर्गस्त्रिविष्टप द्यौदिवौ भुविस्तविषताविषौ नाकः।
गौस्त्रिदिवमूर्ध्वलोक. सुरालयस्तत्सदस्त्वमटाः ॥८७॥
—अभिधान चिन्तामणि देवकाण्ड २
५. ऋषयस्तत्र बहवोविहत्य शरदां शतम्।
तपसादिवमारूढा कपाल शिरसा सह ॥३१॥
—बा० रा० अयोध्या का० सर्ग ५४

कोश में त्रिविष्टप को ही बैंकुण्ठ कहा[१] गया है। विष्णु यही निवास करते थे। शिव हिमालय की कैलास चोटी पर रहते थे उसी के पास मान सरोवर था। देव जाति यहाँ पर क्रीडा करने के लिए आया करती थी। इन्द्र की पुरी अमरावती थी जो वर्तमान मे चीन[२] है। ब्रह्मा का निवास स्थान ब्रह्म लोक था जो वर्तमान मे वर्मा हो गया[३] है। उदयाचल पर्वत जहाँ सूर्य उदय होता है इसके विषय में बाल्मीकि रामायण मे सुग्रीव कहता है—यह स्थान ब्रह्मा ने बनाया था। ब्रह्मलोक और भूलोक मे जाने के बीच का द्वार यही था[४]। वर्तमान में हिन्दुस्तान की अपेक्षा से सूर्य सर्व प्रथम वर्मा के पर्वत से उदित होता है। इस प्रमाण से स्पष्ट है कि वर्मा ही पहले ब्रह्मलोक था। आ० चतुरसेन शास्त्री का कथन है– देव श्री नार पर्वत पर रहते थे। श्री नार को आज सीनार कहते है। यह पर्वत फारस मे[५] है। उर्ध्वलोक की सीमा के बाद सप्तसिन्धु आता है। यहाँ पर मानव जाति निवास करती थी। यह देश सिन्ध और सरस्वती के बीच का प्रदेश था जिसमें सतलज, व्यास, रावी, चिनाब और झेलम आदि सात नदियाँ बहती थी। इसीलिए इसे सप्तसिन्धु कहा गया था। इसमें सारा पजाब, कश्मीर का दक्षिणी पश्चिमी भाग और अफगानिस्तान का वह भाग आ जाता है। जो कुंभ (काबुल) नदी के पास बसा हुआ है। इसके दक्षिण मे जहाँ आज राजस्थान है वहाँ समुद्र था। इसी प्रकार पूर्व दिशा मे भी जहाँ आज उत्तर प्रदेश है। वहाँ भी समुद्र था। यह सप्त सिन्धु भाग ही अवेस्ता मे 'हप्तहिन्दु' और वर्तमान में हिन्दुस्तान हो गया है। सप्त सिन्धु के पास तेनीस का दरिया आता था जिसका पिछला भाग नीचे पडता था उस भूमि को पाताल मान गया था। पाताल भूमि बहुत विस्तृत थी। असुर जब हार गए तब सुतल, तलातल और महातल मे चले गये[६] थे। सुतल बहुत सुन्दर भूमि होने के कारण सुतल कहा गया था। वर्तमान मे सुतल इंडोनेशिया मे आ गया है। और आज भी वहाँ बलि नाम का द्वीप है जिसका सम्बन्ध असुरों के अधिपति बलि से है। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि बलि महाबलिपुर मे रहता था जो अभी दक्षिण मे है। रसातल पाताल में गन्डवाना खड का उत्तर पश्चिम भाग तुर्किस्तान, कास्पियन एरिया, मध्य एशिया और एशिया का कुछ भाग आ जाता है। यहा एक रसा नाम की नदी बहती थी जिसका नाम वर्तमान मेक्रोक्सस हो गया है। इस रसा नदी के आधार पर भी इसको रसातल कहा गया था वर्तमान में एशिया इसी रसातल का परिवर्तित रूप हो ऐसा अनुमान होता है। इसी रसातल भाग में दैत्य, गरुड़ और नाग तीनों जातियाँ निवास करती थी[७]। रघु ने अश्वमेघ यज्ञ के समय अपने घोड़े को रसातल मे छिपाया[८] था। युद्ध के समय विष्णु से हार कर मालि सुमालि राक्षस बहुत समय तक रसातल पाताल मे ही छिपकर[९] रहे थे। इससे लगता है कि रसातल छुपने के लिए एक बहुत ही गम्भीर स्थान था। अतल और वितल पताल अच्छे भी नही थे और खराब भी नही थे। यहाँ पर भी राक्षस और बानर जाति निवास करती थी। तलातल, सुतल और महातल के बीच मे पडता था। महातल मे जाने के लिए तलातल को पार करना पडता था। महातल पृथ्वी का वह भाग था जहाँ पर सोने और चाँदी की खाने थी। महातल का अपभ्रश होते-होते मक्षिका और फिर मेकस्किो हो गया है। मेकस्किो वर्तमान में अमरीका की बहुत सुन्दर नगरी[१०] है।

सातवाँ पाताल बहुत ही दूर और गम्भीर स्थान है। बाद आने से पहले सुमालि के वशज वहीं रहे थे। इन्हीं

१. The S.S Ch. IV P. 34

२. वही।

३. The S.S. Ch. XIV P. 139

४. काचनस्य च शैलस्य–सूर्यस्य च महात्मनः।
आविष्टा तेजसा संध्या–पूर्वारक्ता प्रकाशते ॥६४॥
पूर्वमेतत्कृतं द्वारं–पृथिव्या भुवनस्य च।
सूर्योस्योदयन चैव–पूर्वाह्येषां द्विगुच्यते ॥६५॥
—बा० रा० किष्किन्धा का० सर्ग ४०

५. वयं रक्षाम परिशिष्ट (आ० चतुरसेन शास्त्री)

६. The S.S Ch. 10 P. 91

७. The S S Ch. 10 P. ८९

८. रघुवश सर्ग १३ श्लोक ८

९. बा० रा० उत्तर काड सर्ग ३ श्लोक २८,२९,३०

१०. The S S. Ch. 10 P. १३

मान पाताल में युद्ध के बाद असुर संस्कृति फैल गई थी हिन्दुस्तान के दक्षिण में तो असुर संस्कृति का बहुत ही विकास हुआ था। इसकी पुष्टि दो तीन बातो से की गई है।

केरलके निवासियों का यह विश्वास है कि बलि उनके राजा थे। अब भी लोग एक सप्ताह के लिए बडी धूम धाम से उत्सव मनाते है। मैसूर मे यह धारणा है कि महिषासुर वही राज्य करता था[1]।

जैन दर्शन मे असुर कुमारों का शारीरिक वर्णन करते हुए बताया है कि उनका रंग महानील मणि के समान नीला था उनके चेहरे पर मणि की सी कान्ति थी उनकी आंखें लाल थी। दात दूध की तरह सफेद और हाथ-पैर के तलवे अग्नि मे तपे स्वर्ण की तरह लाल थे[2]। इस शारीरिक वर्णन से अनुमान होता है कि—यह असुर जाति गर्म प्रदेश मे रहने वाली बहुत ही स्वस्थ और वीर जाति थी। दक्षिण हिन्दुस्तान बहुत गर्म प्रदेश माना जाता है। वहाँ के निवासियों का वर्ण आज भी श्याम होता है। इन सब बातों से निष्कर्ष यह आता है कि असुर वश का राज्य दक्षिणी भारत मे था। असुर परिवार निश्चय ही बलशाली और सभ्य समुदाय था। आर्य सस्कृतिके विकास मे इन समुदायो का महत्त्वपूर्ण हाथ था। देवराज इन्द्र की कन्या जयन्ती का असुर गुरु शुक्राचार्य से विवाह हुआ था। इससे लगता है कि देवों के साथ इनके वैवाहिक भी सम्बन्ध होते थे।

प्रज्ञापना[3] सूत्र मे आया है कि असुरो के शरीर का सहनन बहुत ही सुन्दर होता है यह सहनन शब्द भी उन्हे मानव सिद्ध करता है, क्योकि सहनन का सम्बन्ध औदारिक शरीर से है। वैक्रिय शरीर धारक देवो के अस्थिया होती ही नही ऐसी जैन दर्शन की स्पष्ट मान्यता है। बौद्ध दर्शन मे बताया है कि इस दुनियाँ मे चार प्रकार के लोग विद्यमान है[4]।

असुर परिषद सहित असुर

देव परिषद सहित असुर

असुर परिषद सहित देव

देव परिषद सहित देव

इनमें जो दुःशील है पापी है वे असुर और जो सुशील है सदाचार परायण है वे देव है।

उक्त कथन मे देव और असुर दोनो शब्दों का मानवीकरण हुआ है।

जो सुशील और सदाचारी है उन्हे देव कहा गया है और जो पापी व दुःशील है उन्हें असुर कहा गया है।

**नाग तथा सुपर्ण—**

असुर के बाद नाग और सुपर्ण का उल्लेख आता है नाग और सुपर्ण ये दोनो ही यहाँ की प्रसिद्ध जातियाँ थी जो आज भी आसाम की तरफ मिलती है। नागालैड प्रदेश भी इसी नाग जाति का सूचक है। नागवश इतिहास के पृष्ठो पर बहुत ही चर्चित रहा है। भगवान[1] महावीर स्वयं नागवंश के थे ऐसा मुनि श्री नथमल जी ने अपने एक निबन्ध मे सिद्ध किया है। शिशुनाग वश ऋष्यमूक पर्वत की रक्षा किया करता था। बिम्बसार के समय शिशुनाग वश काशी पर राज्य किया करता था। नागवश की अनेक शाखाएँ थी। तक्षक, अहि, वासुकि, पणी, फणी, पन्नग, शेषनाग आदि-आदि। इनमे से कोई जाति कश्मीर में निवास करती थी। शेषनाग और अनन्तनाग के नाम पर आज भी वहाँ तीर्थ स्थान बने हुए है। वासुकि जाति का निवास स्थान समरकन्द और मकरन्द देश[2] था। अजि के पूर्वज अहि कहलाते थे। पाणिनी व्याकरण के रचनाकार पाणिनी और आहिक नाम से इसी नागवश की सूचना मिलती है। आज के युग मे गायो के धनी अहीर इसी अहि जाति के वंशज है ऐसा उनके नाम से अनुमान होता है।

आज का वणिक् शब्द इस पर्णी शब्द का ही अपभ्रश हो ऐसा प्रतीत होता है। जाकार्त नदी के किनारे पर सिथियम रहते थे उनको नागोइ भी कहा जाता था। पर्णी, नागोइ मिलकर पन्नग नाम हो गया था।

१. हिन्दूदेव परिवार का विकास पृ० १७
२. औपपातिक अ० १
३. प्रज्ञापना सूत्र
४. अगुत्तर निकाय—नि० ४ असुरवर्ग पृ० ९१

१. भगवान महावीर ज्ञान पुत्र थे या नागपुत्र। पृ०
२. The S.S Ch. IV P. 33

तक्षक जाति की सूचना तक्षशिला विश्वविद्यालय से मिलती है। जनमेजय ने इसी स्थान पर नाग यज्ञ किया था उसमे उसने नागजाति को होम दिया था क्योंकि तक्षक जाति ने जनमेजय के पिता परीक्षित को मार डाला था[1] नाग जाति का गरुड़ जाति से बहुत वैर था। गरुड का प्राग्रूप (SU) सु जाति[2] है। इसे सुपर्ण भी कहा जाता है। सुपर्ण और नाग दोनों पड़ोसी थे। इसलिए उनमें स्वाभाविक वैर हो गया था। सुपर्ण जाति (गरुड़) जाकार्त नदी के पूर्व मे रहती थी। आज उसे जर्कसन कहा जाता है। तक्षक की मूल जाति टोकारिस[3] थी जो टोकारि स्थान मे रहती थी। जिसको आज तुर्किस्तान कहा जाता है। समुद्र मन्थन के समय देव, दैत्य, नाग, कच्छप, गरुड, गन्धर्व, आदि सभी जातिया सम्मिलित थीं। देवासुर सग्राम में इन जातियो ने दैत्यो का साथ दिया था।

विद्युत्कुमार अग्निकुमार आदि कौन थे? इसका ऐतिहासिक और साहित्यिक पृष्ठो मे कोई उल्लेख नही मिलता अनुमान होता है कि ये किसी जाति के मूल नाम नहीं उपाधिगत नाम हों। जैसे विद्युत्कुमार उस वर्ग को कहा जाता हो कि जिसके हाथ मे विद्युत सम्बन्धी कार्यो का सचालन हो अग्नि की सामग्री पर शासन करने वाले अग्निकुमार द्वीपों का सरक्षण करने वाले द्वीप कुमार, समुद्रों पर पहरेदारी करने वाले उदधिकुमार दिशाओ पर आधिपत्य रखने वाले दिग् कुमार वायु सम्बन्धी यानों का सचालन करने वाले वायुकुमार और युद्ध के समय साइरन की तरह विशेष यन्त्रो का संचालन करने वाले स्तनित कुमार कहे जाते हो। हो सकता है इन नामो की कोई जातियाँ हो या और भी कोई कारण रहा हो पर यह तो स्पष्ट ही है कि किसी के नामकरण में स्थानीय संस्कृति तथा आसपास के वातावरण का हाथ रहता है। स्थानीय पशु पक्षियों तथा अनेक अत्यन्त प्रसिद्ध वस्तुओं के आधार पर भी अनेक नाम निर्मित होते है। इन भवनपति देवो के जितने भी नाम है वे सब नाम उन पदार्थों के है जिनका अस्तित्व इस धरती पर है। एक भी नाम ऐसा नही है जिनका निशान इस धरती पर नहीं है तथा इन देवों के चिह्न और वाहन भी इस धरती के ही पशु-पक्षी है। इस अनुमान के आधार पर इन देवो का धरती के निवासी होना ही अधिक पुष्ट होता है।

**व्यन्तर देव—**

(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किंपुरुष (७) महोरग, (८) गन्धर्व।

इनमें सर्वप्रथम पिशाच है। पिशाच भी यहाँ की एक जाति थी जो कश्मीर की तरफ रहती थी यह जाति कच्चा मास खाती[4] थी। पैशाची भाषा प्राकृत की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। उसका होना ही कितना पुष्ट प्रमाण है कि इसके बोलने वालों के अस्तित्व मे सदेह नही किया जा सकता है।

**भूत—**

तिब्बत प्रदेश मे भूट्टान नाम का एक प्रदेश है। आज के इतिहासज्ञ भूट्टान का भी भूत स्थान से अर्थ बैठाते हैं। उनका अभिमत है कि यहाँ एक भूत जाति निवास करती थी इसलिए इस स्थान का नाम भूत स्थान और क्रमश: भूट्टान हो गया है। वनवास करते समय राम की हित कामना के लिए भूत जाति का स्पष्ट उल्लेख वाल्मीकि रामायण मे हुआ[5] है।

**यक्ष—**

यक्ष भी एक जाति थी जो वृक्ष के नीचे भी अपना घर बना कर रहती थी इसलिए इनका दूसरा नाम वट-वासी भी है। इनको गुफाओ में छिपकर रहने का अभ्यास था इसलिए इनका नाम गुह्यक[6] भी है कालिदास ने अपने

---

१. भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ५२३
२. The S.S. Gh. IV P. 33
३. वही

४. राक्षसाना पिशाचाना रौद्राणां क्रूरकर्मणाम्।
क्रव्यादाना च सर्वेण च मा भूत्पुत्रक ते भयम् ॥१७॥
—अयोध्या काड सर्ग २५

५. मयार्चिता देवगणा: शिवादयो महर्षयो भूतगणा: सुरोरगा:
अभिप्रयातस्य वन चिराय ते हितानि कांक्षन्तु दिशश्च राघव: ॥४३॥ —अयोध्या काड सर्ग २५

६. यक्षः पुण्यजनो राजा गुह्यको वटवास्यपि॥
—अभिदान चि० देव कांड २ श्लोक १९४

काव्य मेघदूत मे यक्ष को प्रमुख पात्र के रूप मे स्वीकार किया है। यक्ष का अधिपति कुबेर[1] कैलास की चोटी पर रहता था इसके पास पुष्पक विमान था। यह विमान बहुत तेज गति से दौडा करता था। चैत्ररथ नाम का बहुत ही सुन्दर वन था। अलका उसकी नगरी थी। धन का स्वामी माना जाता था। शिव का मित्र था। रावण का सौतेला भाई था। मनुष्यों को वाहन भी बनाता[2] था।

एक बार यक्ष और राक्षसों के बीच भयंकर युद्ध छिडा। सारी भूमि रक्त पंकिल हो गई आखिर यक्ष हार गए। कुबेर का पुष्पक विमान रावण ने छीन लिया। रावण जब पुष्पक विमान पर चढ कर गिरि को पार कर जाने लगा तब विमान रुक गया। नान्दी ने आकर बताया कि यहाँ शिव रहते है उनकी इजाजत के बिना देव दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, नाग, गरुड, गन्धर्व आदि कोई भी पार नही कर सकता। तब वह शिव के पास गया। शिव ने उसे चन्द्रहास दिया। और उसी दिन से वह शिव का पुजारी हो गया। इस युद्ध के बाद समग्र यक्ष जाति राक्षस जाति के साथ मिल गई।

**राक्षस**—

राक्षस जाति भी एक बहुत बलवान जाति थी। राक्षस संस्कृति का विस्तार दक्षिण मे भी था। राक्षस जाति का सुप्रसिद्ध अधिपति आज रामायण के पाठकों से अविदित नही है। दक्षिण के कुछ भाग मे आज भी रावण को पूज्य माना जाता है और राम को हेय दृष्टि से समझा जाता है। उनका अभिमत है कि रावण का चरित्र कितना ऊंचा था कि एक नारी की बिना इच्छा के उस पर हाथ तक नहीं उठाया और उसने अपने प्रण पर प्राणो का बलिदान तक कर दिया। जब कि राम अपनी एक नारी की सुरक्षा भी नही कर सका। रावण पहले सूर्यवशी था और सूर्य की पूजा किया करता था सूर्यको रा कहा जाता था। रा की पूजा करने के कारण उसका नाम रावण पडा था।

यक्ष और राक्षस जाति की उत्पत्ति के विषय मे पौराणिक जगतकी यह मान्यता है कि एक बार सब मनुष्य मिल कर ब्रह्मा के पास गए और उन्होंने ब्रह्मा से पूछा हमें क्या करना चाहिए? तभी ब्रह्मा ने कहा—प्राणियों की रक्षा और पूजा करो। जिन्होंने रक्षा का भार लिया वे राक्षस और जिन्होंने पूजा का भार लिया वे यक्ष कहलाये[3]।

आज हम यक्ष और राक्षस शब्द को निम्न अर्थ मे लेते है किन्तु कभी इस धरती पर यक्ष और राक्षस दोनों ही बहुत उच्चस्तरी जाति थी।

**किन्नर किंपुरुष**—

किन्नर और किपुरुष भी एक यक्ष जाति थी जो आज भी हिमाचल प्रदेश के उत्तर भाग मे मिलती है[4]। इस जाति के मनुष्यो का मुख घोडे की तरह लम्बा होता था इसलिए इसे तुरगवदन[5] भी कहा जाता था। एक बार चन्द्र के पुत्र बुध ने अनेक स्त्रियो से घिरी त्रिलोक सुन्दरी को घूमते हुए देखा। वह उसके रूप को देखकर आश्चर्य चकित हो गया। मन ही मन सोचा नागकुमारियों असुर कुमारियो तथा अप्सराओ से भी अधिक सुन्दर यह स्त्री कौन है। पास जाकर पूछा तो पाया कि यह त्रिलोक सुन्दरी अपने वर को ढूढ रही है। तभी बुध ने पास के पर्वत की ओर सकेत करते हुए कहा, तुम इस स्थान पर कुछ विशेष तप करते हुए निवास करो तुम्हे किपुरुष जाति के वर[6] मिलेगे। मन्थरा की बातो से बहक जाने पर कैकयी तीर से बीधी हुई किन्नरी के समान भूमि पर लेट जाती है[7]।

**महोरग**—

उरग भी एक जाति थी। यह नाग वश की उपशाखा

१. पौलस्त्यवैश्रवण रत्नकरा: कुबेर ॥
अभि० चि० दे० का० २ श्लोक १८६

२ यक्षौ नृधर्मधन दौ नर वाहन च० ॥
—अभि० चि० दे० का० २ श्लोक १८६।

३. बा० रा० उत्तर काड सर्ग ४ श्लोक ११-१२-१३-१४

४ The S S. Ch. ४ P ३२

५. किन्न इस्तु किम्पुरुषस्तुरङ्गवदनो मयु: ॥
—अ० चि० देव कांड सर्ग ८८ श्लो० १३-२३

६. वा० रा० उत्तर काड सर्ग ८फ श्लो० १३-२३

७ विदर्शिता यदादेवी-कुब्जया पापया भृशम्।
तदा शेतेस्म सा भूमौ, दिग्धबिद्धेव किनरी ॥१॥
—बा० रा० अयोध्या काड सर्ग ६

थी वाल्मीकि रामायण मे इसका उल्लेख है। राम की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि सुर, असुर, मानव, गन्धर्व, उरगादि सब प्राणियों मे राम का बल, आरोग्य और दीर्घ जीवन विदित[1] है।

**गन्धर्व**—

गन्धर्व जाति बड़ी चपल और नित्यप्रिय होती थी इनको मजाक करने में बडा आनन्द आता था। इनकी जाति मे विवाह विशेष पद्धति से होता था। जब इनकी विवाह पद्धति को दूसरो ने अपनाना शुरु किया तब से इस पद्धति का नाम गन्धर्व विवाह पड़ गया। इसकी राजधानी का नाम गन्धार था जो वर्तमान मे कन्धार हो गया[2] है। अफगानिस्तान मे अफगान लोग है उनमे गन्धर्व जाति के चिह्न आज भी मिलते है। गन्धर्व जाति के लोग बहुत सुन्दर होते थे। बाल्मीकि रामायण मे राम के सौन्दर्य को गन्धर्व जाति से उपमित किया है[3]।

**ज्योतिष्क**—

ज्योतिष्क देवो मे सूर्य, चन्द्र, तारा, ग्रह और नक्षत्र भगवान की परिषद मे उपस्थित थे। पुराणो की कल्पना है कि सूर्य और चन्द्र कौन थे? आकाश से सूर्य और चन्द्र का धरती पर अवतरण होने की बात बुद्धिगम्य कम होती है। संभव कल्पना यह है कि इस भूमि पर सूर्यवंश और चंद्रवंश थे।

इतिहास बताता है कि राम सूर्यवशी और कृष्ण चन्द्र वंशी थे। सूर्यवश और चन्द्रवंश भी बहुत विस्तृत वश थे। इनका उद्भव विशेष परिस्थिति को लेकर हुआ था। जो लोग बहुत गर्म प्रदेशों मे रहते थे उनके लिए सूर्य का ताप बहुत कष्टदायक था। चन्द्रमा की किरणे उन्हें अमृत के समान प्रतीत होती थीं इसलिए गर्म प्रदेश में रहने वाले लोग चन्द्र की पूजा करने लगे और वे आगे चलकर चन्द्रवशी बन गए। जो लोग शीत प्रदेशों मे रहते थे उनको सूर्य का ताप बहुत सुखकारक था। मकान बनाते समय ईटे सूर्य के ताप से बहुत जल्दी सूख जाया करती थी इस इसलिए वे सूर्य की पूजा करने लगे और आगे चलकर सूर्यवशी हो गए। सूर्यवशी लोग बड़े कठोर हृदय के होते थे। चन्द्रवशी चन्द्रमा की शीतलता ग्रहण कर सौम्य स्वभाव मे रहने का अभ्यास करते थे। सूर्यवशी लोग मृतात्मा के साथ आदमी और पशु को भी गाड़ते थे। मानव की बलि भी उनमे निहित थी। चन्द्रवशी लोग ऐसा नही किया करते थे। सूर्यवशी लोग बहुत कलाकार थे उन्होंने बहुत विशाल भवन बनाये।

मिश्र के पेरामिड इन सूर्यवशियो से निर्मित है। बेरुथ के उत्तर-पश्चिम भाग मे एक मन्दिर है जिसके आगन का एक पत्थर १२ टन का है। चन्द्रवशी अधिक कलाकार नहीं थे। वे वर्षो तक झोपडियो मे ही रहते थे। ये दोनो सस्कृतियाँ बाहर से आई और भारत पर छा गई। पहले ये दोनों संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न थी और बाद में दोनों एक हो गई। इनकी सस्कृति का विकास अमेरिका तक फैल गया था। वनवास जाते समय कौशल्या राम से कहती है कि सूर्य, चन्द्र, शुक्र, कुबेर और यम तुम्हारी रक्षा करे[4]। यहाँ कुबेर और यम व्यक्ति विशेष के साथ सूर्य चन्द्र का उल्लेख किसी व्यक्ति या जाति का ही सभवत सकेत करता है।

१२ प्रकार के वैमानिक देव सबसे अन्त मे आए। सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म लान्तक, शुक्र, महस्त्रारज, आनतज, प्राणतज, आरणज, अच्युतज।

इनमे से किसी भी जाति का उल्लेख इतिहास के प्रकाश में नहीं है पर यह तो स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि उक्त चार प्रकार के देवों में से अधिकाश यहाँ की जातियाँ प्रमाणित हो चुकी है तो फिर क्या कारण अन्य भी धरती पर निवास करनेवाली जातियाँ नही थी। इनको इनकार करने मे तो एक भी पुष्ट प्रमाण नहीं है

---

१. बल मारोग्य मायुश्च—रामस्य विदितात्मनः
देवासुर मनुष्येषु—सगन्धर्वोरगेबुच ॥५०॥
—वा० रा० अयोध्या कॉड सर्ग २

२. The S S. Ch. IV P. ३२

३. गन्धर्व राजप्रतिमं, लोके विख्यातपौरुषम्।
दीर्घ बाहु महासत्त्व मत्तमातङ्गगामिनम् ॥२८॥
—वा० रा० अयोध्या काड सर्ग ३

४. शुक्र सौमश्च सूर्याश्च, धनदोऽयं यमस्तथा।
यान्तु त्वामार्चिता राम दण्डकारण्य वासिनम् ॥२३॥
—वा० रा० अयोध्या का० सर्ग २५

प्रत्युत उनको स्वीकार करने मे जैनागमो मे कुछ ऐसे आनुमानिक प्रमाण आज भी उपलब्ध हैं। औपपातिक सूत्र में इन देवों के अग प्रत्यग, गति आदि का स्पष्ट विवेचन हुआ है पर यह वर्णन कहीं नही आया कि देव आए और उनके पैर धरती से चार अगुल ऊपर थे तथा उनकी पलके झपकार नही रही थी जब कि जैन सिद्धान्त यह मानता है कि वैक्रिय शरीर धारक देवो के पैर धरती से चार अंगुल ऊपर रहने है और आँखें भी झपकारा नही करती। इन चार प्रकार के देवों के आभूषण तथा मुकुटो के विशेष चिह्नों का वर्णन करते हुए बताया कि इनके कान मे कुण्डल था। शरीर मे चन्दन का लेप लगाया हुआ था। झीने वस्त्र पहने हुए थे। दसो अगुलियों में अगूठियाँ पहनी हुई थी। मणि रत्नो से जटित भुजाओ पर भुजबन्ध थे, कर्णपीठ थे। मस्तक से लेकर नीचे तक पुष्प मालाए पहनी हुई थी। देश-देश की वेशभूषाए थी। नागफण, गरुड़, वज्र, पुष्प, सिंह, अश्व, हाथी, मृग, सर्प, वृषभ, तलवार, मेंढक, मम्पक आदि चिह्नो से उनके मुकुट चिह्नित थे। अब देखना यह है कि इन आभूषणो मे से कौन से आभूषण ऐसे है जिनका उपयोग यहाँ की मानव जाति नही करती थी। भगवान को वन्दन करने जाते समय महाराज कोणिक ने भी इसी प्रकार के आभूषण धारण किये हुए थे।

इन देवो के मुकुटो मे जो पशु-पक्षियों के चिह्न है वे सब के सब पशु-पक्षी इस धरती के ही है। कोई भी ऐसे पशु-पक्षी का चिह्न नहीं है जो इस धरती के अतिरिक्त स्थान के हो। देश काल की दूरी में अखण्डित एकरूपता नही होती। पाँच महाद्वीपों के भी सब के सब पशु-पक्षी एक नहीं होते और न सब प्रकार के आभूषणो मे भी एकरूपता होती है तो फिर क्या कारण है कि एक अदृश्य दुनियाँ में रहनेवाले प्राणियों की मानव जाति से एकरूपता थी। यही प्रश्न बस हमे यहाँ की जाति विशेष मानने को विवश कर देता है।

पौराणिक साहित्य से तो यह भी स्पष्ट होता है कि इन देवों और मनुष्यों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध होते थे। देवता की सन्तान मैनका का सम्बन्ध विश्वामित्र से हुआ था। उर्वशी राजा पुरुरवा से मोहित थी जो अप्सरा की लडकी थी। जिसने दुष्यन्त को पसन्द किया। गगा देवी ने राजा शान्तनु के साथ पाणि-ग्रहण किया। इन्द्र स्वय गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या पर मोहित हो गया था। एक बार गौतम ऋषि की अनुपस्थिति मे उन जैसा रूप धारण कर अहिल्या के पास चले आए। गौतम ऋषि अचानक आए और यह देख कर तो क्रोधित होकर अभिशाप दिया कि तुम्हारा शरीर चलनी की तरह सहस्रों छिद्रों वाला हो फिर वरदान विशेष से इन्द्र के सहस्र छिद्र सहस्र चक्ष के रूप मे परिवर्तित हो गये तभी से इन्द्र सहस्र चक्षु कहलाने लगे।

रघुवश मे आता है कि स्वय रघु सपत्नीक इन्द्र से मिलने गए। देवासुर सग्राम मे दुष्यन्त, दशरथ आदि ने दैत्यो से लडने के लिए इन्द्र की मदद की थी[1]। निरन्तर युद्ध होने के कारण देवो के पास शस्त्र सामग्री बहुत अच्छी तैयार हो गई थी। महाभारत की लडाई से पहले अर्जुन स्वय हिमालय को पार कर दिव्य शस्त्र लाने को गए थे।

देव जब मनुष्यो से मिलने आते तो हिमालय को पार करके आते थे और मनुष्यो को भी देवो से मिलने जाते समय हिमालय पार करना पड़ता था। इससे स्पष्ट है कि हिमालय की ओर तथा उसकी चोटियो पर देव सस्कृति का विकास था। दूसरी ओर मध्य भूभाग मे मानव रहते थे तथा हिन्दुस्तान के दक्षिण-पश्चिम मे दैत्य सस्कृति प्रचलित थी जिसमे असुर, नाग, सुपर्ण, कच्छप, गरुड़ आदि काफी जातियाँ सम्मिलित थी। इनमे देव जाति बहुत ऊची मानी जाती थी, वह उर्ध्व स्थान मे रहती थी। संस्कार अच्छे थे। दिमाग बहुत अच्छा होता था। लोग उन्हें पूज्य दृष्टि से देखा करते थे। आज भी कहते है कि बारूद के गोले सबसे पहले चीन में तैयार हुए जो बहुत संभव है कि उन्ही देव वंशजों की देन हो। मानव जाति का निवास मध्य मे था। यहाँ धर्मप्रधान सस्कृति थी। त्याग और तपोबल पर इनके सामने स्वय देवता भी नतमस्तक थे।

---

१. पुरादेवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः।
अगच्छत्त्वामुपादाय देवराज्यस्य साह्यकृत ॥११॥
—वा० रा० अयोध्या काड सर्ग ९

जैन दर्शन में कहीं इस प्रकार के देव और मनुष्यों के बीच सम्बन्ध का उल्लेख नहीं हुआ है लेकिन देवों का वर्णन करते समय औपपातिक मे एक ऐसा तथ्य आया है जो एक नया ही रहस्य उद्‌घाटित करता है। उक्त देवो के शरीर का रग चार प्रकार का माना गया है। श्याम, पीला, लाल और सफेद। आधुनिक विद्वानों का अभिमत है कि ससार की समस्त जातियाँ इन चार ही रगों मे विभक्त है। रूसी, चीनी और मगोलिया पीली जाति के लोग है। अमेरिका के रेड इंडियन भी मंगोलिया वर्ग मे माने जाते है। पीली जाति के लोग पूर्वी एशिया तथा पश्चिम और विपुवन् अमेरिका के अधिकांश भाग मे रहते थे। अफ्रिका तथा गर्म प्रदेशो के लोग श्याम रग के होते हैं। यूरोप में लाल और श्वेत रग के लोग होते है। प्राचीन काल मे भी यही मान्यता रही है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण का ध्वस करने के लिए सुग्रीव ने अपार सेना जमा की थी उसमे सूर्य के समान लाल, चन्द्रमा की तरह सफेद, कमल केसर जैसे पीले लोग शामिल थे[1]।

निष्कर्ष की भाषा यह है कि राम और रावण के युद्ध मे एक ओर भूमण्डल के पूरे उत्तरी गोलार्ध के श्वेत, पीली, और लाल रग की जातियाँ सम्मिलित थी तो दूसरी ओर दक्षिणी गोलार्ध के राक्षस काले रग के थे।

बौद्ध दर्शन मे आया है कि एक समय भगवान् वैशाली के महावन मे कूटागार शाला मे विहार करते थे। उस समय पाँच सौ लिच्छवी थे। उनमे से कुछ नील वर्ण, नील वस्त्र और नील अलकारो वाले, कुछ लिच्छवी पीत वर्ण, पीत वस्त्र और पीत अलकारो वाले, कुछ लिच्छवी लाल वर्ण, लाल वस्त्र और लाल अलकारोवाले और कुछ लिच्छवी श्वेत वर्ण, श्वेत वस्त्र और श्वेत अलकारोवाले थे[2]।

देव जाति के रंगो के साथ मानव जाति के रगो का साम्य हमे कोई बहुत ही गम्भीर निष्कर्ष पर पहुंचाता है और यह सोचने के लिए अवसर देता है कि भगवान की परिषद मे उपस्थित होनेवाले देव यदि धरती से दूर कोई भिन्न ही वायुमण्डल मे रहनेवाले होते तो इसी धरती पर निवास करनेवाले और धरती की आबहवा मे पलनेवाले प्राणियों के रगो से यह समता नही होती अत: लगता है ये देव भी इसी धरती पर रहनेवाले प्राणी थे। धरती पर विभिन्न जातियाँ फैली हुई थी उनमे से देव जातियाँ भी थी। उनका शरीर मानव जैसे ही अस्थि, रक्त आदि परमाणुओ से बना हुआ था। इनकी संस्कृति, इनकी भाषा, इनका रहन-सहन मानवीय जगत् मे कोई निर्विशेष नही था ऐसी सभव कल्पना लगती है।

१. तरुणादित्य वर्णैश्च—शशि गौरैश्च वानरै।
पद्म केसर वर्णैश्च—श्वेतैमेरु कृतालयै.॥१३॥
—वा० रा० किष्किन्धा काड सर्ग ३९

२ अगुत्तर निकाय—नि० ५ ब्राह्मण वर्ग पृ० ४२४

# सुबोध

**जीवन कितेक तापै सामा तू इतेकु करै, लक्ष कोटि जोर जोर नेकु न अघातु है।**
**चाहतु धरा को धन आन सब भरों गेह, यों न जाने जनम सिरानों मोहि जातु है॥**
**काल सम क्रूर जहां निशदिन घेरो करै, ताके बीच शशा जीव कोलों ठहरातु है।**
**देखतु हैं नैन निसौ जग सब चल्यो जात, तऊ मूढ चेतै नाहि लोभै ललचातु है॥**

\+ + + + +

**सुनिरे! सयाने नर, कहा करै घर घर, तेरो जु शरीर घर घरी ज्यों तरतु है।**
**छिन छिन छीजै आयु जल जैसे घरी जाय, ताहू को इलाज कछु उरहू धरतु है॥**
**आदि जे सहे है ते तौ यादि कछु नाहि तोहि आगे कहो कहा गति काहे उछरतु है।**
**घरो एक देखो ख्याल घरी की कहाँ है चाल, घरी घरी घरियाल शोर यों करतु है॥**

**—भगवतीदास**

# प्रतिष्ठा तिलक के कर्ता नेमिचन्द्र का समय

मिलापचन्द्र कटारिया "विद्याभूषण"

प्रतिष्ठा तिलक के कर्ता नेमिचन्द्र है इन्होंने प्रतिष्ठा-तिलक मे अपने वशका वर्णन इस प्रकार किया है—

वीरसेन, जिनसेन, वादीभसिह और वादिराज इनके वश मे हस्तिमल्ल गृहाश्रमी हुये। इन हस्तिमल्ल के कुल में परवादिमल्ल मुनि हुये। और भी कई हुये जिन्होने दीक्षा ले जैनमार्ग की प्रभावना की। इसी कुल मे लोकपाल द्विज गृहस्थाचार्य हुये जो चोल राजा के साथ अपने बधुवर्ग को लेकर कर्नाटक देश मे आये। उनके समयनाथ नाम का तार्किक पुत्र हुआ। समयनाथ के आदिमल्ल, आदिमल्लके चिंतामणि, चिनामणि के अनंतवीर्य। अनतवीर्य के पार्श्वनाथ पार्श्वनाथ के आदिनाथ। आदिनाथ के वेदिकोदड। वेदि-कोदड के ब्रह्मदेव। और ब्रह्मदेव के देवेन्द्र नामक पुत्र हुआ जो सहिताशास्त्रों मे निपुण था देवेन्द्र की भार्या का नाम आदिदेवी था। यह आदिदेवी की विजयपार्य और श्रीमती की पुत्री थी। इस आदिदेवी के चद्रपार्य ब्रह्मसूरि और पार्श्वनाथ ये तीन सगे भाई थे। उस दपति (देवेन्द्र-आदिदेवी) के तीन पुत्र हुये—आदिनाथ, नेमिचद्र और विजयम। आदिनाथ जिन सहिताशास्त्रो का पारगामी हुआ। इसके त्रैलोक्यनाथ, जिनचद्रादि विद्वान पुत्र हुये। और विज-यम ज्योतिष का पंडित हुआ जिसका समतभद्र पुत्र साहित्य का विद्वान हुआ। तथा नेमिचंद्र, अभयचद्र उपाध्याय के पास पढ़कर तर्क व्याकरण का ज्ञाता हुआ। नेमिचद्र के दो पुत्र हुये—कल्याणनाथ और धर्मशेखर। दोनों ही महा विद्वान हुये। नेमिचंद्र ने सत्यशासन परीक्षा मुख्य प्रकर-णादि शास्त्र रचे। राजसभाओ मे प्रतिवादियो को जीत कर जिसने जैनधर्म की प्रभावना की जिसको राजा द्वारा छत्र, चंवर, पालकी भेट मे मिली। और जो स्थिर कदब नगर का रहने वाला है ऐसे नेमिचद्रने अपने मामा ब्रह्मसूरि आदि बन्धुओं के आग्रह से यह प्रतिष्ठातिलक ग्रथ बनाया है।

इस प्रकार नेमचद्र ने अपनी वशावली तो विस्तृत लिख दी परन्तु वे किस साल सवत मे हुये यह लिखने की कृपा नही की। यह गृहस्थ थे, इन्होंने उक्त प्रतिष्ठाग्रथ आशाधरकृत प्रतिष्ठाशास्त्र को आधार बनाकर लिखा है। यद्यपि इन्होंने आशाधरका कही उल्लेख नही किया है किंतु दोनो मे इतना अधिक साम्य है कि उसे देखकर यह निः सकोच कहा जा सकता है कि—अकुरारोपण आदि कुछ विशेष प्रकरणो को छोडकर बाकी सारा का सारा ग्रथ नेमिचंद्र ने आशाधर के ग्रथ से ज्यो का त्यो ले लिया है। सिर्फ दोनों मे शब्द रचना का ही अन्तर है, प्रायः अर्थ इकसार है। दोनो का मिलान करने से यह बात कोई भी जान सकता है अतः उनके उदाहरण देने की मै जरूरत नही समझता। किन्तु आशाधर प्रतिष्ठापाठ के कितने ही पद्य तो नेमिचद्र ने ज्यो के त्यो भी लिये है।

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि ये नेमिचद्र आशाधर के बाद हुये है। बाद मे होने का दूसरा हेतु यह है कि—इन्होने अपने प्रतिष्ठातिलक के मगलाचरण मे इद्रनदि आदि कृत प्रतिष्ठाशास्त्रो के अनुसार कथन करने की बात कही है। और इद्रनदि ने अपनी जिनसहिता मे आशाधर-कृत सिद्धभक्तिपाठ को उद्धृत किया है। तथा नेमिचद्र ने अपने प्रतिष्ठाग्रंथ के १८वे परिच्छेद मे एकसंधिसहिता के भी बहुत से श्लोक उद्धृत किये है। उधर एक सधि भी अपनी जिनसहिता के २०वे परिच्छेद मे इन्द्रनदी का उल्लेख करते है। इन सब उल्लेखो से यही निश्चित होता है कि आशाधर के बाद इन्द्रनदी, इन्द्रनदी के बाद एकसधि और एक सधि के बाद नेमिचद्र हुए है। प० आशाधर जी वि० स-१३०० तक जीवित थे यह निर्भ्रांत है।

अयंपार्य अपने बनाये "जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय" नामक प्रतिष्ठापाठ को वि० सं० १३७६ मे पूर्ण करते हुये लिखते है कि—मैंने यह प्रतिष्ठाग्रथ इन्द्रनंदी, आशाधर, हस्तिमल्ल

और एक सधि के कथनों का सार लेकर बनाया है।

इन्द्रनदि ने स्वरचित सहिता मे एक जगह हस्तिमल्ल का उल्लेख किया। (देखो उसका ३रा परिच्छेद) किन्तु जैनसिद्धान्तभास्कर भाग ५ किरण १ मे हस्तिमल्लकृत प्रतिष्ठाविधान की प्रशस्ति छपी है उसमे हस्तिमल्ल ने भी इन्द्रनदी का उल्लेख किया है। इससे हस्तिमल्ल और इन्द्रनंदी दोनो समकालिक सिद्ध होते है।

फलितार्थ यह हुआ कि हस्तिमल्ल, इन्द्रनदी और एकसधि ये प्रतिम सब आशाधर के समय से लेकर वि० सं०१३७६ के मध्य मे हुये है।

उक्त प्रतिष्ठातिलक के कर्ता नेमिचन्द्र कब हुए? अब हम इस पर विचार करते है। इन नेमिचन्द्र ने जो अपनी वशावली दी है उसके अनुसार ब्रह्मसूरि रिस्ते मे इनके मामा लगते थे। नेमिचन्द्र ने हस्तिमल्ल के कुल मे होने वाले कोछपाल द्विज से लेकर अपने पिता देवेन्द्र तक करीब ६ पीढी का उल्लेख किया है। इन पीढियो का समय यदि दोसौ वर्ष भी मान लिया जाय तो नेमिचन्द्र का समय विक्रम की १६वी शताब्दिका पूर्वार्द्ध बनता है। किन्तु नेमिचन्द्रके समय मे ही उनके मामा ब्रह्मसूरि हुए है उन्होने भी प्रतिष्ठाग्रथ बनाया है उसमे वे लिखते है कि—

"पाड्य देश मे गुडिपत्तन नगर के राजा पाडव नरेन्द्र थे। गोविद भट्ट यही के रहने वाले थे। उनके हस्तिमल्ल को आदि लेकर छह पुत्र थे। हस्तिमल्ल के पुत्र का नाम पार्श्वपडित था। वह अपने बन्धुओ के साथ होयसल देश मे जाकर रहने लगा था जिसकी राजधानी छत्रत्रयपुरी थी। पार्श्वपडित के चन्द्रप, चन्द्रनाथ, और वैजय्य नामक तीन पुत्र थे। उनमे से चद्रनाथ अपने परिवार के साथ हेमाचल में जा बसा और दो भाई अन्य स्थानो को चले गए। चद्रप के पुत्र विजयेन्द्र हुआ और विजयेन्द्रके ब्रह्मसूरि।"

ब्रह्मसूरिके इस कथनानुसार हस्तिमल्ल उनके पितामहके पितामह थे। यदि एक एक पीढीके २५-२५ वर्ष गिन लिए जाये तो हस्तिमल्ल उनसे लगभग सौ वर्ष पहले के थे। इससे नेमिचद्र और ब्रह्मसूरि का समय विक्रम की १५वी शताब्दि का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है। ऊपर हम १६वी शदी का पूर्वार्द्ध बना आये है। दोनोमे एकसौ वर्षका अन्तर है। यह अन्तर इस तरह दूर किया जा सकता है कि—

नेमिचन्द्र ने जो वंशावली दी है उसमे वे अपना वशक्रम १० पीढी पूर्व में होने वाले लोकपाल द्विज से शुरू करते है। और ब्रह्मसूरि अपनी वंशावली अपने से ४ पीढी पूर्व मे होने वाले हस्तिमल्ल से शुरू करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि नेमिचंद्र ने हस्तिमल्ल से करीब एक सौ वर्ष पूर्व मे अपनी वशावली शुरु की है। इस प्रकार यह अन्तर रफा होकर नेमिचन्द्र का समय विक्रम की १५वी सदी का पूर्वार्द्धही ठीक रहता है और यही समय ब्रह्मसूरि का भी है

नेमिचन्द्रने प्रशस्ति मे लोकपाल हस्तिमल्ल के कुल मे हुआ लिखा है। इसका अर्थ यह नही समझना कि लोकपाल हस्तिमल्ल के बाद हुआ है। चूकि हस्तिमल्ल एक विख्यात विद्वान हुये थे इसलिए नेमिचंद्र ने हस्तिमल्ल के पूर्वज लोकपाल आदि को हस्तिमल्ल के अन्वय में होना लिख दिया है। क्योकि जिस वश मे कोई प्रसिद्ध पुरुष हो जाता है तो उसकी आगे पीछे पीढिये उसी के नाम के वन्श से बोली जाया करती है। यहा इतना जरूर समझ लेना कि नेमिचंद्र और ब्रह्मसूरि दोनों समान वंश मे होते हुये भी जिस सतान परंपरा मे नेमिचद्र हुये है उस सतान परंपरा में न हस्तिमल्ल हुये और न ब्रह्मसूरि ही। अर्थात् नेमिचद्र और ब्रह्मसूरि दोनो के परदादो के परदादे आदि जुदे-जुदे थे।

"बाबू छोटेलालजी स्मृति ग्रथ" मे डा० नेमिचद्र जी शास्त्री आरा वालो का "भट्टारकयुगीन जैनसस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ" नामक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमे लेखक ने न मालूम इन नेमिचद्रका समय (पृ० ११८) विक्रम की १३वी सदी किस आधार से लिखा है? आपने कुछ और भी ग्रथकारों का समय यद्वा तद्वा लिख दिया है। जैसे कि आपने भैरवपद्मावतीकल्प आदि मंत्रशास्त्रो के कर्त्ता मल्लिषेण का समय १३वी शती लिखा है। यह बिल्कूल गलत है। इन मल्लिषेण ने महापुराण की रचना वि० सं०-११०४ मे पूर्ण की है। अत ये ११वो सदी के अत व १२वी सदी के प्रारम्भ में हुये है। इसी तरह आपने वाग्भट्टालकार के टीकाकार वादिराज को तोडानगर के राजा मानसिह का मत्री और उनका समय वि० स०-१४२६ लिखा है। यह भी ठीक नही है। उक्त वादिराज

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

# आगम और त्रिपिटिकों के संदर्भ में अजातशत्रु कुणिक

**अणुव्रत परामर्शक मुनि श्री नगराज**

श्रेणिक की तरह कुणिक (अजातशत्रु) का भी दोनो परम्पराओ मे समान स्थान है। दोनो ही परम्पराए उसे अपना अपना अनुयायी मानती है और इसके लिए दोनो के पास अपने-अपने आधार है। बौद्ध परम्परा के अनुसार सामञ्जफल सुत्त का सम्पर्क बुद्ध और अजातशत्रु का प्रथम प्रथम मिलन था। उसी मे वह बुद्ध, धर्म और सघ का शरणागत उपासक हुआ[1]। बुद्ध के प्रति अजातशत्रु की भक्ति का अन्य उदाहरण उनकी अस्थियों पर एक महान् स्तूप बनवाना है। बुद्ध के भग्नावशेष जब बांटे जाने लगे उस समय अजातशत्रु ने भी कुशीनारा के मल्लो से कहलाया—बुद्ध भी क्षत्रिय थे, मै भी क्षत्रिय हूँ। अवशेषो का एक भाग मुझे अवश्य मिलना चाहिए। द्रोण विप्र के परामर्श पर उसे एक अस्थि-भाग मिला और उस पर उसने स्तूप बनाया[2]।

सामञ्जफल सुत्त मे अजातशत्रु कार्तिक पूर्णिमा की रात को ही अपने राजवैद्य जीवक कौमार भृत्य से बुद्ध का परिचय पाता है और पाँच सौ हाथियो पर पाँच सौ रानियो को लिए उसी रात मे बुद्ध का साक्षात् करता है। महावीर से उसका प्रथम साक्षात् कब होता है, यह कहना कठिन है। उनके जितने साक्षात् उनसे मिलते है; वे चिर परिचय और अनन्यभक्ति के ही सूचक मिलते है। प्रथम उपाङ्ग **औपपातिक आगम** मुख्यत: महावीर और कुणिक के सम्बन्धों पर ही प्रकाश डालता है। चम्पानगरी और कुणिक की राज्य स्थिति का भी वहाँ सुन्दर चित्रण है। कुणिक की महावीर के प्रति रही भक्ति के विषय मे वहाँ बताया गया है—उसके एक प्रवृत्ति वादुक पुरुष था। वह महान् आजीविका पाता था। उसका कार्य था, महावीर को प्रति दिन की प्रवृत्ति से उसे अवगत करते रहना। उसके नीचे अनेको कर्मकर रहते थे। वे भी आजीविका पाते थे। उनके माध्यम से महावीर के प्रतिदिन के समाचार उस प्रवृत्ति वादुक पुरुष को मिलते और वह उन्हे कुणिक को बताता[3]।

महावीर के चम्पा-आगमन और कुणिक के भक्ति-निदर्शन का विवरण **औपपातिक सूत्र** मे बहुत ही विशद् और प्रेरक है। 'सामञ्जफल सुत्त' की तरह वह भी यदि गवेषको की समीक्षा का विषय बना होता, तो उतना ही महत्त्व उसका बनता। स्थिति यह है कि जितनी शोध-खोज अब तक त्रिपिटको पर हुई है, उतनी आगमों पर नही। यदि ऐसा हुआ होता, तो अनेकों महत्त्वपूर्ण विषयो पर निर्णायक प्रकाश पडता। अजातशत्रु कुणिक के विषय मे भी जितनी अवगति आगम देते है, उतनी त्रिपिटक नही।

**महावीर-आगमन का सन्देश**

महावीर और कुणिक का यह सम्पर्क चम्पा नगरी में होता है—महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते १४ सहस्र भिक्षु ३६ सहस्र भिक्षुणियो के परिवार से चम्पा नगरी मे आये। प्रवृत्ति वादुक पुरुष यह सवाद पा, आनन्दित हुआ, प्रफुल्लित हुआ। स्नान कर मंगल वस्त्र पहने, अल्प भार युक्त तथा बहुत मूल्य युक्त आभूषण पहने। घर से निकला। चम्पा नगरी के मध्य होता हुआ भभसार पुत्र कुणिक की राजसभा मे आया, जय-विजय शब्द से बर्धापना

---

१ एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्म च भिक्खु-सङ्घं च। उपासक म भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं।

२ बुद्धचर्या, पृ० ५०९

३ तस्स ण कोणिअस्स रण्णो एक्के पुरिसे विउलकय-वित्तिए भगवओ पवित्तिवाउए, भगवओ तद्देवसिअ पवित्ति णिवेएइ। तस्स ण पुरिसस्स बहवे अण्णे पुरिसा दिण्ण-भति-भत्त-वेअणा भगवओ पवित्ति-वाउआ भगवओ तद्देवसिअं पवित्ति निवेदेंति।

की, बोला—"देवानुप्रिय ! आप जिनके दर्शन चाहते है, जिनके दर्शन आपके लिए पथ्य हैं, जिनके नाम-गोत्र आदि के श्रवण से ही आप हृष्ट-तुष्ट होते है, वे श्रमण भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचरते हुए क्रमशः चम्पा नगरी के उपनगर मे आये है और चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य मे आनेवाले है। यह सम्वाद आपके लिए प्रिय हो।"

भभसार पुत्र कुणिक उस प्रवृत्ति-निवेदक से यह सवाद सुनकर अत्यन्त हर्षित हुआ। उसके नेत्र और मुख विकसित हो गए। वह शीघ्रता से राज-सिहासन छोड़कर उठा, पादुकाएँ खोली। पाचो राजचिन्ह दूर किये[1]। एक साटिक उत्तरासग किया। अजलिबद्ध होकर सात-आठ कदम महावीर की दिशा मे आगे गया। बाये पैर को सकुचित किया। दाये पैर को सकोच कर धरती पर रखा। मस्तक को तीन बार धरती-तल पर लगाया। फिर थोडा-सा ऊपर उठकर हाथ जोडे। अजलि को मस्तक पर लगाकर 'नमोत्थुण' से अभिवादन करते हुए बोला—"श्रमण भगवान् महावीर जो आदिकर है, तीर्थकर है···यावत् सिद्ध गति के अभिलाषुक है। मेरे धर्मोपदेशक और धर्माचार्य ह, उन्हे मेरा नमस्कार हो। यहाँ से मे तत्रस्थ भगवान् का वन्दन करता हूँ। भगवान् वही से मुझे देखते हैं[2]।"

इस प्रकार वन्दन नमस्कार कर राजा पुन. सिहासनारूढ हुआ। उसने प्रवृत्ति वादुक पुरुष को एक लक्ष अष्ठ सहस्र रजत मुद्राओ का 'प्रीतिदान' दिया और कहा—"भगवान् महावीर जब चम्पा के पूर्ण भद्र चैत्य मे पधारे, तब मुझे पुनः सूचना देना।"

**महावीर का चम्पा-आगमन**

सहस्र किरणों से सुशोभित सूर्य आकाश मे उदित हुआ। प्रभात के उस मनोरम वातावरण मे भगवान् महावीर जहाँ चम्पानगरी थी, पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ पधारे। यथारूप स्थान ग्रहण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। चम्पानगरी के शृगाटकों और चतुष्को पर सर्वत्र यही चर्चा थी—"श्रमण भगवान् महावीर यहां आये है, पूर्ण भद्र चैत्य में ठहरे है; उनके नाम-गोत्र के श्रवण से ही महाफल होता है। उनके साक्षात् दर्शन की तो बात ही क्या ? देवानुप्रियो ! चलो, हम सब भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करे। वह हमारे इस लोक और परलोक के लिए हितकर और सुखकर होगा।"

तदन्नतर लोगोने स्नान किया, वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हुए तथा मालाए धारण की। कुछ घोडो पर, कुछ हाथियो पर व कुछ शिविकाओ मे आरूढ होकर तथा अनेक जनवृन्द पैदल ही भगवान् महावीर के दर्शनार्थ चले।

प्रवृत्तिवादुक पुरुष ने कुणिक को यह हर्ष-सवाद सुनाया। राजा ने साढ़े बारह लाख रजत मुद्राओ का 'प्रीति-दान' किया[3]। तब भभसार पुत्र कुणिकने बलव्यापृत पुरुष (सेनाधिकारी) को बुलाया और कहा—"हस्तिरत्न को सजाकर तैयार करो। चतुरगिनो सेना को तैयार करो। सुभद्रा आदि रानियो के लिए रथोको तैयार करो। चम्पानगरी का बाहर और भीतर से स्वच्छ करो। गलियो और राजमार्गों को सजाओ। दर्शकों के लिए स्थान-स्थान पर मच तैयार करो। मे भगवान् महावीर की अभिवन्दना के लिए जाऊगा।"

राजा के आदेशानुसार सब तैयारियाँ हुई। राजा हस्तिरत्न हाथी पर सवार हुआ। सुभद्रा प्रभृति रानियाँ रथो पर सवार हुई। इस प्रकार चतुरगिनी सेना के महान् वैभव[4] के साथ राजा भगवान् महावीर के दर्शनार्थ चला।

---

१ खड्ग, छत्र, मुकुट, उपानत् और चामर।

२ णमोत्थुण समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स तित्थगरस्स···जाव सपाविउ कामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स।
वदामि ण भगवत तत्थगय इह गए, पासइ मे (मे से) भगवं तत्थगए इहगय;—ति कट्टु वदइ णमसइ ?

३ मूल प्रकरण मे 'रजत' शब्द नही है, पर परम्परा से ऐसा माना जाता है कि चक्रवर्तिका, प्रीतिदान साड़े बारह कोटि स्वर्ण-मुद्राओ का होता है। वासुदेव का प्रीतिदान साढे बारह कोटि रजत-मुद्राओं का होता है तथा माडलिक राजाओ का प्रीतिदान साढ़े बारह लक्ष रजत-मुद्राओ का होता है।
—उववाई (हिन्दी अनुवाद), पृ० १३३

४ कुणिक राजा के वैभव, आडम्बर और अभियान-व्यवस्था के विस्तृत वर्णन के लिए द्रष्टव्य औपपातिक सूत्र।

चम्पा नगरी के मध्य भाग से होता हुआ पूर्णभद्र चैत्य के समीप आया। श्रमण भगवान् महावीर के छत्र आदि तीर्थंकर अतिशय दूर से देखे। वहीं उसने हस्तिरत्न छोड दिया। पाचों राज-चिन्ह छोड दिये। वहाँ से वह भगवान् महावीर के सम्मुख आया। पच अभिगमन कर भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार कर मानसिकी, वाचिकी और कायिक उपासना करने लगा।

**महावीर का उपदेश : श्रवण**

भगवान् महावीर ने उपस्थित परिषद् को अर्धमागधी भाषा मे देशना दी, जिसमें बताया—"लोक है, अलोक है। इसी प्रकार जीव, अजीव, बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आश्रव, सवर, वेदना, निर्जरा·· आदि है। प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ···आदि है। प्राणातिपात-विरमण, मृषावाद,विरमण, अदत्तादान-विरमण, मैथुन-विरमण, परिग्रह-विरमण,··· यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक है। सभी अस्तिभाव अस्ति मे है, सभी नास्ति-भाव नास्ति मे है। सुचीर्ण कर्म का सुचीर्ण फल होता है, दुश्चीर्ण कर्म का दुश्चीर्ण फल होता है। जीव पुण्य-पाप का स्पर्श करते है। जीव जन्म-मरण करते है। पुण्य और पाप सफल है।···धर्म दो प्रकार का है—अगार धर्म और अनगार धर्म। अनगार धर्म का तात्पर्य है—सर्वतः सर्वात्मना मुण्ड होकर गृहावस्था से अगृहावस्था मे चले जाना। अर्थात् प्राणातिपात आदि से सर्वथा विरमण। अगार धर्म बारह प्रकार का है—पाच, अणुव्रत, तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रत[1]।"

श्रमण भगवान् महावीर से धर्म का श्रवण कर परिषद् उठी। भंभसार पुत्र कुणिक भी उठा। वन्दन-नमस्कार कर बोला—"भन्ते ! आपका निर्ग्रन्थ प्रवचन सु-आख्यात है, सुप्रज्ञप्त है, सुभाषित है' सुविनीत है, सुभावित है, अनुत्तर है, आप ने धर्म को कहते हुए उपशम को कहा, उपशम को कहते हुए विवेक को कहा, विवेक को कहते हुए विरमण को कहा, विरमण को करते हुए पाप कर्मों के अकरण को कहा।

"अन्य कोई श्रमण या ब्राह्मण नही है, जो ऐसा धर्म कह सके। इससे अधिक की तो बात ही क्या[2]?" यह कह कर राजा जिस दिशा से आया था, उस दिशा से वापिस गया[3]।

**जैन या बौद्ध ?**

सामञ्जफल सुत्त और इस औपपातिक प्रकरण को तुलना की दृष्टि से देखा जाये तो औपपातिक-प्रकरण बहुत गहरा पड जाता है। सामञ्जफल सुत्त मे अजातशत्रु के बुद्धानुयायी होने में केवल यही पंक्ति प्रमाणभूत है, कि "आज से भगवान् मुझे अजलिबद्ध शरणागत उपासक समझे।" औपपातिक-प्रकरण मे प्रवृत्ति वादुक पुरुष की नियुक्ति, सिंहासन से अभ्युत्थान और णमोत्थुण से अभिवन्दन, भक्तिसूचक साक्षात्कार, आदि उसके महावीरानुयायी होने के ज्वलन्त प्रमाण है। इन शब्दों से कि—"जैसा धर्म आपने कहा, वैसा कोई भी श्रमण या ब्राह्मण कहने वाला नही है", उसकी निर्ग्रन्थ धर्म के प्रति पूर्ण आस्था व्यक्त होती है। लगता है, बुद्ध के प्रति अजातशत्रु का समर्पण मात्र औपचारिक था। मूलतः वह बुद्ध का अनुयायी बना हो, ऐसा प्रतीत नही होता।

बुद्ध से जहाँ उसने एक ही बार साक्षात् किया[4], महावीर से अनेक बार साक्षात् करता ही रहा है[5]। यहाँ तक कि महावीर-निर्वाण के पश्चात् महावीर के उत्तराधिकारी सुधर्मा की धर्म-परिषद् मे भी वह उपस्थित होता है[6]।

डा० स्मिथ का कहना है—बौद्ध और जैन दोनों ही अजातशत्रु को अपना-अपना अनुयायी होने का दावा करते है, पर लगता है, जैनों का दावा अधिक आधार-युक्त है[7]।

---

१ विस्तृत विवेचन के लिए द्रष्टव्य, उपासकदसांग सूत्र अ० १

२ णत्थि ण अण्णे केइ समणे वा माहणेवा जे एरिस धम्म माइक्खित्तए। किमग पुण एत्तो उत्तरतर ?

३ औपपातिक सूत्र के आधार से।

४ Buddhist India, p. 88.

५ स्थानाग वृत्ति, स्था० ४, उ० ३

६ परिशिष्ट पर्व, सर्ग ४, श्लोक १५-५४

७ Both Buddhists and Jains claimed him as one of them serves. The Jain claim appears to be well founded.

—Oxford History of India, by V. A. Smith, Second Edition, Oxford,1923 p. 51.

डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी के अनुसार भी महावीर और बुद्ध की वर्तमानता मे तो अजातशत्रु महावीर का ही अनुयायी था[1]। उन्होने यह भी लिखा है कि जैसा प्राय. देखा जाता है, जैन अजातशत्रु और उदायिभद्द दोनो को अच्छे चरित्र का बतलाते है; क्योकि दोनो जैनधर्म को माननेवाले थे। यही अजातशत्रु का समर्पण मात्र औपचारिक था। मूलत वह बौद्ध का अनुयायी बना हो, ऐसा प्रतीत नही होता।

अजातशत्रु के बुद्धानुयायी न होने मे और भी अनेकों निमित्त है—देवदत्त के साथ घनिष्ठता, जबकि देवदत्त बुद्ध का विद्रोही शिष्य था, वज्जियो से शत्रुता, जबकि वज्जि बुद्ध के अत्यन्त कृपा-पात्र थे; प्रसेनजित् से युद्ध, जब कि प्रसेनजित् बुद्ध का परम भक्त एव अनुयायी था।

बौद्ध-परम्परा उसे पितृ-हतक के रूप मे देखती है[2], जब कि जैन परम्परा अपने कृत्य के प्रति अनुताप कर लेने पर उसे अपने पिता का विनीत कह देती है[3]। ये समुल्लेख भी दोनों परम्पराओं के क्रमश. दूरत्व और सामीप्य के सूचक है।

अजातशत्रु के प्रति बुद्ध के मन मे अनादर का भाव था, वह इस बात से भी प्रतीत होता है कि श्रामण्य-फल की चर्चा के पश्चात् अजातशत्रु के चले जाने पर बुद्ध भिक्षुओं को सम्बोधित कर कहते है—"इस राजा का सस्कार अच्छा नहीं रहा। यह राजा अभागा है। यदि यह राजा अपने धर्मराज पिता की हत्या न करता तो आज इसे इसी आसन पर बैठे-बैठे विरज, निर्मल, धर्म-चक्षु उत्पन्न हो जाता[4]।" देवदत्त के प्रसग मे भी बुद्ध ने कहा—भिक्षुओ! मगधराज अजातशत्रु, जो भी पाप है, उनके मित्र हैं, उनसे प्रेम करते है और उनसे ससर्ग रखते है[5]।

एक बार बुद्ध राजप्रासाद मे बिम्बसार को धर्मोपदेश कर रहे थे, शिशु अजातशत्रु बिम्बसार की गोद मे था। बिम्बसार का ध्यान बुद्ध के उपदेश में न लगकर, पुनः-पुनः अजातशत्रु के दुलार मे लग रहा था। बुद्ध ने तब राजा का ध्यान अपनी ओर खीचा। एक कथा सुनाई, जिसका हार्द था—तुम इसके मोह मे इतने बँधे हो, यही तुम्हारा घातक होगा[6]।

वज्जियो को विजय के लिए अजातशत्रु ने अपने मंत्री वस्सकार को बुद्ध के पास भेजा। विजयका रहस्य पाने के लिए सचमुच वह एक षड्यन्त्र ही था। अजातशत्रु बुद्ध का अनुयायी होता, तो इस प्रकार का छद्म कैसे खेलता।

कहा जाता है, मौद्गल्यायन के वधक ५०० निगठों का वध अजातशत्रु ने करवाया[7]। इससे उसकी बौद्ध धर्म के प्रति दृढता व्यक्त होती है, पर यह उल्लेख अट्टकथा का है, अत एक किवदन्ती मात्र से अधिक इसका कोई महत्त्व प्रतीत नही होता।

अट्टकथाओ के और भी कुछ उल्लेख है। जैसे—बुद्ध की मृत्यु का सवाद अजातशत्रु को कौन सुनाये, कैसे सुनाये—अमात्यवर्ग मे यह प्रश्न उठा। सबने सोचा—राजा के हृदय पर आघात न लगे, इस प्रकार से यह सम्बाद सुनाया जाय। मत्रियो ने दुःस्वप्न-फल के निवारण का बहाना कर 'चतु-मधुर' स्नान की व्यवस्था की। उस आनन्दप्रद वातावरण मे उन्होने बुद्ध के निर्वाण का सम्वाद अजातशत्रु को सुनाया। फिर भी सम्वाद सुनते ही अजातशत्रु मूर्च्छित हो गया। दो बार पुनः "चतु-मधुर" स्नान कराया गया। तब उसकी मूर्च्छा टूटी और उसने गहरा दुःख व्यक्त किया[8]। एक परम्परा यह भी कहती है—मन्त्री वस्सकार ने जन्म से निर्वाण तक बुद्ध की चित्रावलि दिखा कर अजातशत्रु को बुद्ध की मृत्यु से ज्ञापित किया[9]। इस घटना से बुद्ध के प्रति रही अजातशत्रु की भक्ति का दिग्दर्शन मिलता है। बहुत उत्तरकालिक होने से यह कोई प्रमाणभूत आधार नही बनती।

१ हिन्दू सभ्यता पृ० १६०-१
  "    " पृ० २६४
२ दीघ निकाय, सामञ्जफल सुत्त
३ औपपातिक सूत्र, (हिन्दी अनुवाद), पृ० २६; सेन-प्रश्न, तृतीय उल्लास, प्रश्न २३७
४ दीघनिकाय, श्रामण्यफल सुत्त
५ विनय पिटक, चुल्लवग्ग, सघभेदक खन्धक, ७
६ जातकट्टकथा, थुस जातक, सं० ३३८
७ धम्मपद अट्टकथा, १०–७
८ धम्मपद अट्टकथा, २, ६०५-६
९ Encyclopaedia of Buddhism, p. 320

देवदत्त के शिष्य मिण्डिका-पुत्र उपक ने बुद्ध से चर्चा की; अजातशत्रु के पास आया और बुद्ध की गर्हा करने लगा। पर अजातशत्रु क्रोधित हुआ और उसे चले जाने के लिए कहा[1]। अट्टकथाकार[2] ने इतना और जोड दिया है कि अजातशत्रु ने अपने कर्मकरो से उसे गलहत्था देकर निकलवाया। इस प्रसंग से भी अजातशत्रु का अनुयायित्व सिद्ध नही होता। अशिष्टता से चर्चा करनेवालो को तथा मुखर गर्हा करनेवालो को हर बुद्धिमान् व्यक्ति टोकता ही है। यदि उपक अजातशत्रु को बुद्ध का दृढ अनुयायी मानता, तो अपनी बीती सुनाने वहाँ जाता ही क्यो ? अपने गुरु देवदत्त का हितैषी समझ कर ही उसने ऐसा किया होगा।

उत्तरवर्ती साहित्य मे कुछ प्रसग ऐसे भी मिलते है, जो बौद्ध धर्म के प्रति अजातशत्रु का विद्वेष व्यक्त करते है। **अवदानशतक** के अनुसार राजा बिम्बिसार ने बुद्ध की वर्तमानता मे ही बुद्ध के नख और केशो पर एक स्तूप अपने राजमहलो मे बनवाया था। राजमहल की स्त्रियाँ धूप, दीप और फूलों से उसकी पूजा किया करती थी। अजातशत्रु ने सिहासनारूढ होते ही पूजा बन्द करने का आदेश दिया। श्रीमती नामक स्त्री ने फिर भी पूजा की तो उसे मृत्यु-दण्ड दिया[3]। थेरगाथा-अट्टकथा के अनुसार अजातशत्रु ने अपने अनुज सीलवत् भिक्षु को मरवाने का भी प्रयत्न किया[4]। उक्त उदाहरण अजातशत्रु को बौद्ध धर्म का अनुयायी सिद्ध न कर प्रत्युत विरोधी सिद्ध करते है; पर इनका भी कोई आधारभूत महत्व नही है।

बौद्ध साहित्य के मर्मज्ञ राईस डेविड्स भी स्पष्टत. लिखते है—"बातचीत के अन्त मे अजातशत्रु ने बुद्ध को स्पष्टतया अपना मार्ग-दर्शक स्वीकार किया और पितृ-हत्या का पश्चाताप व्यक्त किया। किन्तु यह असदिग्धतया व्यक्त किया गया है कि उसका धर्म-परिवर्तन नही किया गया। इस विषय में एक भी प्रमाण नही है कि उस हृदयस्पर्शी प्रसंग के पश्चात् भी वह बुद्ध की मान्यताओ का अनुसरण करता हो। जहाँ तक मै जान पाया हूँ, उसके बाद उसने बुद्ध के अथवा बौद्ध सघ के अन्य किसी भिक्षु के न तो कभी दर्शन किये और न उनके साथ धर्म-चर्चा ही की। और न मेरे ध्यान मे यह भी आता है कि उसने बुद्ध के जीवन-काल मे भिक्षु-संघ को कभी आर्थिक सहयोग भी दिया हो।

"इतना तो अवश्य मिलता है कि बुद्ध निर्वाण के पश्चात् उसने बुद्ध की अस्थियो की मॉग की, पर वह भी यह कह कर कि 'मैं भी बुद्ध की तरह एक क्षत्रिय ही हूँ' और उन अस्थियो पर उसने फिर एक स्तूप बनवाया। दूसरी बात— उत्तरवर्ती ग्रन्थ यह बताते है कि बुद्ध-निर्वाण के तत्काल बाद ही जब राजगृह मे प्रथम सगीति हुई, तब अजातशत्रु ने सप्तपर्णी गुफा के द्वार पर एक सभा-भवन बनवाया था, जहाँ बौद्ध पिटको का संकलन हुआ, पर इस बात का बौद्ध धर्म के प्राचीनतम और मौलिक शास्त्रों में लेशमात्र भी उल्लेख नहीं है। इस प्रकार बहुत सम्भव है कि उसने बौद्ध धर्म को बिना स्वीकार किये ही उसके प्रति सहानुभूति दिखाई हो। यह सब उसने केवल भारतीय राजाओ की उस प्राचीन परम्परा के अनुसार ही किया हो कि सब धर्मों का सरक्षण राजा का कर्त्तव्य होता है[1]।"

### माता का दोहद

कुणिक के जन्म और पितृ-द्रोह का वर्णन दोनों ही परम्पराओ मे बहुत कुछ समान रूप से मिलता है। जैन आगम **निरयावलिका** और बौद्ध शास्त्र **दीघनिकाय-अट्टकथा** मे एतद्विषयक वर्णन मिलता है। दोनो ही परम्पराओ के अनुसार इसके पिता का नाम श्रेणिक (बिम्बिसार) है। माता का नाम जैन परपरा के अनुसार चेल्लणा तथा बौद्ध परम्परा के अनुसार कोसलदेवी था। माता ने गर्भाधान के अवसर पर सिंह का स्वप्न देखा। बौद्ध परम्परा मे ऐसा उल्लेख नहीं है। गर्भावस्था में माता को दोहद उत्पन्न हुआ। जैन परम्परा के अनुसार दोहद था—राजा श्रेणिक के कलेजे का माँस तल कर, भूनकर मैं खाऊ और मद्य पीऊ। बौद्ध परम्परा के अनुसार दोहद था—राजा श्रेणिक की बाहु का रक्त पीऊ। दोनो ही परम्पराओं के अनुसार राजा ने दोहद की पूर्ति की। जैन परम्परा के अनुसार अभयकुमार ने ऐसा छद्म रचा कि राजा के कलेजे

---

१ अंगुत्तर निकाल, ४-८-१८८

२ Encyclopaedia of Buddhism, p. 319

३ अवदानशतक, ५४

४ थेरगाथा-अट्टकथा, गाथा ६०९-१९

१ Buddhist India, pp. 15-16

का मास भी न काटना पडे और रानी को यह अनुभव होता रहे कि राजा के कलेजे का मास काटा जा रहा है और मुझे दिया जा रहा है। बौद्ध परम्परा के अनुसार वैद्य के द्वारा बाहु का रक्त निकलवा कर दोहद की पूर्ति की। दोहद-पूर्ति के पश्चात् रानी इस घटना-प्रसग से दु.खित होती है और गर्भस्थ बालक को ही नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रयत्न करती है। बौद्ध परम्परा के अनुसार वह ऐसा इसलिए करती है कि ज्योतिषी उसे कह देते है—यह पितृ-हतक होगा। जैन परम्परा के अनुसार वह स्वय ही सोच लेती है कि जिसने गर्भस्थ ही पिता के कलेजे का मास मागा है, न जाने जन्म लेकर वह क्या करेगा ?

**श्रेणिक का पुत्र-प्रेम**

जन्म के अनन्तर जैन परम्परा के अनुसार चेल्लणा उसे अवकर पर डलवा देती है। वहाँ कोई कुर्कुट उसकी कनिष्ठ अगुली काट लेता है। अगुली से रक्तश्राव होने लगता है। राजा श्रेणिक इस घटना का पता चलते ही पुत्र-मोह से व्याकुल होकर वहा आता है, उसे उठा कर रानी के पास ले जाता है और रक्त व मवाद चूस-चूस कर बालक की अगुली को ठीक करता है। बौद्ध परम्परा के अनुसार जन्मते ही राजा के कर्मकर बालक को वहा स हटा लेते है, इस भय से कि रानी कही इसे मरवा न डाले। कालान्तर से वे उसे रानी को सौंपते है; तब पुत्र-प्रेम से रानी भी उसमे अनुरक्त हो जाती है। एक बार अजातशत्रु की अगुली मे एक फोडा हो गया। व्याकुलता से रोते बालक को कर्मकर राजसभा मे राजा के पास ले गए। राजा ने उस अगुली को मुह मे डाला। फोडा फूट गया। पुत्र-प्रेम से राजा ने वह रक्त और मवाद उगला नही, प्रत्युत निगल गया।

**पिता को कारावास**

पितृ-द्रोह के सम्बन्ध से जैन परम्परा कहती है, कुणिक के मन मे महत्त्वाकाक्षा उदित हुई, और अन्य भाइयो को अपने साथ मिला कर स्वय राज्य सिंहासन पर बैठा तथा निगड़-बन्धन कर श्रेणिक को कारावास मे डलवा दिया।

बौद्ध परम्परा के अनुसार अजातशत्रु देवदत्त की प्रेरणा से महत्त्वाकांक्षी बना और उसने अपने पिता को धूम-गृह (लोह-कर्म करने का घर) मे डलवा दिया।

**पिता का वध**

जैन परम्परा के अनुसार कुणिक किसी एक पर्व-दिन पर अपनी माता चेल्लणा के पास पाद-वन्दन करने के लिए गया। माता ने उसका पाद वन्दन स्वीकार नही किया। कारण पूछने पर माता ने श्रेणिक के पुत्र-प्रेम की घटना सुनाई और उसे उस दुष्कृत्य के लिए धिक्कारा। कुणिक के मन मे भी पितृ-प्रेम जागा। अपनी भूल पर अनुताप हुआ। तत्काल उसने निगड काटने के लिए परशु हाथ मे मे उठाया और पितृ-मोचन के लिए चल पडा। श्रेणिक ने सोचा—यह मुझे मारने के लिए ही आ रहा है। अच्छा हो, अपने आप मैं प्राणान्त कर लू। तत्काल उसने तालपुट विष खाया और अपना प्राण-वियोजन किया।

बौद्ध परम्परा मे बताया गया है कि धूम-गृह मे कोशल-देवी के सिवाय अन्य किसी को जाने का आदेश नही था। अजातशत्रु राजा को भूखा रखकर मारना चाहता था, क्योंकि देवदत्त ने कहा था—पिता शस्त्र-वध्य नही होता; अत उसे भूखा रख कर ही मारे। कोशल-देवी मिलने के बहाने उत्सग मे भोजन छिपाकर ले जाती और राजा को देती। अजातशत्रु को पता चला तो उसने कर्मकरो को कहा—मेरी माता को उत्सग बाध कर मत जाने दो। तब वह जूडे मे छिपा कर ऐसा करने लगी। उसका भी निषेध हुआ, तब वह स्वर्ण-पादुका मे छिपा कर ऐसा करने लगी। उसका भी निषेध होने पर रानी गन्धोदक से स्नान कर अपने शरीर पर चार मधु का अवलेप कर राजा के पास जाती। राजा उसके शरीर को चाट-चाट कर कुछ दिन जीवित रहा। अन्त मे अजातशत्रु ने माता को धूम-गृह मे जाने से रोक दिया। अब राजा श्रोतापत्ति के सुख पर जीने लगा।

अजातशत्रु ने जब यह देखा कि राजा मर ही नही रहा है, तब उसने नापित को बुलाया और आदेश दिया—"मेरे पिता राजा के पैरो को शस्त्र से चीर कर उनपर नून और तेल का लेप करो और खैर के अगारो से उन्हे पकाओ। नापित ने वैसा ही किया और राजा मर गया।

**अनुताप**

श्रेणिक की मृत्यु के पश्चात् कुणिक का अनुतापित

होना दोनो ही परम्पराए बताती है। जैन परम्परा के अनुसार तो माता से पुत्र-प्रेम की बात सुन कर पिता की मृत्यु से पूर्व ही कुणिक को अनुताप हुआ था। राजा की आत्म-हत्या के पश्चात् तो वह परशू से छिन्न चम्पक-वृक्ष की तरह भूमितल पर गिर पडा। मुहूर्तान्तर से सचेत हुआ। फूट-फूट कर रोया और कहने लगा -अहो! मै कितना अधन्य हूँ, कितना अपुण्य हूँ, कितना अकृतपुण्य हूँ, कितना दुष्कृत हूँ। मैने अपने देवतुल्य पिता को निगड-बन्धन में डाला। मेरे ही निमित्त से श्रेणिक राजा कालगत हुआ। इस शोक से अभिभूत होकर वह कुछ ही समय पश्चात् राजगृह छोड कर चम्पानगरी मे निवास करने लगा। उसे ही मगध की राजधानी बना दिया।

**बौद्ध** परम्परा के अनुसार—जिस दिन बिंबसार की मृत्यु हुई, उसी दिन अजातशत्रु के पुत्र उत्पन्न हुआ। सवादवाहको ने पुत्र-जन्म का लिखित सवाद अजातशत्रु के हाथ मे दिया। पुत्र-प्रम से राजा हर्ष-विभोर हो उठा। अस्थि और मज्जा तक पुत्र-प्रेम मे परिणत हो गया। उसके मन मे आया, जब मैने जन्म लिया, तब राजा श्रेणिक को भी इतना ही तो प्रेम हुआ होगा। तत्क्षण उसने कर्मकरो को कहा—'मेरे पिता को बन्धन-मुक्त करो।" सवाद-वाहको ने बिम्बिसार की मृत्यु का पत्र भी राजा के हाथो मे दे दिया। पिताकी मृत्यु का सम्वाद पढते ही वह चीख उठा और दौड कर माता के पास आया। माता से पूछा—"मेरे प्रति मेरे पिता का स्नेह था!" माता ने वह अगुली चूसने की बात अजातशत्रु को बताई। तब वह और भी शोक-विह्वल हो उठा और अपने किए हुए पर अनुताप करने लगा।

## समीक्षा

दोहद, अंगुली-व्रण, कारावास आदि घटना-प्रसगो के बाह्य निमित्त कुछ भिन्न है, पर घटना-प्रसंग हार्द की दृष्टि से दोनों परम्पराओ मे समान है। एक ही कथा-वस्तु का दो परम्पराओ में इतना-सा भेद अस्वाभाविक नही है। प्रत्येक बड़ी घटना अपने वर्तमान मे ही नाना रूपो मे प्रचलित हो जाया करती है। संभवत: **निरयावलिका** आगमका रचना-काल विक्रम संवत् के पूर्व का माना जाता है[1] तथा अट्टकथाओ का रचना-काल विक्रम सवत् की पाँचवी शताब्दी का है[2]। यह भी एक भिन्नता का कारण है। जिस-जिस परम्परा मे अनुश्रुतियो से कथा-वस्तु का जो भी रूपक आ रहा था, वह शताब्दियो बाद व शताब्दियों के अन्तर से लिखा गया।

वध-सम्बन्धी समुल्लेखों से यह तो अवश्य व्यक्त होता है कि बौद्ध परम्परा अजातशत्रु की क्रूरता सुस्पष्ट कर देना चाहती है, जब कि जैन परम्परा उसे मध्यम स्थिति में रखना चाहती है। बौद्ध परम्परा मे पैरो को चिरवाने, उनमें नमक भरवाने और अग्नि से तपाने का उल्लेख बहुत ही अमानवीय-सा लगता है। जैन परम्परा मे श्रेणिक को केवल कारावास मिलता है। भूखो मारने आदि की यातनाए वहाँ नही है! मृत्यु भी उसकी 'आत्महत्या'के रूप मे होती है। जब कि बौद्ध परम्परा के अनुसार अजातशत्रु स्वय पितृ-वधक होता है। इस सब का हेतु भी यही हो सकता है कि कुणिक जैन परम्परा का अनुयायी विशेष था।

### मातृ-परिचय

दोनो परम्पराओ में कुणिक की माता का नाम भिन्न-भिन्न है। जातक के अनुसार कोशल-देवी कोशल देश के राजा महाकोशल की पुत्री थी अर्थात् कोशल-नरेश प्रसेनजित् की बहिन थी[3]। विवाह-प्रसग पर काशी देश का एक ग्राम उसे दहेज मे दिया गया था। बिम्बिसार के वध से प्रसेनजित् ने वह ग्राम वापिस ले लिया। लडाई हुई, एक बार हारने के पश्चात् प्रसेनजित् की विजय हुई। भानेज समझ कर उसने अजातशत्रु को जीवित छोड़ा, सन्धि की तथा अपनी पुत्री वजिरा का उसके साथ विवाह किया। वही गाँव पुनः उसे कन्या-दान मे दे दिया[4]। **सयुत्त-निकाय** के इस वर्णन मे अजातशत्रु को प्रसेनजित्

---

१ प० दलसुख मालवणिया, **आगम-युग का जैन-दर्शन**, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, १९६६ पृ० २९

२ द्रष्टव्य, भिक्षु धर्म रक्षित, **आचार्य बुद्धघोष**, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी, १९५६ पृ० ७

३ Jataka Ed. by Fausball, Vol. III, p. 121

४ जातक अट्टकथा, स० २४९, २८३

का भानेज भी कहा है और 'वैदेहीपुत्त' भी कहा है[१]। इन *दोनों नामो मे कोई सगति नही है। बुद्धघोष ने यहाँ 'वैदेही' का अर्थ 'विदेह' देशकी राज-कन्या न कर 'पंडिता'* किया है[२]। यथार्थता यह है कि जैन परम्परा मे कथित चेल्लणा वैशाली गणतन्त्र के प्रमुख चेटक की कन्या होने से 'वैदेही थी। प्रसेनजित् की बहिन कोशल-देवी अजातशत्रु की कोई एक विमाता हो सकती है। तिब्बती परम्परा[३] तथा **अमितायुर्ध्यान सूत्र**[४] के अनुसार अजातशत्रु की माता का नाम "वैदेही वासवी" था और उसका वैदेही होने का कारण भी यही माना गया है कि वह विदेह-देश की राज-कन्या थी[५]। 'विदेह' शब्द का प्रयोग तथारूप से अन्यत्र भी बहुलता से मिलता है। भगवान् महावीर को '**विदेह विदेह-दिन्ने विदेहजच्चे**' कहा गया है[६]। महावीर स्वय विदेह देश में उत्पन्न हुए थे, इसलिए 'वैदेह'; उनकी माता भी विदेह देश मे उत्पन्न थी; इसलिए 'विदेहदत्तात्मज'; और विदेहो मे श्रेष्ठ थे, इसलिए 'विदेहजात्य' कहे गये है[७]।

महाकवि भास ने अपने नाटक स्वप्नवासवदत्ता मे राजा उदायन को 'विदेह-पुत्र' कहा है[८]; क्योकि उसकी माता विदेह-देश की राज-कन्या थी। जैन परम्परा के अनुसार चेल्लणा और उदयन की माता मृगावती सगी

---

१ संयुत्त निकाय ३-२-४

२ वेदेही पुत्तो ति वेदेहीति पण्डिताधिवचन एत, पण्डितित्थिया पुत्तो ति अत्थो।
—सयुत्त निकाय अट्टकथा, १, १२०

३ Rockhill, Life of Buddha, p. 63

४ S.B.E. Vol. XLIX, p. 166

५ Rackhill, Life of Buddha, p. 53

६ कल्प सूत्र, ११०

७ S.B.E. Vol. XXII, p. 256, वसंतकुमार चट्टोपाध्याय, कल्पसूत्र (बगला अनुवाद), पृ २७

८ हिन्दू-सभ्यता, पृ० १६८

बहिनें थी। वे वैशाली के राजा चेटक की कन्याए थी[१]। *भगवान् महावीर की माता त्रिशला राजा चेटक की बहिन थी*[२]। *अत* **'विदेह-दिन्न'** *या* **'विदेहपुत्त'** *आदि विशेषण बहुत ही सहज और बुद्धिगम्य है।* जैन आगमो मे भी तो कुणिक को **'विदेहपुत्त'** कहा गया है[३]। राईस डेविड्स के मतानुसार भी बिम्बिसार के दो रानियाँ थी—एक प्रसेनजित् की बहिन कोशल-देवी तथा दूसरी विदेह-कन्या, और अजातशत्रु विदेह कन्या का पुत्र था[४]।

राजा बिम्बसार जब धूम्र गृह मे था, परिचारिका रानी कोशला थी, यह **अट्टकथा** बताती है। **एन्सायक्लोपीडिया आफ बुद्धिज्म** मे परिचारिका राणी का नाम खेमा बताया गया है और उसे कोशल देश की राजकन्या भी कहा है[५]। पर यह स्पष्टत भूल ही प्रतीत होती है। खेमा वस्तुत मद्र देश की थी5a। लगता है, कोशल-देवी के बदले खेमा का नाम दे दिया गया है। **अमितायुर्ध्यान सूत्र** तथा तिब्बती परम्परा के अनुसार परिचारिका रानी का नाम 'वैदेही वासवी' था और वह वैशाली के सिहसेनापति की पुत्री थी[६]। डा० राधाकुमुद मुखर्जी कहते है—"वैदेही वासवी की पहिचान चेल्लणा मे की जा सकती है[७]।" बौद्ध परम्परा की इस विविधताओ मे भी इससे परे की बात नही निकलती कि अजातशत्रु विदेह-राज कन्या का पुत्र था और इसीलिए वह 'वैदेहीपुत्त' कहलाता था। न जाने आचार्य बुद्धघोष के क्यो यह भ्रम रहा कि 'वैदेही' नाम 'पडिता' का है और अजात-शत्रु कोशल-देश की राज-कन्या कोशला का पुत्र था। (क्रमशः)

---

१ आवश्यक चूर्णि, भाग २, पत्र १६४

२ आवश्यक चूर्णि, भाग १, पत्र २४५

३ भगवती सूत्र, शतक ७ उद्देशक ६, पृ० ५७६

४ Buddhist India, p. 3

५ Encyclopaedia of Buddhism, p. 316

६ थेरी, गाथा अट्टकथा, १३६-१४३

७ Rackhill, Life of Buddha, p. 63

८ हिन्दू सभ्यता, पृ० १८३

# कुलपाक के माणिकस्वामी

डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर

आन्ध्र प्रदेश मे हैदराबाद-काजीपेट रेलमार्ग के आलेर स्टेशन से चार मील उत्तर मे कुलपाक नामक छोटा सा ग्राम है यहा एक भव्य जिन मदिर मे भगवान ऋषभदेव की पुरातन प्रतिमा है जो माणिक स्वामी के नाम से प्रसिद्ध है। इसके सम्बन्ध मे प्राप्त ऐतिहासिक उल्लेखो का यहा वर्णन किया जाता है।

उदयकीर्ति की अपभ्रंश रचना तीर्थवदना के सोलहवे पद्य मे माणिकदेव को नमस्कार किया है (इन का अनुमानित समय तेरहवी शताब्दी है)—

**वंदिज्जइ माणिकदेउ देउ। जसु णामइँ कम्मह होइ छेउ ॥**

अर्थात्—उन माणिकदेव को वदन हो जिन के नाम मे कर्मो का नाश होता है।

पन्द्रहवी या सोलहवी शताब्दी के लेखक सिंहनन्दि ने माणिक स्वामी विनती नामक चौदह पद्यो का गुजराती गीत लिखा है (पूरा गीत हमने 'तीर्थवन्दनसग्रह' मे दे दिया है) जिस के अनुसार इस कुलपाकपुर के माणिकस्वामी की प्रतिमाका निर्माण भरत राज ने अपनी मुद्रिका के इन्द्रनील रत्न से कराया था। बाद मे यह प्रतिमा इद्र के भवन मे और फिर लकाधीश रावण के यहा रही, तदनतर बहुत समयतक समुद्र के जल मे मग्न रही। शासन देवी की कृपा से शकरराय ने इस मूर्ति को प्राप्त कर यह मदिर बनवाया। यहा नये-नये वेश और फूलो के मुकुट मे भगवान की पूजा की जाती है।

जिन प्रभुसूरि के विविध तीर्थकल्प (चौदहवी सदी) मे भी उपर्युक्त कहा है। उन्होने शकर राजा को कल्याण

---

शेष पृ० २४ का)

मानसिह के नही रायसिह के मत्री थे और उनका समय वि० की १८वी का पूर्वार्द्ध था। इन वादिराज के बड़े भाई जगन्नाथ कविभी बडे विद्वान थे, जिन्होने चतुर्विशतिसधान, सुखनिधान और श्वेताबरपराजय आदि अनेक ग्रथ रचे थे। इन तीनो ग्रंथो की प्रशस्तिये वीरसेवामदिर दिल्ली से प्रकाशित प्रशस्तिसग्रह के प्रथम भाग मे छपी है। सुखनिधान ग्रथ मे विदेहक्षेत्रीय श्रीपाल चक्रवर्ति का कथानक है। यह कथा आदिपुराण मे जयकुमार के पूर्वभवो मे आई है। इस ग्रथ की रचना इन जगन्नाथ कवि ने सकलचद्र, सकलकीर्ति (ये सकलकीति प्रसिद्ध सकलकीर्ति से जुदे है) और पद्मकीर्ति आदिकों की प्रेरणा से मालपुरा गाँव मे की थी। ये खंडेलवाल जैन सोगाणी गोत्रके थे, शाह पोमराज के पुत्र थे और भ० नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। उक्त पद्मकीर्ति-सकलकीर्ति का समय भट्टारकसप्रदाय पुस्तक के पृ०-२०८ पर १८वी शती का प्रथम चरण लिखा है। यही समय वादिराज और जगन्नाथ का है। डा० नेमिचद्रजी शास्त्री ने शायद उक्त सकलकीर्ति को १५ वी शती मे होने वाले प्रसिद्ध सकलकीर्ति समझकर वादिराजकृत वाग्भट्टालकार का टीकाकाल वि०स-१४२९ लिख दिया हो ऐसा प्रतीत होता है। आपने उपदेशरत्नमाला के कर्त्ता भट्टारक सकलभूषण का समय विक्रम की १५वी शती लिखा है यह भी समीचीन नही है। स्वय ग्रंथकार ने उपदेशरत्नमाला की समाप्ति का समय वि०स०१६२७ दिया है। यथा—

सप्तविंशत्यधिके षोडशशत वत्सरेषु विक्रमतः।
श्रावणमासे शुक्ले पक्षे षष्ठ्या कृतो ग्रथः॥ २६५॥

अत सकलभूषण १- वी शती के है। न कि १५वी शती के।

अद्यावधितक बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री प्रकाश मे आचुकी है इतने पर भी विद्वान लोग भूलें करते हैं यह खेद की बात है। ●

का राजा बताया है कल्याण के कलचुरि राजवंश में संकम राजा ने सन् ११७७ से ११८० तक राज्य किया था। हो सकता है कि उसी ने यह मन्दिर बनवाया हो। शीलविजय (सत्रहवी सदी) की तीर्थमाला के अनुसार शंकरराय तो शिवभक्त था, मन्दिर उस की जिनभक्ता रानी ने बनवाया था (जैन साहित्य और इतिहास पृ० ४४८)।

पन्द्रहवी सदी के मराठी लेखक गुणकीर्ति ने अपने धर्मामृत ग्रंथ मे भी माणिक स्वामी को नमस्कार किया है (परिच्छेद १६७)—

**कुल्लपाख्य माणिक स्वामिस नमस्कारु माझा।**

सोलहवी सदी के गुजराती लेखक सुमतिसागर की तीर्थजयमाला (पद्य ११) मे भी माणिकस्वामी को वदन है—

**सुविझाचल बावणगज देव।**
**सुगोमट माणिकस्वामी सेव ॥**

सत्रहवी सदी के गुजराती लेखक ज्ञानसागर के सर्व-तीर्थवन्दना मे भी एक छप्पय इस विषय मे है—

**देश तिलंग मझार माणिक जिनवर वदो।**
**भरतेश्वरकृत बिंब पूजिय पाप निकदो ॥**
**पांच मणि सुप्रसिद्ध नीलवर्ण जिनकामह।**
**पूजत पातक जाय दर्शनली सुख थायह ॥**
**किंनर तुंबर अपछरा सकल मिल सेवा करे।**
**ब्रह्म ज्ञानसागर वदति माणिकजिन पातक हरे ॥**

सत्रहवी सदी के ही जयसागर की तीर्थ जयमाला के ग्यारहवें पद्य मे भी कहा है—

**सुकुलपाक वन्दों माणिकदेव।**
**सुगोमट स्वामी करु नित सेव ॥**

सत्रहवी सदी के ही कारजा के भट्टारक जिनसेन ने भी यहा की यात्रा की थी —

**जिनसेन नाव गुरुराय ने संघतिलक एते दिय।**
**माणिक्यस्वामी यात्रा सकल धर्मकाम बहु बहु किय ॥**

(भट्टारक सप्रदाय पृ०१६)

इसी वर्ष दीपावली की छुट्टियो मे हम ने इस क्षेत्र के दर्शन किये। इस समय क्षेत्र पूर्णतः श्वेताम्बर सप्रदाय के अधिकार मे है यद्यपि उपर्युक्त वर्णनो से स्पष्ट है कि मध्ययुग मे दिगम्बर यात्री भी यहा बराबर जाते रहे है। यहां के मन्दिर के सभागृह मे मुख्य मूर्ति माणिकस्वामी के अतिरिक्त अन्य बारह भव्य (करीब एक मीटर ऊंची) अर्धपद्मासन मूर्तिया है। इन की शिल्पशैली दक्षिण भारत के श्रवणबेलगोल, कारकल, मूडबिद्री आदि स्थानो की मूर्तियो के समान ही है इन के पादपीठो पर प्रतिष्ठा सबधी लेख अवश्य ही रहे होंगे। खेद की बात है कि इन सभी मूर्तियो के पैरो तक सीमेन्ट का प्लास्टर इस तरह कर दिया गया कि वे पादपीठ नष्ट प्राय. हो गये है। केवल शिलालेख मन्दिर के बाहरी प्राकार मे है जिसके अनुसार इस का जीर्णोद्धार जहांगीर बादशाह के जमाने मे केशर-कुशल गणी ने करवाया था।

[नोट—इस लेख मे उद्धृत सभी रचनाएँ पूर्ण रूप मे हमारे द्वारा सपादित 'तीर्थवन्दन सग्रह' प० जीवराज ग्रथमाला शोलापुर, मे सगृहीत है।]

## सुख का स्थान

रे चेतन! तू सुख की खोज मे इधर उधर भटक रहा है। उसकी प्राप्ति के लिये मृग की भाति छलागे भर रहा है। पर यह सब भटकना तेरा व्यर्थ है; क्योकि पर वस्तुओ और परस्थानो मे सुख नही है। तेरा सुख तो तेरे अन्दर है। बाहर नहीं, जरा अन्तर दृष्टि को उघाड कर देख। जैसे तिलो मे तेल और गोरस मे मक्खन है, या दूध मे घी है, धूलिकणो और पानी मे नही है। घट के पट खोल कर अन्दर झाक, तुझे सुख अवश्य मिलेगा।

चर्म चक्षुओ से दिखने वाले इन बाह्य पदार्थो मे उस सुख का लेश भी नही, बाह्य पदार्थो की चमक-दमक में जो तुझे सुख का-सा आभास हो रहा है वह सुखाभास है। बाह्य पदार्थों के सयोग मे तू सुख की कल्पना कर रहा है? यह तेरा अज्ञान है, तू उनके सयोग मे सुख मानता है और वियोग में दुख, "सयुक्ताना वियोगो हि भवता हि नियोगतः। सयोग वियोग के साथ मिश्रित है। तू इस भौतिक सामग्री के जुटाने मे जीवन की अमूल्य घडिया बिता रहा है, यह तेरे अज्ञान की पराकाष्ठा है। वह सुख नही दुख है, तू उस पराधीन, विनश्वर सुख के पीछे मत दौड। अन्तर्दृष्टि और विवेक से काम कर और आत्मस्थ होकर स्वरूप मे मग्न होने का प्रयत्न कर तुझे सच्चे स्वाधीन सुख का अनुभव होगा।

—परमानन्द

# राजपूत कालिक मालवा का जैन-पुरातत्त्व

प्रो० तेजसिंह गौड़ एम. ए. बी. एड.

गुप्त साम्राज्य के पतन के उपरान्त मालवा मे भी राजनीतिक उतार चढाव चलता रहा। फिर जब परमार राजपूतो का आधिपत्य मालवा पर हुआ तो लगभग ३०० वर्षो तक मालवा मे इनका ही शासन रहा। मालवा मे जैनधर्म की उन्नति के लिये यह समय बहुत ही हितकारी रहा। इस युग मे कई जैन मदिरों का निर्माण हुआ। इस युग के प्रारम्भिक काल मे जैन मन्दिर थे। जिसका वर्णन डा० हीरालाल जैन इस प्रकार देते है। जैन हरिवश-पुराण की प्रशस्ति मे इसके कर्त्ता जिनसेनाचार्य ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि शक सवत (७०५ई० सन् ७८३) मे उन्होंने वर्धमानपुर के पूर्वालय (पार्श्वनाथ के मदिर) की अन्नराजवसति मे बैठकर हरिवशपुराण की रचना की और उसका जो भाग शेष रहा उसे वही के शातिनाथ मदिर मे बैठकर पूरा किया। उस समय उत्तर मे इन्द्रायुद्ध' दक्षिण मे कृष्ण के पुत्र श्रीवल्लभ व पश्चिम मे वत्सराज तथा सौरमडल मे वीर वराह नामक राजाओ का राज्य था। यह वर्धमानपुर सौराष्ट्र का वर्तमान बढमान माना जाता है। किन्तु मैने अपने लेख मे सिद्ध किया है कि हरिवश पुराण मे उल्लिखित वर्धमानपुर मध्य प्रदेश के धार जिले मे बदनावर है जिससे १० मील दूरी पर स्थित वर्तमान दूतरिया नामक गॉव है, प्राचीन दोस्तरिका होना चाहिये, जहाँ की प्रजा ने जिनसेन के उल्लेखानुसार उस शातिनाथ मदिर मे विशेष पूजा अर्चा का उत्सव किया था। इस प्रकार वर्धमानपुर मे आठवी शती मे पार्श्वनाथ और शातिनाथ के दो जैनमदिरो का होना सिद्ध होता है। शातिनाथ मदिर ४०० वर्ष तक विद्यमान रहा। इसका प्रमाण हमे बदनावर से प्राप्त अच्छुप्तादेवी की मूर्ति पर के लेख मे पाया जाता है, क्योकि उसमे कहा गया है कि सवत १२२९ (ई०११७२) की बैशाख कृष्ण पचमी को वह मूर्ति वर्धमानपुर के शांतिनाथ चैत्यालय में स्थापित की गई'।

विदिशा जिले के ग्यारसपुर नामक स्थान पर जैन मदिरो के भग्नावशेष मिले है। मालवा मे जैन मदिरो के जितने भग्नावशेषो का पता अभी तक चला है, उनमें प्राचीनतम अवशेष यही पर उपलब्ध हुए है। इस मदिर का मडप विद्यमान है और विन्यास एव स्तम्भो की रचना शैली खजुराहो के समान है। फर्गुसनने इनका निर्माण काल १०वी शताब्दी के पूर्व निर्धारित किया है[2]। यही पर एक और मदिर के अवशेष मिले थे, किन्तु जब उस मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ तो उसने अपनी मौलिकता ही खो दी। फर्गुसन[3] के मतानुसार ग्यारसपुर के आसपास के समस्त प्रदेश मे इनके भग्नावशेष विद्यमान है कि यदि उनका विधिवत सकलन व अध्ययन किया जाय तो भारतीय वास्तु कला और विशेषत जैनवास्तुकला के इतिहास के बडे दीर्घ रिक्त स्थान की पूर्ति की जा सकती है।

खजुराहो शैली के कुछ मदिर ऊन नामक स्थान पर प्राप्त हुए है। यह स्थान खरगोन नगर के पश्चिम मे स्थित है। ऊन के दो तीन अवशेष एक मुसलमान ठेकेदार द्वारा ध्वस्त कर दिये गए थे तथा इनके पत्थर आदि का उपयोग सडक निर्माण के कार्य मे कर लिया। उत्तरी भारत मे खजुराहो को छोडकर इतनी अच्छी स्थिति मे ऐसे मंदिर मिलने वाला और कोई दूसरा स्थान नही है। ऊन के मदिरो की दीवारो पर की कारीगरी खजुराहो से कुछ कम है किन्तु शेष सब बातो मे सरलता से ऊन के मंदिरो की तुलना खजुराहो से की जा सकती है। खजुराहो के समान ही ऊन के मदिरो को भी दो प्रमुख भागो मे विभाजित

---

१. भारतीय संस्कृति मे जैनधर्म का योगदान पृष्ठ ३३२-३३

२ History of Indian and Eastern Architecture Vol. II PP. 55

३ वही पृ० ५५

किया जा सकता है—१-हिन्दू मदिर और २. जैनमदिर। ऊन मे एक राज्याधिकारी द्वारा दक्षिण-पूर्वी सतह पर खुदाई करने पर वहा कुछ पुरानी नीव और बहुत बड़ी मात्रा मे जैन-मूर्तिया निकली थी। उनमे से एक मूर्ति पर विक्रम स० ११८२ या ११६२ अर्थात् ई० सन् ११२५ या ११३५ का लेख खुदा हुआ है जिसके द्वारा यह विदित होता है कि यह मूर्ति आ० रत्नकीर्ति द्वारा निर्मित की गई थी[1]। डा० हीरालाल जैन का कथन है कि मदिर पूर्णत. पाषाण खण्डो से निर्मित, चपटी छत व गर्भगृह, सभामडप युक्त प्रदक्षिणा रहित है। जिनसे प्राचीनता सिद्ध होती है। भित्तियो और स्तम्भो पर सर्वाग उत्कीर्णन है जो खजुराहो की कलासे मेल खाता है। चतुर्द्वार होनेसे दो मदिर चौबारा डेरा कहलाते है। खम्भो पर की कुछ पुरुषस्त्री रूप आकृतिया शृगारात्मक अति सुन्दर और पूर्णत. सुरक्षित है[2]। यद्यपि इस चौबारा डेरा मदिर का शिखर ध्वस्त हो गया है। फिर भी ऊन के सुन्दरतम अवशेषो मे से एक है। मडप के सम्मुख ही एक बडा बरामदा है। किन्तु आसपास कोई बरामदा नही है। मडप आठ स्तम्भो वाला वर्गाकार है। मध्य में गोल गुम्बद है तथा चार द्वार है जिनमे से एक देवालय की ओर पूर्व और पश्चिम वाले द्वार बाहर की ओर तथा शेष बचा हुआ चौथा द्वार मडप की ओर है देवालय छत रहित है, लेकिन इसमे दिगम्बर मूर्तियाँ है। उनमे से एक पर विक्रम सं०१३ (१२४)का एक लेख है।

इस मदिर से कुछ ही दूरी पर दूसरा जैन मदिर है जो आज कल ग्वालेश्वर का मदिर कहलाता है। इसका यह नाम इसलिये पड़ा कि यहाँ पर ग्वाले प्रतिकूल मौसम (गर्मी-वर्षा) मे आश्रय लेते है। इनकी रचना शैली आदि भी चौबारा डेरा मदिर जैसी ही है। इस मदिर मे भी दिगम्बर जैन मूर्तियाँ है। मध्य वाली प्रतिमा १२॥ फुट के लगभग ऊँची है। कुछ मूर्तियो पर लेख भी उत्कीर्ण है। जिसके अनुसार वे विक्रम स० १२६३ अर्थात ई०सन्१२०६ मे भेंट की गई थी। यहाँ उसी प्रकार की सीढियाँ बनी हुई है। जिस प्रकार की सीढियाँ खजुराहो की ऋषभदेव प्रतिमा के पास और गिरनार मे बनी हुई है। ये मदिर ११वी और १२वी सदी के आसपास निर्मित किये गए है[1]।

इस स्थान को पावागिरि ठहराया गया है जिसका प्राकृत निर्वाण काण्ड मे दो बार उल्लेख आया है[2].—

**रामसुआ वेण्णि जणा लाडणरिदाण पच कोडीओ।**
**पावागिरि वर सिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं॥ ५॥**
**पावागिरि वर सिहरे सुवण्ण भद्दाई-मुणिवरा चउरो।**
**चलणा-णई-तडग्गे णिव्वाण गया णमो तेसिं॥ १४॥**

चूकि क्षेत्र के आसपास सिद्धवर कूट तथा बडवानी के दक्षिण मे चूलगिरि शिखर का सिद्धक्षेत्र है तथा आसपास और भी प्राचीन अवशेष व स्थल है। इसी से यह स्थान डा० हीरालाल जैन[3] को दूसरा पावागिरि प्रमाणित लगता है। किन्तु प० नाथूराम प्रेमी दूसरा पावागिरि ऊन को न मानते हुए ललितपुर एव झासी के निकट"पवा" नामक ग्राम को पावा शब्द के अधिक निकट मानते है[4]। अर्थात प्रेमी जी पवा को पावागिरि मानते हैं।

११वी सदी मे जैन मदिरोके कुछ अवशेष नरसिह गढ जिला राजगढ (ब्यावरा) से ६ मील दक्षिण मे स्थित बिहार नामक स्थान पर भी प्राप्त हुए है। यहाँ जैसे मदिरो के साथ ही हिन्दू, बौद्ध व इस्लाम धर्म के अवशेष मिले है[5]। इसके अतिरिक्त डा० एच० डी० त्रिवेदी[6] ने निम्नाकित स्थानो पर भी जैन मदिरों के अवशेष बताये है जो इसी काल के है।

(१) **बीजवाड़ा**:—यह स्थान देवास जिले मे है तथा देवास के दक्षिण पूर्व मे इन्दौर से ४५ मील की दूरी पर

---

१ Progress Reporot of Archacological Survey of India W C. 1919 PP. 61

२ भारतीय सस्कृति मे जैनधर्म का योगदान पृ० ३३१

---

१ Progress Report of Archaeological Survey of India W C. 1919 PP. 63-64

२ डा० हीरालाल जैन वही पृ० ३३१ से उद्धृत

३ वही पृ० ३३१

४ जैन साहित्य और इतिहास पृ० ४३०-३१

५ Bibliography of Madhya Bharat Part I Archaeology Pege 7

६ Bibliography of Madhya Bharat पृ० ७, ८, ६, १४, १८, २१, २४, ३३, ४४

स्थित है। यहाँ प्राचीन कालिक १०वी-११वी शताब्दी के जैन मंदिरो के अवशेष मिले है। विक्रम सवत १२३४ का एक लेख भी यहाँ से मिला है।

(२) **बोथला** :—बूढी चदेरी जिला गुना से ५ मील दक्षिण पश्चिम मे स्थित है। यहा १२वी सदी के जैन-मन्दिरो की प्राप्ति हुई है।

(३) **बोरी** .—यह ग्राम जिला झाबुआ मे स्थित है। यहाँ भी जैन मन्दिर मिले है तथा एक सीढीदार कुआँ भी मिला है।

(४) **छपेरा** - जिला राजगढ (ब्यावरा) मे है। जैन व हिन्दू मन्दिर मिले है। तीन मूर्तियो पर लेख भी उत्कीर्ण है।

(५) **गुरिला का पहाड़** —यह स्थान चदेरी जिला गुना मे आठ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ दो दिगम्बर जैन मन्दिर मिले है। वहाँ के एक मन्दिर मे एक यात्री का स० १३०७ का लेख यह सिद्ध करता है कि यह मदिर इसके पूर्व का बना हुआ है।

(६) **कड़ोद** :—धार से उत्तर पश्चिम की ओर १४ मील की दूरी पर स्थित है। यहा एक जैन मन्दिर व हिन्दू मन्दिर तथा सीढीदार कुआ मिला है।

(७) **पुरागुलाना** :—मन्दसौर जिले मे बोलिया ग्राम से ४ मील की दूरी पर स्थित है तथा गरोठ के डामर रोड से जुडा हुआ है। यहा ११वी शताब्दी १२वी शताब्दी का एक जैन मन्दिर व कुछ प्रतिमाए है। यहाँ से एक सस्कृत का शिलालेख भी मिला है किन्तु उस पर कोई तिथि नही है। यह अभी इन्दौर पुरातत्व सग्रहालय मे विद्यमान है।

(८) **बई खेड़ा** —मन्दसौर के समीप थडोद रेलव स्टेशन से २ मील की दूरी पर है। यहाँ पर एक जैन मन्दिर है। दीवालो और छत पर अच्छी चित्रकारी है। दरवाजे की चौखट पर १२वी शताब्दी का नामवाला एक लेख भी है। यहा का भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर लग भग १००० वर्ष पूर्व बना प्रतीत होता है[1]। यह जैनियो का तीर्थस्थान भी है।

*इसके अतिरिक्त "**लक्ष्मणी**" जिला झाबुआ मे भी एक* जैन मन्दिर और मूर्तिया मिली है। यह स्थान भी जैन तीर्थ है। इसकी प्राचीनता इस बात से सिद्ध होती है कि सवत् १४२७ मे निमाड की तीर्थ-यात्रा पर निकले जैन-तीर्थ-यात्री श्री जयानन्द मुनि ने अपने प्रवासगीति मे इस तीर्थ का उल्लेख किया है। जिसके अनुसार यहां पर जैनियों के २००० घर थे तथा १०१ शिखर बन्द मन्दिर थे। सवत् १४२७ के उल्लेख मे यह बात प्रमाणित होती है कि यहा के मन्दिर सवत् १४२७ के पूर्व बने होंगे। "सुकृत सागर" मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि पेथड कुमार मत्रीश्वर के पुत्र झाझण कुमार ने माडवगढ से शत्रुजय का सघ निकाला था जो लक्ष्मणी आया था। कहने का तात्पर्य यह है कि सोलहवी शताब्दी तक पूर्णरूपेण सभी जैनियो को यह तीर्थ विदित था[1]। सोलहवी सदी मे या इसके पश्चात् यह स्थान किस प्रकार ध्वस्त हुआ, कोई जानकारी नही मिलती है। यदि पूरे मालवा के जैनमदिरो का इतिहास खोजा जाए तो उसमे अधिकाश मध्यकालीन मिलेगे। किन्तु इन जैन मन्दिरो के जीर्णोद्धार के परिणाम स्वरूप ये अपना मौलिक स्वरूप खोते गये और इस प्रकार इनकी प्राचीनता नष्ट होती गई।

माडव और धार मे भी जैनमन्दिरो का बाहुल्य था। किन्तु अब सब नष्ट हो चुके है। कुछ जैन मन्दिरो का उपयोग मस्जिदो के रूप में कर लिया गया है[2]। माडव मे ७०० जैन मन्दिर होने का उल्लेख सुकृतसागर मे मिलता है जिनमे से ३०० जैन श्वेताम्बर मन्दिरो पर पेथड़देव और उसके पुत्र झाझड़देव ने सोने के कलश चढाए थे[3]। माडवगढ के जैन मन्दिरो को ध्वस्त करने अथवा परिवर्तित करने का एक अलग प्रकरण हो जाता है। किन्तु यहाँ यह विचारणीय है कि यदि माडवगढ मे इतनी अधिक सख्या मे मन्दिर थे तो वे कहाँ गये? माडवगढ मे आज भी अनेक भग्नावशेष है, उनकी वास्तविकता की ओर ध्यान देना आवश्यक है। परमार काल में धार मे

१ जैन तीर्थ सर्वसग्रह भाग २ पृ० ३३४

१ जैन तीर्थ सर्वसग्रह भाग २ पृ० ३१३-१४

२ फर्गुसन वही पृ० २६३-६४

३ श्री माडवगढ तीर्थ-नदलाल लोढ़ा पृ० १८

संगमरमर के जैन मन्दिर का भी निर्माण हुआ था[1]।

इस युग मे जिस प्रकार जैन मन्दिरो का बाहुल्य है ठीक उसी प्रकार जैन प्रतिमाओ का भी होना स्वाभाविक ही है। क्योकि बिना प्रतिमा के मन्दिर कैसा ? मन्दिरों के अतिरिक्त भी प्रतिमाओ के अनेक अवशेष प्राप्त हुए है। प्राचीन मन्दिरों के उल्लेखित स्थानो पर तो प्रतिमाओ के सुन्दर उदाहरण हैं ही किन्तु कुछ प्रतिमाओ के और नमूने मिले है जिनमे घसोई जिला मदसौर, गधावल जिला देवास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। घसोई के विषय मे ऐसा कहा जाता है कि वहा पर मूर्तिया इस बाहुल्य के साथ प्राप्त होती है कि खेतो, खलिहानो एव घरो की दीवालो पर भी इनके उदाहरण देखने को मिल जाते है।

गधावल मे भी घरो, कुओ, उद्यानो एव खेतो मे बिखरी हुई प्रस्तर प्रतिमाएं है जिनकी सख्या लगभग दो सौ है[2]। ये प्रतिमाएँ भी परमार युगीन दसवी शताब्दी की है। बाबू छोटेलाल जैन[3] ने अपने एक लेख "उज्जैन के निकट दि० जैन प्राचीन मूर्तियो" मे गधावल के जैन पुरातत्त्व की विशेष चर्चा की है। गधावल के सम्बन्ध मे एक बात उल्लेखनीय यह है कि यहाँ सभी दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ है।

विशाल प्रतिमाओ की परम्परा मे बडवानी नगर के समीप चूलगिरि पर्वत श्रेणी के तलभाग मे उत्कीर्ण ८४ फीट ऊंची खड्गासन प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है। इसे बावनगजा के नाम से भी पुकारते है। इसके एक ओर यक्ष तथा दूसरी ओर यक्षिणी उत्कीर्ण है[4]। दि० जैन डिरेक्टरी के अनुसार चूलगिरि मे २२ मन्दिर है। मंदिरो के जीर्णोद्धार का समय १२३३, १३८० और १५८० वि० सवत है[5]।

जैन प्रतिमाओ का एक विशाल सग्रह "श्री जैन पुरातत्त्व भवन जयसिंहपुरा उज्जैन" मे भी है। यहाँ पर विभिन्न तीर्थंकरो की प्रतिमाओ के साथ ही अन्य प्रतिमाए भी है। अधिकाश प्रतिमाए दिगम्बर है। कुछ श्वेताम्बर प्रतिमाए भी दिखाई देती है। इस सग्रह की सभी प्रतिमाएँ कही न कही से खण्डित है। कई प्रतिमाओ के सिर नही है तो कई के धड नही है। कुछ प्रतिमाओ के हाथ पैर टूटे है। ये प्रतिमाए यहां अनेक स्थानो से लाकर रखी गई है। जिनमे से प्रमुख गुना जिला है। कुछ प्रतिमाएँ सुरुजेर, बदनावर तथा रतलाम जिले मे भी यहाँ आई है। अधिकाश प्रतिमाओ पर लेख उत्कीर्ण है। किन्तु अधिक घिस जाने के कारण स्पष्ट रूप से पढने मे नही आते है। एक खण्डित प्रतिमा जिसका केवल निम्न भाग ही शेष है, पर सवत १२२२ का लेख है। इस प्रतिमा पर "स्वस्तिक" चिन्ह है—जिसके आधार पर हम कह सकते है कि यह प्रतिमा १०वे तीर्थंकर भगवान शीतलनाथ जी की है। भगवान अजितनाथ जी की एक प्रतिमा जो कि खडित है गुना से प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा पर स० १२३१ का लेख उत्कीर्ण है किन्तु घिस जाने के कारण पढने मे बराबर नही आता है। भगवान पार्श्वनाथ की जितनी प्रतिमाए है उनमे सर्पफण अभी भी लगभग पूर्ण है। यहां के सग्रहालय की लगभग सभी प्रतिमाए लाल अथवा भूरे रेतीले पत्थर की है। कोई कोई प्रतिमा ही काले पत्थर की दिखाई देती है।

सम्पूर्ण मालवा के जैन पुरातत्त्व के विषय मे अन्वेषण आवश्यक है जिससे अनेक रहस्य प्रकट होने की सम्भावना है।

---

१ उज्जयिनी दर्शन पृ० ८४

२ अनेकान्त वर्ष १६।१-२ पृ० १२६

३ अनेकान्त वर्ष १२।१० पृ० ३२घ-२८

४ डा० हीरालाल जैन वही पृ० ३५०

५ जैन साहित्य और इतिहास पृ० ४४२

*उपाध्याय मेघविजय के मेघमहोदय में उल्लिखित :*

# कतिपय अप्राप्त रचनाएँ

**अगरचन्द नाहटा**

जैन विद्वानो ने प्राचीन साहित्य के सरक्षण और नवीन साहित्य के सृजन मे जैसी तत्परता दिखाई है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। जिस समय मुद्रण की सुविधा नही हुई थी उस समय हस्तलिखित प्रतियाँ को लिखना कितना कष्ट साध्य था इसकी कुछ झाकी कतिपय प्रतियो के लेखको ने लेखन के अन्त मे कुछ श्लोक दिये है उनसे मिल जाती है। जैन विद्वान जो भी अच्छा ग्रथ जहा भी जिस किसी के पास देखते उसकी नकल अपने व्यक्तिगत उपयोग या ज्ञानभन्डारो के लिए कर लिया करते थे। इसीकारण जैन ही नही जेनतर हजारो-छोटी-बडी रचनाये उनके द्वारा लिखी हुई आज भी प्राप्त है। यद्यपि जितनी बडी सख्या मे हस्तलिखित प्रतिया लिखी गई थी उसका बहुत बडा अश नष्ट हो चुका है फिर भी बहुत-सी ऐसी जैनेतर रचनाये जैन भन्डारो मे है जिनकी अन्य कोई भी प्रति किसी जैनेतर सग्रहालय मे नही मिलती। हस्तलिखित प्रतिया प्राचीनतम एव शुद्ध ही जैन भन्डारो मे अधिक मिलती है। इतनी तत्परतासे वृद्धि और सरक्षण करने पर भी आज हजारो जैन रचनाये भी अलभ्य हो गई है। उनमे से कुछ का उद्धरण और कुछ का उल्लेख अन्य ग्रथो मे पाया जाता है। जिससे विदित होता है कि उस समय तक तो वे रचनाये प्राप्त थी पर आज उनका कही भी पता नही लगता। यद्यपि जैन भन्डार या ग्रथ-सग्रह भारत के कौने-कौने और सैकड़ो स्थानो मे है और सबकी सूची नही बनी है जिनकी सूची बनी हुई है उनकी भी जानकारी प्रकाशित नही हुई है इसीलिए यह सम्भव है कि वे अलभ्य मानी जाने वाली रचनाये उन सग्रहालयों मे अब भी सुरक्षित हो जिन सग्राहलयोकी सूची एव जानकारी अभी तक प्रकाश मे नही आ पाई। विगत कुछ वर्षों मे ऐसी अलभ्य रचनाये खोज मे भी प्राप्त हुई हैं इसीलिए जो अभी तक प्राप्त नही हुई है उनके सम्बन्ध मे शोध प्रेमी विद्वानों का ध्यान आकर्षित करना आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत लेख में ऐसी ही कुछ रचनाओं की चर्चा की जा रही है।

१८वी शताब्दी के प्रारम्भ मे उपाध्याय मेघविजय एक बहुत बडे विद्वान हो गए है। जिन्होंने कई महाकाव्य प्रबन्ध काव्य लघुकाव्य और विलक्षणकाव्य बनाने के साथ-साथ व्याकरण, ज्योतिष, आदि अनेक विषयों के ग्रथ बनाए है। इनके बहुत से ग्रथ प्रकाशित भी हो चुके है। कई वर्ष पहले मैंने इनकी रचनाओं के सबन्ध मे एक लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे प्रकाशित किया था। मुनि जिन विजयजी सम्पादित सिघी जैन ग्रथमाला मे मेघविजय जी के २-३ ग्रथ प्रकाशित हुये है। उनके सम्पादको ने भी मेघविजयजी की रचनाओ का विवरण दिया है। खेद है जिस महान विद्वान को स्वर्गवासी हुए केवल २७५ वर्षभी पूरे नही हुए उनकी रचनासभी पूर्ण रूप से प्राप्त नही है। हमारे सग्रह मे उनके चरित्र एक चित्र काव्य विज्ञप्ति लेख है जिसकी पूर्ण प्रति अभी तक कही भी प्राप्त नही हुई। महोपादयाय विनयसागर जी ने मेघविजयजी की रचनाओ के सम्बन्ध मे एक खोज पूर्ण निबन्ध लिखा है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इसमे उनकी कुछ ऐसी रचनाओ का भी उल्लेख किया गया है जो अब तक अज्ञात थी मैंने भी ऐसी दो अज्ञात रचनाओ की खोज पहले की थी और १-२ लेख जैन सत्य प्रकाश आदि मे प्रकाशित किये थे। सिघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित की।

प्रस्तावना मे मेघविजयजी की रचनाओ की नामावली दी है। उनमे कुछ की प्रतिया अभी तक हमे देखने को नही मिली। उनका उल्लेख भी विनयसागर जी के रचित मेघ महोदय-वर्ष प्रबोध नामक महत्वपूर्ण ग्रथ मे

उल्लिखित अन्य विद्वानों की ऐसी रचनाओं का विवरण दिया जा रहा है जिनका उपयोग मेघविजयजी ने अपने उक्त ग्रन्थ मे किया है। पर उनकी पूरी प्रतिया मेरी जानकारी मे प्राप्त नही है। जिस किसी सज्जन को वे रचनायें कही मिल जाये तो उसकी वे जानकारी मुझे सूचित करने या प्रकाशित करने का कष्ट करे। चूकि मेघ-महोदय मे मेघ अर्थात वर्षा सबन्धी महत्वपूर्ण विवरण है। इसलिए यह ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण है। और इस ग्रन्थ मे जिन अलभ्य रचनाओं का उद्धरण व उल्लेख है वे भी अवश्य ही महत्व की होगी। मेघ महोदय हिन्दी अनुवाद सहित प० भगवानदास जैन ने सवत् १६८३ मे बीकानेर मे रहते समय प्रकाशित किया था। उनसे भी इन अलभ्य रचनाओ सम्बन्धी पूछा गया तो उत्तर मिला कि ग्रथ प्रकाशन को ४० वर्ष हो जाने पर भी इन रचनाओ की प्रतिया उन्हे कही भी नही मिल सकी है

मेघ महोदय मे 'हीर मेघमाला' नामक ग्रन्थ का उल्लेख और उद्धरण अनेक स्थानो मे मिलता है इस ग्रन्थ के नाम से जैसा कि लगता है कि इसकी रचना तपागच्छ के हीरविजय सूरि ने की और इसका स्पष्ट उल्लेख मघ-महोदय मे है। इस ग्रथ के उद्धरण मेघमहोदय के ४४ ४१-६२, २३७, २३६, २५३, २५८, २६०, २६८, २८६, २६२, ३११, ३१६, ३४०, ३४२, ३५०, ३८५, ४१४, ४५१, ४६०, ४६१, ५१२, इन स्थानो मे हुआ है। उद्धृत गाथाये व श्लोक प्राकृत और सस्कृत दोनो भाषाओ के है। यहा कतिपय उद्धरण दिये जा रहे है :—

हीर मेघमालायामपि—

**परिवेष वाय वद्दल संझारागं च इंदधणु होइ।**
**हिम करइ गज्ज विज्जु घंटा गब्भो भणिएहिं ॥२१८**
**जीवेभ्यः पुद्गलाः सूत्रे पृथगेव समीरिताः।**
**तेन केचिवजीवाः स्युर्महावृष्टेश्च हेतवः ॥२१६**
**जलयोनिकजीवादेः सद्भूतिः प्रच्युतिर्यथा।**
**विचार्यते देशतस्ते तथा ग्रामे च मण्डले ॥२२०**
**यद्दिनेऽभ्रादिसम्भूतिर्मेघशास्त्रे निरूपिता।**
**यथा सा वृष्टि हेतुः स्यात् तथाभ्रादेः परिच्युतिः ॥२२१**

यदुक्तम्—

**आर्द्रादौ दश ऋणाक्षि ज्येष्ठे शुक्ले निरीक्षयेत्।**
**साभ्रेषु हन्यते वृष्टिर्निरभ्रे वृष्टिरुत्तमा ॥२२२**
**एवं देशनिवेश पुद्गलजलप्राण्यादि संमूर्च्छनाद्।**
**हेतून् प्रागवगम्य सम्यगुदकासारस्य सारस्यदीन्।**

हीरविजयसूरि का तो कही पता नही चलता पर मेघजी हीरजी बम्बई से सन् १६२५ मे प्रकाशित 'मेघ माला' विचार का रचयिता विजयप्रभसूरि बतलाया है। तद्यपि उसके अन्त मे विजयप्रभसूरि के रचे जाने की प्रशस्ति नही है।

**श्रीहीर विजयसूरि कृत मेघमालायां प्रोक्तुम्—**
**रज्जच्छवम्मि वाओ उत्तरो वहइ धन्ननिप्फत्ती।**
**पुव्वाई नीरबहुनो पच्छिम वाएण करवरयं ।१०४**
**दक्खिण वाय दुकालो अहवा बज्जेइ बाउ चउदिसो।**
**तह लोय उवद्दव जुज्झइ राया खओ लोए ॥१०५**
**क्वचित्तु-पूर्ववाते तीड्शुका मत्कुणा मूषकादयः।**
**वारुणे तु युगन्धर्या निष्पत्तिर्बहुला भुवि ॥१०६**

दूसरे ग्रन्थ दुर्गदेव के सृष्टि सवत्सर के उद्धरण मेघ-महोदय मे पाए जाते है। इस ग्रन्थ की भी अन्य कोई पूरी प्रति जानने मे नही आई। दुर्गदेव के अन्य कई ग्रन्थ प्राप्त होते है जिनमे मे 'रिष्टसमुच्चय' तो प्रकाशित भी हो चुका है। दुर्गदेव ज्योतिष आदि के अच्छे जैन विद्वान् मालूम होते है। अत उनका सृष्टि सवत्सर अवश्य ही उल्लेखनीय कृति है जिसकी खोज की जानी चाहिए। दुर्गदेव की रचनाये प्राकृत भाषा की प्राप्त है। मेघमहोदय के प्रारम्भ में संस्कृत और फिर प्राकृत मूलगाथा दी गई है। उद्धरण इस प्रकार है :—

**अथ जैनमते दुर्गदेवः स्वकृतषष्टि संवत्सरग्रन्थे पुनरेवमाह—**
**ओं नमः परमात्मनं वन्दित्वा श्रीजिनेश्वरम्।**
**केवलज्ञानमास्थाय दुर्गदेवेन भाष्यते ।१**

पार्थ उवाच—

**भगवन् दुर्गदेवेश ! देवानामधिप ! प्रभो !**
**भगवन् कथ्यतां सत्यं संवत्सरफलाफलम् ॥२**

दुर्गदेव उवाच—

**शृणु पार्थ ! यथावृत्तं भविष्यन्ति तथाद्भुतम्।**
**दुर्भिक्षं च सुभिक्षं च राजपीड़ा भयानि च ॥३**
**एतद् योऽत्र न जानाति तस्य जन्म निरर्थकम्।**
**तेन सर्वं प्रवक्ष्यामि विस्तरेण शुभाशुभम् ॥४**

प्रभव विभवौ शुभौ, शुक्लोऽशुभः, प्रमोद प्रजापती— शुभौ, अङ्गिरा अशुभः, श्रीमुखभावौ शुभौ, युवा विरुद्धः, धाता समः, ईश्वर बहुधान्यौ शुभौ, प्रमाथी विरुद्धः, विक्रमवृषभौ शुभौ, चित्रभानुर्विरुद्धः, सुभानुतारणौ शुभौ, पार्थिवो विरुद्धः, व्ययः सम. ॥इति प्रथमा विंशतिका॥

**भणियं दुग्गदेवेण जो जाणइ वियक्खणो ।**
**सो सव्वत्थ वि पुज्जो णिच्छयओ लद्धलच्छीय ॥१**

डा० गोपाणी के कथनानुसार रिष्ट समुच्चय का दूसरा नाम कालज्ञान भी है। अर्थात् मृत्यु के पहले उसका ज्ञान प्राप्त करने का विवरण इस रिष्ट समुच्चय मे है। प्रत्येक मानव के लिये विशेष अन्तिम आराधना की तैयारी के लिए मृत्यु ज्ञान की विशेष आवश्यकता है ही।

रिष्ट समुच्चय अपने ढंग का एक ही ग्रन्थ है। इसके तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके है। पहला संस्करण अध्यापक अमृतलाल गोपाणी ने संस्कृत छाया और अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया। दूसरा संस्करण उन्ही के सम्पादित सिंघी जैन ग्रन्थमाला से विस्तृत रूप मे प्रकाशित हुआ। तीसरा संस्करण डा० नेमीचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य का हिन्दी अनुवाद सहित जवरचन्द फूलचन्द गोधा जैन ग्रन्थमाला, इन्दौर से संवत् २००५ मे निकला। उसमें दुर्गदेव की अन्य रचनाओं मे अरघ काड, मंत्र महोदधि और मरण कण्डिका है। रिष्ट समुच्चय और मरण कण्डिका एक ही विषय की लघु-वृद्ध रचनाए है। अरघकान्ड मे तेजी मदी का विवरण १४६ गाथाओ मे है। मंत्र महोदधि ३६ गाथा का छोटा सा ग्रन्थ है जिसके अन्तिम उल्लेख से दुर्गदेव दिगम्बर सिद्ध होते है।

श्री नेमीचन्द्र शास्त्री ने अरघकाण्ड का परिचय देते हुए लिखा है कि 'इसमें ६० संवत्सरो के फलाफल का भी संक्षेप मे सुन्दर वर्णन है।' अत. सम्भव है मेघविजय मे उल्लिखित दुर्गदेव का सृष्टि संवत्सर अरघकाण्ड का ही अंश हो। उक्त ग्रन्थ से यहाँ उद्धृत पाठ मिलाकर निर्णय करना आवश्यक है।

तीसरा अलभ्य ग्रन्थ दिगम्बर केवलकीर्ति के मेघमाला का उल्लेख एवं एक श्लोक इस प्रकार है—

**केवलकीर्ति—दिगम्बर कृत मेघमालायां पुनरेव —**
**आगच्छति यथा भूपे गेहे गेहे महोत्सवः।**
**तथा वर्षाधिपेलोके दीप्तदीपोत्सवः स्मृतः ॥२३**

**केवलकीर्ति दिगम्बरोऽप्याह—**

**माघस्य शुक्लसप्तम्यां यदाभ्रं जायतेऽभितः।**
**तदा वृष्टिर्घना लोके भविष्यति न संशयः ॥११८॥**

स्वातियोग.—

**माघे च कृष्णसप्तम्यां स्वातियोगेऽभ्रगर्जितम्।**
**हिमपाते चण्डवाते सर्वधान्यं: प्रजासुखम् ॥३१६**
**तथैव फाल्गुने चैत्रे वैशाखे स्वाति योगजम्।**
**विद्युदभ्रादिकं श्रेष्ट-माषाढ़ेऽपि सुभिक्षाकृत ॥३२०**

प्रस्तुत ग्रन्थ के पृष्ठ ३२४-३७४ और ४४३ में चातुर्मासिकुलक और पृ० ३५६ और ४८१ मे तिथिकुलक की गाथाए उद्धृत है। इनमें से पृ० ३७४ वाली उद्धृत गाथा से चातुर्मासकुलक का ऊपर नाम देने पर भी मूलग्रन्थ का नाम अरघकाण्ड सिद्ध होता है। प्राकृत भाषा का यह अर्घकाण्ड दुर्गदेव के अर्घकाण्ड से भी भिन्न है। यह नेमीचन्द्र शास्त्री के उद्धृत दुर्गदेव के अर्घकाण्ड के प्रारम्भिक पद्य से स्पष्ट है। चातुर्मासकुलक और तिथिकुलक कितने बड़े हैं यह तो उनकी पूरी प्रति प्राप्त होने पर ही विदित हो सकता है। मेघ महोदयमें दिये गए उद्धरण नीचे दिए जा रहे है जिनसे इन ग्रन्थों को खोजने मे सुविधा रहेगी।

चतुर्मास कुलके—

**आषाढ़पुन्निमाए पुव्वासाढ़ा हविज्ज दिनराई।**
**मा चत्तारि वि मासा खेम सुभिक्खं सुवासं च ॥६०**
**अह हेट्ठिमाय पुण्णिम मूलेणं जाइ पढम बे पुहरा।**
**ता बुन्न वि मासाओ दुभिक्खं उवरि सुभिक्खं ॥६१**
**अह उवरि वे पुहरा पुव्वासाढा हविज्ज नक्खत्तं।**
**ता होइ दुण्णि मासा खेमसुभिक्खं वियाणाहि ॥६२**
**अहव पविसिऊण मूलं भुजइ चत्तारि पुहर जइ कहवि।**
**ता चत्तारि वि मासा दुभिक्खं होइ रसहाणि ॥६३**
**अहवा उत्तरसाढ़ा भुजइ चत्तारि पुहरमवियारं।**
**ता जाणह दुक्कालं मासा उत्तरह चत्तारि ॥६४**
**अह भुजइ बे पुहरा पुव्वाउडुम्मि उत्तरासाढा।**
**ता उवरि बे मासा होइ सुभिक्खाओ रसहाणि ॥६८**
**अह भुजइ बे पुहरा मुलं पुव्वं हविज्ज नक्खत्तं।**
**उवरि पुव्वासाढ़ा दुक्खं पच्छा सुहं होइ ॥६६**

नमिऊण तिलोयरवि जगवल्लह जलहरं महावीरं ।
वुच्छामि अग्घकण्डं' जं कहियं जिणवरिंदेण ॥२०६
कत्तियपूनमदिवसे कत्तियरिक्खं च होइ संपुन्नं ।
ता चत्तारि वि मासा होइ सुभिक्खं सुहं लोए ॥२००
सुरगुरु रविसुय धरणिसुय, जइ एकत्थ मिलंति ।
भूमिकवाले मंडिया, भारी भीख भमन्ति ॥१४२
जइ वक्कइ धरवि सुओ विसाहमहमूलकत्तियारूढो ।
अन्नं कुणइ महग्घं इक्कं निवइं विणासेई" ॥१४२

तिथिकुल के विशेषः—

तिय उत्तरा य अद्दा पुणव्वसू रोहिणी य जइ कहवि ।
हुंति किर पुण्णिमाए तम्मासे जाण दुब्भिक्खं ॥१२२
फग्गुण पुण्णिमदिवसे पुव्वाफग्गुणि हविज्ज णक्खत्तं ।
चत्तारि वि पुहराओ ता चउरो माससुभिक्खं ॥२५३
बे पुहरा अहव महाणक्खत्तं होइ कहवि देववला ।
ता जाणइ दुवे मासा होइ महग्घं ण संदेहो ॥२५४
अह पुण्णा तद्दिवसे होइ महारिक्खयं जया कहवि ।
चत्तारि वि मासा खलु ता जाणह विहुरं काल ॥२५५
अह पुण्णिम दो पुहरा पुव्वाफग्गुणी हविज्ज णक्खत्तं ।
उवरिं उत्तरफग्गुणी दो पुहरा होइ जइ कहवि ॥२५६
ता पढमा दो मासा होइ सुभिक्खं सुहं न संदेहो ।
दो उवरि पुणो मासा सस्सविणासेण दुक्कालो ॥२५७
अट्ठ प्पहरा चउरो अहवा जइ होइ उतरा जोगो ।
सस्साणं ता हाणी रसाण तह तिल्लदव्वाणं ॥२५८

*तिथिपयन्ना (प्रकीर्णक) नामक एक रचना का उल्लेख* तो जिनरत्नकोश मे प्राप्त होता है। तिथिकुलक उससे भिन्न है या एक है इसका निर्णय तो तिथिपयन्ना में उपरोक्त गाथाएं प्राप्त है या नहीं यह खोजने पर ही आधारित है।

जैसा कि पहले कहा गया है मेघमहोदय एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमे अनेको ग्रन्थो का उल्लेख है। जैनेतर मेघमाला आदि का भी उपयोग किया गया है। एक विशेष उल्लेखनीय ग्रन्थ की चर्चा भी यहाँ कर देना आवश्यक है कि भद्रबाहु सहिता नामक ग्रन्थ सस्कृत का तो प्रकाशित हो चुका है पर मेघविजय ने इस ग्रन्थ की प्राकृत गाथाओं के भी उद्धरण दिए हैं। भद्रबाहुकी रचना प्राकृत भाषा में होनी चाहिए, अतः इस प्राकृत भद्रबाहु संहिता की खोज अत्यावश्यक है। यहाँ मेघमहोदय मे उद्धृत भद्रबाहु संहिता की प्राकृत गाथाएं दी जा रही हैं :—

यदाहुः श्रीभद्रबाहु गुरु पादाः—

रेहाहिं कित्तियाइ अट्ठावीसं पि ठवह पंतीए ।
निप्पाइऊण ताहिं सत्ताहिं नाडीहिं महभोई ॥६०
नाडीइ जत्थ चंदो पावो सोमोय तत्थ जइ दोवि ।
हुंती तहिं जाण वुट्ठी इय भासइ भद्दबाहु गुरू ॥६१
एसोवि य पुणचंदो संजुत्तो केवलोव जइ होइ ।
केवलचन्दो नाडीइ ता नियमा दुद्दिणं कुणइ ॥६२
एयाणं पि य मज्झे अमियाइ तिए जलासओ अहिओ ।
तुरियाए वायमिस्सो सेसासु समीरणो अहिओ ॥६३
जइ सव्वाण वि जोगो गहाण अमियाइ तिगे अनावुट्ठी ।
अट्ठार १८ वार छुदुद्दिण सेसासु फल जहापत्तं (?) ॥६४
विजला वि वाउनाडी देइ जलं सोमखइरबहुजोगा ।
जलनाडी तुच्छजलं पावाहिय जोगओ देइ ॥६५
जइ वाउनाडीपत्ता सणिभोमा किमवि नहु जलं दिंति ।
सोमजुआ तेउ जलं अइसय जोएण वरिसंति ॥६६
विसमपर कुभमीणा सीहो कक्कडय विच्छियतुलाओ ।
सजलाओ रासीओ सेसा मुक्का वियाणाहि ॥६७
रविसणिभोमसुक्का चंदविदप्पो य बुहगुरू सुक्को ।
एए सजला णिच्चं णायव्वा आणुपुव्वीए ॥६८॥

—इति भद्रबाहुसहितायां

मेघ महोदय के पृ० ३७ मे भद्रबाहु के नामसे निम्नोक्त बात सस्कृत श्लोक मे कही गई है—

क्रूरसंयुक्तसूर्येन्द्वोर्ग्रहणे नृपतिक्षयः ।
राष्ट्रभङ्ग इति प्राहुर्भद्रबाहुमुनीश्वराः ॥२०१॥

उपलब्ध सस्कृतभाषा की भद्रबाहु संहिता में इस आशय का कथन है या नही, अन्वेषणीय है।

मेघमहोदय मे गौतम स्वामी भाषित राशिमडल पृष्ठ १६६ से २०६ में दिया गया है। और पृ० ५०७-५०८ मे इति गौतमीय ज्ञानं श्लोक ८७से६५ तक में दिया है। यह

(शेष पृष्ठ ४८ पर)

१ अर्घकाण्ड का चातुर्मासिकुलक के नाम से उल्लेखित किया जाना विचारणीय है।

# अग्रवालों का जैन संस्कृति में योगदान

**परमानन्द शास्त्री**

[अनेकान्त वर्ष २० किरण ५ से आगे]

बखतावरमल और रतनलाल ने वर्तमान चौवीसी पूजा पाठ सवत् १८९२ मे बनाया था[१]। उस समय दिल्ली मे अकबर (द्वितीय) का राज्य था। अकबर द्वितीय आलमशाह द्वितीय के बाद सन् १८०६ (वि० स० १८६३) मे गद्दी पर बैठा था, इसने सभवत १३ वर्ष के लगभग राज्य किया। अतएव स० १८९४ तक इसी का राज्य रहा है। उस समय दिल्ली मे राजा सुगनचन्द की शैली का विस्तार था। सुगनचन्द का पुत्र प० गिरधारी लाल था। जो प्राकृत-सस्कृत और हिन्दी का अच्छा विद्वान था। और अपने प्रपिता (पितामह) द्वारा बनवाए हुए मन्दिर की शास्त्र सभा मे शास्त्र प्रवचन करता था। दिल्ली की उस शैली मे प० सुगुनचन्द, प० गिरधारीलाल स्नेहीलाल, कानजीलाल, जैजैलाल, गुपालराय और साहिब सिंह आदि सज्जन थे। पचकल्याणक पूजापाठ की रचना भी इन्होने सं० १८९२वे मे की थी[२]।

सहारनपुर के लाला सौदागरमल ने एक पत्र बखतावरमल को 'जिनदत्तचरित्र' की भाषा करने के लिये लिखा था और प्रेरणा की थी कि इसकी भाषा जल्दी बन जाय, तो बडी कृपा होगी। इन्होने अपने मित्र की सलाह से भाषा बनाना स्वीकार कर लिया था। और इसके लिये उन्होने प० गिरधारीलालजी से प्रार्थनाकी थी कि आप हमे सस्कृत का हिन्दी अर्थ बतला दे। तब गिरधारीलालने उन्हे सस्कृत पद्यो का हिन्दी मे अर्थ बतलाया और तब उन्होने उसकी भाषा बनानेका उपक्रम किया। लाला आनन्दरायने भी प्रेरणा की थी। तब इन्होने स० १८९४ मे माघ कृष्णा नवमी के दिन उक्त ग्रन्थ का पद्यानुवाद किया था[३]। पश्चात् दोनों मित्रों ने संवत् १८९६ मे आराधना कथा कोष का पद्यानुवाद सवत १८९६ में पूर्ण किया था[४]। उस समय दिल्ली मे बहादुरशाह (द्वितीय) का राज्य था। वह सन् १८३७ (वि० स० १८९४) में तख्त पर बैठा था। कवि ने उसी के राज्य मे प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ भी पहले प्रकाशित हो चुका है। इस तरह दिल्ली के इन दोनो विद्वानो ने गृह कार्यो मे रत रहते हुए जो साहित्य-सेवा की है वह अनुकरणीय है।

३५वें पं० फतेहचन्द जी है। आप का जन्म अग्रवाल कुल मे हुआ था। आपके द्वारा लिखी हुई 'जैन यात्रा दर्पण' नामकी पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।

३६वें० कवि जगदीशराय है। आप का वंश भी अग्रवाल था। आप हिन्दी और फारसी भाषा के अच्छे विद्वान थे। आप का जन्म संवत् १९०२ मे हुआ था। आप बाल्य अवस्था से ही जैन सिद्धान्त के रसिक थे। आपने ज्योतिष और रमल मे भी अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। आप के पद बडे सुन्दर और सरल है। आप की एक मात्र रचना 'जगदीश विलास' है, जो प्रकाशित हो चुका है आपके पदो मे फारसी भाषा के शब्दो का प्रयोग जहां-तहां हुआ है। आपका अवसान ६१ वर्ष की अवस्था मे सन् १९६३ में हुआ था।

३७वे विद्वान् प० गिरधरलाल जी है, जो राजा सुगनचन्द के पुत्र और राजा हरसुखराय के पौत्र थे। आपने सम्पन्न परिवार मे जन्म लेकर भी प्राकृत-सस्कृत का अच्छा अध्ययन किया था। और जैन सिद्धान्तके अनेक

---

१ सवत् अष्टादशशत और बाणवे जान।
फागुन कारी सप्तमी भौमवार पहचान ॥

२ संवत् अष्टादश जु कहिये और बाणवे तापर दीन।
भादों की दोयज सुखकारी चन्द्रवार दिन पूरन कीन ॥

३ सवत् विक्रम नृपति कौ अट्टारहसै मान।
तापै अधिक चौरानवै, माघ कृष्ण पख जान ॥

४ संवत् विक्रम नृपति को वृष अरु ज्ञान मिलाय।
नारायण लेश्यातनी संज्ञा सर्व गिनाय ॥
ग्रीषम ऋतु वैशाख फल पक्ष जान अधियार।
सिद्ध जोग शुभपंचमी वृश्चिक शशि गुरुवार ॥

ग्रन्थों का मनन किया था, जिससे वे उसके रहस्य से परिचित हो गए थे। वे धर्मपुरा के नये मन्दिर की शास्त्र सभा में प्रवचन करते थे। और जो जिज्ञासु साधर्मी आजाते थे उन्हे उसका अर्थ बतला देते थे। अनेक कवियों ने उनसे प्राकृत और सस्कृतका अर्थ सीखा था। आपने दिल्लीमे हिसार पानीपत अग्रवाल दि० जैन पचायत को कायम किया था। उस समयकी जनतामे वे बड़े प्रतिष्ठित माने जाते थे। आप ने कोई ग्रन्थ रचना नही की। किन्तु रचयिताओं के कार्य मे महयोग अवश्य दिया करते थे। जैनमित्रमडल की लायब्रेरी में उनका फोटो भी लगा हुआ है। धनी होकर विद्वान होना कठिन है।

अडतीसवें विद्वान बाबू सूरजभान जी है, बाबू जी का जन्म नकुड जिला सहारनपुर मे वि० स० १९२५ मे हुआ था। आप के पितामह लाला नागरमल जी तहसील दार थे और पिता लाला खुशवक्तराय जी नहर के जिलेदार थे।

सात वर्ष की उम्र के बाद आप जब तक पढते रहे तब तक आप प्रायः अपने चाचा लाला अमृतराय जी के साथ रहे, आपके चाचा पेमायश और नक्शाकसी के मास्टर थे पहले होशियारपुर मे और फिर लाहौर में। होशियारपुर में आपने मिडिल पास किया और लाहौर मे मन् १८८५ (वि० सं० १९४२) मे मैट्रिक। इसके बाद आप कालेज मे भर्ती हुए; परन्तु इसी समय पिता जी का देहान्त हो जाने से आपको नकुड़, वापिस आना पड़ा।

नकुड़ मे घर पर रह कर ही सन् १८८७ मे आपने लोअर सब आर्डिनेट प्लीडर परीक्षा की तैयारी की और सन् १८८७ में पास हो गए। उन दिनों यह परीक्षा इलाहाबाद हाईकोर्ट की तरफ से होती थी।

प्लीडर हो जाने पर पहले एक साल तक तो आपने सहारनपुर मे वकालत की, और उसके बाद आप देवबन्द आ गए और वहाँ सन् १९१४ तक वकालत करते रहे।

वकालत का पेशा आपको पसन्द न था, परन्तु परि-स्थितियोंने कुछ ऐसा मजबूर किया कि आपको वकालत का कार्य करना ही पडा। परन्तु मन मे उसके प्रति कसक बनी रही। और तीन-चार वर्षके बाद एक दिन तो मन में ऐसा उद्वेग हुआ और वकालत छोड़ने का निश्चय कर लिया। आपने अपने बाबा से पूछा, परन्तु उन्होने इस कारण कोई उत्तर न दिया, उन्होने सोचा कि यह तार्किक व्यक्ति है। मैं न छोड़ने की दलीलें दूंगा, तो इसे जिद चढ़ जायगा। अन्त में आपने अपनी पत्नी से सलाह ली, तो पत्नी ने कहा इसे छोड़ो तो नही, परन्तु यह निश्चय कर लो कि सच्चे मुकदमे ही किया करूँगा, झूठे नही। आमदनी थोड़ी होगी, तो थोडे मे ही गुजर कर लूंगी। यह बात बाबूजीको जँच गई। उन्होने उक्त निश्चयानुसार वकालत जारी रखी और थोड़े ही दिनों मे आपकी सचाई की शोहरत हो गई और उसका हाकिमो पर भी महाप्रभाव पडा।

आपका विवाह मन् १८८२ मे ११ वर्ष की अल्प उम्र मे हो गया था, परन्तु सन् १८८९ के लगभग पत्नी का वियोग हो गया। पश्चात् सन् १८९० मे दूसरा विवाह हुआ। इससे आपके दो पुत्र है। कुलवतराय और सुखवन्-राय। कुलवन्तराय इन्जीनियर, और सुखवन्तराय इलाहा-बाद में ओवरसियर है।

बाबूजी का सारा खानदान उर्दू, फारसी-दाँ था, धर्म से किसी को विशेष रुचि नही थी, साथमे अरुचि भी नही। पर्वो एव त्यौहारो पर लोग मन्दिर जाते थे और उर्दू लिपिमे णमोकार मत्र, पद विनती आदि लिख पढ लिया करते थे। किन्तु स्त्रियाँ प्रति दिन मदिर जाया करती थी।

आपने सबसे पहले होशियारपुर मे लगभग बारह वर्ष की उम्र मे श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मुनि आत्माराम के व्याख्यान सुने जो वहाँ चातुर्मास मे आकर रहे थे।

लाहौर मे आपके चाचा का मकान जैनमन्दिर के पास ही था। यह मन्दिर दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनो सम्प्रदायो का सयुक्त था। आप उसमे रोज दर्शन करने जाते थे और शास्त्र भी सुनते थे। उससे आपको जैनधर्म के जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई।

उन्ही दिनो फर्रुखनगर से चौधरी जियालाल ने 'जैन प्रकाश' नामका मासिक पत्र निकाला, आपको वह अत्यन्त प्रिय लगा, और आपने घर-घर घूम कर उसके अनेक ग्राहक बनाये। वहाँ के प्रायः सभी दिगम्बर घरों मे वह पत्र आने लगा था। जैन समाज में हिन्दी का संभवतः

यह पहला पत्र था। दक्षिण की जैन समाजको जागृत करनेवाले सेठ हीराचन्द नेमचन्द द्वारा संभवतः उस समय 'जैन बोधक' भी निकलने लगा था।

सन् १८८५ के लगभग मुरादाबाद के मुंशी मुकुन्दरायजी और प० चुन्नीलालजी ने निश्चय किया कि जैन समाजकी उन्नति के लिए कुछ प्रयत्न किया जाय। मुंशी जी संस्कृत, फारसी और अरबी के पंडित थे और जमीदार भी थे और प० चुन्नीलालजी संस्कृतज्ञ विद्वान थे और आढ़तका काम करते थे। दोनों विद्वानो ने जगह-जगह भ्रमण किया, जैन सभाए तथा जैनपाठशालाए स्थापित की। इन्होने एक 'जैन पत्रिका' भी प्रकाशित की थी, जिसमे उनके भ्रमणका वृत्तान्त रहता था और वह सब जगह मुफ्त भेजी जाती थी। मुशी मुकुन्दरायजी बड़े सभाचतुर थे। अपने प्रवास मे उन्होने बड़े कार्य किये—एक तो मथुरा मे जैन महासभा की स्थापना की और राजा लक्ष्मणदास जी सी० आई० ई० को उसका अध्यक्ष बनाया और दूसरे अलीगढ मे प० छेदालालजी की अधीनता मे एक बड़ी पाठशाला जैन विद्वान तैयार करने के लिए की।

उक्त दोनो विद्वानों के कार्य का बाबूजी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बाबूजी उन्हे अपना गुरु मानते थे, और उन्होंने उनके पदचिन्होंका अनुसरण भी किया। अब बाबूजीने जैन ग्रन्थों के स्वाध्याय मे मन लगाया और धीरे-धीरे जैनधर्म की यथेष्ट जानकारी प्राप्त कर ली।

देवबन्द मे वकालत करते हुए सन् १८९२ या ९३ मे बाबूजी ने 'जैन हितोपदेशक' नामका मासिक पत्र उर्दू मे जारी किया। उसमे 'उपदेशक फण्ड' कायम करने की अपील की गई और वह कायम भी हो गया। उसके मंत्री मुशी चम्पतराय जी डिप्टी मजिस्ट्रेट बनाए गए और ज्योतिपरत्न चौधरी जियालाल ने उक्त फण्ड की ओर से दौरा शुरू किया।

दीपावली की छुट्टियों मे सरसावा के हकीम उग्रसैन जी के साथ बाबूजी ने भी उक्त फण्ड की ओरसे एक लम्बा दौरा किया। इस दौरे मे उन्हें मुरादाबाद में मालूम हुआ कि मथुरा मे स्थापित महासभा का प० प्यारेलाल जी अलीगढ की कृपासे विघटन हो गया है। क्योंकि सोलापुर के स्व० सेठ हीराचन्द नेमचन्द ने महासभा के जल्से मे जैन ग्रन्थो के छपने का प्रस्ताव किया था। अतएव प० प्यारेलाल जी ने सोचा कि यदि महासभा रही तो जैनग्रथ छपने का बखेडा खडा हो जायगा इससे महासभा को समाप्त कर देना ही श्रेयस्कर है।

तब बाबूजी ने महासभा को फिर से पुनरुज्जीवित करने का निश्चय किया, जिसका प० चुन्नीलालजी ने अनुमोदन किया। और इटावा जाकर मुशी चम्पतराय जी की भी अनुमति ली, अन्ततोगत्वा मथुराके मेलेमे महासभा को पुनरुज्जीवित किया गया। बाबू चम्पतरायजी उसके महामत्री बनाये गये। सभा की ओरसे एक साप्ताहिक पत्र भी निकालने का निश्चय किया गया और उसका नाम 'जैन गजट' रखा गया और उसके सबसे पहले सम्पादक बाबू सूरजभान जी बनाए गए। यह बात जैन गजट के प्रथम सम्पादक, यह घटना सभवतः सन् १९०१-२ की है।

बाबूजी ने 'जैन गजट' का सम्पादन कार्य डेढ वर्ष के लगभग किया। उसके अनेक ग्राहक बनाये जिनकी सख्या ५०० के हो गई थी। बाबूजी ने परिश्रम करके उसका सचालन किया, उसका प्रचार खूब किया। वकालत करते हुए निस्वार्थ भाव से सेवा करना बहुत ही कठिन कार्य है। उस समय उनकी वकालत अच्छी चल रही थी। यद्यपि वकालत की ओर उनका आन्तरिक झुकाव न था, फिर भी उन्हें करना ही पड़ता था। उसे करते हुए भी सामाजिक एव धार्मिक कार्यों मे कमी नहीं आने देते थे। जैन गजट के जीवन की सबसे उल्लेखनीय घटना यह थी कि बाबूजी ने उसे दशलक्षण पर्व मे दस दिन के लिए दैनिक बना दिया था और ऐसा प्रबन्ध किया था कि प्रत्येक ग्राहक को वह दस दिनो तक पढने को मिलता था।

इधर जैन ग्रन्थों की छपाई के सामाजिक विवाद के कारण उत्तरोत्तर विरोध बढता गया, तब मुशी चम्पतरायजी की सम्मति मे बाबूजी ने जैनगजट की सम्पादकी से स्तीफा दे दिया। परन्तु 'जैन हितोपदेशक' को बराबर चालू रखा। सहारनपुर के लाला उग्रसैन जी बाबूजी को बहुत चाहते थे, उन्होने बाबूजी को वहाँ जैन सभाका मत्री बनाया था। महासभा के मेले पर जब छापे का सगठित विरोध हुआ तब उग्रसैन जी बोले कि सहारनपुर जिले का जुम्मा मै लेता हूँ कि शास्त्र जी नही छप पायेगे। तब बाबू

जीने गरज कर कहा कि शास्त्रों की छपाई का काम तो सबसे पहले सहारनपुर जिले मे ही होगा, देखे कौन रोकता है।

अनंतर बाबूजी ने नकुड़ के रईस ला० निहालचन्दजी की सम्मति से जैन ग्रन्थो के छापने और उनके प्रचार के लिए एक संस्था स्थापित की और लगभग एक हजार रुपया इकट्ठा कर ग्रन्थ छापने का कार्य शुरू भी कर दिया। पहले शायद रत्नकरन्ड श्रावकाचार छपा था। बाबू ज्ञानचन्दजी इसमे शामिल थे। उन्होने लाहौरसे कई ग्रन्थ छपवाये थे। इस तरह छापे का जितना विरोध हुआ उसके बावजूद ग्रन्थों का प्रकाशन बराबर बढता ही चला गया। यद्यपि छपानेवालो से सहानुभूति रखनेवालो का भी समाज ने बहिष्कार किया किन्तु उन्हे सफलता नही मिली। जैन हितोपदेशक पत्र भी बन्द हो गया। उसके बाद हिन्दी मे 'ज्ञान प्रकाशक नामका पत्र निकाला।

कुछ वर्षो के बाद सन् १९०७ मे महासभा का जलसा कलकत्ता मे हुआ और उसमे बाबूजी शामिल हुए। उन दिनो जैन गजट की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। उसके लिए योग्य सम्पादक की आवश्यकता थी। तब बाबूजी ने अपने सहयोगी पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार के सुपुर्द कराया, और जैन गजट का सम्पादन प्रकाशन देवबन्द (सहारनपुर) से होने लगा। देवबन्द मे आकर जैन गजट खूब चमका और उसके १५०० ग्राहक हो गये। प० जुगलकिशोर जी ने उसका अच्छा सम्पादन ३ वर्ष तक किया। उसमे बाबूजी का पूरा-पूरा सहयोग रहा। उन्ही दिनो बाबूजी ने आर्य समाज के प्रतिवाद मे 'आर्यमत लीला' ऋगवेद के बनानेवाले ऋषि आदि महत्त्वपूर्ण लेख लिखे।

१२ फरवरी सन् १९१४ को बाबूजी ने अपनी चलती हुई वकालत छोड़ दी। और समाज-सेवा मे अपना जीवन अर्पण कर दिया। बाबूजी वडे मिलनसार और प्रगतिशील विचारवाले विद्वान थे। समाज-सेवा मे वे अग्रणी रहे, किन्तु प्रगतिशील विचारो के कारण लोकप्रिय न बन सके। समाज-सेवा के बदले मे उन्होने कभी पुरस्कार नहीं चाहा, और न नामवरी की इच्छा ही की। उन्होंने यशोलिप्साकी कभी चाह नहीं की, पर सेवा-कार्य से मुख मोड़ना भी नहीं जानते थे। वे कहा करते थे कि 'नेकी करो और कुएं में डाल'। सेवा से वे घबराते भी न थे, मुख्तार सा० की प्रेरणा से वीर-सेवा-मन्दिर सरसावा मे कितने ही महीने रहे, गोत्र कर्माश्रित ऊँचता-नीचता पर लेख भी लिखे, भाग्य और पुरुषार्थ नामका लेख लिखा। अनेकान्त में उनके कई लेख प्रकाशित हुए, उनसे मुझे लेख लिखने की प्रेरणा मिली। शोधकार्य में भी उनकी प्रेरणा रही। उन्होंने मुझे अपनी जीवनी के कुछ नोट्स कराये थे, पर उनमे से कुछ नष्ट हो गए, जितने मिले उनके आधार पर ही यह लेख लिखा है।

बाबूजी ने कई पुस्तके लिखी है, कई ग्रन्थोके अनुवाद हिन्दी मे किये है, उनमे द्रव्यसग्रह की टीका अच्छी है। जीवन-निर्वाह, जननी और शिशु, विधवा कर्त्तव्य, ब्याही बहू, असली नकली धर्मात्मा, तारादेवी, रामदुलारी, सती सतवती, गृहदेवी, मगलादेवी, मनमोहिनी उपन्यास, भाग्य और पुरुषार्थ, आर्यमत लीला, ऋग्वेद के बनानेवाले ऋषि, आदिपुराण पद्मपुराण-समीक्षा, द्रव्यसग्रह, षट्पाहुड़, परमात्मप्रकाश, पुरुषार्थ सिद्धचुपाय और वसुनन्दि श्रावकाचार। ज्ञान सूर्योदय दो भाग, जैनधर्मप्रवेशिका, श्राविका धर्मदर्पण, युवकों की दुर्दशा आदि।

इन पुस्तको मेसे कुछ मैने पढ़ी है। भाषा अच्छी और सरल है, उसमे दुरूहता नही है। कुछ पुस्तकोका प्रकाशन पं० नाथूरामजी प्रेमी बम्बई ने किया है। उनके अनेक लेख भी जैनहितैषी में प्रकाशित हुए है, जिनका सम्पादन प्रेमीजी ने किया था। उनके समीक्षा-लेखो पर विवाद चला, प० लालारामजी शास्त्री ने उनका उत्तर लिखा, तो भी बाबूजी ने उनका कोई प्रत्युत्तर नही लिखा, उनकी आलोचना की ओर मैंने ध्यान भी दिलाया, तब वे कहने लगे कि विवाद मे पड़ना निरर्थक है, मैंने अपने विचार लिखे है, जनता को अच्छे लगे मान लेगी, न लगें नही मानेगी, परन्तु सिद्धान्त की बात एक है कि अपनी बात कह देना और चुप हो जाना। कालान्तर मे उसका प्रभाव पढ़े बिना नही रहता।

आज बाबूजी यहाँ नही है, वे परलोकवासी हो चुके है, किन्तु उनका साहित्य ही उनकी सेवा का मूल्याकन कराता रहेगा।

(क्रमशः)

# साहित्य-समीक्षा

**१ बाबू छोटेलाल जी जैन स्मृति ग्रन्थ**—प्रकाशक बाबू छोटेलाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ समिति कलकत्ता। आकार २०×३० अठपेजी पृष्ठ संख्या ७००, सजिल्द प्रति का मूल्य २०) रुपया।

इस ग्रन्थ की सामग्री का सकलन और अभिनन्दन समिति का निर्माण बाबू छोटेलालजी के जीवन काल मे ही हो गया था किन्तु उक्त बाबू साहब का स्वर्गवास हो जाने से अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन स्मृति ग्रन्थ के रूप मे करना पड़ा है। फिर भी यह कम सन्तोष की बात नही है कि उसका प्रकाशन इतने सुन्दर रूप मे हुआ है। जब जैन समाज में जीवित समाज सेवियों को कोई नही पूछता, तब मरने पर तो कहना ही क्या है ?

ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है हिन्दी विभाग और अग्रेजी विभाग। हिन्दी विभाग ४०० पृष्ठों में, और अग्रेजी विभाग ३०० पृष्ठों मे है। दोनों ही विभागो में लेखों का चयन बहुत सुन्दर हुआ है। भर्ती का कोई भी लेख नही है, हिन्दी विभाग तीन खण्डों मे विभाजित है। प्रथम खण्ड में सस्मरण और श्रद्धांजलियाँ है दूसरे खण्ड मे इतिहास' पुरातत्त्व-विषयक २६ लेख है, तीसरे खण्ड मे साहित्य धर्म-दर्शन विषयक १८ लेख है। और अग्रेजी विभाग में ४३ लेख है। जो जैन विषयों से सम्बद्ध है। हिन्दी अग्रेजी मे सभी लेख जैन जैनेतर विशिष्ट विद्वानो द्वारा लिखे गए है। चूंकि बाबू छोटेलाल जैन पुरातत्त्व के प्रेमी विद्वान थे, अच्छे लेखक और विचारक थे उनकी भारत के पुरातत्वज्ञ विद्वानो से बड़ी मित्रता थी। अग्रेजी में १०-११ लेख इस विषय पर है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है, और वे पुरातत्त्व के विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा लिखे गए है। जिनमे पद्म विभूषित डा० टी० एन० रामचन्द्रन भी है। ग्रन्थ उपयोगी पठनीय व संग्रहणीय है। इस ग्रन्थका कुल व्यय भार बाबू जुगमन्दिरदास जी कलकत्ता ने वहन किया है। जो बाबू छोटेलाल जी के प्रिय मित्र थे। उन्होने अपने साधर्मी कर्तव्यका पूर्ण रूप से पालन किया है, इसके लिये वे धन्यवाद के पात्र है। इस ग्रन्थ के सम्पादनादि का सब कार्य जैन समाज के प्रसिद्ध विद्वान पं० चैनसुखदास जी जयपुर और उनके सहयोगियों ने किया है। इसके लिये वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं! ग्रन्थ मगाकर प्रत्येक लायब्रेरी पुस्तकालय में रखना आवश्यक है।

**२ युगवीर निबन्धावली द्वितीयखण्ड**—लेखक जुगलकिशोर मुख्तार, प्रकाशक प० दरबारीलाल कोठिया मंत्री वीर सेवामन्दिर ट्रस्ट २१ दरियागज, दिल्ली। पृष्ठ सख्या ६००, मूल्य आठ रुपया।

प्रस्तुत ग्रथ, जैन समाज के प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार के द्वारा समय समय पर लिखे गये लेखों का सकलन मात्र है, जिससे ग्रथ का नाम 'युगवीर निबन्धावली' नाम सार्थक है। ग्रन्थ दो खण्डो मे विभाजित है, पहले खण्ड मे ५१ मौलिक निबन्ध दिये हुए है। और दूसरे खण्ड मे ६५ निबन्ध आत्मसात हुए है। जो उत्तरात्मक, समालोचनात्मक, स्मृति परिचयात्मक, विनोद शिक्षात्मक और प्रकीर्णक रूप में विभक्त हैं। ये सब निबन्ध संवत् १६०७ से १६६६ तक के है जो जैन हितैषी, जैनगजट, जैनजगत और अनेकान्त आदि पत्रो मे प्रकाशित हो चुके हैं। मुख्तार सा० वयोवृद्ध विद्वान है उनकी लेखनी से प्राय: सभी जन परिचित है। वे जो लिखते है वह सब सयुक्तिक और सप्रमाण होता है। उन्होंने जैन साहित्य और जैन समाज की बड़ी सेवा की है, वे ६२ वर्ष की इस वृद्धावस्था में भी लिख रहे हैं। जैन समाज उनकी इस अपूर्व देन का गौरव करे। उनकी सेवाओ का मूल्य आंके। और उनका सार्वजनिक अभिनन्दन करे। ग्रन्थ के सभी निबन्ध महत्त्वपूर्ण है। इसका प्राक्कथन डा० ज्योतिप्रसाद जी लखनऊ ने लिखा है। प्रत्येक पुस्तकालय और लायब्रेरियो मे इसका सग्रह होना चाहिए।

**३ वर्णी अध्यात्म पत्रावली**—सयोजक श्री वर्णी स्नातक परिषद् सतना, प्रकाशक गणेशवर्णी ग्रन्थमाला वाराणसी। मूल्य एक रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक प्रात. स्मरणीय पूज्य आध्यात्मिक सत गणेश प्रसाद वर्णी द्वारा समय समय पर विभिन्न व्यक्तियो को लिखे गये उन आध्यात्मिक पत्रो का सकलन मात्र है, जो आध्यात्मिक, उपदेशिक और सम्बोधक है। वर्णी जी समयसार के रसिया थे। उनका प्रत्येक पत्र अध्यात्म रस मे सराबोर है. उन्हें पढते ही आत्मा पर जो प्रभाव अकित होता है वह शब्दो द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। वर्णी स्नातक परिषद् ने इस पुस्तक को बहुत ही सुन्दर रूप मे प्रस्तुत किया है। छपाई सफाई आकर्षक है। मूल्य भी अधिक नहीं है। अध्यात्म के जिज्ञासुओ को इसे मगाकर अवश्य पढना चाहिए।

४ **श्री भंवरीलाल वाकलीवाल स्मारिका**—सम्पादक प० इन्द्रलाल शास्त्री, प० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, डा० लालबहादुर शास्त्री। प्रकाशिका—भा० शातिवीर दि० जैन सिद्धान्तसरक्षिणी सभा के अन्तर्गत भंवरीलाल वाकलीवाल स्मारक समिति जयपुर। पृष्ठ सख्या ४४०। मूल्य १५ रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थ राजस्थान के प्रसिद्ध सेठ भवरीलाल जी वाकलीवाल की स्मृति मे प्रकाशित किया गया है। जिसमे उनका जीवन परिचय श्रद्धाजलिया, सस्मरण और विशिष्ट लेख है। ग्रन्थ उनके जीवन से सम्बन्धित अनेक चित्र भी दिये गये है, जिससे उनके कार्यो का और कुटुम्ब का अच्छा परिचय मिल जाता है श्रद्धाजलिया और सस्मरणो मे सेठ जी के प्रति श्रद्धापूर्ण उद्गार प्रकट किये गये है। इससे स्वर्गीय आत्मा का विस्तृत जीवन परिचय मिल जाता है। विशिष्ट लेखो का चयन सुन्दर बन पडा है। अनेक लेख ऐतिहासिक शोध-खोज को लिये हुए है। ग्रन्थ की छपाई सफाई सुन्दर है प० इन्द्रलाल जी शास्त्री को इसमे विशेष श्रम करना पड़ा है, जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र है। **—परमानन्द शास्त्री**

—:o:—

(पृ० ४२ का शेषांश)

राशिमडल और ज्ञान कोई ग्रन्थरूप में तो गौतम स्वामी के नाम से ज्ञात नही है। पता नही मेघविजय उपाध्याय ने यह कहाँ से लिया है।

मेघमहोदय मे उपरोक्त रचनाओ के अतिरिक्त कई जैन आगमो व ग्रन्थो का उद्धरण है। जैनेतर ग्रन्थों मे जगनमोहन, गिरधरानन्द, शर्माविनोद, वारासंहिता, नरपतिजयचर्या, अगस्ति, भृगुसुत, रूद्रीयमेघमाला, रत्नमाला, सारसग्रह, कश्यप, बालबोध, गार्गीयसहिता आदि ग्रन्थो के उद्धरण दिये है उनमे से कुछ ग्रन्थ सम्भव है अप्रसिद्ध हों। कही कही पर ग्रन्थ के नाम निर्देश बिना उद्धरण दे दिये है। कही केवल मेघमाला या मेघमालाकार लिख दिया है। पता नही वहाँ किसके रचित कौन सी मेघमाला की सूचना है। कई जगह अर्घकाण्ड के उद्धरण है। पर अर्घकाण्ड कई व्यक्तियो के मिलते है। इसलिए यहाँ ग्रन्थकार को किसके रचित अर्घकाण्ड की सूचना अभीष्ट है, कहा नहीं जा सकता। पृष्ठ ४२० मे इत्यगर्त सहिताया रोहिणी सकटयोग. लिखा है यह सहिता कौन-सी है? पृष्ठ १५४ में जीर्णग्रन्थ के पाठान्तर दिये है। पर ग्रन्थ और कर्त्ता का नाम नही दिया।

मेघमहोदय मे उल्लिखित पर अनुपलब्ध ग्रन्थो मे २ सबसे अधिक उल्लेखनीय है। हीरविजय सूरी की हीरमेघमाला और दिगम्बर केवलकीर्ति की मेघमाला। इसी तरह भद्रबाहु सहिता की प्राकृत गाथाये उद्धृत है तो प्राकृत भाषा की उक्त सहिता कही प्राप्त है? दुर्गदेव के षष्टि संवत्सर के नाम से जिन पद्यों को उद्धृत किया है वे पद्य दुर्गदेव के रचित अर्घकाण्ड में मिलते है, या इस नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ है? इत्यादि बातों पर विशेषज्ञ और शोध प्रेमी प्रकाश डाले।

—:o:—

# पंडित अजितकुमार जी का आकस्मिक वियोग

पं० अजितकुमार जी शास्त्री पद्मावती पुरवाल जाति के उच्चकोटि के समाज-सेवी विद्वान थे। उनका जन्म चावली जिला आगरा में हुआ था। अध्ययनके बाद वे मुलतान चले गये थे। वहां उनका अकलंक प्रेस था। मुलतान जैन समाज में उनका अच्छा सम्मान था। वे हिन्दुस्थान पाकिस्तान बटवारे के समय अपना प्रेस लेकर पहले सहारनपुर आये थे और बाद में देहली। दिल्ली में उनका अभय प्रेस चलता है। शास्त्रीजी बड़े परिश्रमी सुयोग्य लेखक और विचारक थे। आपने आर्य समाजियों के खंडन में पुस्तकें लिखी थी, तथा श्वेताम्बर मत समीक्षा, दैनिक जैनधर्म-चर्या, विधिका विधान, तात्त्विक विचार, जैनधर्म परिचय आदि अनेक पुस्तकें भी लिखी है। जैनबधु और जैनदर्शन पत्रों का प्रकाशन भी किया किया। भा० दिगम्बर जैनसंघ के वे सदस्य रहे। आर्य समाज से होने वाले शास्त्रार्थों में बराबर योग देते रहे। वर्षो मे वे जैन-गजट के सम्पादक थे। वे प्राचीन पीढ़ी के विद्वान थे। उनकी लेखनी सरल और भाषा मुहावरेदार थी। वे वीरसेवामन्दिर की कार्यकारिणी के भी सम्मानित सदस्य थे। उनके अकस्मात् निधन से जो भारी क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना सभव नहीं है। आप अपने पीछे पत्नी, एक पुत्री और एक पुत्र अविवाहित छोड़ गए है। उनके वियोग में दि० जैन लाल मन्दिर में अनेक संस्थाओं—भा० दि० जैन महासभा, दि० जैन परिषद्, वीर सेवामन्दिर, जैनमित्र मण्डल, भारत-जैन महामण्डल, जैन सगठन सभा, शास्त्री परिषद्, मुल्तान जैन समाज, पद्मावती पुरवाल जैनपचायत और पार्श्वनाथ जैन युवक मण्डल आदि—की ओर से आयोजित सभा में जो नवभारत टाइम्स के प्रधान सम्पादक अक्षय कुमारजी जैन की अध्यक्षता में हुई थी, उनके जीवन परिचय और समाज-सेवा का उल्लेख करते हुए उक्त संस्था सचालको ने अपनी भावभरी श्रद्धाजलि अर्पित की थी, अनेक विद्वानों के साथ वीर सेवामन्दिर के संयुक्त मंत्री बाबू प्रेमचन्द जैन कश्मीर वालो ने भी वीर सेवामन्दिर की ओर से अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित की।
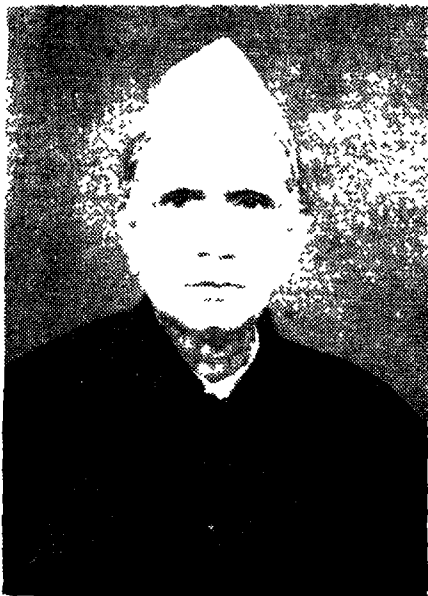
पं० अजितकुमार शास्त्री

हम अनेकान्त परिवार की ओर से दिवगत आत्मा के लिए शान्ति की कामना करते हुए शोक सतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते है।

## वीरशासन जयन्ती—

इस वर्ष वीरशासन जयन्ती १० जुलाई बुधवार के दिन सन् १९६८ को अवतरित हुई है। अन्य वर्षों की भांति इस वर्ष भी वीरशासन जयन्ती का महोत्सव १० जुलाई को वीर सेवामन्दिर २१ दरियागंजमें प्रात काल मनाया जावेगा। सर्व महानुभाव पधार कर धर्मलाभ ले।

—सं० प्रेमचन्द जैन

## वीर-सेवा-मन्दिर के उपयोगी प्रकाशन

R. N. 10591/62

(१) पुरातन-जैनवाक्य-सूची—प्राकृत के प्राचीन ४६ मूल-ग्रन्थों की पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादिग्रन्थो मे उद्धृत दूसरे पद्यों की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। सपादक मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी की गवेषणापूर्ण महत्व की ७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलकृत, डा० कालीदास नाग, एम. ए. डी. लिट् के प्राक्कथन (Foreword) और डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट् की भूमिका (Introduction) से भूषित है, शोध-खोज के विद्वानोके लिए अतीव उपयोगी, बड़ा साइज, सजिल्द १५-००

(२) आप्त परीक्षा—श्री विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज्ञ सटीक अपूर्व कृति, आप्तो की परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयक सुन्दर, विवेचन को लिए हुए, न्यायाचार्य पं दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद से युक्त, सजिल्द। ८-००

(३) स्वयम्भूस्तोत्र—समन्तभद्रभारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोरजी के हिन्दी अनुवाद, तथा महत्व की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना से सुशोभित। ... ... २-००

(४) स्तुतिविद्या—स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापो के जीतने की कला, सटीक, सानुवाद और श्री जुगल किशोर मुख्तार की महत्व की प्रस्तावनादि से अलकृत सुन्दर जिल्द-सहित। १-५०

(५) अध्यात्मकमलमार्तण्ड—पंचाध्यायीकार कवि राजमल की सुन्दर आध्यात्मिकरचना, हिन्दी-अनुवाद-सहित १-५०

(६) युक्त्यनुशासन—तत्वज्ञान से परिपूर्ण समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नही हुआ था। मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादि से अलकृत, सजिल्द। ... ·७५

(७) श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र—आचार्य विद्यानन्द रचित, महत्व की स्तुति, हिन्दी अनुवादादि सहित। ·७५

(८) शासनचतुस्त्रिंशिका—(तीर्थपरिचय) मुनि मदनकीर्ति की १३वी शताब्दी की रचना, हिन्दी-अनुवाद सहित ·७५

(९) समीचीन धर्मशास्त्र—स्वामी समन्तभद्र का गृहस्थाचार-विषयक अत्युत्तम प्राचीन ग्रन्थ, मुख्तार श्रीजुगलकिशोर जी के विवेचनात्मक हिन्दी भाष्य और गवेषणात्मक प्रस्तावना से युक्त, सजिल्द। ··· ३-००

(१०) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० १ संस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का मगलाचरण सहित अपूर्व संग्रह, उपयोगी ११ परिशिष्टों और पं० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य परिचयात्मक प्रस्तावना से अलकृत, सजिल्द। ··· ··· ४-००

(११) समाधितन्त्र और इष्टोपदेश—अध्यात्मकृति परमानन्द शास्त्री की हिन्दी टीका सहित ४-००

(१२) अनित्यभावना—आ० पद्मनन्दीकी महत्वकी रचना, मुख्तार श्री के हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ सहित ·२५

(१३) तत्वार्थसूत्र—(प्रभाचन्द्रीय)—मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या से युक्त। ... ·२५

(१४) श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैनतीर्थ। १-२५

(१५) महावीर का सर्वोदय तीर्थ ·१६ पैसे, (५) समन्तभद्र विचार-दीपिका ·१६ पैसे, (६) महावीर पूजा ·२५

(१६) बाहुबली पूजा—जुगलकिशोर मुख्तार कृत (समाप्त) ·२५

(१७) अध्यात्म रहस्य—प० आशाधर की सुन्दर कृति मुख्तार जी के हिन्दी अनुवाद सहित। १-००

(१८) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति सग्रह भा० २ अपभ्रंश के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थोकी प्रशस्तियो का महत्वपूर्ण सग्रह। ५५ ग्रन्थकारो के ऐतिहासिक ग्रथ-परिचय और परिशिष्टो सहित। स. प० परमान्द शास्त्री। सजिल्द १२-००

(१९) जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ संख्या ७४० सजिल्द (वीर-शासन-सघ प्रकाशन ५-००

(२०) कसायपाहुड सुत्त—मूलग्रन्थ की रचना आज से दो हजार वर्ष पूर्व श्री गुणधराचार्य ने की, जिस पर श्री यतिवृषभाचार्य ने पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र लिखे। सम्पादक पं हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री, उपयोगी परिशिष्टों और हिन्दी अनुवाद के साथ बड़े साइज के १००० से भी अधिक पृष्ठो मे। पुष्ट कागज और कपड़े की पक्की जिल्द। ··· ··· २०-००

(२१) Reality आ० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अंग्रेजी में अनुवाद बड़े आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६-००

---

प्रकाशक—प्रेमचन्द जैन, वीरसेवा मन्दिर के लिए, रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली से मुद्रित।

द्व मासिक जून १९६८

# अनेकान्त

कल्पवृक्ष पर कमलासीन तीर्थंकर
राजघाट, बारारणसी

समन्तभद्राश्रम (वीर-सेवा-मन्दिर) का मुख पत्र

## विषय-सूची





**अनेकान्त में प्रकाशित विचारों के लिए सम्पादक मण्डल उत्तरदायी नहीं हैं। —व्यवस्थापक अनेकान्त**

## वीर-सेवा मन्दिर को सहायता

२१) ला० केशोचन्द जी जैन डिप्टीगज ने ला० पन्नालाल जी के स्वर्गवास के समय निकाले हुए दान मे से सधन्यवाद प्राप्त हुए।

व्यवस्थापक **'अनेकान्त'**

## अनेकान्त को सहायता

११) ला० पन्नालाल जी के स्वर्गवास के समय निकाले हुए दान मे से ग्यारह रुपया अनेकान्त को फर्म ला० घमण्डीलाल नन्हेमल जैन कसेरे सदर बाजार से सधन्यवाद प्राप्त हुए।

व्यवस्थाप **'अनेकान्त'**

**२१ दरियागज, दिल्ली**

## न्याय-दीपिका

आचार्य अभिनव धर्मभूषण की न्याय-दीपिका का दूसरा सस्करण तय्यार हो गया है। इस ग्रन्थ के सपादक और अनुवादक पं० दरबारीलाल जी कोठिया एम. ए. न्यायाचार्य वाराणसी है। प्राक्कथन, प्रस्तावना और परिशिष्टादि से अलकृत मूल्य सजिल्द प्रतिका ७) रुपया। ग्रन्थ पौने मूल्य मे दिया जाएगा। और विद्यार्थियों को विशेष रूप से ५) रुपये में दिया जाएगा। मगाने की जल्दी करे। डाक खर्च अलग होगा।

व्यवस्थापक :

**वीर सेवामन्दिर**

**२१, दरियागज, दिल्ली।**

**अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपया।**

**एक किरण का मूल्य १ रुपया २५ पं०**

ओम् अर्हम्

# अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्॥


वर्ष २१ किरण २ | वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६ | जून
वीर निर्वाण संवत् २४९४, वि० सं० २०२५ | सन् १९६८


## चिदात्म वन्दना

चिदानन्दैक सद्भावं परमात्मानमव्ययम्।
प्रणमामि सदा शान्तं शान्तये सर्वकर्मणाम्॥१

खादि पञ्चक निर्मुक्तं कर्माष्टकविवर्जितम्।
चिदात्मकं परं ज्योतिर्वन्दे देवेन्द्रपूजितम्॥२

यदव्यक्तमबोधानां व्यक्तं सद्बोध चक्षुषाम्।
सारं यत्सर्ववस्तूनां नमस्तस्मै चिदात्मने॥३

—मुनि श्री पद्मनन्दि

**अर्थ**—जिस परमात्मा के चेतन स्वरूप अनुपम आनन्द का सद्भाव है तथा जो अविनश्वर एवं शान्त है उसके लिए मैं (पद्मनन्दि मुनि) अपने समस्तकर्मों को शान्त करने के लिए सदा नमस्कार करता हूं॥१॥ जो आकाश आदि पांच (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी) द्रव्यों से अर्थात् शरीर से तथा ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से भी रहित हो चुकी है और देवों के इन्द्रों से पूजित है ऐसी उस चैतन्यरूप उत्कृष्ट ज्योति को मैं नमस्कार करता हूँ॥२॥ जो चेतन आत्मा अज्ञानी प्राणियों के लिए अस्पष्ट तथा सम्यग्ज्ञानियों के लिए स्पष्ट है और समस्त वस्तुओं में श्रेष्ठ है उस चेतन आत्मा के लिए नमस्कार हो॥३॥

—:o:—

# व्याप्ति अथवा अविनाभाव के मूल स्थान की खोज

**श्री दरबारीलाल कोठिया**

अनुमान का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और अनिवार्य अङ्ग व्याप्ति है। इसके होने पर ही साधन साध्य का गमक होता है, उसके अभावमें नही। अतएव इसका दूसरा नाम अविनाभाव भी है।

देखना है कि इन दोनो शब्दो का प्रयोग कबसे आरम्भ हुआ है। अक्षपादके[1] न्यायसूत्र और वात्स्यायनके[2] न्यायभाष्यमे न व्याप्ति शब्द उपलब्ध होता है और न अविनाभाव। न्यायभाष्यमें[3] इतना मिलता है कि लिङ्गीमे सम्बन्ध होता है अथवा वे सम्बद्ध होते है। पर वह सम्बद्ध व्याप्ति अथवा अविनाभाव है, इसका वहाँ कोई निर्देश प्राप्त नही होता। गौतमके हेतु लक्षण-प्रदर्शक सूत्रोंसे[4] भी केवल यही ज्ञात होता है कि हेतु वह है जो उदाहरणके साधर्म्य अथवा वैधर्म्यसे साध्यका साधन करे। तात्पर्य यह कि हेतु को पक्ष मे रहने के अतिरिक्त सपक्षमे विद्यमान और विपक्षसे व्यावृत्त होना चाहिए, इतना ही अर्थ हेतु लक्षणसूत्रोंसे ध्वनित होता है, हेतु को व्याप्त (व्याप्ति विशिष्ट या अविनाभावी) भी होना चाहिए, इसका उनसे कोई सकेत नही मिलता। उद्योतकरके[5] न्यायवार्त्तिक मे अविनाभाव और व्याप्ति दोनो शब्द प्राप्त होते है। पर उन्हे उद्योतकरने पर मत के रूप मे प्रस्तुत किया है तथा उनकी मीमासा भी की है। इससे प्रतीत होता है कि न्यायवार्त्तिककारको भी न्यायसूत्रकार और न्यायभाष्यकार की तरह अविनाभाव और व्याप्ति दोनो अमान्य है। उल्लेख्य है कि उद्योतकर[6]-अविनाभाव और व्याप्ति की समीक्षा कर तो गये, पर स्वकीय सिद्धान्त की सिद्धि मे उनका उपयोग उन्होने असन्दिग्धरूपमे किया है। उनके परवर्ती वाचस्पति मिश्रने[7] अविनाभावको हेतुके पाँच रूपोंमे समाप्त कहकर उसके द्वारा ही समस्त हेतुरूपोका सग्रह किया है। पर वे भी अपने कथनको परम्परा-विरोधी देखकर अविनाभावका परित्याग करके उद्योतकरके अभिप्रायानुसार पक्ष धर्मत्वादि पाँच हेतु रूपोको ही महत्व देते है, अविनाभाव को नही। जयन्तभट्टने[8] अविनाभाव को स्वीकार करते हुए भी उसे धर्मत्वादि पाँच रूपोमे समाप्त बतलाया है। और उसे व्याप्ति, नियम तथा प्रतिबन्ध कहा है।

इस प्रकार वाचस्पति और जयन्तभट्ट के द्वारा जब स्पष्टतया अविनाभाव और व्याप्तिका प्रवेश न्यायपरम्परा में हो गया तो उत्तरवर्ती न्यायग्रथकारोंने उन्हे अपना लिया और उनकी व्याख्याएँ आरम्भ कर दी। यही कारण है कि बौद्धतार्किको द्वारा मुख्यतया प्रयुक्त अनन्तरीयक (या नान्तरीयक) तथा प्रतिबन्ध और जैन तर्कग्रथकारो के द्वारा प्रधानतया प्रयोगमे आनेवाले अविनाभाव एव

---

१ न्यायसू० १ । १ । ५, ३४ ३५ ।

२. न्यायभा० १ । १ । ५, ३४, ३५ ।

३. लिगलिगिनो. सम्बन्धदर्शन लिगदर्शन चाभिसम्बध्यते लिगलिगिनो सम्बद्धयोर्दर्शनेनलिंगस्मृतिरभिसम्बध्यते। —न्यायभा० १ । १ । ५ ।

४. न्या० सू० १ । १ ३४, ३५ ।

५. अविनाभावेन प्रतिपादयतीति चेत्···तन्न··· । —न्यायवा० १।१।५, पृ० ५० तथा १।१।५, पृ० ५५, ५६ ।

६. न्यायवा० १।१।५; पृ० ४७, ४६ ।

७. यद्यप्यविनाभावः पचसु चतुर्षु वा रूपेषु लिंगस्य समाप्यते इत्यविनाभावेनैव सर्वाणि लिगरूपाणि सगृह्यन्ते, तथापीह प्रसिद्धसच्छब्दाभ्यां द्वयोः सग्रहे गोवलीवर्दन्यायेन तत्परित्यज्य विपक्षव्यतिरेकासत्प्रतिपक्षत्वाबाधित विषयत्वानि संगृह्णाति । —न्यायवा० तात्प० १।१।५, पृ. १७८ ।

८. एतेषु पचलक्षणेषु अविनाभावः समाप्यते । —न्यायकलिका पृ० २ ।

व्याप्ति जैसे शब्द उद्योतकरके बाद न्यायदर्शनमे समाविष्ट हो गये व उन्हें एक-दूसरे का पर्याय माना जाने लगा। जयन्तभट्टने[1] अविनाभाव का स्पष्टीकरण करनेके लिए व्याप्ति नियम प्रतिबन्ध साध्याविनाभावित्व इन सबको उसीका पर्याय बतलाया है। वाचस्पति[2] कहते है कि लिग का कोई भी सम्बन्ध हो उसे स्वाभाविक एव नियत होना चाहिए और स्वाभाविकका अर्थ वे उपाधिरहित बतलाते है। इस प्रकार का लिंग ( साधन ) ही गमक होता है और दूसरा सम्बन्धी ( लिंगी ) गम्य। तात्पर्य यह कि उनका अविनाभाव या व्याप्ति शब्दो पर जोर नही है। पर उदयन,[3] केशव मिश्र,[4] अन्नम्भट्ट[5] विश्वनाथ[6] प्रभृति नैयायिकोने तो व्याप्ति शब्दको अपनाकर उसीका विशेप व्याख्यान किया है तथा पक्षधर्मताके साथ उसे अनुमानका प्रमुख अग बतलाया है। गगेश और उनके अनुवर्ती वर्द्धमान उपाध्याय, पक्षधर मिश्र, वासुदेव मिश्र, रघुनाथ शिरोमणि, मथुरानाथ तर्कवागीश, जगदीश तर्कालकार, गदाधरभट्टाचार्य आदि नव्यनैयायिकोने[7] व्याप्तिपर सर्वाधिक चिन्तन और निबन्धन किया है। गगेशने तत्वचिन्तामणिमे 'तत्र व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मता ज्ञानजन्य ज्ञानमनुमिति। तत्करणमनुमानम्'[8] शब्दो द्वारा अनुमान लक्षण प्रस्तुत करके व्याप्ति[9] और पक्षधर्मता[10] दोनो अनुमानागोका नव्यपद्धति से असाधारण परिष्कार एव विवेचन किया है।

प्रशस्तपादभाष्यमे[11] भी अविनाभावका प्रयोग उपलब्ध होता है। उसमे अविनाभूत लिगको लिगीका गमक बतलाया गया है। पर वह वहाँ त्रिलक्षण रूप ही अभिप्रेत है,[12] शुद्ध अविनाभाव नही। यही कारण है कि टिप्पणकार ने[1] अविनाभाव का अर्थ 'व्याप्ति' एव 'अव्यभिचरित सम्बन्ध' दे करके भी शकर मिश्र द्वारा किये गये अविनाभाव के खण्डनसे सहमति प्रकट की है और "वस्तुतस्त्व नौपाधिक सम्बन्ध एव व्याप्तिः[2]" इस उदयनोक्त[3] व्याप्ति लक्षण को ही मान्य किया है। इससे प्रतीत होता है कि अविनाभाव वैशेषिक दर्शन की भी स्वोपज्ञ एव मौलिक मान्यता नही है।

कुमारिलके मीमासा श्लोकवार्तिक[4] मे व्याप्ति और अविनाभाव दोनो शब्द मिलते है। पर उनके पूर्व न जैमिनिसूत्रमे वे है और न शबरस्वामी के शाबरभाष्यमे।

बौद्धतार्किक शकर स्वामीके न्यायप्रवेशमे[5] अविनाभाव और व्याप्ति दोनो शब्द नही है। पर उनके अर्थ का बोधक नान्तरीयक ( अनन्तरीयक ) शब्द पाया जाता है। धर्मकीर्ति[6] धर्मोत्तर,[7] अर्चट,[8] आदि बौद्ध नैयायिकोने इन दोनो शब्दोके अतिरिक्त उक्तार्थ प्रतिबन्ध और नान्तरीयक शब्दो का भी प्रयोग किया है। इनके पश्चात् तो उक्त शब्द बौद्ध तर्कग्रथोमे बहुलतया उपलब्ध है।

तब प्रश्न है कि इन (अविनाभाव और व्याप्ति ) का मूल स्थान क्या है ? अनुसन्धान करने पर ज्ञात होता है कि प्रशस्तपाद और कुमारिलसे पूर्ववर्ती जैन तार्किक समन्तभद्र द्वारा, जिनका समय विक्रम की २ री, ३ री शती माना जाता है[9], अविनाभाव शब्द प्रथम· प्रयुक्त हुआ है। उन्होने[10] अस्तित्व को नास्तित्व का और नास्तित्व को

१. वही पृ० २।
२. न्यायवा० ता० टी० १।१।५, पृ० १६५।
३. किरणा० पृ० २९०, २९४, २९५-३०२।
४. तर्कभा० पृ० ७२, ७८, ८२, ८३, ८८।
५. तर्कस० पृ० ५२-५७।
६. सिद्धान्तमु० का० ६८, पृ० ५१-५५।
७. इनके ग्रन्थोद्धरण विस्तारभय से यहां अप्रस्तुत है।
८. तत्त्वचि० अनु० खण्ड पृ० १३।
९. वही, पृ. ७७-८२, ८६-८९, १७१-२०८, २०९-४३२।
१०. वही, अनु०ख० पृ. ६२३-६३१।
११-१२. प्र० भा० पृ. १०३ तथा १००।

१ वही, टिप्प० पृ. १०३।
२ वही, टिप्प० पृ १०३। ३. किरणा० पृ.
४ मी० श्लो० अनु०ख० श्लो० ४,१२,४३ तथा १६१।
५. न्यायप्र० पृ० ४, ५।
६. प्रमाणवा० १।३, १।३२ तथा न्यायबि० पृ. ३०, ९३; हेतबि० पृ० ५४।
७. न्यायबि० टी० पृ. ३०।
८. हेतुबि० टी० पृ. ७, ८, १०, ११ आदि।
९ 'स्वामी समन्तभद्र' पृ १९६, श्रीजुगलकिशोर मुख्तार।
१० अस्तित्व प्रतिषेध्येना विनाभाव्येकधर्मिणा।
नास्तित्व प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणा।
—आप्तमी० का० १७, १८।

अस्तित्वका अविनाभावी बतलाया है। एक दूसरे स्थलपर भी उन्होने[१] अविनाभावको स्पष्ट स्वीकार किया है। और इस प्रकार अविनाभावका निर्देश मान्यता के रूपमें सर्व प्रथम समन्तभद्रने किया प्रतीत होता है। प्रशस्तपादकी तरह उन्होंने उसे त्रिलक्षण रूप मे स्वीकार नही किया। उनके पश्चात् तो वह जैन परम्परामे हेतुलक्षण रूप मे ही प्रतिष्ठित हो गया और जिसका निर्देश भी स्वय समन्तभद्र ने[२] 'अविरोधतः' शब्द के द्वारा किया है तथा अकलङ्क[३] और विद्यानन्द[४] जैसे उनके व्याख्याकारोंने उसका अविनाभाव ( अन्यथानुपपन्नत्व ) परक व्याख्यान भी किया है। पूज्यपादने,[५] जिनका अस्तित्व-समय ईसाकी पाँचवी शताब्दी है, अविनाभाव और व्याप्ति दोनो शब्दों का प्रयोग किया है। पात्र स्वामी,[६] सिद्धसेन,[७] कुमार-नन्दि,[८] अकलक,[९] माणिक्यनन्दि[१०] प्रभृति जैन तर्कग्रथ-कारोंने अविनाभाव, व्याप्ति और अन्यथानुपपत्ति या अन्यथानुपपन्नत्व तीनों का व्यवहार पर्याय शब्दोंके रूपमें किया है। जो ( साधन ) जिस ( साध्य ) के विना न हो या उपन्न न हो उसे अविनाभाव या अन्यथानुपपन्न कहा गया है[११]। असम्भव नही कि शावरभाष्यगत[१२] अर्थापत्युत्थापक 'अन्यथानुपपद्यमान' और प्रभाकर की बृहती में[१३] उसके लिए प्रयुक्त 'अन्यथानुपपत्ति' शब्द अर्थापत्ति और अनुमानको अभिन्न मानने वाले जैन तार्किकोसे अपनाये गये हो, क्योकि ये शब्द जैन न्यायग्रथोमे ही अधिक प्रचलित एव प्रयुक्त पाये जाते हैं और उद्योतकर,[१४] शान्तरक्षित[१५] आदि प्राचीन तार्किकोने उनका समालोचन एवं उद्धरण जैन मतके रूपमे ही किया है, मीमासक आदि के रूपमे नही। अत उनका उद्गम जैन तर्कग्रथोसे ही प्रतीत होता है।

---

१. धर्मधर्म्यविनाभावः सिद्धयत्यन्योन्यवीक्षया।
—वही, का० ७५।

२. सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधत.।
—आप्तमी० का० १०६।

३. अष्टश० आप्तमी० १०६।

४. अष्टश० आप्तमी० १०६।

५. सर्वार्थसि० ५।१८, १०।४।

६. तत्त्वस० पृ. ४०६ पर उद्धृत 'अन्यथानुपपन्नत्व···' आदि कारिका।

७. न्यायवा० का० १३, १८, २०, २२।

८. प्रमाणप० पृ. ७२ पर उद्धृत 'अन्यथानुपपत्त्येक लक्षण···' आदि का०।

९. न्यायवि० २।१८७, ३२३, ३२७, ३२९।

१०. परीक्षामु० ३।११, १५, १६, ६४, ६५, ६६।

११. साधन प्रकृताभावेऽनुपपन्न···।
—न्यायवि० २।६९ तथा प्रमाणस० का० २१।

१२ शावरभा० १।१।५, बृहती पृ. ११०।

१३ बृहती पृ ११०, १११।

१४. न्यायवा० १।१।३५, पृ. १३१ तथा १।१।५, पृ ५५।

१५. तत्त्वस० ४०५-४०८।

## आशा के दास

**आशाया ये भवेद्दासाः ते दासाः सर्वलोकस्य।**
**आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः॥**

आशा के जो दास है, वे सारे लोक के दास है। जिन्होंने अपनी आशा को दास बना लिया, उनके लिए सारा लोक दास है। हे आत्मन्! यदि तू अविनाशी सुख का पात्र बनना चाहता है तो आशा का दास मत बन। उसे विजित करना ही तेरी सफलता का मूल है। इच्छाएँ अनन्त है, उनका कही अन्त दिखाई नही देता। मानव के मानस समुद्र मे वे उद्वेलित होती रहती है। और मानव को विवेक भ्रष्ट कर अनीति और अत्याचार के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य करती है। उनके पास मे फँसा बुद्धिशाली व्यक्ति भी किं कर्त्तव्य विमूढ हो जाता है। न्याय अन्याय का उसे भान नही रहता। अत. हे मुमुक्षु, तू सावधान हो। विवेक को जागृत कर, आशा पिशाचिनी का दमन कर। ऐसा होने पर तेरी लोक मे प्रतिष्ठा तो होगी ही, किन्तु तू निश्रेयस का पात्र भी बनेगा।

*आगम ग्रन्थों के आधार पर :*

# पारस्परिक विभेद में अभेद की रेखाएं

**साध्वी कानकुमारी**

सामयिक परम्परा और विधि-विधान रूढ बनकर कितना दुष्परिणाम लाते है, इसका सजीव प्रमाण है जैन-सघो का विभक्तिकरण ।

भगवान महावीर ने विशाल सघ की सुविधा और सुव्यवस्था के लिए विभक्तिकरण की व्यवस्था दी[1]। उस समय वह व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक थी, क्योकि तब हजारो साधु-साध्विया एक ही महावीर के धर्म-सघ मे प्रव्रजित थे । वृहत्समुदाय का सुचारुरूप से सचालन करने के लिए अनेक सुयोग्य व्यक्तियो की अपेक्षा होती है । सब एक ही गण मे रहकर एक साथ योग्यता प्राप्तकर सके, कम सभव था, इसलिए भगवान महावीर ने अपने वृहत्तर धर्म-सघ को पृथक्-पृथक् गणो मे विभक्त कर दिया ।

धीरे-धीरे विभाजन का विस्तार हुआ और समय की गति के साथ-साथ वह बृहत्तर सघ अनेक इकाइयो मे बट गया, फिर भी एक शृंखला मे आवद्ध था इसलिए उस सघ के सदस्य पृथक् गणो मे विभक्त होते हुए भी एक-दूसरे से निकट थे ।

मूल आगम और उनका व्याख्या-साहित्य इस बात का प्रमाण है कि उस समय के धर्म प्रवर्तको के पारस्परिक सम्बन्धों मे कोई दुराव नहीं था । भावनाओ मे सकीर्णता और विचारो मे रूढता नही थी । इसलिए वे असाभोगिक, असाधार्मिक और भिन्न सामाचारिक सघों मे अपने शिष्यो को उपसपदा के लिए भेज देते थे ।

आवश्यक निर्युक्ति मे उपसपदा समाचारी का विश्लेषण करते हुए कुछ लिखा गया है—प्राचीनकाल मे साधुओ के अनेक गण थे । व्यवस्था की दृष्टि से एक गण का साधु दूसरे गण मे नही जा सकता था । उसके कुछ अपवाद भी थे । अपवादिक विधि के अनुसार तीन कारणो से भिन्न सामाचारिक गणो मे जाना विहित था । दूसरे गण मे जाने को उपसपदा कहा जाता था । उपसपदा के तीन प्रकार है[1]—ज्ञानार्थ उपसपदा, दर्शनार्थ उपसपदा और चारित्रार्थ उपसपदा । ज्ञानकी वर्तना (पुनरावृत्ति या गुणन ) सधान ( त्रुटित ज्ञान को पूर्ण करना ) और ग्रहण के लिए जो उपसपदा स्वीकार की जाती उसे ज्ञानार्थ उपसपदा कहा जाता था । इसी प्रकार दर्शन की वर्तना ( स्थिरीकरण ) सन्धान और दर्शन विषयक शास्त्रो के ग्रहण के लिए जो उपसपदा स्वीकार की जाती, उसे (दर्शनार्थ उपसपदा ) कहा जाता था । वैयावृत्य और तपस्या की विशिष्ट साधना के लिए जो उपसपदा स्वीकार की जाती उसे ( चारित्रार्थ उपसपदा) कहा जाता था । ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विशेष उपलब्धि के लिए दूसरे गण मे जाना विहित था ।

निशीथभाष्य मे आलोचना विषयक विवेचन प्रस्तुत करते हुए लिखा गया है कि आलोचना तीन प्रकार की होती है[2]। विहार आलोचना, उपसपदा आलोचना और अपराध आलोचना । उपसपदा के तीन प्रकार है—ज्ञान उपसपदा, दर्शन उपसपदा और चारित्रउपसपदा । उपसपदा

१ यह मान्यता श्वेताम्बर सम्प्रदाय की है । भगवान महावीर ने सघभेद की कोई व्यवस्था नही दी । सघभेद तो महावीर निर्वाण के १७० वर्ष बाद भद्रबाहु श्रुतकेवली के समय हुआ है । —सम्पादक

१. आवश्यक निर्युक्ति गाथा ६९८ :
उवसपया य तिविहा नाणे तह दसणे चरित्तेय ।
दसणनाणे तिविहा दुविहाय चरित्त अट्ठाए ॥

२. निशीथ भाष्य ६३१० . आलोयणा तिविहा विहारा-लोयणा, उवसपयालोयणा अवराहालोयणा ।

के लिए एक गण के मुनि दूसरे गण मे जाते थे और वे प्रतिच्छक कहलाते थे। वे मुनि दो प्रकार के होते थे,[1] पंजरभग्न और पजराभिमुख। यतमान मुनियो के पास जो मुनि जाता, वह पंजरभग्न कहलाता और परिभवमान यानी पार्श्वस्थों के पास से जो मुनि जाता वह पंजराभिमुख कहलाता था। पजर उस गण का नाम है जो गण आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक स्थविर और गणावच्छेदक से परिगृहीत होता है।

वृहत्कल्पसूत्र के मूल पाठ मे उपसपदा के लिए आने वाला मुनि किनकी अनुज्ञा से आए एतद् विषक परिचर्चा की गई है[2]।

प्राचीन परम्पराओ के अनुसार श्रमणसघ-व्यवस्था में सात पद होते थे—१. आचार्य, २. उपाध्याय, ३. स्थविर, ४. प्रवर्तक, ५. गणी, ६. गणधर, ७. गणावच्छेदक जो मुनि उपसपदा के लिए अपने गण से दूसरे गण में जाता, वह आचार्य, उपाध्याय, स्थविर प्रवर्तक गणि गणधर और गणावच्छेदक की बिना अनुज्ञा कही नही जा सकता था। और गीतार्थ ही जा सकता था, अगीतार्थ नही जा सकता था।

व्यवहार सूत्र मे भी एनद् विषयक प्रसग किया गया है[3]। जब एक मुनि अपने गण से उपसंपदा के लिए दूसरे गण में जाने के लिए संनद्ध होता है, तब सभी साधार्मिक और रत्नाधिक मुनि उसे पूछते है—क्या तुम उपसपदा के लिए दूसरे गण मे जाना चाहते हो? वह मुनि उनसे पूछे कि मुझे किस गण में और कौन से आचार्य से उपसपदा लेनी चाहिए? बहुश्रुत मुनि जिस गण मे और जिस आचार्य के लिए कहे, वह उस गण मे और उस आचार्य के पास जाकर उपसपदा स्वीकार करे।

उत्तराध्ययन सूत्र में मुनि के लिए दस समाचारी का विश्लेषण किया गया है। वहा उपसंपदा समाचारी के विषय मे भी चर्चा की गई है[4]।

प्रस्तुत प्रसंग इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि उस समय के धर्म-सघों के प्रवर्तक बहुत उदार होते थे, इसलिए अपने शिष्यों को दूसरे गण मे भेजने मे और दूसरे गण के शिष्योको अपने गणमे सम्मिलित करनेमे उन्हे कोई आपत्ति नही थी। पर अपने गण मे सम्मिलित करने वाले आचार्य कौन मुनि किस हेतु से इस गण को स्वीकार करना चाहता है, इस बात की परीक्षा किए बिना उसे अपने गण मे सम्मिलित होने की अनुज्ञा नही देते थे। निशीथ-भाष्य मे इसका विस्तृत विवेचन मिलता है।

समनोज्ञ और असमनोज्ञ दोनो ही प्रकार के मुनि उपसंपदा के लिए जाते थे[5]। समान सामाचारिक मुनि समनोज्ञ कहलाते और भिन्न सामाचारिक मुनि असमनोज्ञ। समनोज्ञ मुनि उपसपदा के लिए जाते उसके दो हेतु होते थे—ज्ञान और दर्शन। चारित्र उन दोनो गणों मे एक रूप होता था। असमनोज्ञ सविग्न मुनि दूसरे गणों में जाते, उसके तीन हेतु होते थे। वे ज्ञान, दर्शन के साथ चारित्र का भी विकास चाहते थे।

समनोज्ञ और असमनोज्ञ दोनो ही प्रकार के मुनि

---

१. निशीथभाष्य ६३४६ : जयमाण परिहवे ते आगमण तस्य दोहि ठाणेहि।
पजरभग्ग अभिमुहे आवासयमादि आयरिए॥

२. वृहत्कल्पभाष्य, उ० ४, सूत्र १५ : भिक्खू य गणाय-वकम्म इच्छेज्जा अन्न गण उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरिय वा, उवज्झाय वा, पवित्ति वा थेर वा, गणि वा, गणहर वा, गणावच्छेयं वा, अन्न गण उवसपज्जित्ताणं अन्न गण उवसपज्जित्ताणं विहरित्तए। तेय से वियरंति, एव से कप्पइ अन्न गणं उवसपज्जित्ताण विहरित्तए। तेय से नो कप्पइ अन्न गण उवसपज्जित्ताप्प विहरित्तए।

३. व्यवहारकल्प, उ० ४, सू० १८ : भिक्खूय गणाओ अवकम्म अन्न गण उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, त च केइ साहम्मिए पासित्ता वएज्जा कं च अज्जो उवसपाज्जित्ताण विहरसि? जे तत्थ सव्व राइणीए तं वएज्जा, अह भते कस्स कप्पाए? जे तत्थ बहुसुए त वएज्जा। ज वा से भगव व क्खइ तस्स आणा उववायणा निद्देसे चिट्ठिस्सामि।।

४. उत्तराध्ययन, अ० २६, गा० ४ :

५. व्यवहार भाष्य, ६४ :
समणुण्ण दुगणिमित्त उवसंपज्ज ते होइ एमेव।
अमणुण्णेणं नवरिं विभागतो कारणे माइत्तं

दूसरे गण में जाते तो सबसे पहले उनके आने का उद्देश्य पूछा जाता था। आचार्य की अनुज्ञा से और पवित्र उद्देश्य से आनेवाला मुनि आचार्य की अनुमति मिलने पर उस गण में मिल जाता था। पर जो मुनि निम्नलिखित दस कारणों को लेकर दूसरे गण मे सम्मिलित होना चाहता[1]:—

१. कलह करके आता, २. विगय [दूध दही आदि] न मिलने पर आता, ३. योग का उद्वहन करने मे असमर्थ होकर आता, प्रत्यनीक के भय से आता, अथवा आने वाला मुनि ५. स्तब्ध ६. लुब्ध, ७. उग्र, ८ आलसी, ९. अनुबन्ध वैर और १०. स्वच्छन्द मति होता तो उसको अस्वीकार कर दिया जाता था।

प्रत्येक प्रतिच्छक के आने पर आचार्य उसे पूछते तुम अपने सघ और आचार्य को छोडकर यहा क्यों आए हो? पूर्वोक्त दशकारणों के आधार पर आने वाला मुनि अपने गण की जीभर आलोचना करता, क्योंकि वह उस गण को छोड़ना चाहता था।

अपनी बुराइयोको छिपाने की और दूसरों की भूलो को प्रकाशित करने की आदत आधुनिक जन-मानस की तरह अतीत में भी उस रूप मे थी, क्योंकि मानवीय दुर्बलता सदा एक रूप मे चली आ रही है।

कलह[2] करके आने वाला मुनि अपनी स्थिति इस प्रकार प्रकट करता—उस सघ के सदस्य बहुत झगड़ालू प्रकृति के है। बात-बात मे मेरे से झगड़ लेते है। मै शान्त रहने की कोशिश करता हूँ फिर भी शान्त नही रहने देते, इसलिए मै यहा आया हूँ। झगड़ा गृहस्थों और साधुओं दोनो के साथ हो सकता था।

विगय[3] न मिलने से आने वाला मुनि अपना आत्म-निवेदन इस प्रकार करता कि उस सघ के आचार्य मुझे खाने के लिए विगय नही देते है। मैं भुक्त शेष विगय खाना चाहता हूँ। उसका भी निषेध कर देते है। मेरा शरीर प्रकृति से दुर्बल है, मैं खाने मे दूध, घी, दही आदि कुछ भी ले लेता हूँ तभी शरीर से कुछ काम कर सकता हूँ अन्यथा नही ले सकता। क्योंकि मेरा शरीर विगय भावित है। विगय के अभाव मे न नवीन ज्ञान प्राप्त कर सकता हूँ और न पूर्व गृहीत ज्ञान को स्थिर रख सकता हूँ। क्या मै भी उन वृषभ मुनियों की तरह प्रव्रजित नहीं हूँ जो उन्हे तो मनचाही विगय मिल जाती है और मुझे नही मिलती।

योगवाही[4] अपनी दुविधा इस प्रकार रखता है—हमारे सघ के आचार्य योगवाही मुनि को एकान्तर उपवास करवाते है अथवा एकान्तर आयबिल करवाते है या निर्विकृतिक आहार देते है। इस प्रकार तप करता हुआ मै योग का वहन नही कर सकता इसलिए मै यहा आपकी अनुशासना मे आया हूँ।

प्रत्यनीक[5] के भय से आने वाला मुनि अपनी दलील इस प्रकार देता है, उस सघ मे एक मुनि मेरा विरोधी है। हरक्षण वह मेरी भूल देखता है, समाचारी मे कही भी मेरी भूल हो जाती है तो वह सबके बीच मे मुझे टोकता है, तथा भूल न होने पर भी आचार्य को शिकायत करता है फिर आचार्य मेरी भर्त्सना करते हैं। उस स्थिति मे मैं वहा समाधिस्थ नही रह सकता, इसलिए मै आपके सघ मे सम्मिलित होना चाहता हूँ।

स्तब्ध[6] मुनि आत्म-विश्लेषण करता हुआ कहता है कि उस संघ की समाचारी के अनुसार आचार्य का बहुमान करना पड़ता है। आचार्य चहलकदमी करते हैं तो उनके साथ इधर-उधर घूमना पडता है व्याख्यान देने के लिए जाते है अथवा सज्ञाभूमि के लिए जाते है तो हर समय उठना पड़ता है। मेरी कमर मे वायु से बहुत दर्द रहता

---

१. निशीथभाष्य ६३२७ : अहिगरण विगति जोए पडिणीए थद्ध लुद्ध णिद्धम्मे।
अलसाण बद्धवैरो स्वच्छंदमती परिहियव्वे।।

२. निशीथभाष्य ६३२८ : गिहिसजए अहिगरणे।
विगति ण देति घेत्तु मोत्तु पूरित्त च गहि तेवि ।।

३. वही, ६३२९ : णय वज्जियाय देहो पगतीए दुबलो अह भते।
तब्भावियस्स एविहं ण य गहणं धारणं कत्तो ।।

४. वही, ६३३० : एगतर णिव्विगतो जोगो।

५. वही, ६३३० पच्चत्थिको व तहि साहू। चुक्क खलितेसु गेण्हति छिद्दाणि कहेति त गुरूण ।।

६. वही, ६३३१ : चकमणादोव्व उट्ठण कडि गहणे काओ णत्थि तद्धेवं।

है, इसलिए बार-बार उठना-बैठना मेरे लिए सभव नही होता, न उठने से उस सघ की समाचारी का भग होता है, उसका भग होने से मुझे कडा दण्ड मिलता है। अत मै आपकी शरण में आया हूँ।

लुब्धमुनि[1] अपनी समस्या इस प्रकार रखता कि भिक्षा मे तो कुछ भक्षणीय या अभिलाषणीय पदार्थ लड्डू-जलेबी आदि मिलते हैं, उन्हे या तो आचार्य स्वय खा लेते है या बाल, वृद्ध, रुग्ण और अतिथि मुनियो को देते है। उस विषम स्थिति में रहना मेरे लिए सभव नही है, इसलिए मै आपके पास आया हूँ।

णिद्धम[2] ( उग्र ) मुनि कहता है कि समय पर आवश्यकी नैषिधिकी करने मे कभी भूल हो जाती है अथवा प्रमार्जन ठीक नही होता है तो आचार्य अत्यन्त उग्र दण्ड देते है। मेरा दिल कोमल है, मैं उग्र प्रायश्चित वहन करने मे असमर्थ हूँ, इसलिये मै उस सघ को छोड़कर आपकी निश्रा मे आया हूं।

आलसी[3] मुनि अपने आने का उद्देश्य स्पष्ट करता हुआ कहता है कि उस सघ की भिक्षाचरी बहुत कठिन है। उस सघ के आचार्य अपने लिए आहार पर्याप्त होने पर बाल वृद्ध और रुग्ण मुनियो के लिए बहुत लम्बी गोचरी करवाते है। क्षेत्र छोटा होता है तो रोजाना दूसरे ग्रामो मे जाना पडता है, फिर भी आहार पर्याप्त नही होता तो आचार्य कहते है—क्या तुम्हारे लिए यहा रसोई बनी हुई है, जो इतना सा आहार लेकर आ गए ? वापिस जाओ, घूमो पूरा समय और पूरा श्रम लगाकर पर्याप्त आहार लेकर आओ इस प्रकार दीर्घ भिक्षाचर्या से ऊबकर मै आपके पास आया हूं।

अनुबद्ध[4] वैर मुनि अपनी स्थिति का चित्रण करता हुआ कहता है कि—उस सघ में थोडी बहुत आहार-सामग्री मिलने पर सब सदस्य कुत्ते आदि प्राणियो की तरह एक दूसरे पर टूट पडते है, अन्तर इतना ही है कि इस प्रकार का आचरण करके फिर मिच्छामि दुक्कड कर लेते है। उन भिक्षुओ के साथ मेरा मन नही लगता, इसलिए मैं आपकी अनुशासन में आना चाहता हूं।

जो मुनि[5] आचार्य के अनुशासन को बन्धन मानकर आता है, वह अपनी दुविधा प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि उस सघ मे वैयक्तिक स्वतन्त्रता बिलकुल नही है। सघीय मर्यादा के अनुसार सघाटक के बिना कही भी नही जा पाता और तो क्या मज्ञाभूमि ( देह चिन्ता से निवृत होने के लिए ) भी अकेला नही जा सकता। इतनी पराधीनता मुझसे सही नही गई, इसलिए मै यहा आया हूँ। इन सब कारणो से जो मुनि उपसपदा के लिए आता, उसे आचार्य अपने सघ में सम्मिलित होने की स्वीकृति नही देते थे।

अगर कोई मुनि इन कारणों से अतिरिक्त कारण—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विशेष उपलब्धि के लिए आता और अपनी स्थिति इस प्रकार प्रकट करता कि मेरे आचार्य के पास जो सूत्रार्थ था उसे तो मैने ग्रहण कर लिया है। मै मेरे आचार्य की अनुज्ञा से विधिपूर्वक यहा आया हूं। आप अनुग्रह कर मुझे सूत्रार्थ की विशेष वाचना दे। ऐसे पवित्र उद्देश्य को लेकर आने वाले मुनि को उपसपदा की आज्ञा न दे तो आचार्य प्रायश्चित के भागी होते है, क्योंकि ऐसे पवित्र उद्देश्य को लेकर आने वाले मुनि की अवहेलना ज्ञान की अवहेलना है। अत आचार्य अपने संघ के सदस्यो से परामर्श लेकर उस मुनि को सघ में प्रवेश कराने की अनुज्ञा दे देते थे।

परामर्श लेने की विधि बहुत मनोवैज्ञानिक है, क्योंकि सघ के सदस्यों को बिना पूछे आचार्य केवल अपनी ही इच्छा से नए सदस्य को सघ मे स्वीकार कर लेते है। तो आने वाले नए व्यक्ति के प्रति संघ के सदस्यों की सहानुभूति और सहयोग नही रहता। बिना सहानुभूति और सहयोग के कोई समाचारी को स्वीकार करने वाले व्यक्ति

१. निशीथभाष्य, ६३३१ : उक्कोसमय भुजति देतऽण्णोसि तु लुद्धेवे।
२. वही, ६३३२ : आवसिय पज्जयणा अकरण अतिउग्ग दण्ड णिद्धम्मे।
३. वही, ६३३२ : बाला, दट्ठा, दीहा भिक्खालसिओ य उब्भास।
४. वही, ६३३३ : पाण सुणगाहि य भुजति एक्कउ असखडेव मणुवद्धो। पाणसुणगाव भुजंति एगत्तो भडि उंपि अणुवद्धो॥
५. वही, ६३३३ : एकलस्स न लब्भा चलितु पेवतु सच्छंदो॥

का वहां मन नही लगता। और सघ के लिए भी यह स्थिति हितकर नही होती। उपसपदा समाचारी के अनुसार किसी व्यक्ति के परिहार और स्वीकार मे सघ का परामर्श लेना, होता था।

**प्रतिच्छक के आने की विधि—**

विधि के अनुसार आने वाला प्रतिच्छक ही उपसपदा के लिए योग्य माना जाता था। जो मुनि अपने आचार्य को अकेला छोडकर या शैक्ष्य मुनियों के भरोसे छोडकर आता, वह उपसंपदा के लिए योग्य नही माना जाता है।

जो मुनि वृद्ध आचार्य को अथवा सूत्रार्थ मे शकित आचार्य को छोडकर आता, उसे भी उपसपदा के योग्य नही माना जाता था।

सघ का कोई सदस्य ग्लान[1] अथवा बहुरोगी होता, उनका आधार वह एक ही मुनि होता तथा मद धर्मी शिष्य उसके सिवाय आचार्य की भी आज्ञा नही मानते, वह मुनि भी अपने संघ को छोडकर उपसपदा के लिए अन्यत्र नही जा सकता था।

**अनिवार्य परीक्षण—**

उपसपदा के लिए आने वाले मुनि की योग्यता का परीक्षण करना भी अनिवार्य था। क्योकि परीक्षण किए बिना नए व्यक्ति को स्वीकार करने से समय पर आचार्य तथा सघ दोनो के लिए चिन्ता का विषय हो सकता है। परीक्षाक्रम मे सबसे पहले उसकी दिनचर्या देखी जाती थी। अगर वह मुनि अपनी दिनचर्या मे सजग रहता, आवश्यकी नैषिधिकी विधि-पूर्वक करता, प्रतिक्रमण—प्रतिलेखन आदि मौलिक क्रियाओ मे अन्तर नही आने देता तथा जिस सघ मे सम्मिलित हुआ है उस सघ के सदस्यो मे घुसमिल जाता, वह मुनि उपसपदा के योग्य माना जाता था।

परीक्षण की पद्धति एक ही प्रकार की नही होती थी किन्तु विविध प्रकार की विधियो से आगन्तुक मुनि की परीक्षा ली जाती थी। आचार्य यह भी देखते थे कि मै अपने सघ के सदस्यो को भूल होने पर उन्हें सावधान करता हूं, अध्ययन और साधना आदि विषयो में प्रेरित करता हूँ पर प्रतिच्छक के प्रति उदासीन रहता हूँ। इस प्रकार के व्यवहार से उसके मानस पर क्या प्रतिक्रिया होती है?

यदि उस उपेक्षाभाव का उसपर कुछ असर होता और निवेदन करते-करते उसकी आखों से आंसू छलक जाते और गद्गद् स्वर मे प्रार्थना करता कि गुरुदेव! मुझ जैसे निराधार के आधार आप ही है, मै भी आपकी शरणगत हूँ। अपने शिष्यो की तरह मुझे भी गलती होने पर सावधान रहने की प्रेरणा दे तो उस मुनि को उपसपदा के लिए स्वीकार कर लिया जाता था जिस मुनि पर आचार्य को उदासीनता का कोई असर ही नही होता। उस मुनि को इन्कार कर दिया जाता था।

**प्रतिच्छक के द्वारा परीक्षा—**

जिस प्रकार आचार्य प्रतिच्छक मुनि की परीक्षा लेते वैसे ही वह मुनि भी जिस गण मे जाता, उस गण के आचार्य की परीक्षा करता। उस गण के सदस्यों मे कोई भी सदस्य आवश्यक समाचारी में भूल करता तो वह आचार्य को निवेदन करता। आचार्य उस नवागन्तुक के निवेदन पर उस भूल करने वाले मुनि को प्रायश्चित देते और आगे भूल न करे इस प्रकार प्रेरित करते तो वह मुनि उस गण और आचार्य को स्वीकार करता; अन्यथा उपसपदा के लिए अन्यत्र चला जाता था।

उपसंपदा के लिए आने वाला मुनि यदि योग्य नही होता तो गीतार्थ को स्पष्ट मनाह कर देते, क्योकि वह स्थिति से अनजान नही होता। और यदि वह अगीतार्थ होता तो उसे मनोवैज्ञानिक पद्धति से समझा देते थे।

**प्रतिषेध पद्धति—**

जो मुनि सूत्रार्थ की विशेष वाचना के लिये आता पर उसके योग्य नही होता, उस मुनि से कहा जाता था कि

१. निशीथ भाष्य ६३३५ : व्यवहार भाष्य ७४ : अहवा एगे परिणते अप्पाहारे य थेरए।

२. वही, ६३३५ : गिलाणे बहुरोगे य मद-धम्मे य पाहुडे।

१. निशीथ भाष्य ६३४६; व्यवहार भाष्य ८६
जो पुण चोइज्जतो, दट्ठूण तत्तो, नियत्तता ठाणा।
मपाति अहं मे चत्तो, चोदेह ममपि सीदतं॥

तुम जिस सूत्रार्थ को प्राप्त करना चाहते हो,[1] वह अभी मेरे पास नहीं है। यदि वह कहे कि मैंने तो आपके पास है, ऐसा सुना है और स्वयं भी देखा है। ऐसा कहने वाले को आचार्य कहते, तुम ठीक कहते हो, पहले मैं जो सूत्रार्थ देता था पर अब कई स्थल शंकित हो गए है। शंकित सूत्रार्थ की वाचना देना आगम निषिद्ध है। अतः तुम उस गण में जाकर वाचना लो, जहाँ आचार्य निःशकित होकर वाचना देते है।

**स्वच्छन्द मुनि का प्रतिषेध[2]—**

हमारे सघ को समाचारी के अनुसार भी अकेला मुनि और कही तो जा ही नही सकता, किन्तु संज्ञाभूमि के लिए भी अकेला नही जा सकता, इसलिए इस सघ मे रहना भी तुम्हारे लिए सम्भव नही है।

**अनुबद्ध वैर का प्रतिषेध[3]—**

हमारे सघ की समाचारी भी मंडलाधीन है। खान-पान और अध्यन मण्डलीस्थ करना होता है, इसलिए यहां तुम्हारे लिए कठिनाई है।

**आलसी मुनि का प्रतिषेध[4]—**

हमारे यहाँ स्वस्थ और तरुण ही नही पर बाल, वृद्ध और रुग्ण मुनि भी दीर्घ भिक्षा के लिए घूमते है तो फिर तुम्हें छूट कैसे मिलेगी ?

**उग्र मुनि का प्रतिषेध[5]—**

हमारे संघ मे जो मुनि दिनचर्या में लापरवाह रहता है, अथवा प्रमार्जन ठीक नही करता, उसे हाडाहड—तत्काल वहन करने योग्य—प्रायश्चित्त मिलता है।

**योगवाही मुनि का प्रतिषेध[6]—**

यहाँ भी जो मुनि योग का वहन करते है, वे मनचाही विगय नही ले सकते। इस विधान के अनुसार इस सघ में भी तुम्हे कोई सुविधा नही मिलेगी।

इस प्रकार जो मुनि जिस सुविधा के लिए अपने गण को छोड़कर आता, उसे वैसी कठिनाई दिखाकर प्रतिषेध कर दिया जाता था।

उक्त विवेचन से स्पष्ट सिद्ध होता है कि उस समय के धर्म-सघो के प्रवर्तकों में परस्पर कोई तनाव के भाव नहीं थे, इसलिए शिष्यों के आदान-प्रदान मे भी उन्हे किसी प्रकार का सकोच नही होता था, आज धर्म-सघ अपनी वैचारिक संकीर्णता और रूढ़ता के कारण एक-दूसरे से टूटकर इस प्रकार विलग हो चुके है कि पुनः उनको जोडना कठिन नही, किन्तु असम्भव सा लग रहा है। स्थिति यहा तक पहुँच चुकी है कि कोई उदारचेता आचार्य किसी धर्म-सघ के आचार्य से चरचा भी कर लेते है तो कट्टर सम्प्रदायवादी लोगों मे बहुत बड़ी हलचल मच जाती है। उनकी धारणा के अनुसार असाभोगिक, असाधमिक और भिन्न सामाचारिक संघों का मिलना ही मिथ्यात्व का प्रतीक है।

वर्तमान परिस्थिति के सदर्भ में अगर धर्म-सघ इस प्रकार की धारणा को लेकर एक-दूसरे से टूटते रहे तो धर्म और समाज का कोई उद्धार नही कर सकेंगे। अतः प्रत्येक धर्माचार्य अपनी दृष्टियों में सशोधन करे और एक-दूसरे से निकट होकर अपनी विच्छिन्न परम्परा को पुनः शृंखलाबद्ध करे। ●

---

१. वही, ६३५४ : णत्थेय मे जमिच्छिए सुत्त मए आगम सकिय त तु।
नय सकिय तु दिज्जइ णिस्सक सुत्ते गवेसाहि॥

२. निशीथ भाष्य ६३५५; व्यवहार भाष्य ९६५ : एकल्लेण णलब्भा वीयारादी विजयणा सच्छदे

३. वही, ६३५५ : भोयण सुत्ते मडाले अपढते विणिओ अति।

४. वही, ६३५६ : अलस भणति वाहि जीत हिंडसि. अम्ह एत्थ बालाती।

५. वही, ६३५६ : पच्छिद हाडाहड आवि।

६. वही, ६३५६ : उवसग्गं तहा विगति।

# आगम और त्रिपिटकों के संदर्भ में अजातशत्रु कुणिक

मुनि श्री नगराज

**नाम-भेद**

जैन और बौद्ध, दोनों परम्पराओ मे नाम-भेद है। जैन परम्परा जहा उसे 'सर्वत्र 'कूणिक' कहती है, वहाँ बौद्ध परम्परा उसे सर्वत्र 'अजातशत्रु' कहती है। उपनिषद्[1] और पुराणो[2] मे भी अजातशत्रु नाम व्यवहृत हुआ है। वस्तुस्थिति यह है कि कूणिक मूल नाम है और अजातशत्रु उसका एक विशेषण ( epithet ) कभी-कभी मूल नाम से भी अधिक उपाधि या विशेषण प्रचलित हो जाते है। जैसे-वर्धमान मूल नाम है, महावीर विशेषतापरक, पर व्यवहार मे 'महावीर' ही सब कुछ बन गया है। भारतवर्ष के सामान्य इतिहास मे केवल अजातशत्रु ही नाम प्रचलित है। मथुरा सग्रहालय के एक शिलालेख मे 'अजातशत्रु कूणिक' लिखा गया है[3]। वस्तुतः इसका पूरा नाम यही होना चाहिए। नवीन साहित्य मे 'अजातशत्रु कूणिक' शब्द का ही प्रयोग किया जाये, यह अधिक यथार्थताबोधक होगा।

'अजातशत्रु' शब्द के दो अर्थ किये जाते है। **न जातः शत्रुर्यस्य** अर्थात् 'जिसका शत्रु जन्मा ही नही'[4] और **अजातोऽपि शत्रु अर्थात्** 'जन्म से पूर्व ही ( पिता का ) शत्रु'[5]। दूसरा अर्थ आचार्य बुद्धघोष का है और वह अपने-आप मे सगत भी है, पर यह युक्ति-पुरस्सर है और पहला अर्थ सहज है। कूणिक बहुत ही शौर्यशील और प्रतापी नरेश था। अनेकों दुर्जय शत्रुओं को उसने जीता था। अतः अजातशत्रु विशेषगर्हा का द्योतक न होकर उसके शौर्य का द्योतक अधिक प्रतीत होता है।

'कूणिक' नाम '**कूणि** शब्द से बना है। '**कूणि**' का अर्थ है—अगुली का घाव[1]। 'कूणिक' का अर्थ हुआ—अंगुली के घाव वाला।

आचार्य हेमचन्द्र कहते है—

> रूढव्रणादि सा तस्य कूणिता भवदगुलि ।
> ततः सपांशुरमर्णः सोऽभ्यश्चीयत कूणिका[3] ।।

**आवश्यक चूर्णि** में कूणिक को 'अशोक चन्द्र' भी कहा गया है[4]। पर यह विरल प्रयोग है।

**महाशिला कंटक युद्ध और वज्जी-विजय—**

अजातशत्रु के जीवन का एक ऐतिहासिक घटना-प्रसंग जैन शब्दों मे 'महाशिला कटक-युद्ध' तथा बौद्ध शब्दों मे 'वज्जी-विजय रहा है। दोनो परम्पराओं में युद्ध के कारण, युद्ध की प्रक्रिया और युद्ध की निष्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से मिलती है; पर इसका सत्य एक है कि वैशाली गणतन्त्र पर वह मगध की ऐतिसाहिक विजय थी। इस युद्धकाल मे महावीर और बुद्ध; दोनो वर्तमान थे। दोनो ने ही युद्ध विषयक प्रश्नो के उत्तर दिये हैं। दोनो ही परम्पराओ का युद्ध विषयक वर्णन बहुत ही लोमहर्षक और तात्कालिक राजनैतिक स्थितियो का परिचायक है। जैन विवरण, **भगवती सूत्र निरयावलिका सूत्र** तथा **आवश्यक चूर्णि** में मुख्यतः उपलब्ध होता है। बौद्ध विवरण **दीघनिकाय के महावीरनिब्बाण सुत्त** तथा उसकी अट्ठकथा मे मिलता है।

---

१. Dialogues of Buddha, Vol. II, p. 78

२. वायु पुराण, अ० ९९, श्लो० ३१९; मत्स्य पुराण, अ० २७१, श्लो० ९

६. Dr. Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol. V, Part IV, pp. 550-51.

४. Dialogues of Budha, Vol. II, p. 78.

५. दीघनिकाय अट्ठकथा, १, १...

---

२. Apte's, Sankrit-English Dictionary, Vol. I, p. 580.

३. त्रिषष्टशलाका पुरुष चरिच, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक ३०९।

४. असोगवण...

**महाशिलाकंटक संग्राम**

चम्पा नगरी में आकर कूणिक ने कालीकुमार आदि अपने दश भाइयों को बुलाया। राज्य, सेना, धन आदि ग्यारह भागो मे बाटा और आनन्दपूर्वक वहा राज्य करने लगा। कूणिक राजा के दो सगे भाई ( चेल्लणा के पुत्र ) हल्ल और विहल्ल थे। राजा श्रेणिक ने अपनी जीवितावस्था मे ही अपनी दो विशेष वस्तुएँ उन्हे दे दी थी—सेचनक हस्ती और अठारहसरा देवप्रदत्त हार[1]।

प्रतिदिन विहल्लकुमार सेचनक हस्ती पर सवार हो, अपने अन्तःपुर के साथ जल-क्रीडा के लिए गगा तट पर जाता। उसके आनन्द और भोग को देखकर नगरी मे चर्चा उठी—"राजश्री का फल तो विहल्लकुमार भोग रहा है, कूणिक नहीं।" यह चर्चा कूणिक की रानी पद्मावती तक पहुँची। उसे लगा—"यदि सेचनक हाथी मेरे पास नही, देवप्रदत्त हार मेरे पास नही तो इस राज्य-वैभव से मुझे क्या ?" कूणिक से उसने यह वार्ता कही। अनेक बार के आग्रह से कूणिक हार और हाथी मागने के लिए विवश हुआ। हल्ल और विहल्लकुमार को बुलाया और कहा—'हार और हाथी मुझे सौप दो।" उन्होने उत्तर दिया—"हमे पिता ने पृथक् रूप से दिये है। हम इन्हे कैसे सौप दे ?" कूणिक इस उत्तर से रुष्ट हुआ। हल्ल और विहल्लकुमार अवसर देखकर हार, हाथी और अपना अन्तःपुर लेकर वैशाली मे अपने नाना चेटक के पास चले गये। कूणिक को यह पता चला। उसने चेटक राजा के पास अपना दूत भेजा और हार, हाथी तथा हल्ल-विहल्ल को पुन. चम्पा लौटा देने के लिए कहलाया। चेटक ने कहा—"हार हाथी हल्ल-विहल्ल के है। वे मेरे शरण आये है। मै उन्हे वापिस नही लौटाता। यदि श्रेणिक राजा का पुत्र, चेल्लणा का आत्मज, मेरा नप्तृक ( दोहिता ) कूणिक हल्ल-विहल्ल को आधा राज्य दे तो मै हार-हाथी उसे दिलवाऊ।" उसने पुन दूत भेजा और कहलाया—"हल्ल और विहल्ल मेरी अनुज्ञा के बिना हार हाथी ले गये है। ये दोनो वस्तुएं हमारे राज्य मगध की है।" चेटक ने पुन. नकारात्मक उत्तर देकर दूत को विर्सजित किया। दूत ने कूणिक को सारा सवाद कहा। कूणिक उत्तेजित हुआ। आवेश मे आकर उसके ओठ फडकने लगे आंखें लाल हो गई। ललाट मे त्रिवली बन गई। दूत से कहा—"तीसरी बार और जाओ। मैं तुम्हे लिखित पत्र देता हूं। इसमे लिखा है—'हार-हाथी वापिस करो या युद्ध के लिए सज्ज हो जाओ।' चेटक की राज सभा मे जाकर उसके सिहासन पर लात मारो। भाले की अणी पर रखकर मेरा यह पत्र उसके हाथो मे दो।" दूत ने वैसा ही किया। चेटक भी पत्र पढ़कर और दूत का व्यवहार देखकर उसी प्रकार उत्तेजित हुआ। आवेश मे आया दूत से कहा—"मै युद्ध के लिए सज्ज हूं। कूणिक शीघ्र आये, मै प्रतीक्षा करता हूं।" चेटक के आरक्षकों ने दूत को पकड़ा और गलहत्था देकर सभा से बाहर किया।

कूणिक ने दूत से यह सब सुना। कालीकुमार आदि अपने दश भाइयों को बुलाया व कहा—"अपने-अपने राज्य मे जाकर समस्त सेना से सज्ज होकर यहा आओ। चेटक राजा से मैं युद्ध करूगा।" सब भाई अपने-अपने राज्यों में गये। अपने अपने तीन सहस्र हाथी, तीन सहस्र घोडे, तीन सहस्र रथ, और तीन करोड पदातिकों को साथ लेकर आये। कूणिक ने भी अपने तीन सहस्र हाथी, तीन सहस्र अश्व तीन सहस्र रथ और तीन करोड़ पदातिको को सज्ज किया। इस प्रकार तेतीस सहस्र हस्ती, तेतीस सहस्र अश्व, तेतीस सहस्र रथ और तेतीस करोड़ पदातिको की बृहत् सेना को लेकर कूणिक वैशाली पर आया।

राजा चेटक ने भी अपने मित्र नव मल्लकी, नवलिच्छवी, इन अट्ठारह काशी कोशल के राजाओ को एकत्रित किया। उनसे परामर्श मागा—"श्रेणिक राजा की चेलणा रानी का पुत्र, मेरा नप्तृक ( दोहिता ) कूणिक हार और हाथी के लिए युद्ध करने आया है। हम सब को युद्ध करना है या उसके सामने समर्पित होना है ?" सब राजाओ ने कहा—"युद्ध करना है, समर्पित नही होना है।" यह निर्णय कर सब राजा अपने-अपने देश मे गये और अपने-अपने तीन सहस्र हाथी, तीन सहस्र अश्व, तीन सहस्र रथ और तीन करोड़ पदातिकों को लेकर

---

१. कहा जाता है—सेचनक हस्ती और देवप्रदत्त हार का मूल्य श्रेणिक के पूरे राज्य के बराबर था।
(आवश्यक चूर्णि, उत्तरार्ध, पत्र १६७)

आये इतनी ही सेना से चेटक स्वय तैयार हुआ। ५७ सहस्र हाथी, ५७ सहस्र अश्व, ५७ सहस्र रथ और ५७ करोड़ पदातिकों की सेना लिए चेटक भी सग्राम भूमि मे आ डटा।

राजा चेटक भगवान महावीर का उपासक था। उपासक के १२ व्रत उसने स्वीकार किये थे। उसका अपना एक विशेष अभिग्रह था—"मै एक दिन मे एक से अधिक बाण नही चलाऊगा।" उसका बाण अमोघ था अर्थात् निष्फल नही जाता। पहले दिन अजातशत्रु की ओर से कालीकुमार सेनापति होकर सामने आया। उसने गरुड व्यूह की रचना की। राजा चेटक ने शकट व्यूह की। भयकर युद्ध हुआ। राजा चेटक ने अपने अमोघ बाण का प्रयोग किया। कालीकुमार धराशायी हुआ। इसी प्रकार एक-एक कर अन्य नव भाई एक-एक दिन सेनापति होकर आये और राजा चेटक के अमोघ बाण से मारे गये। महावीर उस समय चम्पा नगरी मे वर्तमान थे। कालीकुमार आदि राजकुमारो की माताएँ काली आदि दश रानियों ने युद्ध-विषयक प्रश्न महावीर से पूछे। महावीर ने कालीकुमार आदि की मृत्यु का सार वृत्तात उन्हे बताया। उन रानियों ने महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की[1]।

**इन्द्र की सहायता—**

कूणिक ने तीन दिनो का तप किया। शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र की आराधना की। वे प्रकट हुए। उनके योग से प्रथम दिन महाशिलाकंटक सग्राम की योजना हुई। कूणिक शक्रेन्द्र द्वारा निर्मित वज्रप्रतिरूप कवच से सुरक्षित होकर युद्ध मे आया ताकि चेटक का अमोघ बाण भी उसे मार न सके। घमासान युद्ध हुआ। कूणिक की सेना द्वारा डाला गया ककर तृण व पत्र भी चेटक की सेना पर महाशिला जैसा प्रहार करता था। एक दिन के सग्राम में ८४ लाख मनुष्य मरे। दूसरे दिन रथमूसल सग्राम की विकूर्वणा हुई। चमरेन्द्र देव-निर्मित स्वय चालित रथ चला। अपने चारों ओर से मूसल की मार करता हुआ सारे दिन वह शत्रु की सेना मे घूमता रहा। एक दिन मे ९६ लाख मनुष्यो का सहार हुआ। चेटक और नवमल्लवी, नवलिच्छवी, ऐसे अट्ठारह काशी-कोशल के गण राजाओ की पराजय हुई, कूणिक की विजय हुई।[2]

**वैशाली प्राकार भंग—**

पराजित चेटक राजा अपनी नगरी मे चला गया। प्राकार के द्वार बन्द कर लिये। कूणिक प्राकार को तोडने मे असफल रहा। बहुत समय तक वैशाली को घेरे वह वही पडा रहा, एक दिन आकाशवाणी हुई—"श्रमण कूलबालक[3] जब मागधिका। वेश्या मे अनुरक्त होगा, तब राजा अशोकचन्द्र ( कूणिक ) वैशाली नगरी का अधिग्रहण करेगा[4]।" कूणिक ने कूलबालक का पता लगाया। मागधिका को बुलाया। मागधिका ने कपट श्राविका बन कूल बालक को अपने आप मे अनुरक्त किया। कूल बालक नैमित्तिक वेष बना जैसे-तैसे वैशाली नगरी मे पहुँचा। उसने जाना कि मुनिसुव्रत स्वामी स्तूप के प्रभाव से यह नगरी बच रही है। लोकों ने शत्रु सकट का उपचार पूछा, तब उसने कहा—यह स्तूप टूटेगा, तभी शत्रु यहा से हटेगा। लोको ने स्तूप को तोड़ना प्रारम्भ किया। एक बार कूणिक की सेना पीछे हटी, क्योंकि ऐसा समझा कर आया था। ज्यों ही सारा स्तूप टूटा, कूणिक ने कलबालक के कहे अनुसार एका एक आक्रमण कर वैशाली प्राकार भग किया[5]।

हल्ल-विहल्ल हार और हाथी को शत्रु से बचाने के लिये भगे। प्राकार की खाई मे प्रच्छन्न आग थी। हाथी सेचनक इसे अपने **विभङ्ग-ज्ञान** से जान चुका था। वह

---

१. निरयावलिका सूत्र (सटीक), पत्र ६-१

२. भगवती सूत्र, ७, उद्देशक ९, सूत्र ३०१,

३. 'कूलवालक' नदी के कूल के समीप आतापना करता था। उसके तपः प्रभाव से नदी का प्रभाव थोडा मुड गया। उससे उसका नाम, 'कूलवालक' हुआ। (उत्तराध्ययन सूत्र लक्ष्मीवल्लभकृत वृत्ति (गुजराती अनुवाद सहित) अहमदाबाद, १९३५, प्रथम खण्ड, पत्र ८।

४. समणे जइ कूलवालए, मागहिअ गणिअ रमिस्सए।
राया अ असोगचदए वेसालि नयरी गहिस्सए॥
—वही, पत्र १०

५. वही, पत्र ११

आगे नही बढा। बलात् बढाया गया तो उसने हल्ल-विहल्ल को नीचे उतार दिया और स्वय अग्नि में प्रवेश कर गया। मर कर अपने शत्रु अध्यवसायो के कारण प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुआ। देवप्रदत्त हार देवताओ ने उठा लिया। हल्ल-विहल्ल को शासनदेवी ने भगवान महावीर के पास पहुँचा दिया वहा वे निग्गठ-पर्याय में दीक्षित हो गये।[1]

राजा चेटक ने प्रच्छन्न स्थान मे आमरण अनशन किया व अपने शत्रु अध्यवसायो से सद्गति प्राप्त की[1]।

**बौद्ध परम्परा—वज्जियों से शत्रुता :**

गगा के एक पत्तन के पास पर्वत मे रत्नो की खान थी[2]। अजातशत्रु और लिच्छवियो मे आधे-आधे रत्न बाट लेने का समझौता था। अजातशत्रु—"आज जाऊँ, कल जाऊँ" करते ही रह जाता। लिच्छवी एक मत हो, सब रत्न ले जाते। अजातशत्रु को खाली हाथो लौटना पड़ता। अनेको बार ऐसा हुआ। अजातशत्रु क्रुद्ध हो सोचने लगा—"गण के साथ युद्ध कठिन है, उनका एक भी प्रहार निष्फल नही जाता[3], पर कुछ भी हो, मै महर्द्धिक वज्जियो को उच्छिन्न करूँगा, उनका विनाश करूँगा।" अपने महामत्री वस्सकार ब्राह्मण को बुलाया और कहा—"जहाँ भगवान् बुद्ध है, वहाँ जाओ मेरी यह भावना उनसे कहो। जो उनका प्रत्युत्तर हो, मुझे बताओ[4]।"

उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह मे गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते थे। वस्सकार वहाँ आया। अजातशत्रु की ओर से सुख-प्रश्न पूछा और उसके मन की बात कही। तब भगवान् ने वज्जियो के सात अपरिहानीय नियम बतलाये—

१. सन्निपात-बहुल है अर्थात् उनके अधिवेशन मे पूर्ण उपस्थिति रहती है।

२. वज्जी एकमत से परिषद् मे बैठते है, एकमत से उत्थान करते है, एक ही करणीय कर्म करते है। वे सन्निपात भेरी के सुनते ही खाते हुए, आभूषण पहनते हुए या वस्त्र पहनते हुए भी ज्यो के त्यों एकत्रित हो जाते हैं।

३. वज्जी अप्रज्ञप्त (अवैधानिक) को प्रज्ञप्त नही करते। प्रज्ञप्त का उच्छेद नही करते।

४. वज्जी महल्लको का (वृद्धों का) सत्कार करते है, गुरुकार करते है; उन्हे मानते है, पूजते है।

५. वज्जी कुल-स्त्रियो और कुल कुमारियों के साथ बलात् विवाह नहीं करते।

६. वज्जी अपने नगर के बाहर और भीतर के चैत्यो का आदर करते है। उनकी मर्यादाओ का लघन नही करते।

७. वज्जी अर्हतों की धार्मिक सुरक्षा रखते है, इसलिए कि भविष्य मे उनके यहाँ अर्हत आते रहे और जो है, वे सुख से विहार करते रहे।

जब तक ये सात अपरिहानीय-नियम उनमे चलते रहेगे, तब तक उनकी अभिवृद्धि ही है, अभिहानि नही[1]।

**वज्जियों में भेद :—**

वस्सकार पुन. अजातशत्रु के पास आया और बोला—"बुद्ध के कथनानुसार तो वज्जी अजेय है, पर उपलापन (रिश्वत) और भेद से उन्हे जीता जा सकता है।"

राजा ने पूछा—"भेद कैसे डाले ?"

वस्सकार ने कहा—"कल ही राजसभा मे आप वज्जिओं की चर्चा करे। मै उनके पक्ष में कुछ बोलूगा। आप मेरा तिरस्कार करे। कल ही मै वज्जियों के लिए एक भेंट भेजूगा। उस दोषारोपण में मेरा शर मुडवा कर मुझे नगर से निकाल देना। मै कहता जाऊँगा—"मैंने तेरे प्राकार, परिखा आदि बनवाये है। मैं दुर्बल स्थानो को जानता हूँ। शीघ्र ही मै तुम्हे सीधा न कर दूं, तो मेरा नाम वस्सकार नही है।"

अगले दिन यही सब घटित हुआ। बात वज्जिओं तक भी पहुँच गई। कुछ लोगों ने कहा—"यह ठगी है। इसे गंगा पार मत आने दो।" पर अधिक लोगो ने कहा—"यह घटना बहुत ही अपने पक्ष मे घटित हुई है। वस्स-

१. भरतेश्वर बाहुबलीवृत्ति, पत्र १००-१०१
२. बुद्धचर्या के अनुसार पर्वत के पास बहुमूल्य सुगन्ध वाला माल उतरता था। पृ. ४८४।
३. दीघनिकाय अट्ठकथा, सुमंगलविलासिनी, खण्ड २, पृ. ५२६; विमलचरण ला, **बुद्धघोष**, पृ १११; हिन्दू सभ्यता, पृ. १८७।
४. दीघनिकाय, महापरिनिब्बाण सुत्त, २:३(१६)

१. वही।

कार का उपयोग अजातशत्रु करता था। यह बुद्धिमान है, इसका उपयोग हम ही क्यो न करे ? वह शत्रु का शत्रु है; अतः आदरणीय है।" इस धारणा पर उन्होने वस्सकार को अपने यहाँ अमात्य बना दिया।

थोड़े ही दिनो मे उसने वहाँ अपना प्रभाव जमा लिया। अब उसने वज्जियों मे भेद डालने की बात शुरू की। बहुत सारे लिच्छवी एकत्रित होते, वह किसी एक से एकान्त होकर पूछता—"खेत जोतते हो ?"

"हाँ, जोतते है।"

"दो बैल जोत कर ?"

"हा, दो बैल जोतकर।"

दूसरा लिच्छवी उस लिच्छवी को एकान्त मे जाकर पूछता—'महामात्य ने क्या कहा ?" वह सारी बात उसे कह देता; पर उसे विश्वास नही होता कि महामात्य ने ऐसी साधारण बात की होगी।" "मेरे पर तुम्हे विश्वास नहीं है; सही नही बतला रहे हो।" यह कह सदा के लिए वह उससे टूट जाता। कभी किसी लिच्छवी को वस्सकार कहता—"आज तुम्हारे घर मे क्या शाक बनाया था ?" वही बात फिर घटित होती। किसी एक लिच्छवी को एकान्त मे ले जाकर कहता—"तुम बड़े गरीब हो।" किसी को कहता—"तुम बड़े कायर हो।" 'किसने कहा ?' पूछे जाने पर उत्तर देता—"अमुक लिच्छवी ने, अमुक अमुक लिच्छवी ने।"

कुछ ही दिनों मे लिच्छवियों मे परस्पर इतना अविश्वास और मनोमालिन्य हो गया कि एक रास्ते से भी दो लिच्छवी नही निकलते। एक दिन वस्सकार ने सन्निपात भेरी बजवाई। एक भी लिच्छवी नही आया तब उसे निश्चय हो गया कि अब वज्जियो को जीतना बहुत आसान है। अजातशत्रु को आक्रमण के लिए उसने प्रच्छन्न रूप से कहला दिया। अजातशत्रु ससैन्य चल पड़ा। वैशाली में भेरी बजी—"आओ चलें, शत्रु को गगा पार न होने दे।" कोई नही आया। दूसरी भेरी बजी—"आओ चलें, नगर में न घुसने दे। द्वार बन्द करके रहे।" कोई नही आया। भेरी सुनकर सब यही बोलते—"हम तो गरीब हैं, हम क्या लड़ेंगे ?"; हम तो कायर है, हम क्या लड़ेंगे ?"; "जो श्रीमन्त हैं और शौर्यवन्त हैं, वे लड़ेगे ?" खुल्ले ही द्वार अजातशत्रु नगरी में प्रविष्ट हुआ, वैशाली का सर्वनाश कर चला गया[1]।

**महापरिनिव्वान सुत्त** के अनुसार—अजातशत्रु के दो महामात्य सुनीध और वस्सकार ने वज्जियों से सुरक्षित रहने के लिए गगा के तट पर ही पाटलिपुत्र नगर बसाया। जब वह बसाया जा रहा था, सयोगवश बुद्ध भी वहाँ आये, सुनीध और वस्सकार के आमन्त्रण पर भोजन किया। चर्चा चलने पर पाटलिपुत्र की प्रशसा की और उसके तीन अन्तराय बताये—आग, पानी और पारस्परिक भेद। बुद्ध के कथनानुसार त्रयस्त्रिंश-देवों के साथ मन्त्रणा करके सुनीध और वस्सकार ने यह नगर बसाया था।

**समीक्षा**

दोनों ही परम्पराएँ अपने-अपने ढंग मगध-विजय और वैशाली-भंग का पूरा-पूरा व्योरा देती हैं। बुद्ध का निमित्त युद्ध का प्रकार आदि दोनो परम्पराओ के सर्वथा भिन्न है। जैन परम्परा चेटक को लिच्छवी-नायक के रूप मे व्यक्त करती है; बौद्ध परम्परा प्रतिपक्ष के रूप मे केवल वज्जीसघ (लिच्छवी-सघ) को ही प्रस्तुत करती है। जैन परम्परा के कुछ उल्लेख, जैसे—कूणिक व चेटक की क्रमशः ३३ करोड़ व ५७ करोड़ की सेना, शक्र और असुरेन्द्र का सहयोग, दो ही दिनो मे १ करोड़ ८० लाख मनुष्यो का वध होना, कूल बालक के सम्बन्ध से आकाशवाणी का सहयोग होना, स्तूपमात्र के टूट जाने से लिच्छवियो की पराजय हो जाना आदि बाते आलकारिक जैसी लगती है। बौद्ध परम्परा का वर्णन अधिक सहज और स्वाभाविक लगता है। युद्ध के निमित्त मे एक ओर रत्नराशि का उल्लेख है, तो एक ओर महार्घ्य देव-प्रदत्त हार का। भावनात्मक समानता अवश्य है। चेटक के बाण को जैन परम्परा मे अमोघ बताया गया है। बौद्ध परम्परा का यह उल्लेख—"उन (वज्जिगण) का एक भी प्रहार निष्फल नहीं जाता", उसी प्रकार का सकेत देता है।

जैन परम्परा स्तूप के प्रभाव से नगरी की सुरक्षा बताती है, बुद्ध कहते हैं—"जब तक वज्जी नगर के बाहर व भीतर के चैत्यो (स्तूपों) का आदर करेंगे, तब तक उनकी वृद्धि ही है, हानि नहीं।"

---

१. दीघनिकाय अट्ठकथा, खण्ड २, पृ. ५२३

युद्ध के पात्रों का व्यवस्थित ब्योरा जितना जैन परम्परा देती है, उतना बौद्ध परम्परा नही। चेटक तथा ६ मल्ल की, ६ लिच्छवी, अट्ठारह गणराजाओं का यत्किचित् विवरण भी बौद्ध परम्परा नही देती।

वैशाली-विजय मे छद्म-भाव का प्रयोग दोनों ही परम्परा ने माना है। जैन परम्परा के अनुसार युद्ध के दो भाग हो जाते है :—

१. पखवाडे का प्रत्यक्ष युद्ध और

२. प्रकार-भंग।

इन दोनो के बीच बहुत समय बीत जाता है। डा० राधाकुमुद मुखर्जी की धारणा के अनुसार यह अवधि कम-से-कम १६ वर्षो की हो सकती है[1]। बौद्ध परम्परा के अनुसार वस्सकार लगभग तीन वर्ष वैशाली में रहता है और लिच्छवियों मे भेद डालता है। इस सबसे यह प्रतीत होता है कि बौद्ध परम्परा का उपलब्ध वर्णन केवल युद्ध का उत्तरार्ध मात्र है।

**रानियां और पुत्र**

जैन परम्परा मे कूणिक की तीन रानियो के नाम मुख्यतया आते है—पद्मावती[2], धारिणी[3] और सुभद्रा[4]। **आवश्यक चूर्णि** के अनुसार कूणिक ने ८ राजकन्याओ के साथ विवाह किया था[5], पर वहा उनका कोई विशेष परिचय नही है।

बौद्ध परम्परा मे कूणिक की रानी का नाम वजिरा आता है। वह कोशल के प्रसेनजित् राजा की पुत्री थी। कूणिक के पुत्र का नाम जैन परम्परा मे उदायी और बौद्ध परम्परा मे उदायीभद्र आता है। जैन परम्परा के अनुसार यह पद्मावती का पुत्र था और बौद्ध परम्परा के अनुसार वह वजिरा का पुत्र था। वजिरा का होने मे एक असंगति आती है। बौद्ध परम्परा के अनुसार उदायीभद्र का जन्म उसी दिन हुआ, जिस दिन श्रेणिक का शरीरान्त हुआ[6], जबकि वजिरा का विवाह भी श्रेणिक की मृत्यु के पश्चात् हुआ[7]।

**मृत्यु—**

कूणिक (अजातशत्रु) की मृत्यु दोनो परम्पराओ मे विभिन्न रूप से बताई गई है।

जैन परपरा मानती है—कूणिक ने महावीर से पूछा—चक्रवर्ती मर कर कहाँ जाते है? उत्तर मिला—चक्रवर्ती पद पर मरने वाला सप्तम नरक मे जाता है।

"मै मर कर कहाँ जाऊँगा ?"

"तुम छठे नरक मे जाओगे।"

"क्या मै चक्रवर्ती नही हू ?"

"नही हो।"

इस पर उसे चक्रवर्ती बनने की धुन लगी। कृत्रिम चोदह रत्न बनाये। षट्खण्ड विजय के लिए निकला। तिमिस्र गुफा मे देवता ने रोका और कहा—"चक्रवर्ती ही इस गुफा को पार कर सकता है और चक्रवर्ती बारह हो चुके है।" कूणिक ने कहा—"मै तेरहवां चक्रवर्ती हू।" इस अनहोनी बात पर देव कुपित हुआ और उसने उसे वही भस्म कर दिया[8]।

बौद्ध पररपरा बताती है कि उदायीभद्र ने राज्य-लोभ से उसकी हत्या की[9]।

इस विषय मे दोनो परम्पराओं की समान बात यही है कि कूणिक मर कर नरक मे गया। जैन परम्परा जहाँ तमः प्रभा का उल्लेख करती है, वहाँ बौद्ध परम्परा लोह-कुम्भीय नरक का उल्लेख करती है[10]। कुल नरक जैनो के

१. हिन्दू सभ्यता, पृ. १८९
२. "तस्स ण कूणियस्स रन्नो पउमावई नामं देवी······"
—निरयावलिक सूत्र, (पी. एल. वैद्य सपादित), पृ. ४
३. "तस्स ण कूणियस्स रण्णो धारिणी नाम देवी ······"
—औपपातिक सूत्र (सटीक), सूत्र ७, पत्र २२
४. वही, सूत्र ३३, पत्र १४४
५. आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्ध, पत्र १६७
६. आचार्य बुद्धघोष, सुमगलविलासिनी, खण्ड १, पृ १३७
७. जातक अट्ठकथा, खण्ड ४, पृ. ३४६ ; Encyclopaedia Buddhism, 317.
८ स्थानाग सूत्र वृत्ति, स्था. ४, तथा उ० ३ तथा आवश्यक चूर्णि, उत्तरार्ध, पत्र १६७-७७।
९. महावंश ४-१
१०. दीघनिकाय अट्ठकथा, खण्ड १, पृ. २६७-३८

# पण्डित भगवतीदास कृत ज्योतिषसार

**डा० विद्याधर जोहरापुरकर**

पण्डित भगवतीदास के वैद्यविनोद का परिचय हमने अनेकान्त मे प्रकाशित कराया है। इस लेख मे इन्ही की दूसरी रचना ज्योतिषसार का परिचय दिया जा रहा है।

अन्तिम प्रशस्ति (जो अशुद्ध सस्कृत तथा हिन्दी मे है) के अनुसार इस ग्रथ की रचना स० १६६४ मे पूरी हुई थी। इसकी रचना के लिए मेघराज के पुत्र बिहारीदास साधना के पुत्र उदयचंद मुनि की प्रेरणा कारण हुई थी। ग्रंथकर्त्ता भगवतीदास अग्रोतक अन्वय (अग्रवाल जाति) के वंशल गोत्र मे उत्पन्न हुए थे तथा काष्ठासघ माथुर-गच्छ के भ० गुणचन्द्र के शिष्य भ० सकलचन्द्र के शिष्य भ० महेन्द्रसेन के शिष्य थे। प्रशस्ति के मूल पद्य इस प्रकार है—

**वर्षे षोडशसत्चतुर्नवतिमिते श्रीविक्रमादित्यके**
**पंचम्यां दिवसे विशुद्धतरके मासास्वने निर्मले।**
**पक्षे स्वातिनक्षत्रयोगशुक्ले वारे बुधे सस्थिते**
**राजत्साहिसहावदीन भुवने साहिजहां कथ्यते ॥**
**श्रीभट्टारकपद्मनंदिसुधियो देवा बभूवुर्भुवि**
**काष्ठासघसिरोमणीभ्युदयदे ख्यातौ गणे पुष्करे।**

---

अनुसार सात है[1], बौद्धों के अनुसार आठ है[2]। बौद्ध परंपरा के अनुसार अजातशत्रु अनेक भवों के पश्चात् विदित विशेष अथवा विजितावी नामक प्रत्येक बुद्ध होकर निर्वाण प्राप्त करेगा[3]।

**पूर्व भव —**

कूणिक के पूर्वभवों की चर्चा भी दोनो परपराओं मे मिलती है[4]। घटनात्मक दृष्टि से दोनो चर्चाएं भिन्न है, पर तत्त्व रूप से वे एक ही मानी जा सकती है। दोनो का हार्द है—श्रेणिक के जीव ने कूणिक के जीव का किसी एक जन्म मे वध किया था।

---

१. रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमः प्रभा, महातमः प्रभा, (तरतमाप्रभा)। भगवती सूत्र, शतक १, उद्देशक ५।

२. संजीव, कालसुत्त, संघात, जालरौरव, धूमरौरव, महा-अवीचि, तपन, पतापन। (जातकट्ठकथा, खण्ड ५, पृ २६६, २७१) दिव्यावदान में ये ही नाम है, केवल जालरौरव के स्थान पर रौरव और धूमरौरव के स्थान पर महारौरव मिलता है। (दिव्यावदान, ६७), सयुत्त निकाय, अंगुत्तर निकाय तथा सुत्तनिपात मे १० नरको के नाम आये हैं—अब्बुद, निरब्बुद, अबब, अटट, अहह, कुमुद, सोगन्धिक, उप्पल, पुण्डरीक, पदुम। (स० नि० ६-१-१०; अ० नि० (PTS), खण्ड ५, पृ. १७३; सुत्तनिपात महावग्ग, कोकलिय सुत्त, ३।३६) अट्ठकथाकार के अनुसार ये नरकों के नाम नहीं, पर नरक में रहने की अवधियों के नाम हैं। आगमों में भी इसी प्रकार के काल-मानों का उल्लेख है। (उदाहरणार्थ देखे, भगवती सूत्र, शतक ६, उद्देशक ७) बौद्ध साहित्य मे अन्यत्र ५ नरको की सूची भी मिलती है। (मज्झिमनिकाय, देवदूत सुत्त) तथा जातकों मे स्फुट रूप से दूसरे नामों का उल्लेख भी है। 'लोहकुम्भी निरय' का उल्लेख भी स्फुट नामो में है (जातकट्ठकथा, खण्ड ३, पृ. २२; खण्ड ५, पृ. २६६; सुत्तनिपात अट्ठकथा, खण्ड १, पृ. ५९।)

३. Dictionary of Pali Proper Names, Vol I, P. 35.

४. जैन वर्णन—**निरयावलिका सूत्र**, घासीलालजी महाराज कृत **सुन्दर बोधिनी टीका**, पृ. १२९-१३३;
बौद्ध वर्णन—जातकट्ठकथा, सकिच्चजातक, जातक संख्या ५३०।

गच्छे माथुरनाम्नि जोजतिवरा कीर्तियशः तत्पदात्

... ... ... ... ...

तत्पट्टे गुणचंद्रदेवगणिनस्तत्पट्टपूर्वाचले
सूर्याभा सकलादिचंद्रगुरवस्तत्पट्टशोभाकराः
संजाता हि महेन्द्रसेनविपुला विद्यागुणालंकृता
नानाशास्त्रसमूहपद्धतिधरा दुर्वादिविच्छेदकाः ॥
तत्सिष्यं बुधसेवको हि सततं अग्रोतका अन्वये
वंशलगोत्रपवित्र साधुमुनयः चरणांबुजे षट्पदः ।
भगवद्दासभिधान तेन लिखितं ग्रंथमिदं ज्योतिषं
सर्वं दुःकृतकर्मना क्षयकरं जीयात् तदेतच्चिरं ॥
वर्धमान के देहुरई नौतन कोट हिसार ।
दास भगोती ने भन्यो सो पुणु परोपकार ॥
अतिविस्तरु सबु छोडके सारु लिया मथि सोइ ।
बुधि जन सबे संवारयहु हीनु अधिकु तहं होइ ॥
मेघराज सुतु साधना नाउ बिहारीदासु ।
ताको सुत गुरुभक्तियुत उदेचंदु मुणि तासु ॥
तिसु उपदेश लिख्यो कछुक ज्योतिषसारु बनाइ ।
पढहि गुर्णाह परवीण नर तिन घरि कमला थाइ ॥
सोलहसइ चौराणुवइ अस्वन सुदि बुधवारि ।
शुक्लयोग सुभ दिन तिहां स्वाति नक्षत्र विचारि ॥
तादिन लिखि पूरण भया समुझइ चतुर सुजाण ।
पचगोठि हईसार कहु क्षेम कुसल कल्याण ॥
बाजहि तूर अनंद के घरि घरि मंगलचारु ।
कवि सु भगौती इउ लवइ सदाजु हर्ष विथारु ॥

इस ग्रथ में तीन काण्ड है—प्रथम द्वादशमासफल-शुभ कथन काण्ड मे १४३ पद्य है। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार है—

पाखि अंधारइ चैतकइं वृद्धि होइं तिथि कोइ ।
पाखि चांदणे फिरि घटइ अन्न घणेरा होइ ॥०
बरसइ पून्यो साढकी मास एक सुरभिक्ष ।
पाछै होइ महर्घता समा सुभिक्ष दुभिक्ष ॥२३
दोज तीज सुदि माह को शुक्र शनीचर मेलु ।
खांडा वाजइ देसमहि रुहिर महो महि रेलु ॥४४
सनि आइच्चिहि मगलिहि जेइ कक्कह संकंति ।
अन्न महग्घा तुच्छ जलु के नर वे जुज्झंति ॥५६
चित्तस्य सेयपक्खे पडिवइ जइ सूलासरो होइ ।
ता वाइस्सइ बाऊ वरसणकालेण निब्भंतो ॥६६

इस काण्ड के अन्तिम भाग में आधारभूत ग्रंथकर्ता के रूप में लेखक ने भडुली का नाम दिया है—

पुब्बायरियहि जो भणिउ भडुलि भासिउ आसि ।
ते सब जोडि मिलाइया कविसु भगोतीदासि ॥१३८

दूसरे काण्ड का नाम नक्षत्रसार अर्घदीपक है तथा इसमें १०७ पद्य हैं। इसके उदाहरण—

यदा सूर्यसुतो पूर्वाफाल्गुनीसंस्थिता ध्रुवं ।
चिंतावस्था भवे राजा संसारं भयदारुणं ॥१४
महमूलकत्तियासु रूढो वंकं धरेइ धरणिसुवो ।
धान्नु करेइ महग्घं णरवइ-छत्तं विणासेइ ॥८३

तीसरे काण्ड में ३०१ पद्य है। इसका नाम लेखक ने नही दिया है। इसमे बारह राशियों मे ग्रहो के शुभाशुभ फल, ग्रहण के फल, १०८ केतूदय के फल, ग्रहो के मिलने तथा वक्र होने का फल और वर्षा के भविष्य आदि का वर्णन है। इसके उदाहरण—

मिथुने भास्करे जातः कर्पासं कंदमूलकं ।
सर्षपा तिलतैलं च महर्घं जायते ध्रुवं ॥
चंती पून्यो निम्मली भली भणिज्जइ लोइ ।
अह मंडलु ससि ग्रहणु मुणि उलकापातु जु होइ ॥

ऊपर के वर्णन तथा उदाहरणों से स्पष्ट होगा कि लेखक ने इस ग्रथ में सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी इन चारों भाषाओं के पद्यो का उपयोग किया है। उन्होंने ये पद्य अन्य ग्रंथों से संकलित किये हैं ऐसा निम्न कथन से प्रतीत होता है—

सुगम श्लोक जे लखे मइ अरु गुरु दिये लखाइ ।
बहु ते ग्रंथनि ढूंढकइ लिखे ठकाणी साइ ॥

इसी कारण ग्रंथ के विषय प्रतिपादन में सुसूत्रता नही आ सकी है। ये पद्य मूलतः काफी अशुद्ध भी है।

यह ज्योतिषसार ग्रथ भी उसी हस्तलिखित में मिला है जिसमे से वैद्यविनोद का परिचय पहले दिया गया है। हस्तलिखित के पत्र ५८ से ७९ तक यह ग्रथ है। यह हस्तलिखित संवत् १८१० से १८१६ तक लिखा गया है ऐसा इसकी पुष्पिकाओं से स्पष्ट होता है। इसका लेखन बुरहानपुर में लाड ज्ञाति के नेमासा भीखासा के लिए प्रेमलाभ ने पूर्ण किया था।

# "टूँड़े" ग्राम का अज्ञात जैन पुरातत्त्व

प्रो० भागचन्द्र जैन "भागेन्दु", एम. ए., शास्त्री

भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला और पुरातत्त्व को समृद्ध बनाने में मध्य प्रदेश का योगदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। मध्यप्रदेश मे वैदिक, जैन और बौद्ध सस्कृतियाँ प्राचीन काल से ही पल्लवित, पुष्पित और विकसित हुई, उनमें से अनेक स्थानों का सर्वेक्षण, अन्वेषण और अनुशीलन समय-समय पर विभिन्न मान्य विद्वानों और पुरातत्त्व प्रेमियों द्वारा किया कराया जा चुका है। किन्तु स्थानों की दूरवर्तिता' अगम्यता, दुरूहता, मार्गों और आवागमन के साधनो के अभाव, वन्य पशुओं और दस्युओ आदि के उपद्रवो तथा आतंकों के कारण बहुत से स्थानो का सर्वेक्षण, अनुशीलन और अध्ययन अभी भी शेष है। सुरक्षा के अभाव, काल के क्रूर-प्रहार और स्थानीय जनता की अनभिज्ञता तथा उदासीनताके कारण ऐसे ही महत्त्व के बहुतसे स्थान नष्ट हो गये है एव होते जा रहे है। ऐसे स्थानो के सर्वेक्षण, अध्ययन और अनुशीलन से भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला और पुरातत्त्व के क्षेत्र मे अनेक नवीन उन्मेष होंगे। मध्यप्रदेश के पन्ना जिले में "टूँड़ा" ग्राम भी ऐसा ही स्थान है, जो अब तक पुरातत्त्वज्ञो की दृष्टि से ओझल है, किन्तु अपने समृद्ध और गौरवपूर्ण अतीत के लिए उल्लेखनीय है।

**टूँड़ा**—यह ग्राम वर्तमान मध्य प्रदेश के पन्ना जिले मे स्थित है। इस ग्राम के निकट से ही जबलपुर जिले की सीमाएँ प्रारम्भ होती है। यहा पहुँचने के लिए मध्य रेलवे के कटनी-बीना लाइन के रीठी स्टेशन उतरना चाहिए। वहाँ से यह स्थान लगभग आठ मील दूर है। कटनी से सलैया जाने वाली पक्की सड़क पर पटौहा और रीठी से भी यहाँ पहुँचने के लिए रास्ते है। वहाँ से यह क्रमश: पाँच और आठ मील उत्तर में है। यहाँ जीप, साइकल और बैलगाड़ी से पहुँचा जा सकता है। यहाँ की जनसंख्या लगभग १५०० है यह ग्राम जैन और वैदिक संस्कृति का अत्यन्त समृद्ध केन्द्र रहा प्रतीत होता है। ग्राम के पूर्व में '**संन्यासियों का मठ**' तथा तालाब, पश्चिम में "**सिद्धों का मठ**" एव दक्षिण मे 'सुरई' (शिखरयुक्त) नामक बावडी और उसी के निकट एक कलापूर्ण शिव-मन्दिर विद्यमान है।

प्रस्तुत निबन्ध मे विशेषरूप से इस ग्राम के प्राचीन जैन पुरातत्त्व का अनुशीलन किया जा रहा है :—

**१. तालाब**—इसके उत्तरीय बाध पर वटवृक्ष के नीचे एक चबूतरे पर कुछ अजैन और जैन मूर्तियों के अवशेष रखे है। अजैन परम्परा मे शिवलिग, नादी हनुमान के धड से ऊपर का भाग, तथा कुछ अन्य देवियो के खडित अग रखे है। जैन परम्परा मे आदिनाथ और पार्श्वनाथ है :—

**(अ) आदिनाथ**—पद्मासन मे, ध्यानमुद्रा से ऊपर का अंश खण्डित। ऊंचाई दस इच, चौड़ाई एक फुट दस इच। कमलासन पर आसीन। इस मूर्तिखण्ड के पादपीठ मे (दाये) गोमुख यक्ष[1] तथा बाये चक्रेश्वरी यक्षी[2]

---

१. "सव्येतरोर्ध्वकरदीप्रपरश्वधाक्ष-
सूत्र तथा-धरकराकफलेष्टदान।
प्राग्गोमुखं वृषमुख वृषग वृषाक
भक्त यजे कनकभ वृषचक्रशीर्षम्।
—प० आशाधर **प्रतिष्ठासारोद्धार**, बम्बई, वि० स० १९७४, अ० ३ पद्य १२९।

२. "भर्माभाद्य करद्वयालकुलिशा चक्राकहस्ताष्टका,
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्तिरास्तेंबुजे।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भि: करै.,
पचेष्वास शतोन्नतप्रभुनता चक्रेश्वरी ता यजे॥"
—प० आशाधर, वही अ० ३, प० १५६।

इस यक्षी के लक्षणों के लिए और भी देखिये—
(i) यतिवृषभः तिलोय पण्णत्ति, ४–९३७
(ii) नेमिचन्द्रदेव: प्रतिष्ठा तिलक, ७–१ आदि।

का लघु आकृतियों में सुन्दर अंकन है स्तम्भ कृतियो के मध्य शार्दूल दिखाये गये हैं। पादपीठ में भक्तिविभोर श्रावक-श्राविका भी दर्शनीय है।

**(ब) पाश्वंनाथ**—कायोत्सर्गासन में, ऊँचाई दो फीट चार इंच, चौड़ाई ६ इंच। यद्यपि पाषाण मे दरार पड़ जाने से इस मूर्ति का अग्रभाग गिर गया है तथापि फणावली से स्पष्ट है कि यह मूर्ति पार्श्वनाथ की थी। इस मूर्ति के दोनो पार्श्वों मे भक्तिमग्न श्रावकयुगल चवर ढुरा रहे है।

**(स) पार्श्वनाथ**—इस प्रतिमा का केवल ग्रीवा से ऊपर का भाग शेष है। ऊंचाई ६ इंच, चौड़ाई एक फुट दो इंच। फणावली के अतिरिक्त तीर्थंकर का मुख और बायी ओर उड़ान भरता हुआ मालाधारी विद्याधर तथा मध्य मे छत्रा कृतिया ही शेष है। शेष अश खण्डित हो चुका है।

**२. सिद्धों का मठ**—

ग्राम के पश्चिम मे मौजूद यह मठ अब भी "सिद्धों का मडहा[३]" कहा जाता है। इसके नाम, स्थापत्य एव शिल्प-सामग्री से स्पष्ट है कि यह प्राचीन जैन मन्दिर है। यद्यपि अब इस ग्राम मे एक भी जैन धर्मानुयायी नही है, तथापि इस मठ के आस-पास की जमीन अभी भी खेती के काम मे नही लायी जाती और ग्रामवासी विभिन्न अवसरों पर इसे बडी श्रद्धा के साथ पूजते हैं। इसके आसपास के भूभाग के विभिन्न नाम भी हमें इस स्थान के वैभव तथा प्राचीनता आदि की ओर सोचने को बाध्य करते है। जैसे—इसके पूर्व के एक बडे खेत को अब भी 'तलैया' कहते है। तथा दक्षिण के बहुत बडे भूभाग को अब भी 'बाजार' कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि पहले इस स्थान के आसपास अत्यन्त समृद्ध बस्ती थी। आसपास के खडहरो से उसकी स्थिति अब भी अनुमित हो सकती है।

इस मठ का सर्वेक्षण अभी तक नही हुआ और न ही इसकी शिल्प सामग्री की सुरक्षा का ही कोई प्रबन्ध हुआ। ग्रामवासियों की श्रद्धा-भावना के कारण ही यह मठ जिस किसी रूप में सुरक्षित रहा प्रतीत होता है। यद्यपि इसका अधिकांश धराशायी हो चुका है किन्तु इसका मण्डप, प्रवेशद्वार तथा महामण्डप के कुछ खम्भे और दीवारों के कुछ अश अब भी अपने मूलरूप में मौजूद हैं। यह सपाट छत (Flat rooted) का जैन मन्दिर था, इसकी स्थिति तथा सामग्री के आधार पर स्पष्ट कहा जा सकता है। मठ के पिछले हिस्से के गिर जाने से यद्यपि अनेक मूर्तियाँ खडित हो गई हैं। बहुत सी आस-पास के खेतों तथा झाडियों मे जहाँ-तहाँ बिखरी पडीं है।

मठ के शिखर का आमलक या अन्य कोई चिन्ह यहाँ किसी भी रूप मे नही है तथा मूर्तियों की कला के आधार पर इसे ईसा की सातवी-आठवी शती की कृति माना जाना चाहिए। अग्रिम पक्तियों में इसी मठ तथा यहाँ की उन मूर्तियों का सर्वेक्षण तथा अनुशीलन किया जा रहा है, जो जमीन मे नही दबी है। आस पास के खेतो मे फैली हुई जैन-मूर्तियो तथा मठ की सामग्री में दबी हुई या जमीन मे दबी हुई जैन मूर्तियो का अनुशीलन नही किया जा सका है।

**सर्वेक्षण :**

**सिद्धों का मठ :** (उत्तराभिमुख)

**माप**—

**अधिष्ठान**—

पूर्व-पश्चिम—चौंतीस फीट।

उत्तर-दक्षिण—अड़तीस फीट छह इंच।

प्रथम अधिष्ठान पर से द्वितीय अधिष्ठान की ऊँचाई एक फुट।

**मण्डप**—

द्वितीय अधिष्ठान पर से मण्डप की ऊंचाई—सात फीट नौ इंच।

मण्डप की चौड़ाई—सात फीट तीन इंच। मण्डप मे आगे के मध्यवर्ती केवल दो स्तम्भ शेष है, जबकि पार्श्व के एक+एक=दो स्तभ टूट गये है किन्तु उनके स्थान अब भी मूल रूप में मौजूद है। परवर्ती चारो स्तभ सुरक्षित हैं और दीवार के साथ सटे हुए है। इस मडप पर आज भी सपाट छत अच्छी हालत में मौजूद है।

---

३. मडहा, संस्कृत के 'मठ' शब्द का अपभ्रंश रूप है। बुन्देलखण्ड मे आज भी 'मड़ा' शब्द बहुत प्रचलित है।

**प्रवेश-द्वार :**

ऊँचाई—छह फीट ;

चौड़ाई—चार फीट डेढ इ च ।

सिरदल के मध्य मे १'३"×७" के कोष्ठक मे एक पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण है । तीर्थंकर की हथेलियाँ, घुटने तथा मुख का कुछ भाग खडित हो गया है । इनके पार्श्व मे (दोनो ओर) त्रिभग-मुद्रा के एक-एक इन्द्र तथा उनके ऊपर मालाधारी विद्याधर (उड़ान भरते हुए) दर्शित है । तीर्थंकर के मस्तक पर तीन छत्र और उनके भी ऊपर उद्घोषक[४] का सुस्पष्ट अकन हुआ है छत्रो के दोनो ओर पद्मासन मे डेढ-डेढ इच की दो-दो तीर्थंकर आकृतियाँ भी आलिखित है ।

**महामंडप और गर्भगृह :**

प्रवेशद्वार से आगे बढने पर आठ फीट तीन इ च के अन्तर पर महामडप के खम्भो की प्रथम पक्ति प्रारभ होती है । उनमे से प्रवेश द्वार के सामने का केवल एक स्तभ खडा हुआ है, जिस पर छत के 'बैंडे' (Lintel) तथा अन्य पत्थर मौजूद है । शेष सभी धराशायी है । ग्रामवासियों का कहना है कि कुछ वर्षो पूर्व तक महा-मण्डप अच्छी स्थिति मे था । बात सत्य प्रतीत होती है । सभी सामग्री यथास्थान विद्यमान है ।

यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि इस मन्दिर मे गर्भगृह की योजना पृथक् से थी अथवा इसी महामडप मे । किन्तु महामडप के पीछे का अधिष्ठान वाला कुछ भाग आगे के हिस्से की अपेक्षा काफी सकीर्ण है । उस पर दीवार होने का भी आभास होता है । मेरा अनुमान है कि महामडप से जुडा हुआ यह भाग गर्भगृह रहा होगा । वर्तमान मे मूर्तियाँ भी इसी भाग मे रखी हुई है और इसके आसपास के भाग मे जमीन मे दबी हुई है । खुदाई होने पर इस सम्बन्ध मे अधिक प्रकाश पडने की सम्भावना है ।

वर्तमान में मठ से लगा हुआ एक प्राचीन इमली का वृक्ष है, इसी के नीचे अनेक, पद्मासन और कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ तथा शासन देवों की मूर्तियां टिकी हुई है । मेरी राय मे इस मठ के धराशायी होने मे एक कारण यह विशाल वृक्ष भी है । इसी वृक्ष के बगल से गर्भगृह की दीवार होने का आभास होता है । इस वृक्ष के नीचे दो पद्मासन और एक कायोत्सर्गासन तीर्थंकर तथा एक धरणेन्द्र (यक्ष) की मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय है । उनका परिचय निम्न प्रकार है :—

**१. आदिनाथ :—**

तीन फुट आठ इ च ऊँचे, दो फुट छह इ च चौडे तथा एक फुट छह इच मोटे शिलाफलक पर पद्मासन मे यह मूर्ति अत्यन्त सुन्दरता और भव्यता के साथ निर्मित है । पादपीठ मे आदिनाथ के यक्ष-यक्षी क्रमशः गोमुख (११"×६") तथा चक्रेश्वरी (१"×६") बहुत मोहक मुद्रा मे उत्कीर्ण है । पादपीठ मे ही, शार्दूलो के अग्रभाग मे विनयावनत श्रावक-श्राविका अपनी भव्य वेश भूषा मे निदर्शित है । आदिनाथ कमलाकृति आसन पर विराज-मान है । यद्यपि उनके दोनों हाथ खण्डित है किन्तु सौम्य और ध्यानस्थ मुख मुद्रा दर्शक को प्रभावित किये बिना नही रहती । कन्धो पर केशराशि छिटकी हुई है । श्रीवत्स अत्यन्त लघु आकार में दर्शाया गया है ।

परिकर तथा अन्य सज्जातत्त्वों का अभाव, श्रीवत्स की लघुता तथा अन्य विशेषताएँ—इसे लगभग सातवी शताब्दी की कृति सिद्ध करते है । इस मूर्ति के दोनों पार्श्वों मे एक-एक कायोत्सर्ग तीर्थंकरो की स्थिति का अनुमान खडित होने से बच रहे उनके भामडल और पैरों से ही कर सकते है ।

**२. आदिनाथ :**

चार फुट ऊँचे, एक फुट छह इच चौडे तथा एक फुट मोटे शिलापट्ट पर कायोत्सर्ग मुद्रा मे आलिखित यह मूर्ति भी आदिनाथ की है । इसके हाथ खडित हो चुके है । यद्यपि चक्रेश्वरी (यक्षी) नष्ट हो चुकी है, किन्तु गोमुख (यक्ष) अभी भी अपने मूलरूप मे उपस्थित है । आसन के शार्दूलो के पार्श्वों मे श्रद्धावनत श्रावक-श्राविका के उपर एक-एक कायोत्सर्ग तीर्थंकर तथा उनके ऊपर (दोनों ओर)

---

४. तीर्थंकर की वाणी को दुन्दुभि पीट कर त्रिलोक मे गुँजा देने वाला ।

क्रमशः एक-एक गजमुख, व्यालमुख और मकरमुख शार्दूल बहुत सुन्दरता से निर्दशित है। उनके भी ऊपर (दोनों-ओर) एक-एक कायोत्सर्ग किन्तु अब शिरविहीन तीर्थंकर दर्शाये गये है। सुन्दर मुखाकृति मुस्कराती सी प्रतीत होती है। मस्तक पर के तीनों छत्र अब भी मौजूद है, किन्तु उद्घोषक टूट गया है।

**३-आदिनाथ :**

अत्यन्त सौम्य और प्रभावशील मुखमुद्रा वाली आदिनाथ की यह प्रतिमा तीन फुट ऊँचे, दो फुट चौडे एव एक फुट मोटे शिलाफलक पर पद्मासन मे उत्कीर्ण की गयी है। इसके हाथ और पैर प्रायः खडित हो चुके है। जटाए कन्धो पर लहरा कर आदिनाथ की दीर्घकालीन तपस्या का स्मरण दिलाती हैं। इसके पादपीठ में (बायें) गोमुख यक्ष के ऊपर एक इन्द्र शेष है, जबकि दायी ओर का इन्द्र खडित हो गया है, मात्र उसके नीचे की चक्रेश्वरी (यक्षी) शेष है।

**४. धरणेन्द्र (यक्ष) :**

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के यक्ष धरणेन्द्र का यह अकेली मूर्ति, इस श्रेणी की बिरली प्रतिमाओ मे गिनी जायगी। धरणेन्द्र का अंकन प्रायः पद्मावती के साथ मिलता है। किन्तु यहाँ की कला में, उसकी स्वतन्त्र मूर्ति भी बनी, यह एक उल्लेखनीय तथ्य है। यद्यपि इस मठ मे जमीन के ऊपर मौजूद मूर्तियो मे पार्श्वनाथ की मूर्ति नहीं दिखायी पडी, तालाब पर भी पार्श्वनाथ की जो खंडित मूर्तियां मौजूद है वे भी आकार-प्रकार तथा कला आदि की दृष्टि से इससे नितान्त भिन्न है। इससे यह अनुमान सहज ही होता है कि जमीन मे दबी हुई मूर्तियों में पार्श्वनाथ की तथा यक्षी पद्मावती की भी होना चाहिए।

वर्तमान मे दो फुट एक इंच ऊँचे, दो फुट एक इंच चौडे और नौ इंच मोटे शिलापट्ट पर धरणेन्द्र[५] की खडी हुई मूर्ति है। इस मूर्ति के घुटनों से नीचे का हिस्सा खडित हो चुका है। इसमे सर्पों की फणावलि मस्तक के पीछे तो दिखायी ही गयी है, दो सर्प मालाकार होकर वक्ष पर्यन्त लटक भी रहे है। फणावलि के ऊपर लघु आकार मे पद्मासन मे तीर्थंकर पार्श्वनाथ आलिखित है। गजमुख, सिंहमुख और मकरमुख शार्दूलों की सज्जा भी दर्शनीय है। इसके दोनों ओर चार-चार हाथ है। ऊपर दोनों ओर विद्याधर युगल उडते हुए अंकित किये गये है। इस यक्ष के झीने वस्त्राभूषण भी बडे आकर्षक है।

**अन्तिम**—टूडे ग्राम के इस जैन स्मारक और मूर्तियों के अध्ययन से अनेक नये तथ्य सामने आते है। पहला यह कि इस प्रदेश मे ईसा की सातवी शती मे जैनधर्म का व्यापक प्रभाव था और आदिनाथ तथा पार्श्वनाथ की बहुत अधिक उपासना होती थी। दूसरा यह कि शिखरविहीन सपाट-छत (Flat Yooted) के मन्दिर बनते थे। इस मन्दिर के सपाट छत आदि के कारण इसका निर्माण काल छठी शती ई० तक भी पहुँच सकता है। तीसरा यह कि मूलनायक की अपेक्षा शासन-देव-देवियों की मूर्तियाँ अपेक्षाकृत काफी छोटी बनती थी, किन्तु उनकी स्वतन्त्र मूर्तियां भी बनने लगी थी। निर्माण कार्य मे स्थानीय लाल और भूरे बलुआ पत्थर का उपयोग होता था। यदि शासकीय स्तर पर या अन्य किसी ढग से उत्खनन कार्य कराया जाय तो और भी बहुत सी सामग्री प्रकाश मे आकर इस क्षेत्र के इतिहास पर नया-प्रकाश डालेगी। ●

---

५. "ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाधः
　　सव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणता।
　श्रीनागराजककुद धरणोभ्रनीलः
　　कूर्मश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम्॥"
　　—पं. आशाधर : प्र. सा., अ. ३ पद्य १५१

# संस्कृत से अरुचि क्यों

श्री गोपीलाल 'अमर' एम. ए.

संस्कृत भाषा के वाङ्मय की-सी विविधता और विपुलता संसार की किसी भी भाषा मे कदाचित् ही होगी। संस्कृत का महाग्रंथ ऋग्वेद संसार की प्राचीनतम पुस्तको मे प्रथम है। आदिकवि बाल्मीकि और महाकवि कालिदास का स्थान विश्वप्रसिद्ध कतिपय महाकवियो मे सर्वोपरि है। संस्कृत के व्याकरण की कोई जोड नही। मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू पर संस्कृत ने प्रकाश डाला है। संस्कृत मे जहाँ सहस्राब्दियों पूर्व की सभ्यता के दर्शन होते है सहस्राब्दियो के पश्चात् आने वाली सभ्यता की भविष्यवाणी भी है। संस्कृत वह भाषा है जिसमे दर्शन, विज्ञान और जीवन का अद्वितीय समन्वय मिलता है। संस्कृत साहित्य ही से विश्व के लिए शान्तिमय सन्देश प्रसारित होता है।

परन्तु उसी संस्कृत को आज की स्थिति मे देखकर हमे उस सरस्वती का स्मरण आता है जिसे ब्रह्मलोक त्याग कर मर्त्यलोक आना पडा था। सरस्वती तो फिर भी अमृत कहलाती रही परन्तु संस्कृत को 'मृत' तक कह डाला गया। आज यह स्थिति है कि संस्कृत परम्परागत पुजारी कहलाने वाले हमी लोग उससे अरुचि करने लगे है, उसके अध्ययन-मनन को अपनी गौरव हानि समझने लगे है। यही नही, संस्कृत से हमारी अरुचि उत्तरोत्तर बढ रही है जिसके उदाहरण है वे शतश: विद्यालय और पाठशालाएँ जो छात्राभाव के कारण अन्तिम साँसें ले रही है, वे दिग्गज संस्कृत विद्वान् जो इस लिए हमारे सम्मान के पात्र नही रहे कि वे केवल संस्कृतज्ञ है और वे हम और हमारे विविध नेता जिन्हे, संस्कृत विद्या का प्रचार-प्रसार तो दूर रहे, उसे यथा स्थिति कायम रखना भी दुष्कर है।

**कारण**

हाँ ब्रह्मलोक त्यागकर मर्त्यलोक मे सरस्वती को तो दुर्वासा के शाप से आना पड़ा था, लेकिन संस्कृत को उस स्थिति मे क्यो आना पड़ा? उसका तो एक ही कारण था लेकिन इसके अनेक कारण है। आइए, उन कारणों पर हम कुछ विचार करे—

**भारत के भूतपूर्व शासकों द्वारा विरोध :**

प्राचीनकाल से ही भारत अनेक आकर्षणो का केन्द्र रहा है। कदाचित् इसीलिए विदेशी शासको ने इस देश पर मनचाहा शासन किया। उनके शासन तक तो फिर भी कुशल थी पर उसे स्थाई बनाए रखने के लिए यहा की संस्कृति को भी उन्होने क्षत-विक्षत करने की चेष्टाए की। सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति प्राय: संस्कृत विद्या मे ही केन्द्रित थी। अतः उन्होने उसी पर अनेक घातक प्रहार किए, संस्कृत के विद्वानों और काव्यकारो को आश्रयहीन किया, मठ और गुरुकुल ध्वस्त किए, ग्रन्थो को अग्निसात् या जलमग्न किया और अन्ततोगत्वा उसे 'मृत भाषा' बनाकर ही छोडा।

संस्कृत की वर्तमान स्थिति के लिए ये विदेशी शासक बहुत कुछ उत्तरदायी हैं। कुछ विद्या-प्रेमी उदार-हृदय शासको की चर्चा हम नही कर रहे हैं।

**पाश्चात्य सभ्यता के प्रति मोह :**

अंग्रेजी शासनकाल में भारतीयो का मोह पाश्चात्य सभ्यता के प्रति तीव्र वेग से बढा। यह परम्परा आज भी बहुत अंशो मे कायम है। सूट-बूट से सजे आज के अप-टू डेट नौजवान को संस्कृत विद्या मे 'पण्डिताऊपन' की झलक मिलती है, उसका अध्ययन-मनन कोरा 'पुराणपथ' प्रतीत होता है। पाश्चात्य विद्वानों ने तो संस्कृत का श्रेष्ठ अध्ययन किया है लेकिन पाश्चात्य सभ्यता से मोहित इन तथाकथित भारतीय विद्वानों और नेताओं को संस्कृत में साहित्यिक और आध्यात्मिक तत्त्व नजर नहीं आते। उसमें उन्हे मनोविज्ञान और मानव-जीवन के विश्लेषक तत्त्वों की कमी खटकती है। ये भ्रान्त धारणाएं पाश्चात्य सभ्यता

के प्रति मोह से जन्मी है। और सस्कृति के प्रति अरुचि को जन्म दे रही है।

**अध्यापन शैली के दोष :**

विश्वविद्यालयो, कालिजो और कुछ स्कूलो मे सस्कृत की *शिक्षा मनोवैज्ञानिक तथा परिष्कृत शैली मे दी जाने* लगी है। परन्तु प्राचीन पद्धति की पाठशालाओ और चटशालो मे जो अध्यापन शैली प्रचलित है वह अत्यन्त दोषपूर्ण हो गई है। इनके अध्यापक मनोविज्ञान से प्रायः अपरिचित होते है। इनमे और बहुत-सी कमिया हुआ करती है। कालिदास और भवभूति के नाटको का दसो बार अध्यापन कर चुकने वाले भी अध्यापक कदाचित् उन नाटको का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने मे हिचकेगे। इन पाठशालाओ और चटशालो मे ऐसे भी कोई अध्यापक मिलेगे जिन्होने दसो बार मेघदूत का अध्यापन किया होगा, पर वे उसमे उल्लिखित स्थानों पर भौगोलिक टिप्पणिया न लिख सकेंगे। वे अध्यापक भी मिल सकते है जिनकी जिह्वा पर नाचती होगी वेद-चतुष्टय की ऋचाये लेकिन उनमें से अधिकांश ने इस युग के प्रथम वेद सस्कारक मेक्समूलर और बेवर के नाम भी न सुने होगे। मै एक ऐसे अध्यापक को जानता हू जिन्हे कई सस्कृत ग्रथ अक्षरशः मुखाग्र है, पर वे यह नही बता सकते कि उन ग्रन्थो मे आये हुये उद्धरण किन ग्रथों से लिये गये है। आश्चर्य नही जो इन पाठशालाओ और चटशालो मे ऐसे अध्यापक भी मिल जाय जिन्हे अपने वर्षो से मुखाग्र किये ग्रन्थो के ग्रन्थकारो का भी नाम ज्ञात न हो, उनके व्यक्तिगत और साहित्यिक परिचय की तो बात ही क्या !

अध्यापन करते समय ये अध्यापक वर्षों के रटे-रटाये विषय को ही टेप- रिकार्डर की भाति छात्रो के सामने रख देते है, आर्कषण और मनोविज्ञान के तत्त्व तो उस विषय मे पहले से ही नही रहते। छात्रों के अहोभाग्य जो वे उसमें से कुछ सीख निकलते है।

इन अध्यापको और पंडितो द्वारा प्रत्यक्ष मे भले ही संस्कृत के प्रति अरुचि उत्पन्न न की जाती हो, परन्तु परोक्ष मे तो ये उसके मूल कारण ही है। इनमें अध्ययन करने वाला आज का विज्ञान प्रेमी छात्र निश्चय ही इनसे कुप्रभावित होकर सस्कृत के प्रति गलत धारणा बना लेगा।

**संस्कृत के विद्वानों और विद्यालयों की शोचनीय स्थिति :**

आज सस्कृत के विद्वान और विद्यालय, दोनों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। अधिकाश विद्यालयो का सचालन विभिन्न समाजो और व्यक्तियो द्वारा किया जाता है। उनकी आय के स्रोत भी उनके सचालको तक ही सीमित रहते है। शासकीय अनुदान उन्हे प्रायः नही मिलता। ये विद्यालय संस्कृत विद्या के प्रचार के लोभ मे चलाये तो जाते है पर धनाभाव के कारण उनमे न तो शिक्षा के पर्याप्त और उपर्युक्त साधन होते है और न वहा के अध्यापको को पर्याप्त वेतन ही दिया जाता है। बहुत से विद्यालय समाज से चन्दा उगाहने के लिए प्रचारक रखे रहते है। ये प्रचारक प्राय अल्पशिक्षित और अप्रामाणिक होते है - इनके माध्यम से भी जनसाधारण की श्रद्धा और रुचि सस्कृत से हट जाती है। उधर वेतन अपर्याप्त मिलने से अध्यापक उदास रहते है और उसी उदासी मे वे छात्रो को शिक्षा देते है जिससे छात्र परिपक्व नही होने पाते। बारह वर्ष तक तन, मन और धन से जुटकर आचार्य बने, अन्त मे उसे इस आसमान छूने वाली महगाई के युग मे भी सौ या उससे भी कम रुपये मिले, इससे बढकर सस्कृत की अप्रतिष्ठा और क्या हो सकती है ?

**संस्कृत व्याकरण के आधुनिक संस्करण का अभाव**

सस्कृत का व्याकरण अपनी सुव्यवस्था और वैज्ञानिकता के लिये जगत्प्रसिद्ध है। पाणिनि और पतजलि आदि के व्याकरणो के सस्करण भी प्रामाणिक रूप मे प्रकाशित हुये है। पर बात कुछ और है। युग की माग उस व्याकरण की तो है लेकिन उसके वर्तमान सस्करण के रूप मे नही। आवश्यकता ऐसे सस्करण की है जिसमे सम्पूर्ण व्याकरण को उसका एक भी शब्द परिवर्तित किये बिना ही एक नये सिरे से, नयी शैली मे लिखा गया हो। इस प्रकार का सराहनीय प्रयत्न हुआ है कोष ग्रन्थो के विषय मे। सस्कृत के प्राचीन कोष ग्रन्थो से शब्दावली लेकर उसे आज की 'डिक्शनरियो' मे संजोया गया है जो

न केवल अधिकतर वैज्ञानिक बन पडा है बल्कि सुविधा-जनक भी हो गया है। व्याकरण के ऐसे सस्करण का अभाव भी सस्कृत के प्रति आवश्यक रुचि नही उत्पन्न होने देता।

**संस्कृत ग्रन्थों के आधुनिक शैली में प्रकाशन का अभाव :**

प्रथम तो संस्कृत के सम्पूर्ण ग्रन्थ ही प्रकाश में नही आए है और जो आ भी गये है, उनमे बहुत ही कम ऐसे है जिन्हे आधुनिक शैली मे सम्पादित और प्रकाशित किया गया है। विशेषत सस्कृत ग्रन्थो के प्रकाशन मे अर्थोपार्जन का चक्कर बहुत बडा अभिशाप बनकर सामने आया है। जिनके प्रकाशन देश-देशान्तरो मे बिकते हों उन प्रकाशको से भी अपने ग्रन्थों को अत्यन्त हीन दशा मे प्रकाशित पाकर सस्कृत निश्चय ही अपना भाग्य कोसती होगी। सैकडों उदाहरणो मे से हम एक हितोपदेश जैसे शिक्षाप्रद और विश्वप्रिय ग्रन्थ को ले। एक जगत्प्रसिद्ध प्रकाशक ने इस ग्रन्थ का एक छात्रोपयोगी सस्करण निकाला था जिसकी लाखो प्रतिया बिक चुकी होगी और बिक रही होंगी। इस सस्करण का कागज, जिल्द, छपाई, गेट अप आदि तो अत्यन्त निम्न कोटि के है ही, प्रफ की अगणित अशुद्धिया, सम्पादन की अवैज्ञानिकता, साथ मे संजोई गई टीका की क्लिष्टता, हिन्दी अनुवाद का पुरानापन और शिक्षा मनो-विज्ञान के अनुसार आवश्यक भूमिका, प्रश्नावली, परिशिष्ट आदि का अभाव इत्यादि भी शोचनीय है। कुछ ग्रन्थ ऐसे भी प्रकाशित किये गये और किये जा रहे है जो किसी भी गहनवन से कम नहीं होते। उनमें विराम चिह्नों, अनु-च्छेदो, शीर्षकों और खण्ड- उपखण्डो आदि की योजना तो होती ही नहीं, यह भी ढूँढे नही मिलता कि अध्याय या परिच्छेद कहाँ बदल गये है।

यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नही कि ऐसे प्रका-शनों से संस्कृत के प्रसार मे कितनी बाधा पहुँच पाती है। यह भी स्पष्ट है कि उत्तम प्रकाशनों के अभाव मे लाखो विद्या प्रेमियों को सस्कृत ग्रन्थो के अध्ययन से वचित रह जाना पड़ता होगा।

**समालोचना और तुलनात्मक अध्ययन की कमी :**

आज का युग समालोचना का है। वाङ्मय को प्रकाश मे लाने का सर्वोत्तम माध्यम है समालोचना। सम्कृत में इने-गिने ग्रन्थो की ही अभी समालोचना प्रस्तुत की जा सकी है। सस्कृत ग्रन्थो के तुलनात्मक अध्ययनकी भी बडी कमी है। इसी तरह विश्लेपण, व्याख्या, टीका, अनुवाद आदि बहुत मात्रा मे उपलब्ध नही है।

इन सब कमियो और अभावो की पूर्ति किये बिना सस्कृत के प्रति समुचित रुचि जाग्रत नहीं हो सकती।

**नवीन साहित्य-सर्जना की कमी :**

किसी भी उन्नत भाषा का यह प्रधान लक्षण है कि उसमे साहित्य सर्जना निरन्तर होती रहे। इस दृष्टि से वर्तमान युग मे सस्कृत भाषा को उन्नत नही कहा जा सकता। स्व० पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, डा० के० एस० नागराजन् और पण्डित क्षमाराव आदि ने कुछ साहित्य लिखा है और है भी वह उच्चकोटि का, परन्तु मात्रा की दृष्टि से वह सब नगण्य है।

**विश्वविद्यालयों द्वारा अपर्याप्त सहयोग :**

अधिकाश विश्वविद्यालयो मे सस्कृत के पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था है। संस्कृत के प्रचार-प्रसार मे उनका यह सहयोग सराहनीय है, पर पर्याप्त नहीं। आज सस्कृत की अनेक शिक्षा-सस्थाएं और परीक्षालय चल रहे है। उनमे से कुछ अत्यन्त उच्चकोटि के है और कुछ स्वय शासन द्वारा सचालित होते है। पर इन्हे भी ये विश्व-विद्यालय मान्यता नही देते। और तो और, एक शासन द्वारा सचालित विश्वविद्यालय भी है। जिसकी आचार्य परीक्षा को बी० ए० के बराबर मान्यता देने वाले दो-तीन ही विश्वविद्यालय है। फलस्वरूप बी० ए० और एम० ए० के माध्यम से पल्लवग्राही सस्कृतज्ञ तो बहुत तैयार हो रहे है, पर शास्त्री और आचार्य के माध्यम से तैयार होने वाले ठोस और पारगामी संस्कृतज्ञ, दिनों-दिन कम होने जा रहे है।

**हिन्दी के प्रति विरोध :**

कुछ अग्रेजी प्रेमी विद्वान् और नेता हिन्दी का विरोध करने पर तुले हुए हैं। हिन्दी के प्रति अपने विरोध को पुष्टतर करने के लिए वे यदा-कदा संस्कृत पर भी टूट

पडते है। वैसे भी हिन्दी के प्रति विरोध से संस्कृत के प्रति विरोध स्वयमेव हो जाता है क्योकि भाषा विज्ञान, शब्दावली, व्याकरण और सामान्य लक्षणों की दृष्टि से सस्कृत हिन्दी का प्राण है। हिन्दी के प्रति विरोध मे सस्कृत का और सस्कृत के प्रति विरोध मे हिन्दी का जीवन स्थिर नही रह सकता। हिन्दी की उन्नति के लिए सस्कृत की और सस्कृत की उन्नति के लिए हिन्दी की उन्नति अनिवार्य है।

**क्षेत्रीय भाषाओं के योगदान का अभाव :**

क्षेत्रीय भाषाओ से सस्कृत के प्रचार और प्रसार मे योगदान प्राप्त नही होता। सस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद क्षेत्रीय भाषाओ मे नही के बराबर हुआ है। इन भाषाओं मे ऐसे भी ग्रन्थ नहीं लिखे गये है जिनमे सस्कृत ग्रन्थो की समालोचना, व्याख्या और विश्लेषण आदि हो। सस्कृत और क्षेत्रीय भाषाओ के शब्दकोष जैसे सस्कृत-बगाली, सस्कृत-गुजराती और सस्कृत-मराठी आदि भी कदाचित् ही बने होगे। क्षेत्रीय भाषाओ के माध्यम से सस्कृत के अध्यापन की व्यवस्था भी आवश्यक है।

**पत्र-पत्रिकाओं के सहयोग की कमी :**

कुछ पत्र-पत्रिकाएँ सस्कृत भाषा मे भी प्रकाशित होती है। इनसे सस्कृत के प्रति रुचि का वर्धन होना स्वाभाविक है पर वह पर्याप्त नही। सस्कृतेतर पत्र-पत्रिकाओ से, उनकी अपनी समस्याओ को दृष्टिगत रखते हुए जो प्रोत्साहन सस्कृत को मिलना चाहिए वह नही मिल रहा है। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ तो सस्कृत को यदा-कदा छू भी लेती है, पर अग्रेजी और अन्य भाषाओ की पत्रिकाएँ यह भी नही करती। लेखको, कवियो, समालोचको इतिहासज्ञो और पुरातत्त्वज्ञो आदि की कलमे तो सस्कृत का पुनीत स्पर्श ही नही कर पाती, सम्पादकीय लेख भी कालिदास जयन्ती आदि जैसे महत्त्वपूर्ण अवसरो पर भी नही देखे गये है।

**विदेशों में प्रचार का अभाव :**

शासन, विभिन्न संस्थाओं और कुछ विद्या-प्रेमी श्रीमानों द्वारा भारत मे तो संस्कृत विद्या का प्रचार किसी मात्रा मे हो भी रहा है; पर विदेशों में किसी भी मात्रा मे नही। गीता, पञ्चतन्त्र और शकुन्तला आदि की भाँति और भी सैकडों ग्रन्थ, विदेशी भाषाओं में अनूदित होने योग्य है। संस्कृत साहित्य का इतिहास जर्मन और अंग्रेजी भाषाओ के अतिरिक्त किसी विदेशी भाषा में नहीं लिखा गया है। समालोचना और कोष-ग्रन्थ केवल अग्रेजी में ही सुलभ है। संस्कृत के विद्वानों, ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओं की विदेशो मे प्रचारार्थ भेजने की व्यवस्था भी अभी नगण्य है।

**शासकीय सहयोग की अपर्याप्तता :**

केन्द्रीय और राज्य शासनों का ध्यान सस्कृतकी ओर गया है; परन्तु संस्कृत की पाठशालाओ और विद्यालयो को या तो मान्यता ही न देना या प्राथमिक शालाओ के समकक्ष ही मानना, उन्हे पर्याप्त और सविशेष अनुदान न देना, सस्कृत संस्थाओं का स्वतः अत्यल्प मात्रा मे सचालन करना, सस्कृत और संस्कृतज्ञों के हितों का सर्वोपरि ध्यान न रखना आदि अनेक ऐसी कमियाँ है जिनके कारण शासन का सहयोग पर्याप्त नही कहा जा सकता।

**शिक्षा का अर्थप्रधान उद्देश्य :**

सस्कृत का उद्देश्य 'स्वान्ता सुखाय' है, जबकि आज की शिक्षा का उद्देश्य प्रधानतः अर्थोपार्जन हो गया है। एक का उद्देश्य आध्यात्मिक है और दूसरी का भोतिक। यह भी एक कारण है जिससे जन-स.धारणकी रुचि संस्कृत विद्या के प्रति उत्पन्न नही होने पाती।

**उपसंहार :**

सस्कृत विद्या के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती हुई यह अरुचि गम्भीर चिन्ता का विषय है। यह केवल एक भाषा या विद्या का ही नही प्रत्युत भारतीय सस्कृति के जीवन-मरण का प्रश्न है। अतएव देश, समाज, सस्कृति और साहित्य के कर्णधारों का ध्यान इस ओर अविलम्ब आना चाहिए।

# देवागम स्तोत्र व उसका हिन्दी अनुवाद

बालचन्द्र सिद्धान्त-शास्त्री

आचार्य उमास्वामी द्वारा विरचित तत्त्वार्थसूत्र के जिस मंगल-श्लोक में[1] आप्त के असाधारण स्वरूप का निर्देश किया गया है उस आप्त की मीमांसा—समीक्षा—रूप प्रस्तुत देवागमस्तोत्र स्वामी समन्तभद्राचार्य के द्वारा रचा गया है। यह शब्द-शरीर से कृश होते हुए भी गम्भीर अर्थरूप आत्मा से बलिष्ठ है। इसमें स्याद्वादका आश्रय लेकर गम्भीर दार्शनिक तत्त्वो का विवेचन किया गया है। स्वामी समन्तभद्र दृढश्रद्धानी जिनभक्त थे[2]। उनकी जो भी कृतियाँ उपलब्ध हैं वे सब ही प्रायः—रत्नकरण्डश्रावकाचार को छोड़कर स्तुतिपरक है। यह स्तुति भी उनकी कोरी स्तुति—मात्र गुणगाथा—न होकर गम्भीर दार्शनिक तथ्यों से परिपूर्ण है। वे तर्कणाशील होते हुए भी अतिशय विवेकी थे। प्रस्तुत देवागम अल्पमति भव्य जीवों के हितार्थ रचा गया है। उनका एक यही अभिप्राय रहा है कि आत्महितैषी जन स्याद्वादरूप समीचीन दृष्टि से आप्त को देखकर—उसके स्वरूप का निर्णय कर—उसके द्वारा उपदिष्ट तत्त्वो को यथार्थ समझते हुए तदनुसार सन्मार्ग मे प्रवृत्त हों[3]। कारण यह कि जब तक यथार्थ वस्तुस्वरूप का प्रत्यय नही होता तब तक स्थिर श्रद्धा नही हो सकती। इसी अभिप्राय से वे स्वय परीक्षाप्रधानी[4] बनकर आप्त की मीमासा मे—'आप्तमीमांसा अपर नाम प्रस्तुत देवागम की रचना मे—प्रवृत्त हुए है।

प्रस्तुत देवागम मे ११४ श्लोक—दार्शनिक सूत्रात्मक कारिकाएँ—है। प्रारम्भ मे (१–५) उन्होंने देवागमनादि रूप बाह्य वैभव, निःस्वेदता आदि रूप शारीरिक अतिशय आगमप्रणयन को महत्त्व न देकर—इन्हें अव्यभिचरित आप्त का स्वरूप न मानकर—अज्ञानादि दोषों (भावकर्मो) और आवरणो (ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मो) के अभावस्वरूप वीतरागता, मोक्षमार्गप्रणेतृत्व और सर्वज्ञता को महत्त्व दिया है[5] तथा अकाट्य अनुमान प्रमाण के द्वारा इस सर्वज्ञता को सिद्ध किया है। तत्पश्चात् यथार्थवक्तृत्व की हेतुभूत इस निर्दोषता—वीतरागता—को भगवान् अर्हंत मे सिद्ध करते हुए उन्हे आप्त मान अन्य एकान्तवादियों मे

---

१. मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्म-भूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

२. सुश्रद्धा मम ते मते स्मृतिरपि त्वय्यर्चनं चापि ते,
हस्तावञ्जलये कथाश्रुतिरतः कर्णोऽक्षि सम्प्रेक्षते।
सुस्तुत्या व्यसनं शिरोनतिपरं सेवेदृशी येन ते,
तेजस्वी सुजानोऽहमेव सुकृती तेनैव तेजःपते॥११४
—स्तुतिविद्या

३. इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छताम्।
सम्यग्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये॥
(देवागम ११४)

तदेवं निःश्रेयसशास्त्रस्यादौ तन्निबन्धनतया मङ्गलार्थतया च मुनिभिः संस्तुतेन निरतिशयगुणेन भगवताप्तेन श्रेयोमार्गमात्महितमिच्छता सम्यग्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाप्तमीमासां विदधानाः श्रद्धा-गुणज्ञताभ्या प्रयुक्तमनस. 'कस्माद् देवागमादिविभूतितोऽहं महान् नाभिष्टुतः' इति स्फुट पृष्टा इव स्वामि-समन्तभद्राचार्याः प्राहु —
(अष्टसहस्री पृ. ३)

४ ·········इति तद्वत्तया भगवन् नोऽस्माकं परीक्षाप्रधानानां महान् न स्तुत्योऽसि। आज्ञाप्रधाना हि त्रिदशादिक [त्रिदशागमादिक] परमेष्ठिन. परमात्मचिह्नं प्रतिपद्येरन्, नास्मदादयस्तादृशो मायाविष्वपि भावात्। (अष्टसहस्री पृ. ३)

५. ·········इत्यावरणस्य द्रव्यकर्मणो दोषस्य च भावकर्मणो भूभृत इव महतोऽत्यन्तनिवृत्तिसिद्धेः कर्मभूभृता भेत्ता मोक्षमार्गस्य प्रणेता स्तोतव्यः समदतिष्ठते विश्वतत्त्वाना ज्ञाता च। (अष्टसहस्री पृ. ५५)

सदोषता के कारण उस आप्तता का निषेध व्यक्त किया है (६-७)।

भाव-अभाव, एक-अनेक, भेद-अभेद और नित्यत्व-अनित्यत्वादि परस्पर विरोधी दिखनेवाले तत्त्वों में से किसी एक ही तत्त्व को अथवा परस्पर निरपेक्ष दोनो को भी मानने वाले उन एकान्तवादियो के यहाँ चूंकि पुण्य-पाप और इहलोक-परलोक आदि की व्यवस्था सम्भव नही है, अतएव वे न केवल परवचक है, अपि तु आत्मवचक भी है—स्वय अपना भी अहित करने वाले है। इसीलिए ऐसे दुराग्रहियों को तो स्व-परशत्रु ही समझना चाहिए (८)। इस प्रकार प्रारम्भ मे स्थिर भूमिका को बाधकर आगे के ग्रन्थ मे ऐसे ही कुछ एकान्तवादों का विवेचन किया गया है—

### भाव-अभाव एकान्त

इनमें प्रथमतः भावैकान्त का विवेचन करते हुए कहा गया है कि वस्तु को यदि सर्वथा सद्भावरूप ही स्वीकार कर अभाव का—अन्योन्याभाव, प्रागभाव, प्रध्वसाभाव और अत्यन्तताभाव इन अभावो का—सर्वथा प्रतिषेध किया जाता है तो इन अभावो के अभाव मे क्रम से सबके सर्वरूपता, अनादिता, अनन्तता और निःस्वरूपता का—जीव की चेतनता और अजीव की जड़ता जैसे नियत वस्तु स्व-रूप के अभाव का—प्रसग अनिवार्य प्राप्त होगा (९-११)।

इसके विपरीत भाव को न मानकर केवल अभाव को—सकल शून्यता को—ही माना जाता है तो सद्भाव स्वरूप वस्तुमात्र के अभाव मे बोध—विवक्षित अभीष्ट तत्त्व की सिद्धि और अनिष्ट वस्तुस्वरूप को दूषित करने रूप ज्ञान (स्वार्थानुमान)—और वाक्य—अन्य को समझा सकने योग्य वचन (परार्थानुमान)—का भी विलोप अवश्यभावी है। तब वैसी दशा मे वस्तुस्वरूप को स्वय कैसे समझा जा सकता है तथा अन्य को समझाया भी कैसे जा सकता है—वैसी दशा मे (ज्ञान और शब्द के अभाव में) स्वय को अभीष्ट उस अभावैकान्त को भी सिद्ध नही किया जा सकता है (१२)।

परस्पर निरपेक्ष—स्याद्वाद सरणि के बिना—भाव व अभाव दोनों के मानने मे विरोध का प्रसग दुर्निवार होगा। इसके अतिरिक्त तत्त्व को भाव व अभावरूप से यदि सर्वथा अवक्तव्य—नहीं कहा जा सकने योग्य—माना जाय तो वैसी स्थिति में 'तत्त्व अवक्तव्य है' इस प्रकार कहना भी अयुक्त होगा (१३)।

इस प्रकार भाव और अभाव के दुराग्रह को दूर करते हुए पूर्व मे (६) अविरुद्ध वक्तृत्व की सिद्धि में जो यह कहा गया था कि 'आपका अभीष्ट तत्त्व किसी प्रमाण के द्वारा खण्डित नही होता' इसकी यथार्थता के स्पष्टीकरण स्वरूप स्याद्वाद का आश्रय लेकर कथंचित् भावाभावादि रूप—स्यादस्ति, स्यान्नास्ति इत्यादि—सात भगो की योजना नयविधि के अनुसार की गई है और वहाँ (२०) कहा गया है कि हे भगवन् इस प्रकार स्याद्वाद की भित्ति पर खड़ा होने से आपके शासन मे—अभीष्ट तत्त्व में—किसी प्रकार का विरोध सम्भव नही है। वस्तु की अर्थ-क्रिया—प्रवृत्ति-निवृत्ति की साधनता—भी तभी बन सकती है जब कि उसे भाव (विधि) अथवा अभाव (निषेध) स्वरूप से निर्धारित न किया जाय। यह अवश्य है कि अनन्तधर्मात्मक वस्तु के उन धर्मों में प्रत्येक अपने पृथक्-पृथक् प्रयोजन को लिए हुए है। अतः प्रयोजन के अनुसार उन विविध धर्मों में जब किसी एक धर्म की विवक्षा की जाती है तब वह मुख्य व इतर सब गौण हो जाते है, पर उनका कुछ लोप नही हो जाता—आवश्य-कतानुसार उनमे से प्रत्येक को प्रमुखता प्राप्त हुआ करती है। प्रकरण के अन्त में यह भी निर्देश कर दिया है कि इसी प्रकार से इस सप्तभंगी की योजना एक-अनेक व नित्य-अनित्य आदि इतर परस्पर विरोधी दिखाने वाले धर्मों के विषय मे भी करना चाहिए (१४-२३)।

### अद्वैत-द्वैत एकान्त

इस प्रकरण में प्रथमतः अद्वैत एकान्त पर विचार करते हुए कहा गया है कि यदि सर्वथा अद्वैत—एकमात्र परब्रह्म विज्ञान, शब्द अथवा चित्ररूपता आदि—को मानकर इतर सभी पदार्थों का प्रतिषेध किया जाता है तो वैसी अवस्था में कर्ता आदि कारको और अवस्थिति व गमनादि क्रियाओं में जो प्रत्यक्षतः भेद देखा जा रहा है वह विरोध को प्राप्त होगा। इस पर कहा जाता है कि वह कारकभेद और क्रियाभेद तो एक मे भी सम्भव है, वह भला विरोध

को क्यों प्राप्त होगा ? उदाहरणार्थ वृक्ष के एक होते हुये भी उसमे कर्ता आदि कारकों का भेद इस प्रकार देखा जाता है—वृक्ष वन मे स्थित हो रहा है (कर्ता), वृक्ष को बेले लिपट रही है (कर्म), वृक्ष के द्वारा गिरता हुआ हाथी मारा गया (करण), वृक्ष के लिए जल देना चाहिए (सम्प्रदान), इत्यादि[1]। इसी प्रकार अग्नि के एक होते हुए भी उसमें जलाने और पकाने आदि जैसा क्रियाभेद देखा ही जाता है। परन्तु यह कहना ठीक नही है, क्योंकि यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि अद्वैत मे वह भेद सम्भव है तो यह बताया जाय कि उक्त भेद नित्य है या अनित्य ? नित्य तो वह हो नही सकता, क्योंकि, जब तब ही वह देखा जाता है—सर्वदा नही देखा जाता। तब यदि उसे अनित्य माना जाता है तो पुन. यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अनित्य होने पर वह उत्पन्न कहाँ से हुआ ? उत्तर मे यदि यह कहा जाय कि उसी परब्रह्म से (अथवा विज्ञान आदि से) तो ऐसी अवस्था मे अद्वैतैकान्त का विघातक कारण-कार्य का भेद आकर उपस्थित होता है, क्योकि, अपने आपमे कभी किसी की उत्पत्ति सम्भव नही है (२४)।

उपर्युक्त अद्वैत की कल्पना मे पुण्य-पाप, उनका फल—सुख-दुख, इहलोक-परलोक, ज्ञान-अज्ञान और बन्ध-मोक्ष की भी जो द्विविधता प्रमाणसिद्ध दिख रही है वह असम्भव हो जावेगी। इसके अतिरिक्त इन अद्वैतवादियों से पूछा जा सकता है कि प्रत्यक्ष के अगोचर उस अद्वैत की सिद्धि आप क्या किसी हेतु (युक्ति) से करते है या बिना ही हेतु के ? यदि उसकी सिद्धि किसी हेतु से की जाती है तो वह हेतु और साध्यभूत अद्वैत ये दो पदार्थ उस अद्वैत के विघातक स्वय सिद्ध हो जाते है। ऐसी अवस्था मे वह सर्वथा अद्वैत कहा रहा ? इसके विपरीत यदि यह कहा जाय कि उसकी सिद्धि हेतु के बिना आगम से की जाती है तो ऐसा मानने में भी द्वैत का प्रसंग अनिवार्य रहेगा, क्योकि अद्वैत के अतिरिक्त आगम को भी मानना पड़ता है। और यदि हेतु व आगम दोनों के बिना ही उस अद्वैत की सिद्धि की जाती है तो फिर वचन मात्र से द्वैत की भी सिद्धि क्यों न हो जायगी ? अभिप्राय यह है कि कहने मात्र से कभी किसी तत्त्व की सिद्धि नहीं होती। उसके लिये युक्ति आदि का आश्रय लेना ही पड़ता है। इसके साथ यह भी एक अटल नियम है कि निषेध्य वस्तु का निषेध उसकी विधिपूर्वक ही हुआ करता है। उदाहरणार्थ गाय-भैंस आदि इतर पशुओं मे जब सीग उपलब्ध होते है तभी घोडा व गधे आदि के उनका निषेध किया जाता है, अन्यथा उनके निषेध की कल्पना ही नही हो सकती थी। तदनुसार द्वैत के बिना उसका निषेध—अद्वैत—भी सम्भव नही है (२५-२७)।

इसके विपरीत जो वैशेषिक, नैयायिक और बौद्ध आदि विविध द्रव्य-गुणादि पदार्थों को परस्पर मे सर्वथा पृथक् ही स्वीकार करते है—परस्पर मे किसी भी अपेक्षा से अभेद नही मानते है—उनके इस अभिमत को अयुक्तिसगत बतलाते हुए प्रथमतः वैशेषिको को लक्ष्य करके कहा गया है कि जिस पृथक्त्व गुण के आश्रय से द्रव्य और गुण आदि पदार्थों मे सर्वथा पार्थक्य स्वीकार किया जाता है वह पृथक्त्व गुण उन द्रव्य और गुण आदि से अपृथक् है या पृथक् ? अपृथक् तो उसे माना नही जा सकता, क्योकि, वैसा मानने पर अभीष्ट पृथक्त्वैकान्त का विरोध, होता है—गुण और गुणी आदि पदार्थों मे जो वैशेषिकों के द्वारा सर्वथा पृथक्ता स्वीकार की गई है वह बाधा को प्राप्त होती है। तब यदि उसे उक्त द्रव्य और गुण से पृथक् ही माना जाता है तो फिर उसके उनसे सर्वथा पृथक् रहने पर तत्कृत पृथक्ता उनमे नही रहती—इस प्रकार से तो उक्त द्रव्य-गुण अपृथक् ही ठहरते है। कारण यह कि कथंचित् तादात्म्यके बिना जैसे घट और पट सर्वथा भिन्न है वैसे ही उस पृथक्त्व गुण के भी उनसे सर्वथा भिन्न रहने के कारण 'उनका यह गुण है' यह भी नही कहा जा सकता; क्योंकि वैशेषिक मतानुसार वह किसी एक पृथक्त्ववान् मे नही रहता—अनेक मे युगपत् उसका अवस्थान माना गया है, जो असगत है (२८)।

बौद्ध सम्प्रदाय में एकत्व (अभेद) को किसी प्रकार से

---

१. वृक्षस्तिष्ठति कानने कुसुमिते वृक्ष लता: सश्रिता:
वृक्षेणाभिहतो गजो निपतितो वृक्षाय देय जलम्।
वृक्षादानय मञ्जरी कुसुमिता वृक्षस्य शाखोन्नता
वृक्षे नीडमिद कृतं शकुनिना हे वृक्ष किं कम्पसे ॥
दूसरा उदाहरण 'धर्म: सर्वसुखाकरो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्वते' आदि भी है।

भी स्वीकार न कर विवक्षित सन्तान व इतर सन्तान गत भिन्न भिन्न क्षणक्षयी विशेषों को ही माना गया है। इसे लक्ष्य में रखकर यहां कहा गया है कि एकत्व के अपलाप मे सन्तान, समुदाय, साधर्म और परलोक गमन—जो निर्बाध सिद्ध है—नही बनता। यथा—सन्तान की व्यवस्था तब तक नहीं बन सकती जब तक विविध सन्तानों में—देवदत्त चित्तक्षणों और जिन दत्त चित्तक्षणों मे—अन्वय-रूप से रहने वाली पृथक् पृथक् एक आत्मा को स्वीकार किया जाय। इन सन्तान क्षणो मे परस्पर और इतर सन्तान क्षणो से सर्वथा पार्थक्य के होने पर यह अमुक सन्तान है, यह व्यवस्था बन ही नही सकती है। इसी प्रकार एक स्कन्ध के अवयवो मे रहने वाला समुदाय भी तभी बन सकता है जब उनमे देश की समनन्तरतारूप एकता को स्वीकार कर लिया जाय। अन्यथा, अन्य स्कन्ध के अवयवों के समान विवक्षित स्कन्ध के अवयवो मे भी सर्वथा भेद के रहने पर विवक्षित समुदाय की भी व्यवस्था कैसे वन सकती है? इसी प्रकार सदृशता रूप एकता के बिना साधर्म और एक अन्वित आत्मा के बिना परलोक की भी व्यवस्था असम्भव होगी दूसरे, ज्ञान को यदि सत्-स्वरूप से भी ज्ञेय से पृथक् माना जाता है तो ऐसी अवस्था में ज्ञान असत् ही ठहरता है। और जब ज्ञान ही असत् हो गया तब उसके बिना ज्ञेय की सत्ता सुतरा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार से इस मान्यता मे बाह्य और अभ्यन्तर दोनो ही तत्त्वो का लोप हो जाता है (२९-३०)।

इसके अतिरिक्त बौद्धमतानुसार सकेत की शक्यता न होने से शब्दो द्वारा विशेषो का कथन नही होता—वे अवाच्य है। शब्दो का अभिधेय सामान्य है। परन्तु उन्ही की मान्यता के अनुसार सामान्य अवस्तुभूत है, अतः उसका वस्तुतः अभाव ही समझना चाहिये। इस प्रकार शब्दों का अभिधेय जब अवस्तु है—वस्तुभूत नही है—तव वैसी अवस्था मे सकेतग्रहण और शब्दों के उच्चारण से क्या लाभ है—वह निरर्थक ही सिद्ध होता है। इस प्रकार से उनकी उक्त मान्यता के अनुसार समस्त वचन असत्य ठहरते है (३१)।

आगे जाकर परस्पर की अपेक्षा से रहित उन दोनों (पृथक्त्व-अपृथक्त्व) के मानने मे विरोध और अवाच्य बतलाने मे उसकी भी अशक्यता को पूर्व के समान (१३) प्रगट करके यह सिद्ध किया गया है कि जिस प्रकार ऐक्य से निरपेक्ष होने के कारण पृथक्त्व अवस्तु है उस तथा पृथक्त्व से निरपेक्ष होने के कारण ऐक्य भी अवस्तु है उस प्रकार स्याद्वाद सिद्धान्त के अनुसार एक दूसरे की अपेक्षा रखने से वे दोनो अवस्तुभूत नही है, किन्तु वस्तुभूत व अविरुद्ध हो है। जैसे साधन—विपक्षाद् व्यावृत्ति से निरपेक्ष सपक्षसत्व और सपक्ष सत्व से निरपेक्ष विपक्षाद् व्यावृत्ति मै साधन असाधन होता है, पर विपक्षाद् व्यावृत्ति से सापेक्ष सपक्ष सत्व और सपक्ष सत्व सापेक्ष विपक्षाद् व्यावृत्ति के मानने पर वह साधन साधन ही होता है, असाधन नही। इसी को स्पष्ट करते हुए आगे कहा गया है कि सत्सामान्य की अपेक्षा सभी जीवादि पदार्थो मे एकता (अभेद) और है क्योकि द्रव्यभी सत् है, गुण भी सत् है, इस प्रकार निर्बाध एकत्व की प्रतीति उन सब मे देखी जाती है। साथ ही यह द्रव्य है, गुण नही है, यह गुण है, द्रव्य नही है; इस प्रकार चूकि पृथक्त्व की प्रतीति भी उनमे अस्खलित देखी जाती है, अतएव वे पृथक् पृथक् भी हैं। इस प्रकार भेद और अभेद की विवक्षा मे उन दोनो के एकत्र रहने में कोई विरोध नही है। जैसे असाधारण हेतु—पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व और विपक्षाद् व्यावृत्ति आदि भेद की विवक्षा मे उसमे पृथक्ता है—केवलान्वयी व केवल व्यतिरेकी आदि का भेद है। साथ ही हेतुत्व सामान्य अविनाभावित्व की अपेक्षा उसमे एकता भी है। अनन्त धर्म विशेष पदार्थ मे अभीष्ट धर्म के अभिलाषियो द्वारा जो विशेषण की विवक्षा और अविवक्षा की जाती है सो सत् विशेषण—उक्त एकत्व आदि—की ही की जाती है, न कि असत् की। इस प्रकार प्रमाण सिद्ध होने से वे भेद और अभेद परमार्थ सत ही है काल्पनिक नही है। गौणता और प्रमुखता की अपेक्षा उन दोनो के एक पदार्थ मे युगपत् रहने में कुछ भी बिरोध नही है। (३२-३६)

इसी क्रम से आगे नित्यत्व-अनित्यत्व (३७-०), कार्य-कारण आदि की भिन्नता व अभिन्नता (६१-७२) अपेक्षा-अनपेक्षा (७३-७५), हेतु सिद्ध-अहेतु (आगम)

सिद्ध (७६-७८), अन्तरग-बहिरंग (७९-८७), दैव-पौरुष (८८-९१), अन्य को दुख और स्वको सुख के उत्पादन में पाप तथा अन्य को सुख और स्व को दुख के उत्पादन मे पुण्य (९२-९५), तथा अज्ञान से बन्ध व अल्पज्ञान से मोक्ष (९६-१००), इन अन्य एकान्त वादो का भी निराकरण करते हुए अनेकान्त वाद के आश्रय से उपर्युक्त उभय धर्मो के अस्तित्व को अविरुद्ध सिद्ध किया गया है।

प्रसगवश यहा कर्मबन्ध के प्रकरण मे (९८-१००) बतलाया गया है कर्मबन्ध (स्थिति-अनुभागरुप) अज्ञान से—क्रोधादि कषायों के साथ रहने वाले मिथ्या ज्ञान से—हुआ करता है, कषाय रहित अज्ञान—छद्मस्थ के अल्पज्ञान—से नही। तथा मोक्ष अरहत् अवस्थारुप जीवन मुक्ति—उस अल्पज्ञान से होतो है जो क्षीण कषाय गुण स्थान के अन्तिम समय मे होता है, न कि सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त रहने वाले मोह युक्त अल्पज्ञान से। काम-क्रोधादि-रूप कार्य—भवससार—इस कर्मबन्ध के अनुसार हुआ करता है। यहा यह कहा जा सकता है कि काम-क्रोधादि-रूप कार्य महेश्वर के निमित्त से होता है। इस आशका का निराकरण करते हुए यह कहा गया है कि वह कामादि—राग द्वेषादि की उत्पत्तिरूप—कार्य चूकि अनेक प्रकार का है, अत: उसका कारण भी अनेक स्वभाव वाला होना चाहिये, न कि नित्य व एक ही स्वभाव से सदा अवस्थित रहने वाला महेश्वर। सो वह कारण अनेक विधि कर्म का—ज्ञानावरणादि कर्मप्रकृतियों का—बन्ध ही हो सकता है। जिसके अनुरूप वह कामादि कार्य घटित होता है। और वह कारणो के अनुसार—राग द्वेष एव मोह आदि के अनुरूप—बन्ध करता है। इस पर पुन: यह आशका होती है कि यदि कामादि रूप वह कार्य—भाव ससार—कर्मबन्ध के अनुसार हुआ करता है तो बस कर्मबन्ध के समान रहते हुए किन्ही जीवों के मुक्ति और किन्ही के ससार की व्यवस्था घटित नही होती। इस आशका का निरसन करते हुए कहा गया है कि शुद्धि-भव्यत्व—और अशुद्धि—अभव्यता—के अधार से प्राणियों के मुक्ति और ससार की व्यवस्था मे किसी प्रकार का विरोध नही है। कारण यह कि वे जीव न तो साख्यों के समान सर्वथा शुद्ध माने गये है और मीमांसको के समान सर्वथा अशुद्ध ही। किन्तु वे शुद्धि—अभव्यत्व शक्ति—और अशुद्धि—अभव्य शक्ति—से संयुक्त दो प्रकार के माने गए हैं। जैसे—उड़द के अधिकांश कण पाक्य शक्ति—पकने की योग्यता—से संयुक्त होते हैं, पर उनमें ऐसे भी कुछ दाने होते है जो उस पाक्य शक्ति से रहित होते है। यह प्रत्यक्ष मे देखा गया है। उनमें शुद्धि शक्ति की अभिव्यक्ति सादि हैं, क्योंकि, उसके अभि-व्यजक जो सम्यग्दर्शन आदि है वे सादि हैं। पर अशुद्धि शक्ति—की अभिव्यक्ति अनादि है, क्योंकि, उसके अभि-व्यजक जो मिथ्यादर्शनादि है वे प्रवाह स्वरूप से अनादि है। ये शुद्धि-अशुद्धि शक्तिया चूकि स्वाभाविक है, अत: ऐसा क्यों है ? इस प्रश्न के लिए यहा कोई स्थान नही है (९८-१००)।

## प्रमाण व उसका फल

अब उपेय तत्त्व जो सर्वज्ञता व वीतरागता आदि है तथा उपाय तत्त्व जो हेतुबाद व काल लब्धिआदि है उनका ज्ञान चूकि प्रमाण और नयके आश्रय से होता है, अत: उनमे प्रथमत: प्रमाण का विवेचन करते हुए कहा गया है कि जो तत्त्व ज्ञान है—सशयादि से रहित यथार्थ ज्ञान है—उसे प्रमाण कहा जाता है। वह दो प्रकार का है—एक तो युगपत् सर्व पदार्थों के प्रतिभासन रूप केवल ज्ञान और दूसरा क्रम से होने वाला—मति, श्रुत, अवधि और मन: पर्ययस्वरूप क्षायोपशमिक—ज्ञान। स्याद्वाद व नय से संस्कृत वह तत्त्व, ज्ञान कथचित्—समस्त पदार्थों के प्रतिभास की अपेक्षा—अक्रम है, कथचित्—कुछ निय-मित विषयों के ग्रहण की अपेक्षा—क्रमभावी हैं, इत्यादि प्रकार से उक्त तत्त्वज्ञान के विषय मे सप्तभगी की योजना की सूचना की गई है (१०१)।

उनमें प्रथम प्रमाण का व्यवहित ( पारम्परित ) फल उपेक्षा है, क्योंकि, केवलज्ञान के प्रगट हो जाने पर कृत कृत्य हो जाने से राग द्वेष के अभाव मे किसी भी पदार्थ के ग्रहण और छोडने की आवश्कता नही रहती। शेष मत्या-दिरूप प्रमाण का वह फल उपेक्षा के साथ ग्रहण और त्याग के विवेक को उत्पन्न करना भी है। साक्षात् फल दोनों का ही अपने विषय मे अज्ञान की निवृत्ति है ( १०२ )।

## स्याद्वाद का विचार

वह तत्त्वज्ञान स्याद्वादनय से किसी प्रकार सस्कृत है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए आगे कहा गया है कि हे भगवन् ! आपको तथा अन्य केवलियो—को वाक्यों मे सत्-असत् और नित्य-अनित्य आदि रूप सर्वथा एकान्त के विरोधी ऐसे अनेकान्त को प्रकाशित करने वाला तथा गम्य-ध्वनित होने वाले प्रतिपक्षभूत-अर्थ के प्रति विशेषण रूप 'स्यात्' शब्द ( निपात ) ( विधि-निमत्रण आदि का द्योतक—जैसा कि जैनेन्द्र व्या० २ । ३ । १५२ मे निर्दिष्ट है—'अस् धातु के विधिलिंग के रूपभूत 'स्यात्' क्रियापद नही ) अभीष्ट है। कारण यह कि उसके बिना सम्बद्ध अर्थ का बोध सम्भव नही है। अभिप्राय यह है कि सम्बद्ध अर्थ को व्यक्त करने के लिये, स्यात् जीव:, स्यात् घट.' जैसे 'स्यात्' शब्द से युक्त वाक्यो का उपयोग करना चाहिए। यहाँ प्रयुक्त 'स्यात्' शब्द अनेकान्त का द्योतक होकर गम्य मान अजीव और अघट रूप अर्थ का सूचक भी है। इस विशेषता को प्रगट करने के कारण उसे गम्य अर्थ के प्रति विशेषण कहा गया है। ( १०३ )

आगे इस 'स्यात्' शब्द के पर्यायस्वरूप 'कथचित्' शब्द के निर्देश पूर्वक स्याद्वाद के स्वरूप को प्रगट करते हुए कहा गया है कि सर्वथा एकान्त को—नित्यत्व या अनित्यत्व आदि किसी एक ही धर्म की मान्यता रूप दुराग्रह को छोडकर जो किं-वृत्त-चिद्विधि—'किम्' शब्द से उत्पन्न चिद्विधि—अर्थात् कथचित् आदि रूप विधान है—अपेक्षा वाद है, इसका नाम स्याद्वाद है। वह स्याद्वाद सात भगो और अनेक भेद-प्रभेदरूप द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नयो की अपेक्षा रखता हुआ हेय और उपादेय की विशेषता को प्रगट करने वाला है। उसके बिना हेय-उपादेय की व्यवस्था बन नही सकती। वह स्याद्वाद रूप श्रुत वस्तुतः केवल-ज्ञान के ही समान द्रव्य पर्याय स्वरूप समस्त तत्त्वो का प्रकाशक है। भेद यदि उन दोनो मे है तो केवल यही है कि केवलज्ञान जहाँ उन सब तत्त्वो को प्रत्यक्ष रूप से ग्रहण करता है वहाँ यह स्याद्वाद परमागम उन्हे परोक्ष रूप से ग्रहण करता है—अन्य भेद उनमे कुछ भी नही ग्रहण किया जाता उसे अन्यतम—तृतीय पक्ष के रूप मे —अवस्तु ही समझना चाहिये। ( १०४-५ )

## हेतुवाद में नय व हेतु का स्वरूप

पूर्व में प्रमाणभूत तत्त्वज्ञान को स्याद्वाद और नय से सस्कृत बतलाया जा चुका है। उनमे स्याद्वाद से जहाँ परमागम अभिप्रेत है वहाँ नय से हेतुवाद अभिप्रेत इसी-लिये प्रसगानुसार यहा हेतु का निरूपण करते हुए कहा गया है कि साध्य का—साध्य के आधारभूत धर्मी का ( जैसे अग्नि के अनुमान मे पर्वत )—सधर्मा—समान धर्म वाले दृष्टान्त धर्मी ( उक्त अनुमान मे जैसे महानस ) के ही साथ—न कि विपक्ष के साथ ( विपक्ष के साथ तो उसका वैधर्म्य है )—साधर्म्य ( समानता ) होने से जो विरोध से रहित—अन्यथानुपपत्तिक स्वरूप होने से असिद्ध -विरुद्धादि हेतु दोषो से रहित—स्याद्वाद के द्वारा प्रविभक्त अनेकान्तात्मक अर्थ के विशेष को—नित्यत्व आदि को —प्रगट करता है उसे नय—नय के साथ हेतु भी—कहा जाता है। अभिप्राय यह है कि जो स्याद्वाद से प्ररूपित अनेकान्तात्मक अर्थ के विविध अगो का प्रतिपादक है उसे और अनुमान के विषयभूत साध्य के साथ अन्यथानुपपत्ति-रूप होने से जो साधक होता है उसे हेतु कहते है। 'नीयते अनेन इति नय' इस निरुक्ति के अनुसार जो गम्य अर्थ को सिद्ध करता है उसे नय हेतु कहा जाता है। ( १०६ )

स्याद्वाद और केवलज्ञान का जो विषय नही है वह अवस्तु है, यह कह आये है। तब फिर वस्तु क्या है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए यह बतलाया है कि द्रव्य और पर्याय को विषय करने वाले नय और उसकी शाख-प्रशाखाभूत उपनयो के जो तीनो कालो सम्बन्धी एकान्त हैं—विपक्ष का निराकरण न करके उसकी उपेक्षा रूप विषय ( पर्याय विशेष )—है उनके कथचित् तादात्म्य रूप समुदायक को वस्तु या द्रव्य कहते है, जो एक अनेकादि स्वरूप से अनेक प्रकार है। इस पर यदि यह कहा जाय कि एकान्तों को जब मिथ्या कहा जाता है तब उनका समुदाय भी मिथ्या क्यो न होगा; इस आशका का परिहार करते हुए यह भी कहा गया है कि यदि वे नय निरपेक्ष है—विरुद्ध धर्म का निराकरण करने वाले है—तो उनका समुदाय भी मिथ्या होगा ही। परन्तु यदि वे सापेक्ष है—विरुद्ध धर्मकर निरा-करण न करके प्रयोजन के अभाव मे केवल उनकी अपेक्षा

करने वाले हैं—तो हे भगवन ! वे आपके यहा सुनय है— मिथ्या नही है, अतः उनका समूह अर्थ क्रिया कारी होने से वस्तु ही है। इस प्रकार उनका समूह मिथ्या ही हो. ऐसा हमारे यहाँ एकान्त नही है। ( १०७-८ )

**वाक्यार्थ विषयक विचार**

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि जब वस्तु अनेकान्तात्मक है तब वाक्य के द्वारा उसका नियमन कैसे किया जा सकता है, जिससे कि प्रतिनियत विषय में लोगो की प्रवृत्ति हो सके ? इसके उत्तर स्वरूप यहाँ यह कहा गया है कि विधिरूप अथवा निषेधरूप वाक्य के द्वारा अनेकान्तात्मक वस्तुतत्व उसी प्रकार से—विधिरूप से अथवा निषेधरूप से—अवश्य नियमित किया जाता है। कारण यह कि इसके बिना—यदि वह उक्त प्रकार से नियमित नही किया जाता है तो प्रतिषेध से रहित विधि के और विधि से रहित प्रतिषेध के विशेषणता के घटित न होने से विशेषण के बिना वह विशेष्य ही न ठहरेगा। ( १०९ )

प्रत्यक्षादि प्रमाण की विषयभूत वस्तु तत्-अतत् स्वरूप है—विरुद्ध धर्म से अधिकृत है। तब यह तत्स्वरूप—विधिरूप—ही है, इस प्रकार उसे एकान्त स्वरूप से कहने वाला वचन सत्य नही हो सकता। ऐसी दशा में तत्त्वार्थ का—जीव जीवादि पदार्थों का यथार्थ उपदेश कैसे दिया जा सकता है—ऐसे असत्य वचनो के द्वारा दिया जाने वाला उपदेश यथार्थ न होने से ग्राह्य नही हो सकता है। वचन का यह स्वभाव है कि वह इतर वचनों के अर्थ के निषेध में स्वतन्त्र होकर अपने अर्थसामान्य का प्रतिपादन करता है— अपने अर्थसामान्य के प्रतिपादन के बिना वह केवल इतर वचनो के अर्थ का कथन नही करता। कारण यह कि अपने अर्थसामान्य का प्रतिपादन और इतर का निषेध इन दोनों में से किसी एक के बिना वचन का बोलना न बोलने के ही समान है— उसका उच्चारण करना निरर्थक ही है इसका भी कारण यह है कि वैसी अवस्था मे उसका विषयभूत अर्थ 'इस प्रकार से है और इस प्रकार से नही है' ऐसी प्रतीति आकाश कुसुम के समान असम्भव है। इसके अतिरिक्त 'अस्ति' इत्यादि सामान्य वचन यदि विशेष में वर्तमान है—अन्यापोह का वाचक है—तो शब्द का अर्थ जब कोई सद्भावरूप पदार्थ नही है तब वैसी अवस्था में वह ( वचन ) असत्य ही ठहरता है। कारण यह है कि शब्द का अर्थ जब अन्यापोह—अन्यव्यावृत्ति – माना जाता है तो गायको लाओं' ऐसा कहने पर अगोव्यावृत्तिरूप कोई पदार्थ नहीं है, जिसके लाने मे श्रोता प्रवृत्त हो सके। इसीलिए सत्यता का चिन्ह स्यात्कार—स्याद्वाद—ही है, क्योकि, स्याद्वाद के आश्रित वचन के बोलने में अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति होती है। तदनुसार 'गाय को लाओ' ऐसा कहने पर श्रोता स्वरूप से सत् और पर ( अश्व आदि ) रूप से असत् गाय के लाने मे प्रवृत्त होता है। अतः स्याद्वाद के आश्रित वचन सत्य और इतर असत्य है, यह सिद्ध ही है। जो प्रतिषेध्य—नास्तित्व आदि—का अविरोधी—अविनाभावी—होकर अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति का कारण होता है वही विधेय है, क्योकि, अभिप्राय—पूर्वक जिसका विधान किया जाता है वही विधेय कहलाता है। तथा आदेय और हेय की व्यवस्था भी उसी प्रकार से—परस्पर के अविनाभाव से ही—बनती है। कारण यह कि विधेय के एकान्त मे जिस प्रकार किसी की हेयता नही बनती है उसी प्रकार प्रतिषेध्य के एकान्त मे कोई भी अभीष्ट पदार्थ आदेय नहीं बनता। इससे उपर्युक्त स्याद्वाद की सिद्धि होती ही है। (११०-१३)

अन्त मे ग्रन्थकार आचार्य समन्तभद्र इस आप्तमीमासा—सर्वज्ञ विशेष की परीक्षा—की रचना विषयक अभिप्राय को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जो भव्य जीव आत्महित के—मुक्ति के—इच्छुक है वे समीचीन—सम्यग्दर्शनादि स्वरूप मोक्षमार्ग विषयक—और मिथ्या—ससार परिभ्रमण के कारण भूत मिथ्यादर्शनाविषयक—उपदेश को सत्यता और असत्यता का निर्णय कर सके, इसी अभिप्राय से यह आप्तकी मीमाँसा की गई है(११४)

**हिन्दी अनुवाद**

प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान व समन्तभद्र-भारती के अनन्य उपासक श्रद्धेय प० जुगल किशोर जी मुख्तार के द्वारा किया गया है, जो वीर-सेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन की ओर से अभी कुछ समय पूर्व (जून १९६७) ही प्रकाशित हुआ है।

इसके पूर्व इसका अनुवाद श्री प० जयचन्द्र जी छावड़ा के द्वारा भी किया जा चुका है और वह अनन्त-कीर्ति ग्रन्थमाला से प्रकाशित भी हो चुका। पं० जयचन्द जी जैसे ख्याति नामा विद्वान थे, तदनुरूप ही यह उनका अनुवाद है। उन्होंने अधिकतर कारिकागत पदो के आश्रय से कारिकाओ के अर्थ को स्पष्ट किया है, साथ ही अष्ट-सहस्री के आधार से जहा तहां कुछ विशेष अभिप्राय भी व्यक्त किया है। पर यह सब ढूढारी भाषा मे उनकी अपनी शैली का है। इससे सर्वसाधारण उससे अधिक लाभ नहीं ले पाते थे, इसके लिए शुद्ध हिन्दी मे उसके अनुवाद की विशेष आवश्यकता थी। प्रसन्नता की बात है कि इसकी पूर्ति उपर्युक्त प० जुगल किशोर जी मुख्तार के अनुभवपूर्ण अनुवाद से हो जाती है।

ग्रन्थ के सम्बन्ध मे जो पूर्व मे कुछ थोड़ा सा परिच-यात्मक विवेचन किया गया है उसे देखकर पाठक यह अनुमान लगा सकते है कि केवल ११४ श्लोको मे रचित वह छोटा सा दिखने वाला ग्रन्थ कितने गम्भीर अर्थ को लिए हुए है। यही कारण है जो उसके ऊपर आचार्य भट्ट अकलकदेवके द्वारा आठ सौ श्लोक प्रमाण 'अष्टशती' जैसो टीका लिखी गई। पर वह भी इतनी गम्भीर रही है कि साधारण जन की बात तो क्या, विशेष विद्वान् भी उसके समझने मे कठिनाई का अनुभव कर सकते थे। इसीलिए आ. विद्यानन्द ने उक्त अष्टशती से गर्भित अष्टसहस्री नाम की आठ हजार श्लोक प्रमाण विस्तृत टीका लिखी। अतः ऐसे महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद करना सरल नही है—साधारण विद्वान् के वश का यह कार्य नही है। ऐसे अर्थगम्भीर ग्रन्थो का प्रामाणिक अनुवाद उनका महान अध्येता ही कर सकता है। आदरणीय मुख्तार सा. ऐसे ही गम्भीर अध्येता—विशेषकर आ. समन्तभद्र की कृतियो के मर्मज्ञ विद्वान् है। इससे पूर्व उक्त कृतियों में से स्वयम्भूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन और रत्नकरण्डक (समीचीन धर्मशास्त्र) के अनुवाद भी उनके द्वारा सम्पन्न हो चुके हैं।

प्रकृत अनुवाद मे ग्रन्थ के हार्द को सरल व सुबोध भाषा मे व्यक्त किया गया है। यह अनुवाद मूलानुगामी होकर अन्तस्तत्त्व का भी प्रकाशक है। साधारण सस्कृत का ज्ञाता भी यदि रुचिपूर्वक संलग्नता के साथ इस अनुवाद को पढ़े तो वह ग्रन्थगत कारिकाओ के शब्दार्थ और भावार्थ को समझ सकता है। प्रकृत अनुवाद मे प्रथमतः कारिका-गत पद या वाक्य के अर्थ को काले टाइप मे व्यक्त करके तत्पश्चात् उसका स्पष्टीकरण सफेद टाइप मे दो डैस(—) चिह्नों के मध्य मे बड़ी खूबी के साथ किया गया है। इसके पश्चात् आवश्यकतानुसार यत्र तत्र विशेष व्याख्यात्मक अर्थ भी लिखा गया है।

कारिका ३१ का अर्थ—विशेषकर कोष्ठकगत सदर्भ ठीक से मुझे समझने मे नही आया, सम्भव है मुद्रणदोष कुछ रहा हो। इसी प्रकार कारिका १०६ का अर्थ भी, जिस रूप मे मुद्रित हुआ है, कुछ अव्यवस्थित सा दिखा है।

इस अनुवाद के साथ श्री प० दरबारी लाल जी न्याया-चार्य एम० ए० के द्वारा लिखी गई जो महत्वपूर्ण प्रस्ता-वना सम्बद्ध है वह भी ग्रन्थ परिचय के साथ अनेक तथ्यों पर प्रकाश डालने वाली है। इससे ग्रन्थ की महत्ता और भी बढ गई है।

मुख्तार श्री जो इस वृद्धावस्था मे इस प्रकार की आश्चर्यजनक साहित्य सेवा कर रहे है, यह अतिशय स्तुत्य है। वे दीर्घ जीवी होकर ऐसे साहित्य का सृजन करते रहे यह हार्दिक कामना है। ●

## आत्म-संबोधन !

हे आत्मन् ! अपने चैतन्य स्वरूप को जानो। उसका काम देखना जानना है। इसके अतिरिक्त जो भी काम होगा वह पर सम्बन्ध से होगा और उस पर को अपना मानना ही सर्व आपदाओ का मूल है। पर अपना न हुआ, न है, न होगा। फिर उसको अपना मानना ही अनन्त ससार का कारण है। यदि इस अनन्त ससार से वचना चाहते हो तो शीघ्र ही इससे सम्बन्ध छोड़ दो।

**—वर्णी वाणी**

# चित्तौड़ का कीर्तिस्तंभ

**श्री पं० नेमचन्द धन्नूसा जैन**

श्री जैन मन्दिर के आगे मानस्तंभ की रचना एक विशेष गौरवास्पद है। क्योंकि वह मान कषाय का हरण करनेवाला होता है, इसीलिए मानस्तंभ को जैन मदिर का पर्याय से निज मन्दिर का दर्शक कहा है। मानस्तंभ का अस्तित्व सभी सातिशय क्षेत्रों में दिखाई देता ही है। प्रायः दिगंबर जैन सप्रदाय में ही यह प्रथा प्रचलित है। समवशरण में चार दिशा के द्वार के सामने एक-एक मानस्तंभ होने की सूचना शास्त्रों मे मिलती ही है। यद्यपि इसके उद्देश्य के बारे मे विवाद है, तथापि अस्तित्व निर्विवाद ही है। मानस्तंभ का ही स्थान आगे कई जगह कीर्तिस्तभों ने ले लिया है। मानस्तभ का सुधारा हुआ रूप यानी कीर्ति स्तभ ऐसा कहा जाय तो अनुचित नही होगा।

यहां पर मै सिर्फ चित्तौड के कीर्तिस्तंभ के काल के बारे मे चर्चा करूंगा। बहुत अच्छा होता कि इस लेख के लिखने के पहले मै उस स्थान को गौरव से देख लेता। लेकिन तब तक इस विषय को बाजू भी न रख सका। इसके उल्लेख मैने तीन जगह देखे। (१) मुनि कातिसागरकृत—खंडहरों का वैभव मे (२) डा. जोहरापूरकरकृत—भट्टारक सप्रदाय मे, तथा (३) डां. ज्योतिप्रसाद जैनकृत— भारतीय इतिहास : एक दृष्टि मे।

तीनो के ही कर्तृत्व व काल के विषय पर एक मत है और वह यह कि, बघेरवाल बशी शाह जीजा के पुत्र शाह पुर्नसिह ने जिसने कारंजामे सवत १५४१ मे प्रतिष्ठा की थी—यह कीर्तिस्तभ स्थापित किया। इस नये विचार को बदलने वाला प्रभाव प्राप्त हुआ है। मै इस विचार को नया इस लिए कहता हूँ कि पहले इसका काल १२वी सदी या उसके पहले का बताया जाता था। लेकिन मुनि काति सागर के लेख के बाद इस मत मे नया पन आया। वह कैसा ? इसलिए दोनों के मत आगे देकर बाद में अपने को प्राप्त मूर्ति लेख का उल्लेख करूंगा।

(१) खण्डहरों का वैभव पृष्ठ ८३—"चित्तौड़ का कीर्तिस्तंभ-१६वीं शताब्दी की कला का भव्य प्रतीक है। उसमें जैन मूर्तियों का खुदाव आकर्षक बन पड़ा है। इसका शिल्प भास्कर्य प्रेक्षणीय है।···इस स्तंभ के सूक्ष्मतम अलंकरणों को शब्द के द्वारा व्यक्त करना तो सर्वथा असंभव ही है। इतना कहना उचित होगा कि संपूर्ण स्तभ का एक भाग भी ऐसा नहीं, जिसपर सफलतापूर्वक सुललित अकन न किया गया हो। सचमुच मे यह श्रमण सस्कृति का एक गौरव स्तभ है।

"इसकी ऊचाई ७५।।। फुट है। ३२ फुट का व्यास है। अभी तक लोग यह मानते आए है कि इसका निर्माण १२वी सदी या इसके उत्तरवर्ती काल मे बघेरवाल वंशीय शाह जीजा ने करवाया था और कुमारपाल ने इसका जीर्णोद्धार कराया।[1] एक मत ऐसा भी है कि यह वि. स. ८९५ मे बना।[2] मेरे ख्याल से उपर्युक्त दोनों मत भ्रामक है। आश्चर्य होता है निर्णायको पर कि उन्होने इसकी निर्माण शैली को तनिक भी समझने की चेष्टा नही की। अस्तु।

"इस गौरव स्तभ के निर्माता मध्यप्रदेशातर्गत कारंजा (अभी महाराष्ट्र मे है) निवासी पुर्नसिह है और १४वी शताब्दी मे उसने इसे बनवाया था। जैसा कि नादगाव के मन्दिर की एक धातु प्रतिमा के लेख से ज्ञात होता है। लेख इस प्रकार है—"स्वस्ति श्री सवत १५४१ वर्षे शाके १४९१ (१४०६)प्रवर्तमाने क्रोधिता(न)संवत्सरे उत्तर गणे[ज्येष्ठ] मासे शुक्ल पक्षे ६ दिने शुक्रवासरे स्वाति नक्षत्रे···योगे र कणे मि. लग्ने श्रीवराट् (ड्) देशे कारजा नगरे श्री सुपार्श्वनाथ चैत्यालये श्रीमूलसघे सेनगणे पुष्करगच्छे श्रीमत वृषभसेन-गणधराचार्ये पारपरागत श्रीदेववीर भट्टाचार्याः। तेषा पट्टे श्रीमद्रायराज गुरुवसुधराचार्य महावाद वादी-

(१) प्राचीन जैन स्मारक।

(२) जैन सत्य प्रकाश वर्ष ९, पृष्ठ १९९।

श्वर रायवादि पिवामहा ? सकल विद्वज्जन सार्व भौम साभिमान वादीभ सिंहाभिनय—श्रै :—[विद्य]विश्व सोमसेन भट्टारकाणामुपदेशात् श्री बघेरवाल जाति खटणाड गोत्रे अष्टोत्तर शत महोतुंगशिखरबद्धप्रसादसमुद्धरणधीर, त्रिलोक श्री जिनबिंबोद्धारक अष्टोत्तर शत श्री जिन महा प्रतिष्ठा कारक अष्टादस स्थाने अष्टादस कोटि श्रुतभंडार संस्थापक, सवालक्षबदी मोक्ष कारक, मेदपाट देशे चित्रकूट नगरे श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र चैत्यालय स्थाने निज भुजोपार्जितवित्तबलेन श्री कीर्तिस्तंभ आरोपक शाह जिजा सुत साह पुनसिंहस्य···साहदेउ तस्य भार्या पुई तुकार। तयोः पुत्रः चत्वारः। तेषु प्रथम पुत्र साह लखमण······ चैत्यालयोद्धरण धीरेण निजभुजोपार्जितवित्तानुसारेण महायात्रा प्रतिष्ठा तीर्थ क्षेत्र······।

"दुर्भाग्य से यह लेख इतना ही प्राप्त हुआ है। कारण की आगे का भाग प्रयत्न करने पर भी मैं न पढ सका। घिस सा गया है। फिर भी उपलब्ध ग्रन्थ से एक चलती हुई भ्रामक परपरा को प्रकाश मिला।

(२) भट्टारक सप्रदाय पृष्ठ ३१— देवसेन के पट्ट पर सोमसेन अधिष्ठित हुए। विदर्भ स्थित कारजा शहर में इनके शिष्य बघेरवाल जातीय पूना जी खटोड मे रहते थे। आपने १०८ मन्दिर बनवाए थे। और १८ स्थानो पर शास्त्र भडार स्थापित किए थे। चित्तौड किले पर चद्रप्रभ मन्दिर के सामने आपने एक कीर्तिस्तभ स्थापित किया था। आपका यह वृत्तान्त जिस लेख से मिलता है उसमे संवत १५४१ और शक १४६१ के अक है जो गलत है। क्योकि इन दोनो मे उक्त क्रोधिन सवत्सर नही आता है। यह विषय अनुसधान की अपेक्षा रखता है।

(३) भारतीय इतिहास : एक दृष्टि पृष्ठ ४४३-१४वी शती के उत्तरार्ध मे मेवाड के बघेरवाल जैनी साह जीजा ने चित्तौड मे प्राचीन चद्रप्रभु चैत्यालय के निकट एक सतखना उत्तुग एव अत्यन्त कलापूर्ण कीर्तिस्तभ या मानस्तभ बनवाया था। कहा जाता है इस धर्मात्मा सेठ ने १०८ प्राचीन मन्दिरो का जीर्णोद्धार, उतने ही नवीन मन्दिरो का निर्माण एवं प्रतिष्ठा की थी।···उसके गुरु दिगबराचार्य सोमसेन भट्टारक थे।

मुनि कांतिसागर ने अनेकान्त वर्ष ८ पृष्ठ १४२ में इस विषय मे चर्चा की है ऐसा पता चला है, मगर मेरे सामने वह अक नहीं है। लेकिन उनके लिखाव से इतना तो स्पष्ट है कि उनको जो अपूर्ण लेख मिला, उससे उनकी जो गलत धारणा हुई, वह उनके पूर्व अनुश्रुतियो से एकदम उलटी थी। और उनके लिखाव की ही छाप उत्तरवर्ती लेखको के लिखाव पर पडी।

मुनि श्री के ही शब्दो में मै यही कहूँगा कि वास्तु व शिल्प की दृष्टि से आपने उसका काल कैसा निश्चित किया ? या उस लेख से ही वह अनुमानित किया ? लेख से निर्माण शैली पर प्रकाश पडना शिल्प शास्त्रज्ञो के लिए अधानुकरण होगा। तो भी, जिस लेख से इसके इतिहास पर प्रकाश पड़ता है वह लेख और भी प्रकाश मे आया है। यह नया मिला हुआ लेख पीतलके नन्दीश्वर ५२ चैत्यालय की प्रतिमा पर का है, जो अकोला शहरके सेनगण दिगबर जैन मन्दिर मे सुरक्षित है। लेख इस प्रकार है—'स्वस्ति श्री सवत् १५४१ वर्षे शाके १४०६ प्रबर्तमाने मंत्रि······ सवत्सरे जेष्ठमासे शुक्ल पक्षे ११ दिने भानुवासरे······ (स्वाति) नक्षत्रे पहिरवाद्या योगे, गरकरने मत गरौ बह्लाड देशे कारजा नगरे श्री पार्श्वनाथ चैत्यालये श्री मूलसघे (इसके आगे सवालक्ष बदी मोक्षदायक तक मजमून एक ही है।)···चित्रकूट नगरे श्री कीर्तिस्तभस्यारोपक सा. जिजा सुत सा. पुनसिहस्य अम्नाये सा. देकु (३) भार्या तुकाई तयो पुत्राश्चत्वारः। तेषा मध्ये प्रथम पुत्र साह लखमन भार्या—बाई ज सुभाई सुत संघवी हसराज भार्या हिराई। द्वितीय पुत्र साह निमा। तृतीय पुत्र सघवी वीरु भार्या सघवीनी गौराई। चतुर्थ पुत्र सहदेव भार्या सहबाई।··· यात्रा प्रतिष्ठा तीर्थ क्षेत्र······रक्षा शालिनः।······सघाधिपति वीरु······परमाभ्युदय बिंबोदित···जिनालय प्रतिष्ठाप्य प्रणमन्ति।"

इस मूर्ति लेख से इतना तो स्पष्ट हुआ कि भ० सोमसेन साह जीजाके गुरु नही थे, किंतु वे सधाधिपति वीरु के गुरु थे। क्योंकि यह प्रतिष्ठा संघवी वीरु ने की थी। वे साह लखमन के तृतीय पुत्र थे। और लखमन साह पुनसिंह के आम्नाय वाले वंश मे उत्पन्न हुए थे। आम्नाय शब्द से स्पष्ट होता है कि साह जीज़ा सुत पुनसिंह का सिर्फ कीर्ति व नाम ज्ञात था। और साक्षात् सम्बन्ध बताने जैसी पर-

परा व काल ज्ञात न था। साथ ही साहू जीजा चित्तौड़ के रहिवासी थे तो ये कारंजा यानी मूल स्थान से सैकड़ो नहीं हजारों मील दूरी पर आ बसे थे। मतलब उनको निजी पूर्वजो की कीर्ति याद थी। बस उसका ही उन्होंने सिर्फ उल्लेख किया। एक विस्मृत इतिहास को जगाया; न कि निर्माण किया। अत. लेख का सवत् १५४१ यह काल श्री सोमसेन का तो है लेकिन कीर्तिस्तभ के निर्माता साह जीजा या उनके पुत्र का नही। वे कितने पूर्व हुए यह विषय सच्चे शिल्पकाल मर्मज्ञो से ठहरा जा सकता है तथा उनके अन्य कार्यक्षेत्र मे सशोधन कर उनके कर्तृत्व व काल पर प्रकाश पड़ सकता है।

शिरपुर के प्राचीन हेमाडपंथी श्री अतरिक्ष पार्श्वनाथ के मन्दिर पर जो शके १३३८ का शिलालेख है उसमे 'खटवड' शब्द पाया जाता है। अत: इस गोत्र के साहु पुरुषो का इतिहास अन्वेषनीय हुआ है। बहुत जगह इन्होने कई प्रतिष्ठाएँ की है। उन सबका सकलन करने से उनके जीवन पर तथा कार्य पर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है।

बहुत कुछ यह भी सभव है कि बघेरवाल जाति के भाट होते है, उनके पास हजारो साल की वशावली मिलती है। उनको प्राप्त कर सशोधन करने से यह कार्य पूरा हो सकता है। आशा है कोटा जिले के विद्वान इसके लिए आगे आयेगे या पूरा सहयोग देगे। इस कार्य से और भी मौलिक इतिहास पर प्रकाश पड़ेगा। अत: जिस दिन इस कार्य का प्रारंभ होगा वह हमारे लिए सुदिन ठहरेगा। अस्तु।

# महावीर का मार्ग

**मोहिनो सिंघवी**

महावीर !
चले चल ! कि बढ़े चल
यह सत्पथ है
जिस पर तू चल रहा है
यही महावीर मार्ग है
यही विजेता का पथ है
इस पर श्रद्धा टिका,
यह देख सामने
शैल शिखर
अपनी अटल श्रद्धा लिए हुए
सदा तूफानों के साथ
झूमता हुआ अडिग खड़ा है।

ओ साधक !
पीछे मुख न मोड़
यह देख कल कल करती
सरिता कंकरीले, पथरीले
पथ की परवाह न करती हुई
बहती चली जा रही है,
कहती चली जा रही
'पीछे न मुड़'
यही श्रेय है
यही प्रेय है
यही निश्रेय है
चले चल बढ़े चल

—:o:—

# दिगम्बर परम्परा में आचार्य सिद्धसेन

श्री कैलाशचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री

आचार्य सिद्धसेन जैन परम्परा के प्रख्यात तार्किक और ग्रन्थकार थे। जैन परम्परा दोनों ही शाखाओं में उन्हें समान आदर प्राप्त था। किन्तु आज उनकी कृतियों का जो समादर श्वेताम्बर परम्परा मे है वैसा दिगम्बर परम्परा में नहीं है। किंन्तु पूर्वकाल मे ऐसी बात नही थी। यही दिखाना इस लेख का मुख्य उद्देश्य है।

**नामोल्लेख :**

उपलब्ध दि० जैन साहित्य में सिद्धसेन का सर्वप्रथम नामोल्लेख अकलकदेव के तत्त्वार्थवार्तिक मे पाया जाता है। तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय के तेरहवे सूत्र में आगत 'इति' शब्द के अनेक अर्थों का प्रतिपादन करते हुए अकलकदेव ने एक अर्थ 'शब्दप्रादुर्भाव' किया है। और उसके उदाहरण मे श्रीदत्त और सिद्धसेन का नामोल्लेख किया है। यथा—

**'क्वचिच्छब्दप्रादुर्भावे वर्तते-इति, श्रीदत्तमिति सिद्धसेनमिति'**

(त० वा० पृ० ५७)

श्रीदत्त दिगम्बर परम्परा मे एक महान् आचार्य हो गये है। आचार्य विद्यानन्द ने अपने तत्त्वार्थ[1] श्लोकवार्तिक मे उन्हे त्रेसठ वादियो का जेता तथा 'जल्पनिर्णय' नामक ग्रन्थ का कर्ता बतलाया है। अत उनके पश्चात् निर्दिष्ट सिद्धसेन प्रसिद्ध सिद्धसेन ही होना चाहिए। अकलकदेव की कृतियो पर उनके प्रभाव की चर्चा हम आगे करेगे। अत: अकलकदेव ने श्रीदत्त के साथ उन्ही का स्मरण किया, यही विशेष सभव प्रतीत होता है।

**गुणस्मरण :**

विक्रम की नवी शताब्दी में दिगम्बर परम्परा मे दो जिनसेनाचार्य हुए है। उनमे से एक हरिवशपुराण के रचयिता थे और दूसरे थे महापुराण (आदिपुराण) के रचयिता। दोनों ने ही अपने-अपने पुराणों के प्रारम्भ में अपने पूर्वज आचार्यों का स्मरण करते हुए सिद्धसेन का भी स्मरण किया है।

हरिवंशपुराण मे स्मृत आचार्यो की नामावली इस प्रकार है : समन्तभद्र, सिद्धसेन, देवनन्दि, वज्रसूरि, महासेन, रविषेण, जटासिहनन्दि, शान्त, विशेषवादि, कुमारसेनगुरु और वीरसेनगुरु और जिनसेन स्वामी।

आदिपुराण में स्मृत आचार्यों की तालिका इस प्रकार है : सिद्धसेन, समन्तभद्र, श्रीदत्त, प्रभाचन्द्र, शिवकोटि, जटाचार्य, काणभिक्षु, देव (देवनन्दि), भट्टाकलक, श्रीपाल, पात्रकेसरी, वादिसिह, वीरसेन, जयसेन, कवि परमेश्वर।

प्राय: सभी स्मृत आचार्य दिगम्बर परम्परा के है। उन्हीमे सर्वोपरि सिद्धसेन को भी स्थान दिया गया है जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हरिवश पुराणकारने सिद्धसेन का स्मरण इस प्रकार किया है—

**जगत्प्रसिद्धबोधस्य वृषभस्येव निस्तुषाः।**
**बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः ॥३०॥**

जिनका ज्ञान जगत मे सर्वत्र प्रसिद्ध है उन सिद्धसेन की निर्मल सूक्तियाँ ऋषभदेव जिनेन्द्र की सूक्तियो के समान सज्जनों की बुद्धि को प्रबुद्ध करती है।

इसके पूर्व समन्तभद्र के वचनों को वीर भगवान के वचनतुल्य बतलाया है। और फिर सिद्धसेन की सूक्तियो को भगवान ऋषभदेव के तुल्य बतला कर उनके प्रति एक तरह से समन्तभद्र से भी अधिक आदर व्यक्त किया है। यहाँ सूक्तियो से सिद्धसेन की किसी रचनाविशेष की ओर सकेत प्रतीत नही होता। किन्तु महापुराण मे तो अवश्य ही उनके सन्मतिसूत्र के प्रति सकेत किया गया है। यथा—

**प्रवादिकरियूथानां केसरी नयकेसरः।**
**सिद्धसेनकविर्जीयाद्विकल्पनखराङ्कुरः ॥४२॥**

---

१. द्विप्रकारं जगौ जल्पं तत्त्वप्रातिभगोचरम्।
त्रिषष्टेर्वादिना जेता श्रीदत्तो जल्पनिर्णये ॥४५॥
—त० श्लो० वा० पृ० २८०।

सिद्धसेन कवि जयवन्त हों, जो प्रवादीरूपी हाथियो के झुण्ड के लिए सिंह के समान है तथा नय जिसके केसर (गर्दन पर के बाल) हैं और विकल्प पैने नाखून है।

सिद्धसेनकृत सन्मतिसूत्र मे प्रधान रूप में यद्यपि अनेकान्त की चर्चा है, तथापि प्रथम काण्डमे अनेकान्तवाद की देन नय और सप्तभगी की मुख्य चर्चा है। तथा दूसरे काण्ड मे दर्शन और ज्ञान की चर्चा है, जो अनेकान्त की ही अगभूत है। इस चर्चा में आगम का अवलम्बन होते हुए भी तर्क की प्रधानता है। और तर्कवाद में विकल्पजाल की मुख्यता होती है जिसमें फँसाकर प्रतिवादी को परास्त किया जाता है। अतः जहाँ सन्मतिसूत्रके प्रथमकाण्ड सिद्धसेनरूपी सिंह के नयकेसरत्व का परिचायक है, वहाँ दूसरा काण्ड उनके विकल्परूपी पैने नखों का अनुभव कराता है। दर्शन और ज्ञान का केवली मे अभेद सिद्ध करने के लिए जो तर्क उपस्थित किये गये है, प्रतिपक्षी भी उनका लोहा माने बिना नही रह सकते। अतः जिनसेनाचार्य ने अवश्य ही सन्मतिसूत्र का अध्ययन करके सिद्धसेनरूपी सिंहके उस रूपका साक्षात्परिचय प्राप्त किया था, जिसका चित्रण उन्होंने अपने महापुराणके स्मरण मे किया है।

**सन्मतिसूत्र की आगमप्रमाणरूप में मान्यता :**

यह जिनसेन वीरसेन स्वामीके शिष्य थे और वीरसेनस्वामी ने अपनी धवला और जयधवला टीका मे नयो का निरूपण करते हुए सिद्धसेन के सन्मतिसूत्र की गाथाओ को सादर प्रमाण रूप से उद्धृत किया है। दोनों टीकाओं[1] मे निक्षेपो मे नयो की योजना करते हुए वीरसेन स्वामी ने अपने कथन का सन्मतिसूत्र के साथ अविरोध बतलाते हुए सन्मतिसूत्र को आगमप्रमाण के रूप में मान्य किया है। किन्तु सन्मतिसूत्र के दूसरे काण्ड मे केवलज्ञान और केवलदर्शन का अभेद स्थापित किया गया है और यह अभेदवाद जहा क्रमवादी श्वेताम्बर परम्परा के विरुद्ध पड़ता है वहाँ युगपद्वादी दिगम्बर परम्परा के भी विरुद्ध पड़ता है। अतः सिद्धसेन के इस अभेदवादी मत को जैसे श्वेताम्बर परम्परा ने मान्य नही किया और जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने अपने विशेषावश्यक भाष्य मे उसकी कठोर आलोचना की, वैसे ही सन्मतिसूत्र को आगमप्रमाण के रूपमे मान्य करके भी वीरसेन स्वामी ने उसमे प्रतिपादित अभेदवाद को मान्य नही किया और मीठे शब्दों में उसकी चर्चा[2] करके उसे अमान्य कर दिया।

यह एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है कि एक ग्रन्थ को प्रमाणकोटि मे रखकर भी उसके अमुक मतको अमान्य कर दिया जाता है अथवा अमुक मत के अमान्य होने पर भी उस मत के प्रतिपादक ग्रन्थ को सर्वथा अमान्य नहीं किया जाता और उसके रचयिता का सादर सस्मरण किया जाता है।

**अकलंकदेव पर प्रभाव :**

आचार्य अकलकदेव आचार्य समन्तभद्र की वाणीरूपी गगा और सिद्धसेन की वाणीरूपी यमुना के सगमस्थल है। दोनों महान् आचार्यों की वाग्धाराए उनमें सम्मिलित होकर एकाकार हो गई है। समन्तभद्र के 'आप्तमीमासा' पर तो अकलकदेव ने अष्टशती नामक भाष्य रचा है, किन्तु सिद्धसेन के द्वारा तार्किक पद्धति से स्थापित तथ्यों को भी अपनी अन्य रचनाओ मे स्वीकार किया है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

नयो की पुरानी परम्परा सप्तनयवाद की है। दिगम्बर तथा श्वेताम्बर परम्पराए इस विषय मे एकमत है। किन्तु सिद्धसेन दिवाकर नैगम को पृथक् नय नही मानते। शायद इसी से वह षड्नयवादी कहे जाते है। अकलकदेव ने अपने तत्त्वार्थवार्तिक[3] में चतुर्थ अध्याय के अन्तिम सूत्र के व्याख्यान के अन्तर्गत नयसप्तभगी का विवेचन करते हुए द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नयो को सग्रहाद्यात्मक बतलाया है तथा छ ही नयो का आश्रय लेकर सप्तभगी का विवेचन किया है। तथा लघीयस्त्रय में यद्यपि नैगमनय को लिया है तथापि कारिका ६७ की स्वोपज्ञ वृत्ति मे सन्मति की गाथा १–३ की शब्दशः सस्कृत छाया को अपनाया है। यथा—

**तित्थयर वयण संगहविसेसपत्थारमूलवागरणी।**
**दव्वट्ठियो य पज्जवणओ य सेसा वियप्पासिं ॥ सन्मति।**

---

१. कसायपाहुड, भा० १, पृ० २६१। खट्खण्डागम पु० १, पृ० १५। पु० ६ पृ. २४४। पु० १३, पृ. ३५४।

२. कसायपाहुड, भा० १ पृ. ३५७।

३. पृ० २६१।

**तथा तीर्थंकरवचनसंग्रहविशेषप्रस्तावमूलव्याकरिणौ द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकौ निश्चेतव्यौ।** ल० स्वो०

सिद्धसेन ने सन्मति में एक नई स्थापना और भी की है। और वह है पर्याय और गुण मे अभेद की। अर्थात् पर्याय से गुण भिन्न नही है। यह चर्चा तीसरे काण्ड मे गाथा ८ से आरम्भ होती है। इस चर्चा का उपसहार करते हुए आचार्य सिद्धसेन ने उसका प्रयोजन शिष्यो की बुद्धि का विकास बतलाया है, क्योकि जिनोपदेश मे न तो एकान्त से भेदभाव मान्य है और न एकान्त से अभेदवाद, अतः उक्त चर्चा के लिए अवकाश नही है।

(सन्मति ३–२५, २३)

अकलकदेव ने भी तत्त्वार्थवार्तिक मे पाचवें अध्याय के 'गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ॥३७॥' सूत्र के व्याख्यान मे उक्त चर्चा को उठाकर उसका समाधान तीन प्रकार से किया है। प्रथम तो आगम प्रमाण देकर गुण की सत्ता सिद्ध की है, 'फिर गुण एव पर्यायः' समास करके गुण को पर्याय से अभिन्न बतलाया है। यही आचार्य सिद्धसेन की मान्यता है। इस पर से यह शका की गई है कि यदि गुण ही पर्याय है तो केवल गुणवत् द्रव्य या पर्यायवत् द्रव्य कहना चाहिए था—'गुण पर्याय वद् द्रव्य' क्यो कहा? तो उत्तर दिया गया कि जैनेतर मत मे गुणो को द्रव्य से भिन्न माना गया है। अतः उसकी निवृत्ति के लिए दोनों का ग्रहण करके यह बतलाया है कि द्रव्य के परि-वर्तन को पर्याय कहते है। उसी के भेद गुण है, गुण भिन्न जातीय नहीं है। इस प्रकार इस चर्चा मे भी अकलकदेव ने सिद्धसेन के मत को मान्य किया है। अतः अकलकदेव पर सिद्धसेन का प्रभाव स्पष्ट है।

**आचार्य विद्यानन्द और सिद्धसेन :**

आचार्य विद्यानन्द एक तरह से अकलंक के अनुयायी और टीकाकार थे। उन्होंने समन्तभद्र के आप्तमीमासा और उस पर अकलंकदेव के अष्टशती भाष्य को आवेष्टित करके अष्टसहस्री नामक महान् ग्रन्थ की रचना की थी। तथा जैसे न्यायदर्शन के सूत्रो पर उद्योतकर की न्यायवा-र्तिक से प्रभावित होकर अकलंकदेव ने तत्त्वार्थसूत्र पर तत्त्वार्थवार्तिक की रचना की थी, वैसे ही विद्यानन्द ने मीमासक कुमारिल के मीमांसा श्लोकवार्तिक से प्रभावित होकर तत्त्वार्थसूत्र पर तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक की रचना की थी। इस तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मे प्रथम अध्याय के अतिम सूत्र पर नयों का सुन्दर सक्षिप्त विवेचन है। इस विवेचन के अन्त मे ग्रन्थकार ने लिखा[1] है कि विस्तार से नयों का स्वरूप जानने के लिए नयचक्र को देखना चाहिए; यह नयचक सभवतया मल्लवादीकृत नयचक्र होना चाहिए; क्योंकि उपलब्ध देवसेनकृत लघुनयचक्र और माइल्ल धवल कृत नयचक्र प्रथम तो सक्षिप्त ही है, विस्तृत नही है, इनसे तो विद्यानन्द ने ही नयो का स्वरूप अधिक स्पष्ट लिखा है, दूसरे, उक्त दोनो ही ग्रन्थकार विद्यानन्द के पीछे हुए है। अतः विद्यानन्द उनकी कृतियों को देखने का उल्लेख नही कर सकते थे, अस्तु। इस नयचर्चा मे विद्यानन्द ने सिद्धसेन के षड्नयवाद को स्वीकार नही किया, वल्कि उसका विरोध किया है। उनका कहना है कि नैगमनय का अन्तर्भाव न तो संग्रह मे होता है, न व्यवहार मे और न ऋजुसूत्रादि मे। अतः परीक्षको को 'सग्रह आदि छै नय ही है' ऐसा नही कहना चाहिए।

**संग्रहे व्यवहारे वा नान्तर्भावः समीक्ष्यते।**
**नैगमस्य तयोरेकवस्त्वंशप्रवणत्वतः ॥२४॥**
**नर्जुसूत्रादिषु प्रोक्तहेतवो वेति षण्नया.।**
**संग्रहादय एवेह न वाच्याः प्रपरीक्षकैः ॥२५॥**

—त० श्लो० वा० ६,२६६।

यहा 'प्रपरीक्षक' शब्द सभवतया सिद्धसेन के लिए ही आया है, क्योकि परीक्षा के आधार पर उन्होने ही षड्-नयवाद की स्थापना की थी। परीक्षक के साथ प्रकर्षत्व के सूचक 'प्र' उपसर्ग से भी इस बात की पुष्टि होती है, क्योकि सिद्धसेन साधारण परीक्षक नही थे।

इसी तरह विद्यानन्द ने पांचवे अध्याय के 'गुणपर्याय-वद् द्रव्यम्' इस सूत्र की व्याख्या मे गुण और पर्याय मे अभेद मानकर भी सिद्धसेनानुगामी अकलक का अनुकरण नही किया, किन्तु गुण और पर्याय दोनो के ग्रहण के आधार पर एक ऐसा तथ्य फलित किया जो अनेकान्त-दर्शन के इतिहास मे उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा है—

१. संक्षेपेण नयास्तावद् व्याख्यातास्त्र सूचिताः।
तद्विशेषाः प्रपञ्चेन सचिन्त्या नयचक्रतः ॥१०२॥
त० श्लो० वा० पृ० २७६

**गुणवद्द्रव्यमित्युक्तं सहानेकान्तसिद्धये ।**
**तथा पर्यायवद्द्रव्यं क्रमानेकान्तवित्तये ॥२॥**

—त० श्लो० वा० पृ० ४३८

सहानेकान्त की सिद्धि के लिए 'गुणवद् द्रव्यम्' कहा है। तथा क्रमानेकान्त के बोध के लिए 'पर्यायवद् द्रव्यम्' कहा है।

अर्थात् अनेकान्त के दो प्रकार है: सहानेकान्त और क्रमानेकान्त। पस्स्पर में विरोधी प्रतीत होने वाले धर्मो का एक वस्तु में स्वीकार अनेकान्त है। उनमे से कुछ धर्म ऐसे होते हैं जो कालक्रम से एक वस्तु मे रहते है, जैसे सर्वज्ञता और असर्वज्ञता, मुक्तत्व और ससारित्व। गुण सहभावी होते है और पर्याय क्रमभावी होती है अतः एक से सहानेकान्त प्रतिफलित होता है तो दूसरे से क्रमानेकान्त।

इस तरह विद्यानन्द ने सिद्धसेन के मतो को अमान्य या प्रकारान्तर से मान्य करते हुए भी तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक के प्रारम्भ में ही हेतुवाद और आगमवाद की चर्चा के प्रसंग से समन्तभद्र के आप्तमीमासा के 'वक्तर्यनाप्ते' इत्यादि कारिका के पश्चात् ही प्रमाणरूप से सिद्धसेन के सन्मति से भी 'जो हेतुवादपरकम्मि' आदि गाथा उद्धृत करके सिद्धसेन के प्रति भी अपना आदरभाव व्यक्त किया है, यह स्पष्ट है।

**टीकाकार सुमतिदेव:**

विद्यानन्द से पहले और सभवतया अकलकंदेव से भी पूर्व दिगम्बर परम्परा में सुमतिदेव नाम के आचार्य हो गये हैं। श्रवण बेलगोला की मल्लिषेणप्रशस्ति में कुन्दकुन्द, सिहनन्दि, वक्रग्रीव, वज्रनन्दि और पात्रकेसरी के बाद सुमतिदेव की स्तुति की गई है और उनके बाद कुमारसेन, वर्द्धदेव और अकलकदेव की। इससे सुमतिदेव प्राचीन आचार्य मालूम होते है।

पार्श्वनाथचरित (वि० स० १०८२) के कर्ता वादिराज ने प्राचीन ग्रन्थकारों का स्मरण करते हुए लिखा है—

**नमः सन्मतये तस्मै भवकूपनिपातिनाम् ।**
**सन्मतिर्विवृता येन सुखधामप्रवेशिनी ॥२२॥**

अर्थात् उस सन्मति को नमस्कार हो जिनने भवकूप में पड़े हुए लोगों के लिए सुखधाम में पहुँचानेवाली सन्मतिको विवृत किया अर्थात् सन्मतिकी वृत्ति या टीका रची।

यह सन्मति सिद्धसेनकृत ही होना चाहिए। नमः सन्मतये' मे 'सन्मति' नाम सुमति के लिये ही आया है। दोनों का शब्दार्थ एक ही है। किन्तु सन्मति के साथ सन्मति का शब्दालंकार होने से काव्यसाहित्य में सुमति के स्थान मे सन्मति का प्रयोग किया गया है।

जैन ग्रन्थो मे तो सुमतिदेव का कोई उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु बौद्ध दार्शनिक शान्तरक्षित ने अपने तत्त्वसग्रहके स्याद्वादपरीक्षा और बहिरर्थपरीक्षा नामक प्रकरणों में सुमति नामक दिगम्बराचार्य की आलोचना की है। यह सुमति सन्मति टाका के कर्ता ही होने चाहिये। संभवतया उसी मे चर्चित मत की समीक्षा शान्तरक्षितने की है। वैसे मल्लिषेणप्रशस्ति मे उनके सुमति सप्तक नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख है। यथा—

**सुमतिदेवममु स्तुत येन वः सुमतिसप्तकमाप्ततया कृतम् ।**
**परिहृतापथतत्त्वपथार्थिनां सुमतिकोटि विवर्तिभवार्तिहृत् ॥**

अस्तु, जो कुछ हो, किन्तु इतना निश्चित है कि दिगम्बराचार्य सुमति ने, जो सम्भवतया विक्रमकी सातवीं शताब्दी से बादके विद्वान नही थे, सिद्धसेन के सन्मति पर टीका रची थी। इस तरह सिद्धसेन का सन्मतितर्क सातवीं शताब्दी से नौवी शताब्दी तक दिगम्बर परम्परा में आगमिक ग्रन्थ के रूप में मान्य रहा। संभवतया सुमतिदेव की टीका के लुप्त हो जाने पर और श्वेताम्बराचार्य अभयदेव की टीका के निर्माण के पश्चात् दिगम्बर परम्परा में उसकी मान्यता लुप्त हो गई और श्वेताम्बर परम्परा का ही ग्रन्थ माना जाने लगा। किन्तु वह एक ऐसा अनमोल ग्रन्थ है कि जैनदर्शन के अभ्यासी को उसका पारायण करना ही चाहिए। सन्मतितर्क के सिवाय, जो प्राकृतगाथाबद्ध है, संस्कृत की कुछ बत्तीसियाँ भी सिद्धसेनकृत है। उनमें से एक बत्तीसी का एक चरण पूज्यपाद देवने सर्वार्थसिद्धिटीका के सप्तम अध्याय के १३वें सूत्र की व्याख्या मे उद्धृत किया है—

**'वियोजयति चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते'**

अकलकदेव ने भी अपने तत्त्वार्थवार्तिक में उक्त सूत्र की व्याख्या में उसे उद्धृत किया है। और वीरसेन स्वामी

(शेष पृष्ठ ९६)

# भ० शुभकीर्ति और शान्तिनाथ चरित्र

पं० परमानन्द शास्त्री

शुभकीर्ति नाम के अनेक विद्वान हो गये है। उनमे एक शुभकीर्ति वादीन्द्र विशालकीर्ति के पट्टधर थे। इनकी बुद्धि पंचाचार के पालन से पवित्र थी एकान्तर आदि उग्रतपों के करने वाले तथा सन्मार्ग के विधिविधान मे ब्रह्मा के तुल्य थे, मुनियों में श्रेष्ठ और शुभप्रदाता थे[1]। इनका समय विक्रम की १३वी शताब्दी है। दूसरे शुभकीर्ति कुन्दकुन्दान्वयी प्रभावशाली रामचन्द्र के शिष्य थे[2]। और तीसरे शुभकीर्ति प्रस्तुत शान्तिनाथ चरित अपभ्रंश के रचयिता है। कवि ने अपनी गुरु परम्परा और जीवन घटना के सम्बन्ध मे कोई प्रकाश नही डाला। ग्रन्थ की पुष्पिका वाक्य मे 'उहयभासाचक्कवट्टि सुहकित्तिदेव विरइये' पद दिया है। जिससे वे अपभ्रंश और सस्कृत भाषामे निष्णात विद्वान थे। कवि ने ग्रन्थ के अन्त मे देवकीर्ति का उल्लेख किया है। एक देवकीर्ति काष्ठासघ माथुरान्वय के विद्वान थे, उनके द्वारा सं० १४९४ आषाढ वदी २ के दिन प्रतिष्ठित एक धातु मूर्ति आगरा के कचौडा बाजार के मन्दिर मे विराजमान है[3]। हो सकता है कि प्रस्तुत शुभकीर्ति देवकीर्ति के समकालीन हों, या कोई अन्य देवकीर्ति के समकालीन, यह विचारणीय है।

प्रस्तुत शान्तिनाथ चरित्र १९ सन्धियो में पूर्ण हुआ है। इसकी एकमात्र कृति नागौर के शास्त्रभडार मे सुरक्षित है। जो सवत् १५५१ की लिखी हुई है। इस ग्रन्थ में जैनियों के १६वें तीर्थकर भगवान शान्तिनाथ पचम चक्रवर्ती थे, उन्होंने षट्खण्डों को जीत कर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। फिर उसका परित्याग कर दिगम्बर दीक्षा ले तपश्चरणरूप समाधिचक्र से महादुर्जय मोहकर्म का विनाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त मे अघाति कर्म का नाश कर अचल अविनाशी सिद्ध पद प्राप्त किया। कवि ने इस ग्रन्थ को महाकाव्य के रूप मे बनाने का प्रयत्न किया है। काव्य-कला की दृष्टि मे भले ही वह महाकाव्य न माना जाय। परन्तु ग्रन्थकर्ता की दृष्टि इसे महाकाव्य बनाने की रही है। कवि ने लिखा है कि शान्तिनाथ का यह चरित वीर जिनेश्वर ने गौतम को कहा, उसे ही जिनसेन और पुष्पदन्त ने कहा, वही मैंने कहा है।

**जं अत्थं जिणराजदेव कहियं जं गोयमेणं सुव,**
**जं सत्थे जिणसेणदेव रइयं जं पुप्फदंताविहो।**
**तं अत्थ सुहकित्तिणा वि भणियं सं रूपचदत्थिय,**
**सण्णीणं दुज्जण सहावपरम पीए हिए सगद** ॥१०वी सधि

कवि ने ग्रन्थनिर्माण म प्रेरक रूपचन्द का परिचय देते हुए कहा है कि वे इक्ष्वाकुवशी (जैसवाल वश मे) आशाधर हुए, जो ठक्कुर नाम से प्रसिद्ध थे और जिन शासन के भक्त थे। इनके 'धनवउ' टक्कुर नामका एक पुत्र हुआ, उसकी पत्नी का नाम लोनावती था, जिसका शरीर सम्यक्त्व से विभूषित था, उससे रूपचन्द नाम का पुत्र हुआ जिसने उक्त शान्तिनाथ चरित्र का निर्माण कराया है कवि ने प्रत्येक संधि के अन्त मे रूपचन्द की प्रशसा सूचक आशीर्वादात्मक अनेक पद्य दिये है। उसका एक पद्य पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दिया जाता है :—

**इक्ष्वाकूणां विशुद्धो जिनवर विभवाम्नाय वंशो समांशे,**
**तस्मादाशाधरीया बहुजनमहिमा जात जंसाल वंशे।**
**लीलालंकार सारोद्भूव विभव गुणासार सत्कार लुब्धेः।**
**शुद्धि सिद्धार्थसारां परियणगुणी रूपचन्दः सुचन्द्रः॥**

कवि ने अन्त मे ग्रन्थ का रचनाकाल स० १४३६ दिया है जैसा कि उसके निम्न पद्य से स्पष्ट है :—

**आसीद्विक्रमभूपतेः कलियुगे शांतोसरे संगते,**
**सत्यं क्रोधननामधेय विपुले संवच्छरे संमते।**
**दत्ते तत्र चतुर्दशे तु परमो षट्त्रिंशके स्वांशके।**
**मासे फाल्गुणि पूर्वपक्षक बुधे सम्यक् तृतीयां तिथौ॥**

इससे स्पष्ट है कवि शुभकीर्ति १५वी शताब्दी के विद्वान है। अन्य ग्रन्थभंडारों मे शान्तिनाथ चरित्र की इस प्रति का अन्वेषण आवश्यक है। अन्यथा एक ही प्रति पर से उसका प्रकाशन किया जाय।

---

१. ················तपो महात्मा शुभकीर्तिदेव.।
एकान्तराद्युग्रतपोविधानाद्धातेव सन्मार्गविधेविधाने।
—पट्टावली शुभचन्द्रः
तत्पट्टे जनि विख्यातः पंचाचार पवित्रधीः।
शुभकीर्तिमुनिश्रेष्ठः शुभकीर्ति शुभप्रद.॥
—सुदर्शन चरित्र

२. श्री कुंदकुंदस्य वभूब वशे श्री रामचन्द्रः प्रथतः प्रभावः
शिष्यस्तदीयः शुभकीर्तिनामा तपोगना वक्षसि हारभूतः॥७
प्रद्योतते सम्प्रति तस्य पट्ट विद्याप्रभावेण विशालकीर्तिः।
शिष्यैरनेकै रुपसेव्यमानएकान्त वादादिविनाशवज्रम्॥८
—धर्मशर्माभ्युदय लिपि प्र०

३. सं० १४९४ आषाढ़ वदि २ काष्ठासंघे माथूरान्वय श्रीदेवकीर्ति प्रतिष्ठिता।

# अग्रवालों का जैन संस्कृति में योगदान

**परमानन्द शास्त्री**

उनतालीसवे विद्वान बाबू दयाचन्द जी गोयलीय है। इनका जन्म गढी अबदुल्लाखा जिला मुजफ्फरनगर मे लाला ज्ञानचन्द्र जी अग्रवाल के यहा स० १९४५ मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन हुआ था। आपने सन् १९०७ मे देहरादून से प्रथम श्रेणी म मैट्रिक क्वीन्स कालेज बनारस से एफ० ए० और महाराजा कालेज जयपुर से बी० ए० की परीक्षाएँ अच्छे नम्बरो से पास की थी। आप की विद्यार्थी अवस्था मे देहरादून मे ही सभा सोसाइटियो को देखकर समाज सेवा के भाव पैदा हो गए थे। और आपने स्कूल मे एक जैन सभा स्थापित की थी। इन्ही दिनो आप देहरादून के लाला चिरजीलाल जी सस्थापक जैन अनाथाश्रम के सम्पर्क मे आये, और उर्दू जैन प्रचारक मे लेख लिखने लगे। बनारस और जयपुर के वातावरण से आप मे जैनधर्म के अध्ययन करने की रुचि हो गई। और समाज-सेवा के भाव भी सुदृढ हुए।

आपने ललितपुर जिला झासी मे सैकण्ड मास्टर का कार्य किया, वे वहा की अभिनन्दन जैन पाठशाला के मत्री थे,। उन्होने अपने मत्रित्व काल मे पाठशाला की खूब उन्नति की। वह समय आपके अर्थ सकट का था। आपने वकालत करने का विचार किया किन्तु प० नाथूराम प्रेमी आदि मित्रों के निषेध करने पर उसका विचार छोड दिया। पश्चात् वे लखनऊ हाईस्कूल मे आ गए, और उनका अर्थसकट भी दूर हो गया।

आप ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर की प्रबन्ध-कारिणी के सदस्य भी रहे थे। और आश्रम के वार्षिक उत्सवों पर चन्दे की अपील द्वारा आश्रम को अर्थ प्राप्ति कराते थे। भारत जैन महामण्डल के जीवदया विभाग के आप मत्री थे, आपने जीवदया पर अनेक उपयोगी ट्रैक्ट लिखे थे। जैन हितैषी में आपके अनेक लेख छपे है। उनमे कुछ अग्रेजीके अनुवाद रूपमे भी है। जाति प्रबोधक नामका पत्रभी आपने निकाला था। और उसे तीन वर्ष तक चलाया।

साहित्य-सेवा—आपने साहित्य सेवा के लिये स्वार्थ त्याग किया था। आप के द्वारा लिखित बाल बोध जैनधर्म ४ भाग पाठशालाओ मे पाठ्य पुस्तकों मे अब तक निहित है। आपने सदाचार, मितव्ययता, सादगी, चारित्रगठन, देशसेवा, पिता के उपदेश, शान्ति वैभव, सुख की प्राप्ति का मार्ग, मुक्तिमार्ग, मुख सफलता और उसके मूल सिद्धान्त सदाचारी बालक, विद्यार्थी जीवन का उद्देश, अच्छी आदते डालने की शिक्षा आदि अनेक उत्तम पुस्तकें लिखी है। इनमे अधिकाश पुस्तके प० नाथूराम जी बम्बई ने प्रकाशित की है।

वे निर्भीक लेखक, जोशीले वक्ता, सुयोग्य शिक्षक और निश्वार्थ-समाज-सेवी थे। खेद है कि आपका ३० वर्ष की अल्पायु मे ही अक्टूबर सन् १९१९ युद्ध ज्वर में स्वर्ग-वास हो गया। आपकी साधना, दृढ निश्चय कर्मठ कार्य-कर्ता, बहुत परिश्रम ,और अपार मनोबल से संयुक्त थे। आपकी महान सेवाए कभी भुलाई नही जा सकती। आपका साहित्य आप की कीर्ति का उन्नायक है।

चालीसवे विद्वान ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी है, जो लखनऊ के निवासी थे। उनके पिता का नाम लाला मक्खनलाल और माता का नाम श्रीमती नारायणी देवी था। आपका जन्म काला महल मे सन् १८७९ मे हुआ था। आपने १८ वर्ष की अवस्था मे मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे पास की। तथा ४ वर्ष बाद रूडकी इजीनियरिग कालेज से अकाउन्टेन्ट शिप की परीक्षा पास की। परीक्षा पास करने के बाद गवर्नमेन्ट सर्विस मिल गई। यह स्वभाव से ही चचल, कार्य करने मे पटु, उदीयमान विचारक और लेखक थे। उनके विचारों का पता सन् १८९६ के २४ मई के हिन्दी 'जैन-गजट' में प्रकाशित प्रथम लेख के निम्न अंश से चलता है—"ए जैनी पडितो! यह जैनधर्म आप ही के आधीन है। इसकी रक्षा के लिये द्योती (ज्योति) फैलाइये, सोतो को

जगाइये, और तन मन धन परोपकार और शुद्धविचार लाने की कोशिश कीजिये। जिससे आप का यह लोक परलोक दोनों सुधरें।

आपका विवाह कलकत्ता के वैष्णव अग्रवाल छेदीलाल जी की सुपुत्री से हुआ था। आपने अपनी पत्नी के धार्मिक संस्कारों को आदर्श बनाया था। कुछ समय बाद सन् १९०४ मे महामारी (प्लेग) से १३ फरवरी को आपकी पत्नी का वियोग हो गया और नो मार्च को जननी तथा अनुज पन्नालाल का भी देहान्त हो गया। दुर्दैव की इस घटना से शीतलप्रसाद जी के चित्त को बडा आघात पहुँचा। पर सत्सगति और स्वाध्याय से विचलित नही हुए, भुक्त भोगी इस घटना जन्य वेदना को स्वय समझ सकते है। उस समय महामारी ने देश मे त्राहि त्राहि मचादी थी। इससे प्राय: सारे भारत मे तहलका मचा हुआ था। अनेक परिवार एकाध व्यक्ति को छोड कर समाप्त हो गए थे।

**अग्नि परीक्षा**—स्नेही जनों के आकस्मिक वियोग से उनके जीवन पर बडा प्रभाव पडा। यद्यपि वे निरन्तर स्वाध्याय और सामयिक सेवाओ के कारण पर्याप्त बल प्राप्त कर चुके थे। एक ओर सरकारी नौकरी मे पदोन्नति और वेतन वृद्धि की बलवती राशि, प्रौढावस्था की उमड़ती हुई हिलोरे। कौटुम्बिक सहयोगियो का पुन: गृहस्थी बसाने का आग्रह, कन्याओ का सौन्दर्य और योग्यता और उनके अभिभावको द्वारा सम्बन्ध स्वीकार करने की प्रार्थना और दूसरी ओर समाज-सेवा की उत्कट लगन, स्वाध्याय द्वारा आत्मस्वरूप को प्राप्त करने तथा समझाने का यत्न। शीतलप्रसाद जी इस अग्नि परीक्षा में खरे उतरे, उन्हे सासारिक विषय-सुखेच्छा विचलित न कर सकी, वे अपने लक्ष्य की सिद्धि मे निष्ठा से लगने का यत्न करने लगे। जैन ग्रन्थो के स्वाध्याय ने उनके हृदय में विषयों से विरक्ति और समाज सेवा के लिए मनको बलिष्ठ एव सक्षम बना दिया था। अत: उन्होने ब्रह्मचारी रहकर समाज-सेवा मे संलग्न रहकर जीवन बिताना अच्छा समझा। इसी से उन्होंने सन् १९०५ मे सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। और जैनधर्म के रहस्य का परिचय पाने के लिए स्वाध्याय में विशेष योग देना प्रारम्भ किया, साथ ही समाज-सेवा में भी योग देने लगे।

**स्व० सेठ माणिकचन्द जी जे. पी बम्बई के साथ—**

सन् १९०५ के दिसम्बर मे भा० दि० जैन महासभा का अधिवेशन सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) मे हुआ था। इस अधिवेशन के अध्यक्ष बम्बई के सेठ माणिकचन्द हीराचन्द जे पी. थे। इसी समय ब्रह्मचारी जी का सेठ जी से परिचय हुआ था। सेठ जी कार्यकर्ताओं के पारखी थे। आपने जिनधर्म भक्त, समाज-सेवी ब्रह्मचारी जी को अपने यहाँ बम्बई मे रहने के लिए अनुरोध किया और ब्र० जी सेठ जी के साथ बम्बई चले गये। ब्रह्मचारी जी ने वहा रहकर सेठजी को धर्म एव समाज-सेवा के लिए उकसाया, प्रेरित किया और अपना सहयोग दिया। सेठजी ने बम्बई सागली, आगरा, अहमदाबाद, शोलापुर, कोल्हापुर और लाहौर आदि स्थानो मे जैन बोर्डिग हाउस स्थापित किये। इन सस्थाओ मे विद्यार्थियो के लिए पढने-लिखने और रहन-सहन की सुविधा के साथ जैनधर्म के ग्रन्थो के पढने और उसके महत्व को समझने से उनके सस्कार सुसस्कृत एव सरल हो गये।

ब्रह्मचारी जी मे सात्विक शुद्ध सस्कार और चारित्र पालन का भाव बाल्य अवस्था से ही था क्योकि आपके पितामह ला० मगलसैनजी अपना अधिकाश समय गोम्मटसार और समयसारादि ग्रन्थो के स्वाध्याय, तत्वचर्चा मे व्यतीत करते थे। ब्रह्मचारी जी को धार्मिक सस्कार, चारित्र पालन, कर्तव्य निष्ठा का उदात्त भाव अपने पूर्वजो से विरासित मे मिला था, और स्वाध्याय द्वारा जैनधर्मका मर्म ब्रह्मचारी जी के घट मे घर कर गया था। वह उन्हे बाह्य प्रलोभनो से बचने में सहायक हुआ। अतएव आपने ३२ वर्ष की भरी जवानी मे सन् १९११ ई० के मगशिर महीने मे ऐलक पन्नालाल जी के समक्ष शोलापुर मे विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की। ब्रह्मचारी जी आचार-विचार और शुद्ध आहार के पक्षपाती थे। वे त्रिकाल सामायिक, स्वाध्याय, जिनवंदन आदि दैनिकचर्या में कभी कमी नही आने देते थे।

**जैन साहित्य-सेवा—**

सन् १९०२ मे ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी के निमन्त्रण मे महासभा के मुख पत्र 'जैन-गजट' का प्रकाशन दो वर्ष

तक लखनऊ से हुआ। उन्होंने अथक परिश्रम से उसकी विशेष उन्नति की, जिससे उसकी काया ही पलट गई वह पाक्षिक से साप्ताहिक हो गया। जैनमित्र का संस्थापन श्रद्धेय प० गोपालदास जी वरैया ने किया था, और उन्ही के सम्पादकत्व में वह सन् १६०८ तक बम्बई से पाक्षिक रूप मे निकलता रहा। किन्तु सन् १६०६ में ही ब्रह्मचारी जी जैन मित्र के सम्पादक नियुक्त हुए। तब से सन् १६२६ तक ब्रह्मचारी जी ने उसका सम्पादन योग्यता और निर्भयता के साथ किया। आपके सम्पादन काल मे समाज सुधार, ऐतिहासिक खोज, जैनधर्म प्रचार, सामाजिक संगठन और शिक्षा प्रसार आदि विषयो पर अनेक लेख लिखे गये। सभी लेख अच्छे और जनसाधारण के लिए उपयोगी होते थे। उनका सबसे बडा कार्य अग्रेजी पढ़े-लिखे विद्वानों मे जैनधर्म का प्रचार था। बहुत से अग्रेजी भाषा के विद्वान जैनधर्म के श्रद्धालु, जैन ग्रन्थो के स्वाध्यायी एव जिनदर्शन करने वाले व्यक्तियो से मालूम हुआ कि वे उक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी के उपदेश से ही जैनधर्म के श्रद्धालु बने है। और आज वे जैनधर्म के अच्छे ज्ञाता है। उनकी सन्तान भी जैनधर्म का पालन करती है। ऐसा महत्वपूर्ण कार्य अन्य किसी ने नही किया। वे जैनधर्म का प्रचार करने के लिए भारत मे यत्र-तत्र घूमा करते थे और सभाओ, उत्सवो आदि मे पहुँच कर अपने उपदेशो द्वारा उन्हे जैनधर्म का प्रेमी बनाने का यत्न करते थे। फिर भी वे अपनी चर्या मे सावधान रहते थे। वे लका भी गए और वहाँ बौद्ध ग्रन्थो का अध्ययन कर जैन बौद्ध तत्त्वज्ञान नाम की पुस्तके भी लिखी थी।

जैन पुरातत्त्व के सम्बन्ध मे भी उन्होने अग्रेजी रिपोर्टो एपीग्राफिया इण्डिका, एव कर्नाटिका, इण्डियन एण्टीक्वेरी आदि ग्रन्थो मे जैन पुरातत्त्व विषयक सामग्री का आकलन प्राचीन जैन स्मारकों द्वारा किया। यह कार्य भी कम महत्व का नही है। आपने जैन साहित्य की महान् सेवा की है। आपके लिखे हुए २६ ग्रन्थ तो मौलिक है, २४-२५ ट्रैक्ट है। और २१ टीका ग्रन्थ है। मास्टर बिहारील ल जी चैतन्य के वृहत् जैन शब्दार्णव नामक कोष का सम्पादन किया है। वे प्रत्येक चतुर्मास मे एक पुस्तक तय्यार कर देते थे। और बहुत जल्दी लिखते थे। उनका भाषण अच्छा होता था और जनता में उसका समादर होता था। उनकी यह महत्वपूर्ण सेवा भुलाई नही जा सकती। उन जैसी लगन का काम करने वाला आज एक भी ब्रह्मचारी विद्वान नही है, जो आजके समय मे जैन सस्कृति का प्रचार एव प्रसार कर सके।

इकतालीसवें विद्वान बैरिस्टर चम्पतराय जी हैं। जिनका दिल्ली के कूचा परमानन्द मे लाला चैनसुखदास की हवेली में माता पार्वती के उदर से जन्म हुआ था। इनके पितामह का नाम निहालचन्द और पिता का नाम लाला चन्द्रामल था, जो अपने पिता के समान ही नित्य देवदर्शन, जिनपूजन और स्वाध्याय आदि धार्मिक क्रियाओं मे तन्मय रहते थे। आपका पत्नी पार्वतीदेवी भी गृहस्थोचित धार्मिक क्रियाओ का पालन तत्परता से करती थीं, और प्रतिज्ञा पालन में सुदृढ थी। चम्पतराय का बडे लाड-प्यार से पालन हुआ। यह बाल्यकाल से ही तीक्ष्ण बुद्धि थे, पढने-लिखने मे चतुर थे। कौन जानता था कि यह बालक भविष्य मे अच्छा विद्वान और जैन सस्कृति की सेवा करेगा। छह वर्ष की अवस्था मे माता का वियोग हो गया। अतएव वे जननी के वियोग से वचित हो गये। लाला चन्द्रामल के वशज सोहनलाल और बाकेलाल भी थे। ये दोनों सहोदर भाई दिल्ली के प्रसिद्ध धनिको मे थे किन्तु कोई सन्तान न होने से चिन्तित रहते थे। बालक चम्पतराय पर उनका स्नेह जन्म से था। लाला चन्द्रामल ने उन्हे पुत्र की चाह मे दुखी देखकर कहा भाई जैसा चम्पत मेरा वैसा ही तुम्हारा है तुम्ही इसे अपने पास रखो, मै तुम्हारे सुख मे सुखी रहूँगा। इनके पिता के भाई मिट्ठनलाल और गुलाबसिंह के भी कोई पुत्र न था। अतः चम्पतराय ७ वर्ष की अवस्था मे उनकी गोद चले गये।

इसके बाद उनके रहन-सहन और वेष-भूषा में भी परिवर्तन हो गया। और १३ वर्ष की अवस्था मे इनका विवाह दिल्ली के रईस स्व० लाला प्यारेलाल जी (M.L.A. Central) की पुत्री के साथ हो गया। मेट्रीक्यूलेशन की परीक्षा चम्पतराय ने फर्स्ट डिवीजन मे पास की। बाद को देहली के प्रसिद्ध सेंट स्टीफिन कालेज मे एफ. ए. तक अध्ययन किया। वे कुशाग्र बुद्धि तो थे ही। अतः सन् १८९२ में अध्ययन के लिए इगलेण्ड चले गये।

और सन् १८९७ में वैरिस्टर होकर आ गये।

### विचार परिवर्तन

बिलायत से विद्या अध्ययन करके लौटने पर उन्मुक्त वातावरण ने इनमें अजीव परिवर्तन ला दिया। शिक्षा सहवास और वेष भूषा आदि के साथ चम्पतराय के विचारोमे ऐसा विचित्र परिवर्तन हुआ जिससे बाल्यकालमे प्राप्त धार्मिक शिक्षा के प्रभाव ने भी विलायत मे विदाई ले ली। वहाँ पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव उनके हृदय पटल पर गहरा अकित हो गया था और वे ईसाइयत की ओर झुकते से नजर आये। खान-पान, आचार-विचार सभी पाश्चात्य सभ्यता मे ढल गया। उनकी जीवन-धारा का बहाव विपरीत दिशा की ओर हो गया। लोक-परलोक आदि के सम्बन्ध मे भी उनका विचार बदल गया। उनके इस विचार परिवर्तन से धार्मिक जनता मे उथल-पुथल मच गई। कुछ को उनकी विचारधारा से आश्चर्य और खेद हुआ। उनके इस असाधारण परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि उनके कुटुम्बी और दिल्ली जैन समाज ने उन्हे नास्तिक समझ कर उनसे बातचीत करना भी छोड दिया। कुछ को उनके इस परिवर्तन से बड़ी निराशा हुई, वे चाहते थे कि चम्पत किसी तरह से सन्मार्ग मे लग जाय, किन्तु इस आकाक्षा की पूर्ति होना सुलभ नही था। इस सम्बन्ध मे जो प्रयत्न हुए वे आशाजनक नही थे। वैरिस्टर साहब का ध्यान जहा ईसायियत की ओर झुकता, वहा वे उन ग्रन्थों का अध्ययन भी करते थे, पर तर्कणा के कारण बुद्धि सद्विवेक की ओर अग्रसर नहीं हो पाती थी। इधर देहली, मुरादाबाद, अमृतसर आदि स्थानो मे वैरिस्टरी का व्यवसाय किया परन्तु वह विशेष लाभप्रद न हुआ। अन्त मे आप स्थायीरूप से हरदोई मे पहुँच गये। वहाँ पर आपने अपनी प्रतिभा, श्रम एव सुन्दर व्यवहार के कारण साधारण और अपरिचित वैरिस्टर से हरदोई के प्रमुख वैरिस्टर बन गये। इतना ही नही किन्तु वार एशोसिएशन के सभापति तथा अन्त मे अवध चीफ कोर्ट के फौजदारी के प्रमुख वैरिस्टर हो गये। उस प्रान्त की जनता मे यह धारणा घर कर गई कि—"फासी की सजा से अगर किसी अपराधी को बचाना है तो जैन वैरिस्टर का सहारा लें"। इस प्रसिद्धि से उनके पास जितने केश आये उन केशों के मुल्जिमों को फांसी के तख्ते पर चढने नही दिया। आपकी इस सफलता के कारण कानूनी ज्ञान, भारी परिश्रम से केशो को तैयार करना आदि थे। साथ मे जूनियर वकीलों के साथ सद्व्यवहार भी शामिल है। इस कारण लोग उन्हे श्रद्धावश 'अकिल जैन' के नाम से पुकारते थे। इससे उन्हे व्यवसाय मे अच्छी सफलता मिली।

### आकस्मिक परिवर्तन

जहाँ धन-जन-सपर्क, पद एव प्रतिष्ठा मे वृद्धि हुई वहाँ रहन-सहन रीति-रिवाज और व्यवहार मे भी वृद्धि हुई। यह स्वप्न मे भी किसी का ख्याल न था कि वैरिस्टर साहब के जीवन मे छोटी सी घटना भी विरक्ति का कारण बन जायगी। वैरिस्टर साहब का गाढ स्नेह लाला रगीलाल जी से था, जो उनके ससुर बाबू प्यारेलाल जी वकील के लघु भ्राता थे। उनकी आकस्मिक मृत्यु से वैरिस्टर साहब के हृदय पटल पर भारी प्रतिक्रिया हुई। उनका मन, इन्द्रियो के सुख और गार्हस्थ से हट कर अशान्ति की ओर गया। पाश्चात्य शिक्षा और साहित्य भी उनकी इस अशान्ति को दूर न कर सके। अत. आपने स्वामि रामतीर्थ के अग्रेजी मे लिखे वेदान्त के ग्रन्थ पढे, उनसे आपका मन कुछ प्रभावित तो हुआ पर पूर्ण सन्तोष न मिला। हाँ अन्य सम्प्रदायो के ग्रन्थो की जिज्ञासा जरूर हुई। परिणाम स्वरूप विविध धर्मो के ग्रन्थ पड़े, तर्क ने भी कुछ सहयोग दिया, कुछ मित्रो का अनुरोध भी था। किन्तु तर्क से जो शकाएँ उठती थीं उनका सन्तोषजनक समाधान न मिलता था।

सन् १९१३ मे सौभाग्य से आपका सपर्क बाबू देवेन्द्रकुमार जी आरा से हुआ। बाबू देवेन्द्रकुमार जी बड़े उत्साही और लगनशील कार्यकर्ता थे। उन्होंने वैरिस्टर साहब को अन्य धर्म ग्रन्थों के समान ही जैनधर्म के कुछ ग्रन्थो को पढने के लिए प्रेरित किया। तब आपने जैन सिद्धान्त के ग्रन्थों को पढना शुरू किया। उनके अध्ययन से चित्त की वह अशान्ति दूर हुई, शंकाओं का सन्तोषजनक उत्तर भी मिला तब उन्हे स्वयं अपनी भूल का परिज्ञान हुआ। और जैनधर्म की सत्यता पर दृढ़ आस्था हुई।

(क्रमशः)

# साहित्य-समीक्षा

**१. यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन**—लेखक डा० गोकुलचन्द जैन। प्रकाशक सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति अमृतसर। प्रतिस्थान पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान जैनाश्रम हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी—५, पृष्ठसख्या ४०४ मूल्य २० रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थ एक शोध प्रबन्ध है जो हिन्दू विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. की उपाधि के लिए अभी स्वीकृत हुआ है विक्रम की १०वी ११वी शताब्दी के महान आचार्य सोमदेव का यशतिलक चम्पू भारतीय सस्कृत वाङ्मय का एक अमूल्य रत्न है। सबसे पहले डा० हिन्दकी ने उस पर 'यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कलचर' नामक विद्वत्ता पूर्ण ग्रथ लिखा था जो जीवराज ग्रथमाला शोलापुर से प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रथ मे यशस्तिलक की धार्मिक और दार्शनिक दृष्टियो का मार्मिक विवेचन किया गया था। इस शोध प्रबन्ध मे सांस्कृतिक तत्त्वों का बडी गहराई के साथ चिन्तन किया गया है इसके अध्ययन करने से पता लगता है कि इस ग्रथ में भारतीय सस्कृति की महत्व पूर्ण सामग्री भरी पडी है। जिसे विद्वान् लेखक ने उसकी गहराई में पैठकर उसे खोजा है और उसे बडी सुन्दरता के साथ संजोकर महा निबन्ध के रूप मे उपस्थित किया है। इस अध्ययन के पाच अध्याय है और एक-एक अध्याय मे अनेक अवान्तर परिच्छेद भी हैं। पहला अध्याय है, यशस्तिलक परिशीलन की पृष्ठ भूमि इसके अर्न्तगत तीन परिच्छेद है, एक मे यशस्तिलक का रचना काल यशस्तिलक का साहित्यिक और सांस्कृतिक स्वरूप और यशस्तिलक पर अब तक हुए कार्य का लेखा-जोखा। सोमदेव के जीवन और साहित्य पर प्रकाश डालते हुए यशोधर की कथा वस्तु तथा यशोधर के लोक प्रिय चरित के आधार पर रचे गए ग्रथो की तालिका दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि यशोधर की कथा ने कवियों को कितना अधिक आकृष्ट किया है।

दूसरे अध्याय में यशस्तिलक कालीन सामाजिक जीवन की चर्चा है, इसके अर्न्तगत १२ परिच्छेद है, जिनमें तत्कालीन वर्ण व्यवस्था, समाज गठन, आश्रम व्यवस्था परिवारिक जीवन और विवाह, खान-पान विषयक सामग्री, रोग और उनकी परिचर्या, वस्त्र और वेषभूषा, आभूषण प्रसाधन सामग्री, शिक्षा और साहित्य, कृषि-वाणिज्य और शस्त्रास्त्र इन सभी सास्कृतिक विषयो पर महत्व पूर्ण प्रकाश डाला गया है, सास्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से यह अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है। तीसरा अध्ययन ललितकला और शिल्प विज्ञान से सम्बद्ध है। इसमे तत्कालीन गीत वाद्य नृत्य, चित्र कला और वास्तु शिल्पादि का विवेचन है। चौथे परिच्छेद मे १० वी ११ वी शताब्दी के तत्कालीन भूगोल का चित्रण करते हुए यशस्तिलक मे आगत जनपदो ( नगरो )ग्रामो, वन पर्वत और नदियो आदि के स्थानादि का निदेश किया है।

पाचवे अध्याय मे यशस्तिलक मे आगत प्राचीन, अप्रसिद्ध और अप्रचलित ७६१ शब्दों की सूची अकारादि क्रम से स्थल निर्देश पूर्वक हिन्दी अर्थ के साथ दी गई है। इस सूची से ग्रथ की उपयोगिता अधिक बढ़ गई है। यशस्तिलक के इस शब्द कोष का उपयोग भाषा को समृद्ध बनाने में उपयुक्त हो सकता है। पश्चात् ६ चित्रफलकों मे पुरातत्व से प्राप्त सामग्री के आधार पर उस काल मे प्रचलित वस्त्रो, आभूषणों, और वाद्यो आदि के चित्र दिये गये है जिनसे उनका रूप अधिक स्पष्ट हो गया है। अन्त मे सहायक ग्रथसूची और शब्दानुक्रमणी भी दी है। इस तरह डा० गोकुलचन्द जी का यह महा निबन्ध यशस्तिलक के सास्कृतिक अध्ययन के लिये अत्यन्त उपयोगी है। आशा है विद्वानो मे इसका समादर होगा, डाक्टर साहब इसके लिये बधाई के पात्र है। समाज को उनसे महत्व पूर्ण कार्यों की बड़ी आशाएँ हैं।

छपाई गेटप् और कागज वगैरह ग्रथ के अनुरूप है। लाइब्रेरियों और पुस्तकालयों मे इस ग्रन्थ को मंगाकर अवश्य पढना चाहिये।

**जैन साहित्य का वृहद इतिहास भाग ३**—लेखक डा. मोहनलाल मेहता अध्यक्ष पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसस्थान, हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, प्रकाशक—उक्त शोध संस्थान। मूल्य पन्द्रह रुपया।

यह श्वेताम्बर जैन साहित्य के वृहद इतिहास का तीसरा भाग है। इसमें आगमिक व्याख्या ग्रन्थों का इतिवृत्त दिया गया है। श्वेताम्बरीय आगम ग्रन्थो पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और उनके टीका ग्रन्थ उपलब्ध हैं—आवश्यकादि दश निर्युक्तियां, ६ भाष्य ग्रन्थ है। और १२ चूर्णियां उपलब्ध हैं और इन पर आचार्य हरिभद्र, शीलांक, अभयदेव और मलयगिरि आदि की विस्तृत टीकाएं हैं। इस सब विशाल साहित्य का सामूहिक परिचय पृथक्-पृथक् अध्यायोंमें कराया गया है साधु और साध्वी सम्बन्धी आचार-विचार का वर्णन श्वेताम्बरीय साहित्य मे विस्तार से मिलता है। साधु और साध्वीय कल्प अकल्प का कथन विस्तार से बतलाया है, यद्यपि उसमें वस्त्र और पात्र का समर्थन है फिर भी साध्वी, साध्वाचार की प्रत्येक क्रिया के विधि-निषेध पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। डा० मेहता ने इस विशाल साहित्य के परिचय को ५४८ पृष्ठो मे सक्षिप्त एव आकर्षक शैली मे सुन्दर ढग से कराया है। उक्त साहित्य का परिचय प्राप्त करने के लिये यह भाग बहुत ही उपयोगी है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन का व्यय एक ही परिवार ने वहन किया है। स्वर्गीय श्रीमुनिलाल जी के सुपुत्रो का यह साहित्यानुराग अनुकरणीय है ग्रन्थ की भाषा परिमार्जित और सरल हैं। इसके लिये लेखक महानुभाव धन्यवाद के पात्र है।

**३. सुख की झलक**—सकलयिता और प्रकाशक कपूरचन्द वरैया एम० ए० लश्कर (ग्वालियर) मूल्य एक रुपया पचास पैसा।

प्रस्तुत पुस्तक पूज्यपाद क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी के ईसरी (पार्श्व नाथ) मे नवम चातुर्मास के अवसर पर दिए गये मधुर प्रवचनों का सकलन है। वर्णी जी क्या थे और उनकी वाणी मे क्या रस था यह तो उनके सपर्क में आने वाले सभी जन जानते हैं। उनका एक-एक वाक्य अन्तर्भावना से ओत-प्रोत था। उनकी आत्मा आत्मरस से छलक रही थी। सब जीवों के प्रति उनकी कल्याण भावना कितनी उच्च थी, यह सब उनके पत्रोंके अवलोकनसे ज्ञात होती है। भाई कपूरचन्द जी ने वर्णीजी के मधुर भाषणो का सकलन कर उसे प्रकाशित कर वर्णीजी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की है। अन्त समय मे वर्णी जी ने कपूरचन्द जी को जो पत्र लिखा, जिसमे पर सम्बन्ध को त्यागने और अपनी परिणतिको मध्यस्थ रखने को कहा गया है कितना मार्मिक है। मुमुक्षुओं को मगाकर इसे अवश्य पढना चाहिए।

**४. वीरवाणी स्मारिका**—पं० चैन सुखदास जी डा० कस्तूरचन्द वख्शी ताराचन्द और पं० भवरलाल जी, न्यायतीर्थ मणिहारो का रास्ता जयपुर।

प्रस्तुत ग्रन्थ स्व० वख्शी केशरलाल जी की स्मृति मे प्रकाशित किया गया है। जो वख्शी जी सम्बन्धी लेखों और उनके सस्मरणो से परिपूर्ण है। समय-समय पर लिए गये उनके चित्र भी प्रकट किये गये है जिनसे ज्ञात होता है कि वख्शी जी बडे कर्मठ व्यक्ति थे। उनकी भावना और सेवा कार्य महान था और वे अपनी धुन और लगन के पक्के थे। उनकी स्मृति में स्मारिका का प्रकाशन समुचित ही है। —परमानन्द शास्त्री

★

(शेष पृ० ८९ का)

ने तो जयधवला टीका भा० १, पृ० १०८) में उक्त चरण से सम्बद्ध पूरा श्लोक ही उद्धृत किया है। तथा अकलंक देव ने तत्त्वार्थवार्तिक में आठवें अध्याय के प्रथम सूत्र की व्याख्या में भी एक पद्य उद्धृत किया है जो प्रथम द्वात्रिंशतिका का तीसवां पद्य है। इस तरह सिद्धसेन की कुछ द्वात्रिंशति का भी छट्ठी शताब्दी से ही दिगम्बर परम्परा में मान्य रही हैं। इन्हीं द्वात्रिंशतिकाओं में न्यायावतार भी है और सिद्धसेनकृत माना जाने के कारण उसे उसके नाम के अनुरूप जैन परम्परा में न्याय का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। किन्तु उसमें अनेक विप्रतिपत्तियां हैं, और वे अभी तक निर्मूल नहीं हुई है। अतः तत्सम्बन्धी विवाद को न उठाकर इतना ही लिखना पर्याप्त समझते हैं कि उसकी दिगम्बर परम्परा में कोई मान्यता नहीं मिलती।

इस तरह दिगम्बर परम्परा में प्रधान सिद्धसेन अपनी प्रख्यात दार्शनिक कृति सन्मति सूत्र या सन्मतितर्क के द्वारा विशेष रूप से समादृत हुए हैं।

# दो सज्जनों का असमय में वियोग

## बाबू धूपचन्द जी का स्वर्गवास

कानपुर निवासी लाला कपूरचन्द जी एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति है। उनके एकमात्र पुत्र बाबू धू[illegible] का हृदय गति रुक जाने से आकस्मिक स्वर्गवास हो गया। बाबू धूपचन्द जी सरल स्वभावी और से[illegible] थे। अब तो उन्होंने घर के कार्यों से प्राय मुक्ति सी लेकर सामाजिक और धार्मिक कार्यों मे समय लगाना [illegible] कर दिया था। किन्तु विधि को यह मजूर नही था, और कपूरचन्द जी की इस वृद्धावस्था में पिता पु[illegible] का विलगाव हो गया। धूपचन्द जैसा पुत्र बड़े भाग्य से मिलता है। उसका असमय मे वियोग दुर्भाग्य का ही सूचक है। इससे इनके हृदय को कितनी गहरी चोट पहुँची, इसका अनुमान करना कठिन है। लाला जी वीर सेवामन्दिर का कार्यकारिणी के सदस्य थे। हम लाला जी के तथा उनके परिवार के इस महान् दुःख मे अपनी समवेदना प्रकट करते हुए वीर प्रभु से प्रार्थना करते है कि लाला कपूरचन्दजी को इस वियोग जन्य दुःख को सहन करने की क्षमता प्राप्त हो।

## ला० पन्नालाल जी का स्वर्गवास

डिप्टीगज सदर बाजार के निवासी स्वर्गीय ला० नन्हेमल जी कसेरे के भ्राता लाला पन्नालाल जी का आकस्मिक वियोग हो गया। उनके निधन से जैन समाज की बडी क्षति हुई है। हम उनके परिवार के वेदना व्यक्त करते हुए दिवगत आत्मा के लिए सुख-शान्ति की कामना करते है।

# वीरसेवामन्दिर कार्यकारिणी के पदाधिकारियों और सदस्यों का चुनाव

१६ अगस्त को रात्रि के साढ़े सात बजे वीर सेवामन्दिर की जनरल मीटिंग श्रीमान् साहू शान्तिप्रसाद जी की अध्यक्षता में कार्यकारिणी के सदस्यो और पदाधिकारियो का चुनाव निम्न प्रकार हुआ।

**पदाधिकारी :—**

१. साहू शान्तिप्रसाद जी — अध्यक्ष
२. ला० श्यामलाल जी ठेकेदार — उपाध्यक्ष
३. ला० प्रेमचन्द जी कश्मीर वाले — प्र० मंत्री
४. ला० भगतराम जी — सं० मंत्री
५. ला० नन्हेमल जी — कोषाध्यक्ष
६. बा० नरेन्द्रनाथ जी — आडीटर

**कार्यकारिणी के सदस्य :—**

७. बाबू नन्दलालजी सरावगी, कलकत्ता
८. राय सा० उल्फतराय जी
९. ला० पारसदास जी मोटरवाले
१०. ला० मक्खनलाल जी ठेकेदार
११. ला० प्रेमचन्द जी जैनावाच
१२. बा० देवकुमार जी
१३ ल० महेन्द्रसेन जी
१४. ला० शान्तिप्रसाद जी जैन बुक एजेन्सी
१५. श्री एस. पी. जैन
१६. पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार
१७. डा० ए. एन. उपाध्ये
१८. ला० पन्नालाल जी अग्रवाल
१९. श्री यशपाल जी
२०. श्री मती जयवन्ती देवी

R. N. 10591/62

## वीर-सेवा-मन्दिर के उपयोगी प्रकाशन



प्रकाशक—प्रेमचन्द जैन, वीरसेवा मन्दिर के लिए, रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली से मुद्रित।

द्वै मासिक

अगस्त
जून १९६८

# अनेकान्त

खण्डगिरी पर विराजमान आदि जिन की प्रशान्त मूर्ति

## समन्तभद्राश्रम (वीर-सेवा-मन्दिर) का मुख पत्र

## विषय-सूची



**अनेकान्त में प्रकाशित विचारों के लिए सम्पादक मण्डल उत्तरदायी नहीं हैं। —व्यवस्थापक अनेकान्त**

## वीर-सेवा मन्दिर को सहायता

दानवीर-श्रावक शिरोमणी श्रीमान् साहू शान्तिप्रसाद जी ने इस वर्ष पर्यूषण पर्व दिल्ली मे मनाया। जिन पूजन, स्वाध्याय और तत्वचर्चा मे अपना समय व्यतीत किया। साहू जी जहाँ उद्योगपति है वहाँ वे दानी और विवेकी भी है। वर्तमान जैन समाज में उनके समान विचारक, विवेक-शील और समुदार व्यक्ति अन्य नही दिखाई देता। वे तीर्थभक्त है, जैन तीर्थों के सरक्षण और सवर्द्धन मे क्रिया-शील है। उनकी पत्नी श्रीमती रमारानी भी धार्मिक और सामाजिक कार्यो मे बराबर भाग लेती रहती है। साहूजी ने दिल्ली की प्रत्येक जैन सस्थाओं को एक हजार एक और दिल्ली के सभी जैन मन्दिरों को एक सौ एक रुपया प्रदान किये है। वीरसेवामन्दिर को भी एक हजार एक सधन्यवाद प्राप्त हुआ है। साहू साहब वीरसेवामन्दिर के स्थायी अध्यक्ष है। आशा है वीर सेवामन्दिर पर उनका यह वरद हस्त बराबर बना रहेगा। जिससे सस्था अपने उद्देश्यो की पूर्ति करने मे समर्थ हो सके।

व्यवस्थापक **'वीरसेवामन्दिर'**

**२१ दरियागंज, दिल्ली**

## अनेकान्त के ग्राहकों से

अनेकान्त के जिन ग्राहको का वार्षिक मूल्य अभी तक भी प्राप्त नही हुआ। वे कृपा कर अपना मूल्य ६) रुपया मनीआर्डर से भेज देवें। अन्यथा अगला अक वी. पी. से भेजा जावेगा छुडाकर अनुगृहीत करे।

व्यवस्थापक : **'अनेकान्त'**

**२१, दरियागंज, दिल्ली।**


**अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपया**

**एक किरण का मूल्य १ रुपया २५ पैसा**

ओम् अर्हम्

# अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष २१ किरण ३ | वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६ | वीर निर्वाण संवत् २४९४, वि० सं० २०२५ | अगस्त सन् १९६८

## स्वयंभूस्तुति

स्वयंभुवायेन समुद्धृतं जगज्जडत्वकूपे पतितं प्रमादतः ।
परात्मतत्त्वप्रतिपादनोल्लसद्वचोगुणरादिजिनः स सेव्यताम् ॥१॥
भवारिरेको न परो ऽस्ति देहिनां सुहृच्च रत्नत्रयमेक एव हि ।
स दुर्जयो येन जितस्तदाश्रयात्ततोऽजितान्मे जिनतोऽस्तु सत्सुखम् ॥२॥

—मुनि श्री पद्मनन्दि

**अर्थ**—स्वयम्भू अर्थात् स्वयं ही प्रबोध को प्राप्त हुए जिस आदि (ऋषभ) जिनेन्द्र ने प्रमाद के वश होकर अज्ञानता रूप कुए में गिरे हुए जगत् के प्राणियों का पर-तत्त्व और आत्मतत्त्व (अथवा उत्कृष्ट आत्मतत्त्व) के उपदेशो मे शोभायमान वचनरूप गुणो से उद्धार किया है उस आदि जिनेन्द्र की आराधना करना चाहिए ॥

**भावार्थ**—उक्त श्लोक मे प्रयुक्त 'गुण' शब्द के दो अर्थ है—हितकारकत्व आदि गुण तथा रस्सी । उसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार कोई मनुष्य यदि असावधानी से कुएँ मे गिर जाता है तो इतर दयालु मनुष्य कुएं में रस्सियों को डाल कर उनके सहारे से उसे बाहर निकाल लेते है । इसी प्रकार भगवान् आदि जिनेन्द्र जो बहुत से प्राणी अज्ञानता के वश होकर धर्म के मार्ग से विमुख होते हुए कष्ट भोग रहे थे उनका हितोपदेश के द्वारा उद्धार किया था—उन्हे मोक्षमार्ग मे लगाया था । उन्होंने उनको ऐसे वचनों द्वारा पदार्थ का स्वरूप समझाया था जो हितकारक होते हुए उन्हे मनोहर भी प्रतीत होते थे । 'हित मनोहारि च दुर्लभ वचः' इस उक्ति के अनुसार यह सर्वसाधारण को सुलभ नही है ॥१॥

प्राणियो का संसार ही एक उत्कृष्ट शत्रु तथा रत्नत्रय ही एक उत्कृष्ट मित्र है, इनके सिवाय दूसरा कोई शत्रु अथवा मित्र नही है । जिसने उस रत्नत्रयरूप मित्र के अवलम्बन से उस दुर्जय ससाररूप शत्रु को जीत लिया है उस अजित जिनेन्द्र से मुझे समीचीन सुख प्राप्त होवे ॥२॥

*दर्शन और विज्ञान के परिपेद्य में :*

# स्याद्वाद और सापेक्षवाद

**अणुव्रत परामर्शक मुनि श्री नगराज**

स्याद्वाद भारतीय दर्शनो की एक सयोजक कडी और जैन दर्शन का हृदय है। इसके बीज आज से सहस्रों वर्ष पूर्व सभापित जैन आगमो में उत्पाद्, व्यय, ध्रौव्य, स्यादस्ति स्यान्नास्ति, द्रव्य, गुण, पर्याय, सप्त-नय आदि विविध रूपो मे बिखरे पड़े है। सिद्धसेन, समन्तभद्र आदि जैन दार्शनिको ने सप्तभगी आदि के रूप मे तार्किक पद्धति से स्याद्वाद को एक व्यवस्थित रूप दिया। तदनन्तर अनेकों आचार्यो ने इस पर अगाध वाङ्मय रचा जो आज भी उसके गौरव का परिचय देता है विगत १५०० वर्षों मे स्याद्वाद दार्शनिक जगत् का एक सजीव पहलू रहा और आज भी है।

सापेक्षवाद वैज्ञानिक जगत् मे बोसवी सदी की एक महान् देन समझा जाता है। इसके आविष्कर्ता सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० अल्बर्त आईस्टीन हैं जो पाश्चात्य देशों में सर्वसम्मति से संसार के सबसे अधिक दिमागी पुरुष माने गये है। सन् १९०५ में आईस्टीन ने 'सीमित सापेक्षता' शीर्षक एक निबन्ध लिखा जो 'भौतिक शास्त्र का वर्ष पत्र' नामक जर्मनी पत्रिका में प्रकाशित हुआ। इस निबन्ध ने वैज्ञानिक जगत् में अजीब हलचल मचा दी थी। सन् १९१६ के बाद उन्होंने अपने सिद्धान्त को व्यापक रूप में दिया, जिसका नाम था—'असीम सापेक्षता'। सन् १९२१ मे उन्हे इसी खोज के उपलक्ष मे भौतिक विज्ञान का 'नोबेल' पुरस्कार मिला। सचमुच ही आईस्टीन का अपेक्षावाद विज्ञान के शान्त समुद्र मे एक ज्वर था। उसने विज्ञान की बहुत सी बद्धमूल धारणाओं पर प्रहार कर एक नया मानदण्ड स्थापित किया। अपेक्षावाद के मान्यता में आते ही न्यूटन के काल से धाक जमाकर बैठे हुए गुरुत्वाकर्षण (Law of Gravitation) का सिहासन डोल उठा। 'ईथर' (Ether) नाम शेष होने से बाल-बाल ही बच पाया व देश काल की धारणाओं ने भी एक नया रूप ग्रहण किया। अस्तु; बहुत सारे विरोधो के पश्चात् अपनी गणित सिद्धता के कारण आज वह अपेक्षावाद निर्विवादतया एक नया आविष्कार मान लिया गया है। इस प्रकार दार्शनिक क्षेत्र मे समुद्भूत स्याद्वाद और वैज्ञानिक जगत् मे नवोदित सापेक्षवाद का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत निबन्ध का विषय है।

**नाम साम्य :**

स्याद् और वाद दो शब्द मिलकर स्याद्वाद की संघटना हुई है। स्यात् कथचित् का पर्यायवाची सस्कृत भाषा का एक अव्यय है। इसका अर्थ है 'किसी प्रकार से' 'किसी अपेक्षा से'। वस्तु तत्त्व निर्णय मे जो वाद अपेक्षा की प्रधानता पर आधारित है, वह स्याद्वाद है। यह इसकी शाब्दिक व्युत्पत्ति है।

सापेक्षवाद (Theory of Relativity) का हिन्दी अनुवाद है। वैसे यदि हम इसका अक्षरश. अनुवाद करते है तो वह होता है 'अपेक्षा का सिद्धान्त' पर विश्व की रूपरेखा, विज्ञान हस्तामलक प्रभृति हिन्दी ग्रन्थों में इसे सापेक्षतावाद या सापेक्षवाद ही कहा गया है। तत्त्वतः, सापेक्षवाद का भी वही शाब्दिक अर्थ है जो स्याद्वाद का। 'अपेक्षतया सहित सापेक्ष' अर्थात् अपेक्षा करके सहित जो है वह सापेक्ष है। अत: वह अपेक्षा सहित वाद सापेक्षवाद है। इस प्रकार यदि स्याद्वाद को सापेक्षवाद व सापेक्षवाद को स्याद्वाद कहा जाय तो शाब्दिक दृष्टि से कोई आपत्ति नही उठती। यही तो कारण है कि हिन्दी लेखकों ने जैसे थियोरी आफ रिलेटिविटी का अनुवाद सापेक्षवाद (स्याद्वाद) किया वैसे ही सर राधाकृष्णन् प्रभृति अंग्रेजी लेखकों ने अपने ग्रन्थों में स्याद्वाद का अनुवाद (Theory of

Relativity)[1] किया। इस प्रकार दो विभिन्न क्षेत्रों से प्रारम्भ हुए दो सिद्धान्तों का तथा प्रकार का नाम-साम्य एक महान् कुतूहल तथा जिज्ञासा का विषय है।

**सहज भी, कठिन भी :**

दोनों ही सिद्धान्त अपने-अपने क्षेत्र में सहज भी माने गये हैं और कठिन भी। स्याद्वाद को ही लें—इसकी जटिलता विश्व-प्रसिद्ध है। जहाँ जैनेतर दिग्गज विद्वानों ने इसकी समालोचना के लिए कलम उठाई वहाँ उनकी समालोचनाएँ स्वयं बोल पडी हैं—उन्होंने स्याद्वाद को समझा ही नहीं है। प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति महामहोपाध्याय डा० गंगानाथझा एम० ए०, डी० लिट्, एल० एल० डी० लिखते है—"जब से मैंने शकराचार्य द्वारा किया गया सिद्धान्त का खण्डन पढा है तब से मुझे विश्वास हुआ है कि इस सिद्धान्त मे बहुत कुछ है, जिसे वेदान्त के आचार्यों ने नही समझा है। और जो कुछ अब तक मैं जैनधर्म को जान सका हूँ, उससे मुझे यह दृढ विश्वास हुआ है कि यदि वे (शंकराचार्य) जैनधर्म को उसके असली ग्रन्थों से देखने का कष्ट उठाते तो उन्हे जैनधर्म का विरोध करने को कोई बात नही मिलती।[2]"

स्याद्वाद के विषय मे उसकी जटिलता के कारण ऐसे विवेचनो की बहुलता यत्र तत्र दीख पड़ती है। इस जटिलता को भी आचार्यों ने कही-कही इतना सहज बना दिया है कि जिससे सर्वसाधारण भी स्याद्वाद के हृदय तक पहुँच सकते है। जब आचार्यो के सामने यह प्रश्न आया कि एक ही वस्तु मे उत्पत्ति, विनाश और ध्रुवता[3] जैसे परस्पर विरोधी धर्म कैसे ठहर सकते है तो स्याद्वादी आचार्यो ने कहा—"एक स्वर्णकार स्वर्ण-कलश तोडकर स्वर्ण-मुकुट बना रहा था, उसके पास तीन ग्राहक आये। एक को स्वर्ण-घट चाहिए था, दूसरे को स्वर्ण-मुकुट और तीसरे को केवल सोना। स्वर्णकार की प्रवृत्ति को देखकर पहले को दुःख हुआ कि यह स्वर्ण-कलश को तोड रहा है। दूसरे को हर्ष हुआ कि यह मुकुट तैयार कर रहा है। तीसरा व्यक्ति मध्यस्थ भावना मे रहा; क्योंकि उसे तो सोने से काम था। तात्पर्य यह हुआ एक ही स्वर्ण मे उसी समय एक विनाश देख रहा है, एक उत्पत्ति देख रहा है और एक ध्रुवता देख रहा है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु अपने स्वभाव से त्रिगुणात्मक है[1]।" आचार्यों ने और आधिक सरल करते हुए कहा—"वही गोरस दूध रूप से नष्ट हुआ, दधि रूप मे उत्पन्न हुआ, गोरस रूप में स्थिर रहा। जो पयोव्रती है वह दधि को नही खाता, दधि व्रती पय नही पीता और गोरस त्यागी दोनो को नही खाता, पीता[2]।" ये विरुद्ध धर्मों की सकारण स्थितियाँ है। इसलिए वस्तु मे नाना अपेक्षाओ से नाना विरोधी धर्म रहते ही है। इसी प्रकार जब कभी राह चलते आदमी ने भी पूछ लिया कि आपका स्याद्वाद क्या है तो आचार्यो ने कनिष्ठा व अनामिका सामने करते हुए पूछा[3]—दोनो मे बड़ी कौन-सी है? उत्तर मिला—अनामिका बडी है। कनिष्ठा को समेट कर और मध्यमा फैला कर पूछा—दोनो अगुलियों मे छोटी कौन सी है? उत्तर मिला—अनामिका। आचार्यों ने कहा—यही हमारा स्याद्वाद है जो तुम एक ही अगुली को बडी भी कहते हो और छोटी भी। यह स्याद्वाद की सहजगम्यता है।

सापेक्षवाद की भी इस दिशा मे ठीक यही गति है। कठिन तो वह इतना है कि बडे-बडे वैज्ञानिक भी इसको पूर्णतया समझने व समझाने में चक्कर खा जाते है। कहा जाता है कि यह सिद्धान्त गणित की गुत्थियों से इतना भरा है कि इसे अब तक ससार भर मे कुछ सौ आदमी

१. इण्डियन फिलोसोफी, पृ० ३०५।
२. जैन-दर्शन, १६ सितम्बर १९३४।
३. उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्त सत्।
—श्रीभिक्षु न्याय कणिका

१. घटमौलि सुवर्णार्थी नाशोत्पाद स्थितिष्वयम्।
शोक प्रमोद माध्यस्थ जनो याति सहेतुकम्॥
—शास्त्र वार्ता समुच्चय

२. उत्पन्न दधिभावेन नष्ट दुग्धतया पयः।
गोरसत्वात् स्थिर जानन् स्याद्वादद्विड् जनोऽपिक.॥१॥
पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे, तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम्॥२॥

३. यथा अनामिकायाः कनिष्ठामधिकृत्य दीर्घत्वं,
मध्यमा मधिकृत्य ह्रस्वत्वम्।
—प्रज्ञासूत्र वृत्तिः पद भाषा ११

ही पर्याप्त रूप से जान पाये है[1]। सापेक्षवाद की जटिलता के बहुत से उदाहरणो मे एक उदाहरण यह भी है जो साधारणतया बुद्धिगम्य भी नही हो रहा है कि यदि दो मनुष्यों की भेट हो तो उन दोनो के बीच का अन्तर एक ही (समान ही) होना चाहिए—यह एक दृष्टिकोण मे सत्य है, एक से नही। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि वे दोनों घर पर ही रहे हों या उनमे से कोई एक विश्व के किसी दूर भाग की यात्रा करके इसी बीच मे आया हो[2]।

सापेक्षवाद की जटिलता को प्रो० मैक्सवोर्न ने अत्यन्त विनोदपूर्ण ढग से समझाया है। वे लिखते है—"मेरा एक मित्र एक बार किसी डिनर पार्टी मे गया। उसके पास बैठी एक महिला ने कहा—प्राध्यापक महोदय! क्या आप मुझे थोडे शब्दो मे बताने का कष्ट करेगे कि वास्तव मे सापेक्षवाद है क्या? उसने विस्मृत मुद्रा मे उत्तर दिया—क्या तुम यह चाहोगी उससे पूर्व मै तुम्हे एक कहानी सुना दूं। मै एक बार अपने फ्रासीसी मित्र के साथ सैर के लिए गया। चलते-चलते हम दोनो प्यासे हो गये। इतने मे हम एक खेत पर आये। मैंने अपने मित्र से कहा—यहाँ हमे कुछ दूध खरीद लेना चाहिए। उसने कहा—दूध क्या होता है? मैंने कहा—तुम नही जानते, पतला और धोला धोला……। उसने कहा—धोला क्या होता है? मैने कहा—धोला होता है जैसे बतख। उसने कहा—बतख क्या होता है? मैने कहा—एक पक्षी जिसकी गर्दन मोडदार होती है। उसने कहा—मोड क्या होती है? मैंने अपनी बाँह को मोड कर इस प्रकार से टेढी करके दिखाया—मोडदार इसे कहते है। तब उसने कहा—अच्छा अब मै समझ गया दूध क्या है? इस कहानी को सुन लेने के बाद उस भद्र महिला ने कहा—मुझे सापेक्षवाद क्या है अब यह जानने की कोई दिलचस्पी नही रही है[3]।"

सापेक्षवाद की कठिनता के इन कुछ उदाहरणो की तरह सरलता के उदाहरणों की भी कमी नही है पर यहाँ मात्र एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। सापेक्षवाद के आचार्य प्रो० अलबर्ट आईस्टीन से उनकी पत्नी ने कहा—"मै सापेक्षवाद कैसा है कैसे बतलाऊँ?" आईस्टीन ने एक दृष्टान्त मे जवाब दिया—'जब एक मनुष्य एक सुन्दर लडकी से बात करता है तो उसे एक घण्टा एक मिनट जैसा लगता है। उसे ही एक गर्म चूल्हे पर बैठने दो तो उसे एक मिनट एक घण्टे के बराबर लगने लगेगा—यही सापेक्षवाद है।" इसीलिए कहा गया है कि स्याद्वाद और सापेक्षवाद कठिन भी है और सहज भी।

**व्यावहारिक सत्य व तात्त्विक सत्य**

स्याद्वाद मे नयो की बहुमुखी विवक्षा है, पर यहाँ केवल व्यवहारनय व निश्चय-नय को ही लेते है। इनकी व्याख्या करते हुए आचार्यो ने कहा है[4]—"निश्चय-नय वस्तु के तात्त्विक (वास्तविक) अर्थ का प्रतिपादन करता है और व्यवहार-नय केवल लोक-व्यवहार का।" एक बार गौतम स्वामी ने भगवान् श्री महावीर से पूछा—"भगवन्[5]! फणित-प्रवाही गुण मे कितने वर्ण, गन्ध, रस व

---

१ "It is so mathematical that only a few hundred men in the world are competent to discuss it."
—Cosmology Old and New, p 127.

२. If two people meet tuice they must have lived the some time between the two meetings" is true from one point of view and not from another. It all depends upon whether both of them have been stey-at-home or one has travelled tea distant part of the Universal and them came back in the interim.
—Cosmology Old and New, p. 206.

३. Cosmology Old and New, p. 197.

४. तत्त्वार्थं निश्चयो वक्ति व्यवहारश्च जनोदितम्।
—द्रव्यानुयोगतर्कणा ८२३।

५. फाणियगुलेण भन्ते! कइ वण्णे कइ गन्धे, कइ रसे, कई फासे पण्णत्ते? गोयमा! एत्थण दो नया भवन्ति त निच्छइएणएय। वावहारियणयस्स। वावहारियणस्स गोड्डे फाणियगुले, निच्छइयणयस्स पंचवण्णे, दुगन्धे, पचरसे, अठ फासे। —भगवती, १८-६

स्पर्श होते हैं ?" भगवान् महावीर ने कहा—"मै इन प्रश्नों का उत्तर दो नयों से देता हूँ। व्यवहार-नय की अपेक्षा से तो वह मधुर कहा जाता है पर निश्चय-नय की अपेक्षा से उसमे ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस व ८ स्पर्श है।" अगला प्रश्न गौतम स्वामी ने किया—"प्रभो[1]! भ्रमर मे कितने वर्ण है ?" उत्तर मिला—"व्यवहार-नय मे तो भ्रमर काला है अर्थात् एक वर्ण वाला है पर निश्चय-नय की अपेक्षा से उसमे श्वेत, कृष्ण, नील आदि पाच वर्ण है।" इसी प्रकार राख[2] और शुक-पिच्छि[3] के लिए भगवान् महावीर ने कहा—"व्यवहार-नय की अपेक्षा से यह रूक्ष और नील है पर निश्चय-नय की अपेक्षा से पाच वर्ण, दो गध, पाच रस व आठ स्पर्श वाले है।" तात्पर्य यह हुआ कि वस्तु का इन्द्रिय ग्राह्य स्वरूप कुछ और होता है और वास्तविक स्वरूप कुछ और। हम बाह्य स्वरूप को देखते है जो इन्द्रिय ग्राह्य है। सर्वज्ञ बाह्य और आन्तरिक (नैश्चयिक) दोनो स्वरूपो को यथावत् जानते है व देखते है। सापेक्षवाद के अधिष्ठाता प्रो० अलबर्ट आईस्टीन भी यही कहते है—"We can only know the relative truth, the Absolute truth is known only to the Universal observer."[4]

"हम केवल आपेक्षिक सत्य को ही जान सकते है, सम्पूर्ण सत्य तो सर्वज्ञ के द्वारा ही ज्ञात है।"

स्याद्वाद मे जिस प्रकार गुड, भ्रमर, राख, शुक-पिच्छि आदि के उदाहरणो से परमार्थ सत्य व व्यवहार सत्य को समझाया गया है उसी प्रकार आईस्टीन ने भी अपने सापेक्षवाद मे ऐसे उदाहरणो का प्रयोग किया है। यहाँ बताया गया है—जिस किसी घटना के बारे मे हम कहते है कि यह घटना आज या अभी हुई; हो सकता है कि वह घटना सहस्रो वर्ष पूर्व हुई हो। जैसे—एक-दूसरे से लाखो प्रकाश वर्ष की दूरी पर दो चक्करदार निहारिकाओ (क, ख) मे विस्फोट हुए और वहाँ दो नये तारे उत्पन्न हुए। इन निहारिकाओं मे उपस्थित दर्शकों के लिए अपने यहाँ की घटना तुरन्त हुई मालूम होगी, किन्तु दोनो के बीच लाखों प्रकाश वर्षो की दूरी होने से 'क' का दर्शक 'ख' की घटना को एक लाख वर्ष बाद घटित हुई कहेगा जब कि दूसरा दर्शक अपनी घटनाओ को तुरन्त और 'क' की घटना को एक लाख वर्ष बाद घटित होने वाली बतायेगा। इस प्रकार विस्फोट का परमार्थ काल नही, सापेक्षकाल ही बताया जा सकता है[3]।"

उदाहरण को पुष्ट करने के लिए तत्सम्बन्धी वैज्ञानिक मान्यता को स्पष्ट करना होगा। आधुनिक विज्ञान के मतानुसार प्रकाश एक सैकिण्ड मे १,८६,००० मील गति करता है। उसी गति से जितनी दूर वह एक वर्ष मे जाता है, उस दूरी को एक प्रकाश वर्ष कहते है। ब्रह्माण्ड मे एक दूसरे से लाखों प्रकाश वर्ष दूरी पर अनेको तारिका पुज है। एक निहारिका में होने वाला प्रकाशात्मक विस्फोट एक लाख प्रकाश वर्ष दूर स्थित अन्य निहारिकाओ मे या हमारी पृथ्वी पर यदि हम उससे उतनी ही दूर है तो एक लाख वर्ष बाद मे दीखेगा; क्योकि प्रकाश को हम तक पहुँचने मे १ लाख वर्ष लगेगे। किन्तु हमे ऐसे लगेगा कि यह घटना अभी ही हो रही है जिसे हम देख रहे है। साराश यह हुआ कि मनुष्य बहुत अशो मे व्यावहारिक सत्य को ही अपनाकर चलता है। यदि उस निहारिका का कोई प्राणी हमसे मिले व उस घटना के बारे मे हमसे बात करे तो हमारा और उसका निर्णय एक-दूसरे से उल्टा होगा; पर अपने-अपने क्षेत्र की अपेक्षा से दोनों निर्णय सही होंगे।

स्याद्वाद-शास्त्र की सप्त भगी भी प्रत्येक वस्तु को

---

१. भमरेण भन्ते! कइवण्णे पुच्छा? गोयमा! एत्थण दो नया भवति तजहा—णिच्छइयणएय, वावहारियणयस्स कालए भमरे, णिच्छइयणयस्स पचवण्णे जाव अठ फासे। —भगवती, १८-६

२. छारियाण भन्ते! पुच्छा? गोयमा! एत्थण दो नया भवन्ति तजहा—णिच्छयणएय, वावहारियणएय। वावहारियणयस्स लुक्खा छारिया, णेच्छइयस्स पंचवण्णे जाव अठफासे पण्णत्ते। —भगवती १८-६

३. सुयपिक्छेण भन्ते! कइवण्णे पण्णत्ते? एव चेव णवरं वावहारियणयस्स णीलए सुअपिच्छे, णेच्छइयस्स णयस्स से सन्त चेव। —भगवती १८-६

४. Cosmology Old and New, p. 201.

३. विश्व की रूपरेखा, अध्याय १, पृ० ६२-६३ प्र०स.।

स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे 'अस्ति' (है) स्वीकार करती है और परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नास्ति नहीं है। स्वीकार करती है। जैसे हम एक घट के विषय मे कहते हैं कि यह मिट्टी का घड़ा है, यह राजस्थान का बना है, यह ग्रीष्म ऋतु मे बना हुआ है, यह गौर वर्ण अमुक नाम का है; उसी समय उस घट के विषय में दूसरा व्यक्ति कहता है—यह स्वर्ण का घट नही है, यह विदर्भ प्रान्त का घट नहीं है, यह हेमन्तकाल का घट नही है, यह श्याम वर्ण व अमुक प्रकार का घट नहीं है। यहाँ 'है' व 'नहीं है' देश-काल सापेक्ष है। स्याद्वाद की तरह सापेक्षवाद मे भी तथाप्रकार के सापेक्ष उदाहरणो की बहुलता है जो नयवाद व सप्त भगी द्वारा समर्थन पाते है। प्रो० एडिंगटन दिशा की सापेक्ष स्थितियो पर प्रकाश डालते हुये लिखते हैं—"सापेक्ष स्थिति को समझने के लिये सबसे सहज उदाहरण किसी पदार्थ की दिशा का है। एडिनवर्ग की अपेक्षा से केम्ब्रिज की एक दिशा है और लन्दन की अपेक्षा से एक अन्य दिशा है। इसी तरह और और अपेक्षाओं से। हम यह कभी नही सोचते कि उसकी वास्तविक दिशा क्या है[1]?" उसी पुस्तक में आगे वे सत्य और वास्विक सत्य को सुस्पष्ट करते हुये लिखते है—"तुम किसी कम्पनी के आय-व्यय का चिट्ठा लो जो गणितज्ञ के द्वारा परीक्षित है। तुम कहोगे यह सत्य है पर वह वास्तव मे सत्य क्या है? मै यह किसी धूर्त कम्पनी के लिये नही कह रहा हूँ पर सच्ची कम्पनी के चिट्ठे मे भी वस्तुओं की उस क्षण की कीमत और उसकी अकित कीमत मे महान् अन्तर होगा; अत: हीडन रिजर्व (Hidden reserves) की दृष्टि से जितनी अधिक सच्ची कम्पनी होगी, वह उतना ही अधिक होगा।"

स्याद्वाद के क्षेत्र मे भगवान् महावीर ने सैकड़ों प्रश्नों का उत्तर अपेक्षाओ के आधार पर विभिन्न प्रकार से दिया। सृष्टि के मूलभूत सिद्धान्तों को भी उन्होंने सापेक्ष बताया। परमाणु नित्य (शास्वत) है या अनित्य—इस प्रश्न पर उन्होंने बताया—"वह[1] नित्य भी है और अनित्य भी। द्रव्यत्व की अपेक्षा से वह नित्य है। वर्ण पर्याय (बाह्य स्वरूप) आदि की अपेक्षा से अनित्य है, प्रतिक्षण परिवर्तनशील है।" यही उत्तर भगवान् महावीर ने आत्मा के विषय मे दिया[2]। प्राकृतिक स्थितियो के विषय मे आइंस्टीन भी अपेक्षा-प्रधान बात कहते है। सापेक्षवाद के पहले सूत्र मे उन्होने यह कहा—"प्रकृति ऐसी है कि किसी भी प्रयोग के द्वारा चाहे वह कैसा भी क्यो न हो, वास्तविक गति का निर्णय असम्भव ही है[3]।" ऐसा क्यो? इसका उत्तर सर जेम्स जीन्स के शब्दो मे पढ़िये—"गति और स्थिति आपेक्षिक धर्म है। एक जहाज जो स्थिर है वह पृथ्वी की अपेक्षा से ही स्थिर है लेकिन पृथ्वी सूर्य की अपेक्षा से गति मे है और जहाज भी इसके साथ। यदि पृथ्वी भी सूर्य के चारो ओर घूमने से रुक जाय तो जहाज सूर्य की अपेक्षा स्थिर हो जायेगा। किन्तु दोनो

१. A more familiar example of a relative quantity is 'direction' of an object. There is a direction of Cambridge relative to Edinburgh and another direction relative to London, and so on It never occurs to us to think of this as discrepancy or to suppose that there must be some direction of Cambridge (at present undiscoverable) which is obsolute.

The Nature of physical World, p. 27.

१. परमाणु पोग्गलेण भन्ते ! सासए, असासए ? गोयमा ! सिय सासए सिय असासए। से केण ठेण भन्ते ! एव बुच्चइ सिय सासए, सिय असासए ? गोयमा ! दव्वठयाए सासए वण्ण पचमेहि जाव फासवज्जवेहि असासए से तेण ठेण जाव सिय सासए।

—भगवती शतक १४-३४

२. जीवाण भन्ते ! कि सासया असासया ? गोयमा ! जीव सिय सासया सिय असासया। से केण ठेण भन्ते ! एव बुच्चइ जीवा सिय सासया सिय अ समया ! गोयमा ? दव्वठयाए सासया भावठयाए असासवा। —भगतवी श० ७, उ० २

३. Nature is such that it is impossible to determine absolute motion by any experiment whatever.

—Mysterious Univers, p. 78

तब भी इर्द-गिर्द के तारों की अपेक्षा गति करते रहेंगे। सूर्य भी यदि गति-शून्य हो जाये तो भी ग्रह दूरस्थ निहारिकाओं की अपेक्षा से गतिशील ही मिलेंगे। आकाश में इस प्रकार यदि हम आगे से आगे जायेंगे तो हमें पूर्ण स्थिति जैसी कोई वस्तु नही मिलेगी[१]।" तात्पर्य यह हुआ कि सापेक्षवाद के अनुसार प्रत्येक ग्रह व प्रत्येक पदार्थ चर भी है और स्थिर भी है। स्याद्वादी कहते है—परमाणु नित्य भी है और अनित्य भी; ससार शाश्वत भी है और अशाश्वत भी। यहाँ यह देखने की आवश्यकता नही कि स्याद्वाद के निर्णय सापेक्षवाद को व सापेक्षवाद के निर्णय स्याद्वाद को मान्य है या नही किन्तु देखना यह है कि वस्तुतथ्य को परखने की पद्धति कितनी समान है और दोनो ही वाद कितने अपेक्षानिष्ठ है।

'अस्ति', नास्ति, की बात जैसे स्याद्वाद मे पद-पद पर मिलती है वैसे ही 'है और नही' (अस्ति, नास्ति) की बात सापेक्षवाद में भी पद पद पर मिलती है। जिस पदार्थ के विषय मे साधारणतया हम कहते है कि यह १५४ पौण्ड का है। सापेक्षवाद कहता है यह है भी और नही भी। क्योकि भूमध्य रेखा पर यह १५४ पौण्ड है पर दक्षिणी या उत्तरी ध्रुव पर यह १५५ पौण्ड है। गति तथा स्थिति को लेकर वह और भी बदलता रहता है[२]। इसी तरह गुरुत्वाकर्षण के विषय मे आईस्टीन ने एक प्रयोग के द्वारा बताया—एक आदमी लिफ्ट में है। उसके हाथ मे सेम है। ज्यो ही लिफ्ट नीचे गिरना शुरू होता, वह आदमी सेम को गिराने के लिए हथेली को औंधा कर देता है। स्थिति यह होगी—क्योकि लिफ्ट के साथ गिरने वाले मनुष्य की नीचे जाने की गति सेम से भी अधिक है, अत. मनुष्य को लगेगा कि सेम मेरी हथेली से चिपक रही है तथा मेरे हाथ पर उसका दबाव भी पड रहा है। परिणाम यह होगा कि पृथ्वी पर खड़े मनुष्य की अपेक्षा से तो सेम गुरुत्वाकर्षण से नीचे आ रही है, किन्तु लिफ्ट मे रहे मनुष्य की अपेक्षा से गुरुत्वाकर्षण कोई वस्तु नही है[३]। इसीलिए वह है भी और नहीं भी। यहाँ आईस्टीन ने गुरुत्वाकर्षण को केवल उदाहरण के लिए ही माना है। वैसे उसने वैज्ञानिक जगत् से उसका अस्तित्व ही मिटा दिया है।

स्याद्वाद बताता है—"वस्तु अनन्त धर्मात्मक है[४]।" अर्थात् वस्तु अनन्त गुण व विशेषताओं को धारण करने वाली है। जब हम किसी वस्तु के विषय मे कुछ भी कहते है तो एक धर्म को प्रमुख व अन्य धर्म को गौण कर देते है। हमारा वह सत्य केवल आपेक्षिक होता है। अन्य अपेक्षाओं से वही वस्तु अन्य प्रकार की भी होती है। निम्बू के सामने नारगी को बडी कहते है किन्तु पदार्थ धर्म की अपेक्षा से नारगी मे जैसे बडा पन है, वैसे ही छोटापन भी। किन्तु वह प्रकट तब होता है जब खरबूजे के साथ उसकी तुलना करते है। गुरुत्व व लघुत्व जो हमारे व्यवहार मे आते हैं वे मात्र व्यावहारिक या आपेक्षिक है। वास्तविक (अन्य) गुरुत्व तो लोकव्यापी महा-

१. Rest and motion are merely relative terms. A ship which is becalmed is at rest only in a relative sense–relative to the earth; but the earth is in motion relative to the sun, and the ship with it. If the earth which stayed in its course round the sun. The ship would become at rest relative to the sun, but both would still be moving through the surrounding stars. Check the sun's motion through the stars and there still remains the motion of the whole galactic system of stars relative to the remote-nebula. And these remote-nebula move towards or away from one another with speeds of hundreds miles a second or more; by going futher into space we nof only find standard of obsolute rest, but encounter great and greater speed of motion.

—The Mysterious unixerse by sir James Jeens, p. 79.

२ Cosmology Old and New, p. 205.

३. Cosmology Old and New, p. 197.

४. अनन्त धर्मात्मकं सत्।

स्कन्ध में है और अन्त्य लघुत्व परिमाणु में[1]। अब इसके साथ सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक के वक्तव्य की भी तुलना करें। वे लिखते है—"मैं सोचता हूँ हम बहुँधा सत्य व वास्तविक सत्य के बीच एक रेखा खीचते है। एक वक्तव्य जो कि केवल पदार्थ के बाह्य स्वरूप से ही सम्बन्ध रखता है, कहा जा सकता है कि वह सत्य है। एक वक्तव्य जो कि केवल बाह्य स्वरूप को ही व्यक्त नही करता, परन्तु उसकी सतह में रही सच्चाई को भी प्रकट करता है वह वास्तविक सत्य है[2]।" स्याद्वाद व सापेक्षवाद की तथा प्रकार की विस्मयोत्पादक समता को देखकर यह तो मान लेना पड़ता है कि स्याद्वाद कोई अधूरे तथ्यो का सग्रह नही, अपितु वस्तु तथ्य को पाने का एक यथार्थ मार्ग है जो आज से सहस्रो वर्ष पूर्व जैन दार्शनिकों ने खोज निकाला था। उसके तथ्य जितने दार्शनिक है उतने ही वैज्ञानिक भी। वह केवल कल्पनाओ का पुलिन्दा नही किन्तु जीवन का व्यावहारिक मार्ग है। इसीलिए तो आचार्यों ने कहा है—"उस जगद्गुरु स्याद्वाद महासिद्धान्त को नमस्कार हो, जिसके बिना लोक-व्यवहार भी नही चल सकता[3]।"

**सहस्रों वर्ष पूर्व और आज :**

स्याद्वाद और सापेक्षवाद के कुछ प्रसग ऐसे है जो अनायास गंगा जमुना की तरह एकीभूत होकर बहते है। अन्तर केवल इतना ही है कि स्याद्वाद के क्षेत्र में वे आज से सहस्रो वर्ष पूर्व एक व्यवस्थित विधि मे रख दिये गये है और सापेक्षवाद के क्षेत्र मे वे आज चिन्तन की स्थिति पर क्रमिक विकास पा रहे है। उदाहरणार्थ—सत्यासत्य की मीमासा करते हुए रेखागणित व माप-तोल के विषय में सापेक्षवाद के अनुसार माना गया है—"रेखागणित के अनुसार रेखा वह है जिसमे लम्बाई हो पर चौड़ाई या मुटाई न हो। बिन्दु मे मुटाई भी नही होती। दुनिया मे ऐसी रेखा नही देखी गई जिसमें चौड़ाई या मुटाई न हो। वह *उपेक्षणीय या नगण्य दीख* सकती है, पर वह है ही नही, नही कह सकते। धरातल की भी यही बात है। भले ही हमारे दिमाग सिर्फ लम्बाई-चौड़ाई को ही ध्यान मे लाये सिर्फ उन्ही दो परिणामों वाली किसी चीज को तो प्रकृति ने नही बनाया है। सरल रेखा कागज पर खीची देख कर हम समझ लेते है कि इसकी सरलता बिल्कुल स्वाभाविक बात है। सरल से सरल रेखा को भी यदि अधिक बारीक पैमाने से जाँचा जाये तो वह पूरी सरल नही उतर सकती।

नाप का भी यही हाल है। लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई के द्वारा हम जिस बिन्दु रेखा, धरातल आदि की व्याख्या करते है। उन्हे हम उनकी *वास्तविक सापेक्ष* स्थिति मे न लेकर एक आदर्श मान के रूप मे लेते है। लम्बाई नापने के लिए कोई स्थिर आदर्श मानदण्ड नही मिल सकता। ठोस से ठोस धातु का ठीक से नापा हुआ मानदण्ड लोहे या पीतल का तार या छड़ भी एक दिशा से दूसरी दिशा घूमने मात्र से अपनी लम्बाई का करोड़वा हिस्सा घट या बढ जाता है। एक ही जमीन की भिन्न-भिन्न समय मे या भिन्न-भिन्न आदमियो द्वारा की गई जितनी नापिया होती है वे सूक्ष्मता मे जाने पर एक सी नहीं उतरती। शीशे या प्लाटिनम का खूब सावधानी से निशान लगाया जाये, जरीब से नापा जाये, तो भी नापियों मे कुछ न कुछ अन्तर रह ही जाता है, फिर दिशा बदलने से लम्बाई का फर्क होता है, यह अभी कह चुके है। साथ ही तापमान के परिवर्तन से धातुओं का फैलना-सिकुड़ना लाजमी है और समयान्तर में भीतरी परमाणुओं की स्थिति में जो

---

१. सौक्ष्म्य द्विविधं अन्त्यमापेक्षिकञ्च। तत्र अन्त्य परमाणोः; सापेक्षिक यथा नालिकेरापेक्षया आम्रस्य। स्थौल्यमपि द्विविध, तत्र अन्त्य अशेष लोकव्यापि-*महास्कन्धस्य, आपेक्षिक यथा आम्रापेक्षया नालिके*-रस्य। —श्रीजैन सिद्धान्त दीपिका, प्रकाश १, सूत्र १२।

२ I think we often draw a distinction between what is true and what is really true. A Statement which does not profess to deal with any thing except appearances may be true; a statement which is not only true but deals with the realities beneath the appearances is really true.

३. जेण विणावि लोगस्स ववहारो सव्वहा न निव्वडइ। तस्स भुवणेक्क गुरुं णमो अणेगन्तवायस्स॥

लगातार अन्तर पड रहा है, वह भी मान मे अन्तर डालता है। खुद नापी जाने वाली जमीन के बारे मे तो यह बात और भी सच है क्योकि वह प्लाटिनम जैसी दृढता नही रखती और नापने वाला तो यदि अपने औजारो की बात को न माने तो "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" कहावत के अनुसार हर एक नापने वाला अपना-अपना अलग ही परिणाम बतलायेगा। किसी नापी (मानदण्ड) को सच्चा मानने के वक्त हम उसे परमार्थ की कसौटी पर नही कसने लगते; क्योकि यह कसौटी मनुष्य की कल्पना के सिवाय और कही है ही नही। यह नापी के परिणाम को बिल्कुल झूठ कह कर उसे व्यवहार से बहिष्कृत नही कर सकते है। हमारा सच्चा मान वह है जो कि भिन्न-भिन्न नापियों का माध्यम (औसत) है। सावधानी के साथ जितनी अधिक नापिया की जायेंगी, माध्यम उतना ही ठीक होगा और जो नापी इस माध्यम के समीप होगी वही सत्य होगी। इन बातों से यह तो पता लग गया कि तार्किको ने वास्तविकता की अच्छी तरह छानबीन किये बिना जो सिर्फ तर्क से किसी बात को स्वय सिद्ध कर डाला हैं, वह उन्ही के शब्दो मे मान लेने लायक नही है। हमारी उक्त परिभाषाए ठीक हो सकती हैं यदि उन्हे परमार्थ-सत्य मानने की जगह हम सापेक्ष-सत्य कहे। अधिक वक्र की अपेक्षा कोई रेखा सरल हो सकती है। अधिक मोटे बिन्दुओ या अत्यन्त क्षुद्र रेखाओ की अपेक्षा किसी बिन्दु को लम्बाई चौडाई को हम नगण्य समझ सकते है। हमारे सभी माप-तोल सापेक्ष हैं[१]।" स्याद्वाद भी उक्त प्रकार की अपेक्षात्मक समीक्षाओ से भरा पडा है। जैन आगम श्रीपन्नवणा-सूत्र मे सत्य के भी दश भेद कर दिये गये है। जहाँ सापेक्षवादी व्यावहारिक माप तोल आदि को कुछ डरते हुए-से सत्य में समाविष्ट करने लगते है, वहाँ लगभग सभी प्रकार का आपेक्षिक सत्य दस भागों मे विभक्त कर दिया गया है। दश भाग इस प्रकार है—

१. **जनपद-सत्य (देश सापेक्ष सत्य)**—भिन्न-भिन्न देशो की भिन्न-भिन्न भाषाएँ होती है। अत. प्रत्येक पदार्थ के भिन्न-भिन्न नाम हो जाते है पर वे सब अपने देश की अपेक्षा से सत्य है। कुछ शब्द ऐसे भी होते है जो क्षेत्र-भेद से एक-दूसरे के विपरीत अर्थवाची हो जाते है—जैसे साधारणतया पिता को 'बापू' कहा जाता है। कुछ क्षेत्रों मे छोटे बच्चे को उसका पिता व अन्य 'बापू' कहते है, पर वे जनपद सत्य के अन्तर्गत आ जाने से असत्य नहीं कहे जाते।

२. **सम्मत-सत्य**—जन-व्यवहार से जो शब्द मान्य हो गया है। जैसे—पंक से पैदा होने के कारण कमल को पकज कहा जाता है पर मेढक को नही; हालाकि वह भी पक से पैदा होने वाला है। अतः इस विषय मे कोई तर्क नहीं चल सकता कि उसे भी पकज क्यो नहीं कहा जाये।

३. **नाम-सत्य**—किसी का नाम विद्यासागर है और वह जानता क, ख, ग भी नही। लोग उसे विद्यासागर कहते है तो भी असत्यवादी नही कहे जाते, क्योकि उनका कहना नाम-सापेक्ष सत्य है। नाम केवल व्यक्ति के पहचान की कल्पना है। अतः यह नही देखा जाता कि उसके जीवन के साथ वह कितना यथार्थ है।

४. **स्थापना-सत्य**—किसी वस्तु के विषय मे कल्पना कर लेना। जैसे १२ इच का एक फीट, ३ फीट का १ गज। इतने तोलो का सेर है या इतने सेरो का मन है। यह स्थापना देश, काल की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होती है, पर अपनी-अपनी अपेक्षा से जब तक व्यवहार्य है तब तक सब सत्य है। सत्य के इस भेद मे अपेक्षावाद के उक्त माप, तोल गणित आदि के सारे विचार समा जाते है। वे सब सापेक्ष-सत्य है। एक मानदण्ड मे सूक्ष्म दृष्टि से चाहे प्रतिक्षण कितना ही अन्तर पडता हो, पर जब तक व्यवहार्य है तब तक वह सत्य ही माना जायेगा। वास्तविक दृष्टि मे सापेक्षवाद के अनुसार जिस प्रकार मानदण्ड आदि मे प्रतिक्षण परिवर्तन माना है, स्याद्वाद शास्त्र मे उस परिवर्तन का विवेचन और गभीर व व्यापक मिलता है। स्याद्वाद के अनुसार वस्तु ही वह है, जिसमे प्रतिक्षण नये स्वरूप की उत्पत्ति, प्राचीन स्वरूप का नाश और मौलिक स्वरूप की निश्चलता हो। प्रतिक्षण परिवर्तन के विषय मे दोनों वादो का एक-सा सिद्धान्त एक-दूसरे की सत्यता का पोषक है।

५. **रूप-सत्य**—केवल रूप सापेक्ष कथन रूप-सत्य है। जैसे—नाट्यशाला मे नाट्यकारो के लिए दर्शक कहा

१. विश्व की रूपरेखा, अध्याय १, सापेक्षवाद।

करते है—यह हरिश्चन्द्र है, यह रोहताश्व है। रामलीला मे कहा करते है—यह राम है, यह सीता है।

**६. प्रतीति-सत्य**—जैसे प्रतीति हो। दूसरे शब्दो मे इसे हम सापेक्ष-सत्य भी कह सकते है। आम्रफल की अपेक्षा आमलक छोटा है, ऐसी प्रतीति होती है, और गुजा की अपेक्षा वह बडा है, यह भी प्रतीति होती है। सापेक्षवाद का एक बडा विभाग इसी एक भेद में समा जाता है।

**७. व्यवहार-सत्य**—लोक भाषा मे सम्मत वाक्य व्यवहार सत्य है। जैसे बहुत बार पूछा जाता है, यह सड़क कहाँ जाती है? कोई उत्तर दे सकता है कि महाशय यह तो कही नही जाती यही पडी रहती है। बटोही थका-मादा गाँव के पास पहुँचता है और कहता है—"अब तो गाँव आ गया है।" पर कोई यह नही पूछता कि "तुम आये हो या गाँव चलकर आया है।" तात्पर्य यही है कि लोक व्यवहार से यह कहना असिद्ध नही है। अत: यह सत्य का ही एक भेद है।

**८. भाव-सत्य**—यथावस्थित इन्द्रिय सापेक्ष कथन। जैसे—हंस धोला है, कज्जल काला है। पर यह यथावस्थित कथन भी स्थूल दृष्टि की अपेक्षा से है। सूक्ष्म दृष्टि वहाँ भी उपेक्षित है। उसके अनुसार तो हस और कज्जल में पांच वर्ण है।

**९. योग-सत्य**—दो या दो से अधिक वस्तुओ के योग से जो सज्ञा बनी हो। तत्पश्चात् उस योग के अभाव मे भी उस सज्ञा का प्रयोग योग-सत्य है। जैसे—दण्डी, छत्री, स्वर्णकार, चर्मकार आदि।

**१०. उपमा-सत्य**—उपमा अलकार आदि सारी साहित्यिक कल्पनाएं इस सत्य मे अन्तर्निहित है, इसके चार विकल्प हैं—उपमा सद् उपमेय असद्, उपमा असद् उपमेय सद्, दोनों सद् और दोनो असद्।

**निरपेक्ष व सम्पूर्ण सत्य :**

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध विचारक सर राधाकृष्णन् ने स्याद्वाद के विषय मे लिखा है "स्याद्वाद निरपेक्ष या सम्पूर्ण सत्य की कल्पना किये विना तर्क के धरातल पर नही ठहर सकता……। वह अपेक्षिक सत्यो को पूर्ण सत्य मानने की प्रेरणा देता है'।" यह एक धारणा जो राधाकृष्णन् जैसे मनीषी की बनी, लगता है सापेक्षवाद उन्हे स्याद्वाद सम्बन्धी उक्त निर्णय पर पुन: सोचने को प्रेरित करेगा।

जहाँ इनकी धारणा है निरपेक्ष सत्य को माने बिना काम नही चल सकता वहाँ सापेक्षवाद बताता है—"परमार्थ मन की कल्पना मात्र है। परमार्थ को प्राकृतिक वस्तुओं और नियमो पर जब हम लादने की कोशिश करते है तो यही नही कि हम वस्तु सत्य को छोड आकाश मे उडने लगते है, बल्की उल्टी धारणाओं के शिकार हो हो जाते है। लेकिन वस्तुओ और उनके गुणो की सापेक्षता का मतलब यह नही है कि हम उनकी सत्ता से इन्कार कर दें। सापेक्षता परमार्थ नामधारी किसी भी पदार्थ को सिद्ध नही होने देती, किन्तु सापेक्षता द्वारा

१. The theory of relativity cann t be logically sustained without the hypothesis of an absolute……The Jains admit that things are one in their universal aspect (jati or Karana) and many in their particular aspect aspect (Vyakti or Karya), Both these, according to them are partial points of view. A plurality of reals is admittedly a relative truth. We must rise to the complete point of view and look at the whole with all the wealth of its attributes. If Jainism stops short with pluratily, which is at best a relative and partial truth, and does not ask whether there is any higher truth painting to a one which particularises itself in the objects of the world, connected with one another vitally essentially and immanently, it throws over board, its one logic and exalts a relative truth into an obsulute one.

—Indian Philosophy Vol. 1, pp. 305, 306.

सत्ता से इन्कार करवाना तो उनकी सीमा से बाहर जाना है। सापेक्षता आखिर माननी क्यों पड़ती है? इसलिए तो कि वस्तु सत्ता हमें ऐसा मानने के लिए मजबूर करती है[1]।" इस प्रकार सापेक्षवाद स्याद्वाद की अपेक्षावादिता को पूर्णतया पुष्ट करता है।

स्याद्वाद स्वयं भी अपने आप मे इतना पुष्ट है कि डा० राधाकृष्णन् का तर्क उसे हतप्रभ नही कर सकता। स्याद्वाद भी तो यह मानकर चलता है कि निरपेक्ष सत्य विश्व मे कुछ है ही नही तो हमारे मन में उसका मोह क्यों उठता है? धर्मकीर्ति ने कहा है—"यदि पदार्थो को स्वयं यह अभीष्ट हो तो हम उन्हे निरपेक्ष बताने वाले कौन होते है[2]?" सापेक्ष सत्य के विषय मे जो सन्देह-शीलता विचारो को लगती है उसका एक कारण यह है कि सापेक्ष सत्य को पूर्ण सत्य व वास्तविक सत्य से परे सोच लिया जाता है, किन्तु वस्तुतः सापेक्ष सत्य उनसे भिन्न नही है। हर एक व्यक्ति सरलता से समझ सकता है कि नारगी छोटी है या बड़ी। यहाँ वास्तविक और पूर्ण सत्य यही है कि वह छोटी भी है और बडी भी, अपने बडे व छोटे पदार्थो की अपेक्षा से। यहाँ कोई यह कहे कि यह तो आपेक्षिक व अधरा सत्य है तो वह स्वय बताये कि यहाँ निरपेक्ष या पूर्ण सत्य क्या है?

कुछ एक जैन विचारको ने डा० राधाकृष्णन् की समालोचना के साथ सगति बैठाने के लिए स्याद्वाद को केवल लोक-व्यवहार तक सीमित माना है और जैन दर्शन मे प्रतिपादित निश्चय नय को पूर्ण सत्य (absolute truth) बताने का प्रयत्न किया है[3]। किन्तु यह यथार्थ नही कि स्याद्वाद केवल लोक-व्यवहार मात्र है, क्योकि **'स्यादस्त्येव सर्वमिति'** और **'स्यान्नास्त्येव सर्वमिति'** अर्थात् 'स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से सब कुछ है ही' और 'परद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा सब कुछ नही है ही' यह जो स्याद्वाद का हृदय सप्तभगी तत्त्व है, उसका विषय लोक-व्यवहार ही नही अपितु द्रव्य मात्र है। इसी लिए तो आचार्यों ने कहा है—"द्वीप से लेकर व्योम तक वस्तुमात्र स्याद्वाद की मुद्रासे अकित है[4]।" केवली (सर्वज्ञ) व निश्चय नय द्वारा बताया गता तत्त्व भी कहने भर को निरपेक्ष है क्योकि 'स्यादस्ति स्यान्नास्ति से परे वह भी नही है। अतः स्याद्वाद का यह डिडिमनाद कि सत्यमात्र सापेक्ष है व पूर्ण सत्य व वास्तविक सत्य उससे परे कुछ नही; वह स्वयं सिद्ध है और तर्क की कसौटी पर आधु-निक सापेक्षवाद द्वारा समर्थित है।

**समालोचना के क्षेत्र में :**

स्याद्वाद व सापेक्षवाद दोनो ही सिद्धान्तो को अपने-अपने क्षेत्र मे विरोधी समालोचकों के भरपूर आक्षेप सहन करने पडे है। आक्षेपो के कारण भी दोनों के लगभग समान है। दोनो की ही विचारो की जटिलता को न पकड़ सकने के कारण धुरधर विद्वानो द्वारा समालोचनाए हुई है। किन्तु दोनो ही वादो मे तथा प्रकार की आलोचनाए तत्त्व-वेत्ताओ के सामने उपहासास्पद व अज्ञता मूलक सिद्ध हुई है। उदाहरणार्थ शकराचार्य जैसे विद्वानो ने स्याद्वाद के हार्द को न पकडते हुए लिख मारा—"जब ज्ञान के साधन, ज्ञान का विषय, ज्ञान की क्रिया सब अनिश्चित है तो किस प्रकार तीर्थंकर अधिकृत रूप से किसी को भी उपदेश दे सकते है। और स्वय आचरण कर सकते है, क्योंकि स्याद्वाद के अनुसार ज्ञानमात्र ही अनिश्चित है।" इसी प्रकार प्रो० एस० के० बेलवालकर एक प्रसग मे लिखते है-—"जैन-दर्शन का प्रमाण सम्बन्धी भाग अनमेल व असगत है अगर वह स्याद्वाद के आधार पर लिया जाये। S (एस) हो सकता है, S (एस) नही हो सकता दोनो हो सकते है; P (पी) नही हो सकता, इस प्रकार का निषेधात्मक और अज्ञेयवादी (एग्नोस्टिक) वक्तव्य कोई सिद्धान्त नही हो सकता।" इसी प्रकार कुछ लोगो ने कहा—'यह अजीब बात है कि स्याद्वाद दही और भैंस को भी परस्पर एक मानता है। पर वे दही तो खाते है, भैंस नही खाते, इसीलिए स्याद्वाद गलत है।' स्याद्वाद वेत्ताओके सामने ये सारी आलोचनाए बचपनकी सूचक थी।

१ विश्व की रूपरेखा, सापेक्षवाद, पृ० ५७-५८.

२. यदिद स्वयमर्थाना रोचते तत्र के वयम्?

—प्रमाण तार्किक २-२०६

३. स्याद्वाद मजरी, जगदीशचन्द्र एम० ए० द्वारा अनू-दित, पृ० २५।

४. आदीपमाव्योम समस्वभाव स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु।

—अन्ययोगव्यवच्छेदिका श्लो० ५

शंकराचार्य ने स्याद्वाद को संशयवाद या अनिश्चितवाद कहा। सम्भवतः उन्होंने 'स्यादस्ति' का अर्थ 'शायद है' ऐसा समझ लिया हो पर स्याद्वाद संशयवाद नही है। इसके अनुसार वस्तु अनन्त धर्मवाली है। हम वस्तु के विषय में निर्णय देते किसी एक ही धर्म (गुण) की अपेक्षा करते है किन्तु उस समय वस्तु के अन्य गुणो भी उसी वस्तु मे ठहरते है इसलिए 'स्यादस्ति' अर्थात् 'अपेक्षा विशेष से है' का विकल्प यथार्थ ठहरता है। वहाँ अनिश्चितता और सन्देहशीलता इसलिए नही है कि स्यादस्ति के साथ 'एव' शब्द का प्रयोग और होता है। इसका तात्पर्य स्याद्वादी किसी भी वस्तु के विषय मे निर्णय देते हुए कहेगा अमुक अपेक्षा से ही ऐसा है। प्रश्न उठता है कि 'अमुक अपेक्षा मे' ऐसा क्यों कहा जाये? इसका उत्तर होगा इसके बिना व्यवहार ही नही चलेगा। अमुक रेखा रेखा छोटी है या बड़ी यह प्रश्न ही नही पैदा होगा। जब तक कि हमारे मस्तिष्क मे दूसरी रेखा की कोई कल्पना न होगी। इस स्थिति मे अनिश्चितता नही किन्तु यथार्थता यह होगी कि रेखा बड़ी या छोटी है भी, नही भी। यह तर्क एस० के० बेलवालकर के तर्क पर लागू होता है। S (एस) हो सकता है, S नही हो सकता है आदि विकल्पो को समझने के लिए क्या यह सर्वमान्य तथ्य नही होगा कि रेखा बडी भी है छोटी की अपेक्षा से। छोटी बड़ी दोनो ही नही है सम रेखा की अपेक्षा से। तथा प्रकार से S है अंग्रेजी भाषा की अपेक्षा से, एस लुप्त अकार का चिह्न है सस्कृत भाषा की दृष्टि से दोनो है भाषाओं की अपेक्षा से, दोनों नही है अन्य भाषाओं की अपेक्षा से।

स्याद्वाद कोई कल्पना की आकाशी उड़ान नही बल्कि जीवन-व्यवहार का एक बुद्धिगम्य सिद्धान्त है। लोगो ने 'है और नही भी' के रहस्य को न पकड कर उसे सन्देहवाद या संशयवाद कह डाला, किन्तु चिन्तन की यथार्थ दिशा मे आने के पश्चात् वह इतना सत्य लगता है जैसे दो और दो चार। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल व गुण (मान) की अपेक्षा से प्रत्येक पदार्थ है और पर द्रव्य क्षेत्र आदि की अपेक्षा से प्रत्येक पदार्थ नही है, यही 'स्यादस्ति' और 'स्यान्नास्ति' का हार्द है। दही व भैंस एक है द्रव्यत्व की अपेक्षा से, एक नही हैं दधित्व व महिषत्व की अपेक्षा से। दही खाने का पदार्थ है दधित्व की अपेक्षा से, न कि द्रव्य होने के मात्र से; इसलिए दही के साथ भैंस की बात जोड़ना मूर्खता है।

सापेक्षवाद की आलोचना का भी लम्बा इतिहास बन चुका है। यह सत्य है कि सापेक्षवाद आज वैज्ञानिक जगत् मे गणितसिद्ध सर्वसम्मत सिद्धान्त बन गया है और यह माना जाने लगा है कि इस सदी का वह एक महान् आविष्कार और मानव मस्तिष्क की सबसे ऊंची पहुच है[१]। पर इसकी जटिलता को हृदयगम न कर सकने के कारण आरम्भ में आलोचकों का क्या रुख रहा, यह एक दिलचस्प विषय है। एक सुप्रसिद्ध व अनुभव इंजीनियर सिडने ए० रवि ने कहा है—"आईस्टीन का सिद्धान्त निरी ऊटपटाग बकवास है[२]।" दार्शनिक गगन हेमर ने लिखा है—"आईस्टीन ने तर्क शास्त्र मे एक मूर्खतापूर्ण मौलिक भूल की है[३]।" इस प्रकार स्याद्वाद की तरह सापेक्षवाद की भी विचित्र समालोचनाए हुई, पर आज वह वैज्ञानिक जगत मे बीसवी सदी का एक महान् आविष्कार सर्वसम्मततया मान लिया गया है।

### उपसंहार

कुछ एक विचारकों का मत है कि स्याद्वाद और सापेक्षवाद मे कोई तुलना नही बैठ सकती; क्योकि स्याद्वाद एक आध्यात्मिक सिद्धान्त है और सापेक्षवाद मौलिक वस्तुस्थिति यह है कि दोनो ही वाद निर्णय की पद्धतियां है, अतः कोई भी आध्यात्मिकता या भौतिकता तक सीमित नही हैं। यह एक गलत दृष्टिकोण है कि स्याद्वाद आध्यात्मिकता तक सीमित है। वह तो अपने स्वभाव से

---

१. Relativity is probably the forthest reach that the human mind has made into "Unkaun."

—Exploring the Universe, p. 197.

२. 'Einstein theory is arrant non-sense.'

—Cosmology Old and New, p. 197.

३. Einstein has made a very silly basic errar in logic.

—Cosmology Old and New p. 197.

जितना आत्मा से सम्बन्धित है, उतना पुद्गल (भूत) से भी। जब वह समानतया दोनों के ही विषय में यथार्थ निर्णय देता है, तो इस अर्थ मे अपने आप सिद्ध हो जाता है कि जितना वह आध्यात्मिक है उतना ही वह भौतिक भी। यद्यपि वैज्ञानिको का विषय भौतिक विद्या ही है, अत सापेक्षवाद का लक्ष्य उससे आगे नहीं बढ पाया, इसलिए वह भौतिक पद्धति ही मान जाता है। पर वास्तव मे यह भी स्याद्वाद की तरह वस्तु को परखने की एक प्रणाली है। इसे आध्यात्मिक या भौतिक कुछ भी कहे यह अधिक यथार्थ नही है। फिर भी इसे यदि भौतिक पद्धति भी माने तो भी परमाणु से ब्रह्माण्ड तक के भौतिक (पौद्गलिक) पदार्थ तो स्याद्वाद व सापेक्षवाद दोनो के विषय होते। इसलिए स्याद्वाद और सापेक्षवाद के सम अशो की तुलना अपना एक महत्त्व रखती है।

स्याद्वाद और सापेक्षवाद की आश्चर्योत्पादक समता से हमारे चिन्तन के बहुत सारे पहलू उभर आते है। आज तक जो दर्शन और विज्ञान के बीच की खाई अधिक से अधिक चौडी होती जा रही थी, इस प्रकार से यदि चिन्तन समान धारा से बहने लगेगा, तो सम्भव है कि भविष्य के किन्हीं क्षणो मे वह खाई पट सकेगी।

स्याद्वाद को सशयवाद के रूप मे समझने की जो एक भूल चली आ रही थी, लगता है, सापेक्षवाद के द्वारा समर्थित उसकी वैज्ञानिकता उसको नामशेष ही कर देगी।

दर्शन से पराड्मुख व विज्ञानके प्रति श्रद्धालु व्यक्तियो को स्याद्वाद व सापेक्षवाद की पूर्वोक्त समानता यह सोचने का अवसर देगी कि दर्शन जैसा कि वे समझते है एक भूलभूलैयाग़री कल्पना नही बल्कि चिन्तन की एक प्रगतिशील धारा है, जिसकी दिशा मे विज्ञान आज आगे बढने को प्रयत्नशील है। दोनो वादो की समानता मे हर एक तटस्थ विचारक को यह तो लगेगा ही कि स्याद्वाद ने दर्शन के क्षेत्र मे विजय पाकर अब वैज्ञानिक जगत् मे विजय पाने के लिए सापेक्षवाद के रूप मे जन्म लिया है।

●

## अपनत्व

एक दिन कवि बगीचे मे जा पहुँचा। वृक्षो व लताओं की शीतल छाया मे उसका मानस अतिशय प्रीणित होने लगा। इधर-उधर पर्यटन करते हुए सहसा उसकी दृष्टि माली पर पडी। वह सविस्मय मुस्कराया और चिन्तन के उन्मुक्त अन्तरिक्ष मे विहरण करने लगा।

माली ने भी उसे निहारा उसकी भाव-भंगिमा देखकर उससे मौन नही रहा गया। उसने पूछा—कविवर! मुस्कराहट किस पर ? प्रकृति के ये वरद पुष्प आपके मन मे गुदगुदी उत्पन्न कर रहे है या मेरे कार्य को देख कर हँस रहे है ?

कवि—माली ! मेरी हँसी का निमित्त अन्य कोई नही, तू ही है, जहां एक ओर तू कुछ एक पौधो की काट-छाट कर रहा है—निर्दय बनकर कैंची का प्रयोग कर रहा है, वहाँ दूसरी ओर कुछ पौधे लगा भी रहा है। उनमे पानी सीच रहा है, सार सभाल कर उन्हे पुष्ट कर रहा है। यह तेरा कैसा व्यवहार ! इस भेदबुद्धि के पीछे क्या रहस्य है ? तेरी दृष्टि मे सब वृक्ष समान है। फिर भी एक पर अपनत्व, अन्य पर परत्व, एक को पुचकारना और एक को ललकारना ! तेरे जैसे सरक्षक के व्यवहार मे इस अन्तर का क्या कारण है ?

माली—कविवर ! मेरे पूर्वजों ने मुझे यही भली भाति प्रशिक्षण दिया था कि मनुष्य को अपने कर्तव्य पर अटल रहना चाहिए। मेरा प्रति कदम उसी तत्त्व को परिपुष्ट करने के निमित्त उठता है; क्योकि मुझे उद्यान की सुन्दरता को सुरक्षित रखना है। इसका प्रतिदिन विकास करना मेरा परम धर्म है। अत मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह भेदबुद्धि से नही, अपितु समबुद्धि से कर रहा हूँ। यह मेरा पक्षपात नही, साम्य है। केवल बहिरंग को ही न देखकर अन्तरग की परतों को भी खोलना चाहिए। यदि ऐसा किया गया तो आपको स्पष्ट ज्ञान होगा कि मेरी इस प्रवृत्ति के पीछे प्रत्येक पौधे के साथ मेरा कितना अटूट एवं निश्छल अपनत्व है।

—**मुनि कन्हैयालाल**

# मथुरा के सेठ लक्ष्मीचन्द सम्बन्धी विशेष जानकारी

**श्री अगरचन्द नाहटा**

'सन्मति सदेश' जनवरी '६६ के अक मे "दो जैनो के वैष्णव हो जाने के उल्लेख" शीर्षक मेरा लेख छपा है। उसमे यमुनावल्लभ रचित रसिक भक्तमाल का एक पद्य उद्धृत किया गया था जिसमें सेठ श्री लक्ष्मीचन्द के सबध मे यह लिखा गया था कि "जैन धर्म कू त्यागि, भये वैष्णव अनुरागी" इस पंक्ति के सबध मे मैने यह लिखा कि 'सेठ लक्ष्मीचन्द के वंशज अभी भी विद्यमान होंगे। ये किसी कारण से, कब जैन धर्म को छोडकर वैष्णव बने इसकी जानकारी मथुरा, वृन्दावन के जैन बधु प्रकाशित कर सकें तो अच्छा हो'। खेद है कि मेरे उस निवेदन पर मथुरा, वृन्दावन के किसी भी जैन बधु ने कुछ भी प्रकाश नही डाला। पर दिल्ली के श्री कुन्दनलाल जैन ने तारीख ६ १-६६ के पत्र मे मेरे उक्त लेख को पढ़कर लिखा कि "मथुरा के सेठ लक्ष्मीचन्द जी का वैष्णव हो जाने का उल्लेख सर्वथा भ्रमपूर्ण है। वे जैन थे और अन्त तक जैन रहे। यह बात दूसरी है कि उनका वैष्णव सम्प्रदाय की ओर झुकाव केवल अपना व्यक्तित्व स्थिर रखने के लिए हो गया था। मथुरा चौरासी का विशाल जैन मदिर सेठ लक्ष्मीचन्द जी का ही बनाया हुआ है। जब वे यह जैन मदिर बनवा चुके तो वैष्णवो का आग्रह हुआ कि आपके द्रव्य का सदुपयोग श्री रग जी के लिये भी होना चाहिये। उन्होने अपनी उदारता प्रकट करने के लिये वह मदिर भी बनवा दिया। वे नगर के सेठ थे। सभी लोग उनसे आशाएँ रखते थे अत उन्हे सभी को सन्तुष्ट रखना पडता था। उनकी औरस सन्तान तो कोई न थी पर गोद की परम्परा आजभी चल रही है। वहा सेठ भगवानदास उसी वश की गोद मे आये है। द्वारिकाधीश के मदिर के सामने उनकी बडी विशाल अतुल सम्पत्ति है। मै मथुरा ५ वर्ष ( १६४६-५१ ) तक रहा हूँ सो मुझे इतनी जानकारी उपलब्ध हो सकी थी। विशेष जानकारी दिगम्बर जैन सघ, चौरासी मथुरा के विद्वान से उपलब्ध की जा सकती है।"

वास्तव मे श्रीरगजी का मदिर बनवाने के कारण ही रसिक भक्तमाल मे उनको वैष्णव अनुरागी होना लिख दिया है। उन्होने जैन धर्म का त्याग नही किया था। रसिक भक्तमाल के पद्य के अन्तिम-चरण मे श्री लक्ष्मीचन्द के साथ राधाकिसन और गोविन्ददास का उल्लेख है वे ही रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी हो गये थे। इस बात का स्पष्ट उल्लेख श्री प्रभुदयाल जी मीतल के हाल ही मे प्रकासित ग्रन्थ मे हुआ है जिसमे श्री रग जी के मदिर को सेठ लक्ष्मीचन्द से छिपाकर सेठ राधाकिसन व गोविन्ददास ने संवत् १६०२ मे बनाना आरम्भ किया किन्तु धन की यथेष्ट व्यवस्था न होने से उसका निर्माण-कार्य रोक देना पडा। जब सेठ लक्ष्मीचन्द को इस बात की जानकारी हुई तो उन्होने इसे पूरा करा दिया। इस प्रकार ४५ लाख रुपये की लागत का यह मन्दिर सवत् १६०८ मे पूरा हुआ।

चौरासी के जैन मन्दिर के सबध मे श्री प्रभुदयालजी मीतल ने लिखा है कि 'मथुरा चौरासी नामक प्राचीन सिद्ध क्षेत्र मे मनीराम द्वारा निर्मित यह एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। इसमे पहले श्रीचन्द्रप्रभ की व बाद मे श्री अजितनाथ की प्रतिमाए प्रतिष्ठित की गई थी। ब्रज मण्डल जैनधर्म का यह सबसे प्रसिद्ध केन्द्र है।

दिगम्बर जैन मन्दिर चौरासी के विद्वानो को वहा के शिलालेख और कागजातो से सही और विस्तृत जानकारी प्रकाश मे लानी चाहिए।

उपर्युक्त श्री प्रभुदयाल मीतल का 'ब्रज का सास्कृतिक इतिहास' प्रथम भाग राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित व प्रसारित हुआ है उसके पृष्ठ ५४६ से ५५० मे सेठ मनीराम और लक्ष्मीचन्द तथा उनके वशजो के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रकाशित हुई है। 'ब्रज

संस्कृति के सहायक महानुभाव' शीर्षक के अन्तर्गत 'मथुरा का सेठ घराना' उपशीर्षक मे सेठ मनीराम, सेठ लक्ष्मीचन्द और उसके उत्तराधिकारी का विवरण दिया गया है व अन्त मे सेठ घराने का वश-वृक्ष भी दे दिया गया है। सबसे पहले भूमिका के रूप मे यह लिखा गया है कि "अग्रेजो के शासनकाल मे ब्रज की बिगडी हुई धार्मिक और सास्कृतिक स्थिति को यथासम्भव सुधारने के कार्य मे जिन महानुभावो ने अपना योग दिया था उनमे मथुरा के सेठो का स्थान सर्वोपरि है। उन्होंने ब्रज सस्कृति के विविध क्षेत्रो मे अपने अपार वैभव का विनियोग करते हुए बडी महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की। उनके द्वारा निर्मित मथुरा का श्री द्वारिकाधीश का मन्दिर और वृन्दावन का श्रीरगजी का मन्दिर ब्रज की धार्मिक और सास्कृतिक प्रवृत्तियो के केन्द्र रहे है। सेठ घराने के प्रमुख व्यक्तियो का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

**गोकुलदास पारिख**—ग्वालियर मे गोकुलदास पारिख एक गुजराती वैश्य था। वह पहले एक सामान्य कर्मचारी था किन्तु अपनी प्रतिभा और कर्तव्य परायणता से सिंधिया नरेश का विश्वास पात्र पदाधिकारी और राज्य का खजाची हो गया था। उस काल मे उज्जैन के नागा सन्यासियो ने बडा उपद्रव कर रखा था। अन्त मे दौलतराव सिंधिया ने नागाओ का दमन करने के लिये पारिख जी को राजकीय सैनिको के साथ उज्जैन भेजा था। पारिख जी के चातुर्य और रण कौशल से नागाओ की पूरी तरह पराजय हो गई। नागा साधुओ द्वारा अनेक वर्षो से सचित करोडों की धनराशि पर पारिख जी का अधिकार हो गया। वह उस सचित सम्पति को लेकर ग्वालियर वापस आ गया। राजकीय प्रतिष्ठा के साथ ही पारिख जी का धन-वैभव भी बढ गया। जिस स्थान पर वह रहता था वह पारिख जी बाडा लश्कर मे आज भी प्रसिद्ध है। पारिख जी वल्लभ सम्प्रदाय का अनुयायी था। उसने अपने निवास स्थान पर श्री द्वारिकाधीशजी का एक मदिर बनवाया था। उसके अधीनस्थ कर्मचारियों मे दो मुनीम भी थे-( १ )मनीराम और ( २ ) चम्पाराम[1]। मनीराम अत्यन्त विश्वास पात्र और चतुर मुनीम था और उसका उत्तराधिकारी समझा जाता था। गोकुलदास पारिख मनीराम आदि के साथ सवत् १८७० मे नागाओ की सम्पति को लेकर ब्रज मे आ गया। मथुरा में श्री द्वारिकाधीशजी का मदिर सवत् १८७१ मे बनाया और सेवा-पूजा मे मनीराम मुनीम का बडा सहयोग रहा। मनीराम खण्डेलवाल वैश्य और श्रावकी जैन था। उसके ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीचन्द को पारिख जी ने उत्तराधिकारी घोषित किया और लिखा-पढी कर समस्त सम्पत्ति मनीराम को सौप दी। सवत् १८८३ मे पारिख जी का देहान्त हो गया। पारिख जी के वृतान्त का सक्षिप्तसार देने के बाद मनीराम, लक्ष्मीचन्द आदि का पूरा विवरण नीचे दिया जा रहा है—

**सेठ मनीरामः**—

वह जयपुर राज्यातर्गत मालपुरा ग्राम का निवासी एक जैनी खण्डेलवाल वैश्य था। घर की दरिद्रताके कारण वह अपने जन्म-स्थान को छोडकर ग्वालियर आ गया था। और वहा गोकुलदास, पारिख जी की सेवा में रहने लगा था। अपनी योग्यता तथा चतुरता के कारण उसकी उन्नति भी होती गयी थी। जब पारिख जी ने आकर ब्रज मे निवास किया, तब वह भी उसके साथ वहा आ गया था। उसके तीन पुत्र थे। (१) लक्ष्मीचन्द ( २ ) राधाकृष्ण और ( ३ ) गोविंददास।

जैसा पहिले लिखा गया है पारिख जी ने अपनी मृत्यु से पहले लक्ष्मीचन्द को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर अपनी समस्त सम्पति मनीराम को सौप दी थी। पारिख जी की मृत्यु होने पर उसके भाई-भतीजो ने अपने अधिकार के लिए मनीराम-लक्ष्मीचन्द के विरुद्ध मुकदमा दायर किया था। वह मुकदमा कई वर्ष तक चलता रहा था। अत मे उसका निर्णय मनीराम-लक्ष्मीचन्द के पक्ष मे ही हुआ था।

मनीराम ने पारिख जी की विपुल सपत्ति को धर्मादि मे लगाने के साथ ही साथ कारबार मे भी लगाया था। उसने मनीराम लक्ष्मीचन्दके नामसे एक व्यापारिक प्रतिष्ठान की स्थापना कर उसके द्वारा लेन-देन का कारबार आरभ किया जिससे वह सपत्ति दिन-रात बढने लगी। उसके

१. देखो मेरा वृन्दावन के दीवान चम्पाराम की कृतिया जैनशोधांक २२

प्रतिष्ठान की बडी भारी साख थी और वह इस क्षेत्र का सबसे अधिक धनी माना जाता था। ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया के देहावसान के पश्चात् रानी बायजाबाई ने सेठ मनीराम को ग्वालियर राज्य का खजाची नियुक्त किया था। वहां के सरकारी कागजो से ज्ञात होता है कि उस काल मनीराम का ग्वालियर राज्य मे बड़ा प्रभाव था[१]।

उसके धार्मिक कार्यों मे उसके द्वारा निर्मित चौरासी का जैन मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसका देहान्त स० १९९३ में हुआ था। मनीराम और गोकुलदास पारिख की सुन्दर छतरियाँ मथुरा के 'यमुना बाग' मे बनी हुई थी।

**चौरासी का जैन मन्दिर :—**

मथुरा के चौरासी नामक प्राचीन सिद्धक्षेत्र मे मनीराम द्वारा निर्मित यह एक दिगबर जैन मन्दिर है। इसमे पहिले श्रीचन्द प्रभु की और बाद मे श्री अजितनाथ की प्रतिमाएं प्रतिष्ठित की गई थी। ब्रज मण्डल मे जैनधर्म का यह सबसे प्रसिद्ध केन्द्र है।

**सेठ लक्ष्मी चन्द :—**

वह मनीराम का ज्येष्ठ पुत्र और पारिख जी का उत्तराधिकारी था। उसने भाग्यवश अपनी बाल्यावस्था मे पारिख जी की विपुल सम्पत्ति प्राप्त की थी। मनीराम के जीवन-काल मे ही वह अपने कार-बार को देखने लगा था और उसने अपने व्यापारिक प्रतिष्ठान की बडी उन्नति की थी। मनीराम के पश्चात् उसके कार-बार, धन-वैभव और यश की इतनी वृद्धि हुई कि उसका नाम समस्त उत्तर भारत मे प्रसिद्ध हो गया था। वह 'नगर सेठ' कहलाता था। और उसके प्रतिष्ठान 'मनीराम लक्ष्मीचन्द की व्यापारिक साख उस काल मे सर्वत्र व्याप्त थी उसके विषय मे श्री ग्राउस ने लिखा है—

"पिछले अनेक वर्षो तक मथुरा जिले का सर्वाधिक प्रभावशाली पुरुष 'मनीराम लक्ष्मीचन्द' की बडी गद्दी का मुखिया रहा है। इस गद्दीकी व्यापक और प्रचुर प्रतिष्ठा इस प्रान्त के किसी अन्य व्यापारिक सस्थान से अधिक ही नही है वरन् समस्त भारत मे भी उसके समान शायद ही कोई दूसरी गद्दी हो। इसकी शाखाएँ दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई के साथ ही साथ अन्य बड़े व्यापारिक केन्द्रों मे भी है। जहाँ सर्वत्र उसकी प्रसिद्धि है। हिमालय से कन्याकुमारी तक कही भी मथुरा के सेठो की कितनी ही बड़ी हुंडी का भुगतान वैसी ही साख से होता है जैसा इगलैण्ड के बेक नोट का लदन या पेरिस मे किया जाता है[२]।"

**सांस्कृतिक और जनोपयोगी कार्य :—**

सेठ लक्ष्मीचन्द ने अपने यश-वैभव की वृद्धि करने के साथ ही साथ व्रज के जनोपयोगी और सास्कृतिक कार्यो की प्रगति मे बडा योग दिया था। उस काल मे यहाँ इस प्रकार के जितने कार्य किये गये, उनमे प्रमुख प्रेरणा सेठ लक्ष्मीचन्द की थी। क्या धार्मिक, क्या सास्कृतिक, क्या राजनैतिक सभी क्षेत्रो मे उसकी उदारता की धूम थी।

**श्री रंगजी का मन्दिर :—**

सेठ लक्ष्मीचन्द के दो छोटे भाई राधाकृष्ण और गोविंद दास थे। वैष्णव धर्म के रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी हो गये थे। उन दिनों ब्रज मे रामानुज सम्प्रदाय की प्रधान गद्दी गोवर्धन मे थी, जिसमे अध्यक्ष श्रीरगाचार्य नामक एक विद्वान और तपस्वी धर्माचार्य थे। सेठ राधाकृष्ण और सेठ गोविददास ने अपने ज्येष्ठ भ्राता लक्ष्मीचन्द से छिपाकर वृन्दावन मे रामानुज सम्प्रदाय का एक

१ रानी बायजाबाई सिंधिया के सरकारी कागज-पत्र म ६९ का अश इस प्रकार है—"सिंधिया दरबार के मुख्य खजाची गोकुल पारिख थे। जब वे ( दौलतराव ) सन् १८२७ ई० ( सवत १८८४ ) मे मर गये। तब उसकी जगह पर बायजाबाई ने जयपुर निवासी मनीराम सेठ को खजाची नियत किया पहिले यह बहुत गरीब थे, परन्तु आगे वे बडे धनाढ्य हो गये। सिंधिया दरबार मे उस समय ये अव्वल दर्जे के मालदार गिने जाते थे। इनका उस समय इतना प्रभाव था कि उनकी सलाह लिये बिना कोई सरकार को एक पैसा तक कर्ज नही देता था। उनकी दुकान का नाम 'मनीचन्द' करके मशहूर था।" काकरोली का इतिहास पृ० ३३।

२ मथुरा-ए-डिस्ट्रिक्ट मेमोअर (तृतीय संस्करण) पृ. १४

विशाल मन्दिर निर्माण करने की योजना बनायी थी। पहले उन्होंने वहाँ पर श्री लक्ष्मीनारायण जी का मन्दिर बनवा कर उसे रंगाचार्य जी की भेंट कर दिया।

बाद मे स० १६०१ मे उन्होंने श्री रंगजी का विशाल मन्दिर बनवाना ग्रारभ किया, किन्तु धन की यथेष्ट व्यवस्था न होने से उसका निर्माण कार्य रोक देना पडा। जब सेठ लक्ष्मीचन्द को उसका ज्ञान हुआ, तब उसने स्वय उसे पूरा किया था। इस प्रकार यह मन्दिर ४५ लाख रुपये की लागत से सं० १६०८ मे बनकर पूरा हुआ था। यह ब्रज का सबसे विशाल एव सर्वाधिक वैभव सम्पन्न देव स्थान है और रामानुज संप्रदाय का सबसे बड़ा केन्द्र है। इसमें चैत्र के महीने मे 'ब्रह्मोत्सव' का बडा धार्मिक समारोह होता है, जो दस दिनों तक चलता है। इसकी सपत्ति एक करोड से भी अधिक की मानी जाती है।

**हवेली और उद्यान :—**

सेठ लक्ष्मीचन्द के निर्माण कार्यों मे उसकी हवेली और सुरम्य उद्यान भी उल्लेखनीय है। हवेली मथुरा के असिकुडा बाजार मे श्री द्वारिकाधीश जी के मन्दिर के सामने बनी हुई है और 'सेठ जी की हवेली' कहलाती है। इसका विस्तार असिकुडा घाट से लेकर विश्राम घाट तक है। यह हवेली स० १६०२ मे बनी थी और इसके निर्माण मे उस समय प्रायः एक लाख रुपये की लागत आई थी। उसका उद्यान मथुरा के सदर बाजार के समीप यमुना के किनारे बना हुआ है और 'यमुना बाग' कहलाता है। इसमे दुर्लभ जाति के पेड-पौधे, सुन्दर इमारते और रमणीक कुज है। इसकी विशेष उन्नति लक्ष्मीचन्द के वंशज राजा लक्ष्मणदास के काल मे हुई थी।

**विविध कार्य :—**

स० १६१४ मे जब अंग्रेजी शासन के विरुद्ध जन-विद्रोह हुआ था, तब मथुरा नगर मे भी उपद्रव होने की आशका हो गयी थी। उस समय सेठ लक्ष्मीचन्द ने अपने प्रभाव से यहाँ शाति और व्यवस्था कायम करने मे बड़ा काम किया था। एक ओर उसने विद्रोहियो को आर्थिक सहायता से सन्तुष्ट कर नगर की रक्षा की थी तो दूसरी ओर उसने अंगरेजो की भी बडी सहायता की थी। जब विद्रोहियों ने छावनी को जलाकर अंगरेजो पर हमला किया था, तब उसने स्थानीय कलक्टर मि० थोर्नहिल तथा उसके साथियों को कई दिनों तक अपने मकान मे छिपाये रखा था। उसने सरकारी खजाने की रक्षा की थी और नगर को क्षति से बचा लिया था। जब तक विद्रोह ज्ञात नही हुआ, तब तक दीन-दुखियों और जरूरत मन्दों को उसकी ओर से सब प्रकार की सहायता मिलती रही थी। इसमें उसका प्रचुर धन व्यय हुआ था। उसके उपलक्ष में अंगरेजो ने उसे 'रायबहादुर' की पदवी तथा खिलअत और माफी की भूमि प्रदान की थी।

उसने अकाल पीडित लोगो की सहायता करने तथा शिक्षालय बनाने के लिए भी प्रचुर धन दिया था। जब मथुरा से हाथरस तक रेले बनाने का प्रश्न उठा, तब रेल कम्पनी ने उसे इस शर्त पर बनाना स्वीकार किया कि उसके निर्माण-व्यय का कुछ भाग मथुरा के निवासी भी उठावें। तब सेठों ने प्राय. डेढ लाख के शेयर लिए थे। और पुल बनवाने का समस्त व्यय-भार भी उठाया था। यहाँ तक कि उन्होने सदर के ईसाई गिर्जाघर के निर्माणार्थ भी ११००) प्रदान किये थे।

**लक्ष्मी चन्द के उत्तराधिकारी :—**

सेठ लक्ष्मी चन्द की मृत्यु सं० १६२३ मे हुई थी। उससे पहले उसके अनुज सेठ राधाकृष्ण का देहान्त सं० १६१६ मे हो चुका था। सेठ लक्ष्मीचन्द का एकमात्र पुत्र रघुनाथ दास विशेष प्रतिभाशाली नही था। और राधाकृष्ण का पुत्र लक्ष्मणदास छोटा बालक था। अतः सेठों का समस्त कारबार सेठ गोबिंददास की देख-रेख मे चलता रहा। उस समय भी सेठो की प्रतिष्ठा खूब बढ़ी हुई थी। ब्रिटिश शासन मे सेठ गोबिंददास को स० १६३४ (१ जनवरी, सन् १८७७) मे C.S.I. का खिताब दिया था। उसकी मृत्यु स० १६३५ मे हुई थी। मृत्यु से पहिले उसने श्री द्वारिकाधीश जी के मन्दिर को स० १६३० मे कांकरौली के गोस्वामी गिरधरलाल जी को भेंट कर दिया था। सेठ गोविददास के कोई सन्तान नही थी। सेठ लक्ष्मी चन्द के पुत्र रघुनाथ दास के भी कोई संतान नही हुई थी; इसलिए सेठ राधाकृष्ण का पुत्र लक्ष्मणदास सेठों की गद्दी, जायदाद और सम्पत्ति का एक मात्र स्वत्वाधिकारी हुआ था।

# जैन ग्रन्थों में राष्ट्रकूटों का इतिहास

श्री रामवल्लभ सौमाणी

दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट राजाओं के गौरवपूर्ण शासनकाल मे जैनधर्म की अभूतपूर्व उन्नति हुई। कई आचार्यों ने उस समय कई महत्वपूर्ण ग्रन्थो की सरचना की जिसमे समसामयिक भारतके इतिहास के लिए उल्लेखनीय सामग्री मिलती है।

राष्ट्रकूट राज्य की नींव गोविंदराज प्रथम ने चालुक्य राजाओं को जीतकर डाली थी। इसका पुत्र दतिदुर्ग बडा उल्लेखनीय हुआ है। इसका उपनाम साहसतुंग भी था। जैन दर्शन के महान् विद्वान भट्ट अकलंक इसके समय मे हुए थे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों में लघीयस्त्रय, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, अष्टशती, सिद्धिविनिश्चय और प्रमाण-सग्रह आदि बडे प्रसिद्ध है। इन ग्रन्थो मे यद्यपि सम सामयिक राजाओं का उल्लेख नही है किन्तु कथाकोश नामक ग्रन्थ मे इनकी सक्षेप मे जीवनी है। इसमें इनके पिता का नाम पुरुषोत्तम बतलाया है जिन्हे राजा शुभतुंग का मत्री वर्णित किया है[1]। यह राजा शुभतुंग निस्सदेह कृष्णराज प्रथम है और इसी आधार पर श्री के. बी. पाठक ने इनको कृष्णराज प्रथम का सम सामयिक माना है। इसके विपरीत श्रवण बेल्गोला की मल्लिषेण प्रशस्ति मे इन्होंने राजा साहसतुंग की सभा मे बड़े गौरव के साथ यह कहा था कि हे राजन्! पृथ्वी पर तेरे समान तो प्रतापी राजा नही है और मेरे समान बुद्धिमान भी नही है[2]। 'अकलंक स्तोत्र; नामक एक अन्य ग्रन्थ मे कुछ पद ऐसे भी है जिन्हे किसी राजा की सभा में कहा जाना वर्णित है लेकिन इसमें कई स्थलो पर "देवोऽकलङ्को कलौ" पद आया है। अतएव प्रतीत होता है कि ग्रन्थ किसी अन्य के द्वारा लिखा हुआ[3] है। मल्लिषेण प्रशस्ति के उक्त श्लोक सम्भवत जन श्रुति के आधार पर लिखे गये है जो सही प्रतीत होते है।

श्री वीर सेनाचार्य भी प्रसिद्ध दर्शन शास्त्री थे। ये

---

१ जनरल बम्बई ब्राच रायल एशियाटिक सोसाइटी भा० १८ पृ० २२६, कथाकोष मे इस प्रकार उल्लेख है:—

२ राजन् साहसतुंग···सति बहवः श्वेतात पत्रा नृपाः।
किन्तु त्वत्सदृशारणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्लभाः।
तद्वत्सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वरा. वाग्मिनो।
नाना शास्त्रविचार चातुरधियाः काले कलौमद्विधः॥
—जैन लेख स० भा० २ लेख २६०

३ न्यायकुमुदचन्द्र की भूमिका पृ० ५५।

---

इसके बाद राजा लक्ष्मणदास इसके वशज का विवरण देकर फिर मुनीम मागीलाल (मथुरा का माहेश्वरी वैश्य और सेठ लक्ष्मीचन्द का प्रधान मुनीम) उसके पुत्र लाला नारायणदास, लाला श्रीनिवासदास का विवरण दिया गया है उसे नीचे दिया जा रहा है—
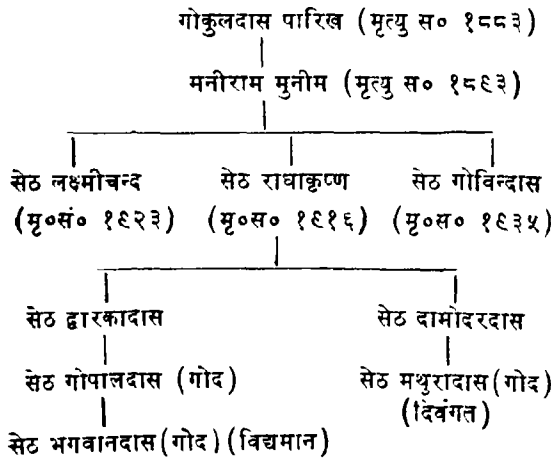
चौरासी के दि० मन्दिर मूर्तियों के शिलालेख व पुराने कागजात प्राप्त है, प्रकाश मे लाना चाहिए। मैं मथुरादासादि पर विशेष जानकारी प्राप्त नहीं कर सका दि० जैन मन्दिर मूर्तियों के लेख ध्यानपूर्वक संग्रह कर प्रकाश में लाना चाहिए। ●

अमोघ वर्ष के शासनकाल तक जीवित थे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों मे धवला और जयधवला टीकाएं बड़ी प्रसिद्ध है। धवला टीका के हिन्दी सम्पादक डा० हीरालाल जी ने इसे कार्तिक शुक्ला १३ शक सवत् ७३८ में पूर्ण होना वर्णित किया है और लिखा है कि जिस समय राष्ट्रकूट राजा जगतुग राज्य त्याग चुके थे और राजाधिराज बोद्दणराय शासक थे इसे पूर्ण किया[४] श्री ज्योति प्रसाद जी जैन ने इसे अस्वीकृत करके लिखा है कि प्रशस्ति में स्पष्टत "विक्कम रायम्हि" पाठ है अतएव यह विक्रम सवत् होना चाहिए। अतव उन्होंने यह तिथि ८३८ विक्रम दी है[५]। भाग्य से ज्योतिष के अनुसार दोनो ही तिथियो की गणना लगभग एकसी है। लेकिन राजनैतिक स्थिति पर विचार करे। तो प्रकट होगा कि यह विक्रमी के स्थान पर शक सवत् ही होना चाहिए। इसका मुख्य आधार यह है कि विक्रमी सवत का प्रचलन इतना प्राचीन नही है। इसके पूर्व इस सवत का नाम कृत और मालव सवत मिलता है। विक्रमी सवत का सबसे प्राचीन तम लेख ८९८ का धोलापुर से चण्ड महासेन का मिला है। लेकिन इसका प्रचलन उत्तरी भारत मे अधिक रहा है। गुजरात और दक्षिणी भारत मे उस समय लिखे ताम्र पत्रों मे शक संवत या वल्लभी संवत मिलता है। इसमे उल्लिखित जगतुग नि सन्देह राष्ट्रकूट राजा गोविन्दराज तृतीय है और बोद्दणराय अमोघवर्ष। अगर विक्रमी सवत् ८३८ मानने है तो यह तिथि ७८१ ई० ही आती है। उस समय गोविन्दराज का पिता ध्रुव निरुपम भी शासक नही हुआ था। इसके अतिरिक्त हरिवशपुराण मे वीरसेनाचार्य का उल्लेख है लेकिन उनकी इस धवला टीका का उल्लेख नही है। स्मरण रहे कि इस ग्रथ मे समन्तभद्र, देवनन्दि, महासेन आदि आचार्यों के ग्रंथो का स्पष्टतः उल्लेख है। अतएव यह घटना शक सवत ७०५ के पश्चात् ही हुई है[६]।

जयधवला के अन्त में लम्बी प्रशस्ति दी हुई है। इससे ज्ञात होता है कि वीरसेनाचार्य की इस अपूर्ण कृति को जिनसेनाचार्य ने पूर्ण किया था। यह टीका शक संवत् ७५९ मे महाराजा अमोघ वर्ष के शासनकाल में पूर्ण की गई थी।

बहुचर्चित हरिवशपुराण की प्रशस्ति के अनुसार शक सं० ७०५ मे जब दक्षिण मे राजा वल्लभ, उत्तरदिशा में इन्द्रायुध, पूर्व मे वत्सराज और सौरमडल मे जयवराहे राज्य करते थे तब बडवाण नामक ग्राम मे उक्त ग्रन्थ पूर्ण हुआ था। शक स० ७०५ की राजनैतिक स्थिति बडी उल्लेखनीय है। दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा का जो उल्लेख है वह सभवतः ध्रुव निरुपम है। गोविन्द द्वितीय की उपाधि भी 'वल्लभराज' थी इसी प्रकार श्रवण वेल्गोला के लेख न० २४ मे[८] स्तम्भ के पिता ध्रुव निरुपम की भी उपाधि वल्लभराज है। गोविन्दराज का शासनकाल अल्पकालीन है और शक स० ७०१ के धूलिया के दान पत्र के पश्चात् उसका कोई लेख नही मिला है अतएव यह ध्रुव निरुपम के लिए ठीक है। उत्तर में इन्द्रायुध का उल्लेख है। यह भण्डी वशी राजा इन्द्रायुध है। फ्लीट, भण्डारकर प्रभृति विद्वानो ने भी इसे ठीक माना[९] है। कुछ इसे गोविन्दराज (तृतीय) के भाई इन्द्रसेन मानते है जो उस समय राष्ट्रकूटो की ओर से गुजरात मे प्रशासक था। स्वतन्त्र[१०] राजा नही। प्रशस्ति मे तो स्पष्टतः इन्द्रायुध पाठ है अतएव इस प्रकार के तोड मोड करने के स्थान पर इसे इन्द्रायुध ही माना जाना ठीक है। पूर्व मे वत्स-

४ अडतीसम्हि सतसए विक्कमरायं कि एसु सगणामे।
वासे सुतेरसीय भाणु-विलग्गे धवल-पक्खे ॥
जगतुगदेवरज्जे रियम्हि कुभम्हि राहुणा कोणे।
सूरे तुलाए संते गुरुम्हि कुलविल्लए होने ॥
धवला० १,१,१ प्रस्तावना ४४-४५।

५ अनेकान्त वर्ष ७ पृ० २०७-२१२ :

६. भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृ० १६६।

७. शाकेष्वब्द शतेषु सत्यमुदिश पञ्चोत्तरेषूत्तरा,
पातीन्द्रायुध नाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणा
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृतिनृपे वत्सादिराजेऽपरा,
सौराणामधि मडल जययुते वीरे वराहेऽवति ॥
—हरिवशपुराण ६६-५२।

८ अल्तेकर—राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ५२-५३

९ Epigraphica—Indica- Vol. IV P. 196-195

१० डा० गुलाबचन्द चोधरी-हिस्ट्री आफ नोर्दन इण्डिया फ्रोम जैन सोर्सेज। पृ० ३३।

राज का उल्लेख है। शक स० ७०० मे लिखी गई कुवलयामाला मे इस राजा को जालोर का[11] शासक माना है। अवन्ति प्रतिहार राजाओ के शासन मे सभवत दतिदुर्ग के शासनकाल से ही थी[12]।

आचार्य जिनसेन[13] जो आदिपुराण के कर्त्ता थे अमोघ वर्ष के गुरु के नाम से विख्यात है। उत्तर पुराण की प्रशस्ति मे स्पष्टतः वर्णित है कि वह जिनसेनाचार्य के चरण कमलों मे मस्तक रखकर अपने को पवित्र मानता था[14]। इसकी बनाई हुई प्रश्नोत्तर रत्नमाला नामक एक छोटी सी पुस्तक मिली है। इसके प्रारम्भ मे "प्रणिपत्य वर्द्धमान" शब्द हैं। यद्यपि यह विवादास्पद है कि अमोघवर्ष जैनधर्म का पूर्ण अनुयायी था अथवा नही किन्तु यह सत्य है कि वह जैनधर्म की ओर बहुत आकृष्ट था। इसी के शासनकाल मे लिखा गया महावीर आचार्य का गणितसार सग्रह नामक ग्रन्थ मे अमोघवर्ष के सम्बन्ध मे लिखा है कि उसने समस्त प्राणियो को प्रसन्न करने के लिये बहुत[15] काम किया था, जिसकी चित्तवृत्ति रूप अग्नि मे पापकर्म भस्म हो गया था। अतएव ज्ञात होता है कि वह बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति का था। इसमे स्पष्टतः जैनधर्मावलम्बी वर्णित किया है। राष्ट्रकूट शिलालेखों से ज्ञात होता है कि अमोघवर्ष कई बार राज्य छोड़कर एकान्त का जीवन व्यतीत करता था और राज्य युवराज को सौंप देता था। सजान के दानपत्र के श्लोक ४७ व अन्य दान पत्रो मे इसका स्पष्टतः उल्लेख है। प्रश्नोत्तर रत्नमाला मे अन्तिम दिनों मे उसका राज्य से विरक्त होना[16] वर्णित है। अगर अमोघवर्ष जैनधर्म की ओर आकृष्ट नहीं होता तो निस्सन्देह जिनसेनाचार्य उसकी प्रशसा मे सुन्दर पद नही लिखते[17]।

उसमे लिखा है कि उसके आगे गुप्त राजाओं की कीर्ति भी फीकी पड़ गई थी। सजान के दानपत्र मे भी इसी प्रकार का उल्लेख है[18]। उत्तरपुराण की प्रशस्ति मे अमोघवर्ष के उत्तराधिकारी राजा कृष्ण (द्वितीय) की[19] प्रशंसा की है। किन्तु यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता है कि यह राजा जैन था अथवा नही। किन्तु इसका सामन्त लोकादित्य जो वनवास देश का राजा था अवश्यमेव जैन था। इसकी राजधानी[20] बकापुर थी। यह जैनधर्म का बडा भक्त था।

शिलालेखों और ताम्रपत्रो में भी गोविन्दराज और अमोघवर्ष का वर्णन मिलता है। गगवशी सामन्त चाकिराज की प्रार्थना पर शक स० ७३५ में गोविन्दराज (तृतीय) ने जालमंगल नामक ग्राम यापनीय सघ को दिया था। यह लेख गोविन्दराज (तृतीय) के शासनकाल का अन्तिम लेख है। उत्तर पुराण मे वर्णित लोकादित्य के पिता बाकेय के कहने पर अमोघवर्ष ने जैनमन्दिर के लिये भूमिदान में दी थी ऐसा एक दानपत्र से प्रकट होता है[21]।

महाकवि पुष्पदन्द और सोमदेव उस युग के महान्

११ सगकाले बोलीणे वरिसाण सएहिं सत्तहिं गएहिं।
एगदिणेणूणेहि रइया अवरण्ह वेलाए॥
परभड भिउडी भंगो पणईयण रोहिणीकलाचदो।
सिरिवच्छराय णामो णरहत्थी पत्थिवो जइया॥
—कुवलयमाला

१२ अल्तेकर—राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ४०।

१३ "इत्यमोघवर्ष परमेश्वर परमगुरु श्री जिनसेनाचार्य विरचित मेघदूत वेष्टिते पार्श्वाभ्युदये............"
(पार्श्वाभ्युदय के सर्गों के अन्त की पुष्पिका)

१४ यस्य प्रांशुनखांशु जालविसरद्धारान्तराविर्भवत्पादाम्भोज रजः पिशङ्ग मुकुट प्रत्यग्ररत्नद्युतिः।

१५ नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य का इतिहास पृ० १५२

१६ अल्तेकर—राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ८९-९०

१७ गुर्जर नरेन्द्रकीर्तेरन्तः पतिता शशाङ्कशुभ्रायाः।
गुप्तैव गुप्तनृपतेः शकस्य मशकायते कीर्तिः॥

१८ हत्वा भ्रातरमेव राज्य महरत् देवी च दीनस्तथा,
लक्षकोटिमलेखयत् किलकिलौ दाता सगुप्तान्वयः।
येनात्याजि तनु स्वराज मसकृत बाह्यार्थः कैः काकथा,
हस्तिस्योन्नति राष्ट्रकूट तिलक दातेति कीर्त्यामपि॥४८
—[E. 1 Vol. 18 P. 235]

१९ उत्तर पुराण की प्रशस्ति श्लोक २६-२७

२० उत्तर पुराण की प्रशस्ति श्लोक २९ और ३०

२१ जैन लेखसंग्रह भा० ३ की भूमिका पृ० ९५ से ९७

विद्वान् थे। पुष्पदन्त का एक नाम खड भी था। ये महामात्य भरत और उनके पुत्र नन्न के आश्रित रहे थे। ये दोनो राष्ट्रकूट राजा कृष्णराजके लिये "तुडिगु", "वल्लभनरेन्द्र" और "कण्हराय" शब्द भी प्रयुक्त किये है[२२]: तिरुक्कलुरुनरम् के शिलालेख मे 'कण्हरदेय' शब्द इस राजा के लिये प्रयुक्त[२३] किया गया है। यह राजा जब मेलपाटी के सैनिकशिविर मे था तब सोमदेव ने यशस्तिलक चम्पू ग्रन्थ को पूर्ण किया था[२४]। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि अरिकेशरी के पुत्र वद्दिग की राजधानी गगधारा मे यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ था। इसमे स्पष्टत: वर्णित है कि कृष्णराज ने पाण्डच, सिंहल, चोल, चेर आदि राजाओ को जीता था। इस बात की पुष्टि सम सामयिक पत्रो से भी होती है। पुष्पदन्त के आदिपुराण मे मान्यखेटपुर को मालवे के राजा द्वारा विनष्ट करने का उल्लेख है[२५]। यशोधर चरित की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि जिस समय सारा जनपद नीरस हो गया था, चारो ओर दुसह दु:ख व्याप्त हो रहा था, जगह जगह मनुष्यो की खोपडिया और ककाल बिखर रहे थे, सर्वत्र करक ही करक दिखाई दे रहा था उस समय महात्मा नन्न ने मुझे सरस भोजन और सुन्दर वस्त्र दिये अतएव वह चिरायु हो[२६]। महाकवि धनपाल की पाइअ लच्छी नाममाला[२७] के अनुसार यह घटना १०२९ वि० मे घटित हुई थी। राष्ट्रकूट राजा खोट्टिग के बाद कर्कराज हुआ। परमार आक्रमण के बाद राष्ट्रकूट राज्य का अध: पतन प्रारम्भ हो गया और शीघ्र ही चालुक्यो ने वापिस हस्तगत कर लिया।

सस्कृत और प्राकृत के साथ साथ कन्नड भाषा मे भी कई दानपत्र और ग्रन्थ लिखे गये। इनमे सबसे उल्लेखनीय महाकवि पम्प है। इसके द्वारा विरचित आदिपुराण चम्पू और विक्रमार्जुन विजय ग्रन्थ प्रसिद्ध है पिछले ग्रन्थ में अरिकेशरी की जो चालुक्यवशीय था और जा सोमदेव के यशस्तिलक चम्पू मे भी वर्णित है, वशावली दी गई है। विक्रमार्जुन विजय ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमे राष्ट्रकूट राजा गोविन्द (तृतीय) के विरुद्ध उसके सामन्त राजाओं के आक्रमण करने और राज्य को वद्दिगराज को सोपने का उल्लेख है। वद्दिग अमोघवर्ष (द्वितीय) का ही उपनाम प्रतीत होता है[२८]।

**शासन व्यवस्था**

राष्ट्रकूट राजाओं के राजनैतिक इतिहास के साथ-साथ समसामयिक राज्य व्यवस्था का भी जैन ग्रन्थो मे सविस्तार वर्णन मिलता है। आदिपुराण और नीतिवाक्यामृत मे इसका स्पष्ट चित्र खीचा गया है। राजा और मन्त्रियो को उस समय वश परम्परागत अधिकार प्राप्त

---

२२ सिरिकण्हरायकरयलणिहिमअसिजलवाहिणि दुग्गयरि।
—आदिपुराण अ० ३ की भूमिका पृ० १९

२३ E.I. VOL 3 P. 282 एवं साउथ इडियन इसक्रिपसन भा० १ पृ० ७६.

२४ 'पाण्डच-सिंहल-चोल-चेरम-प्रभृतीन्महीपतीन्प्रसाध्य मेलपाटी प्रवर्द्धमानराज्यप्रभावे श्री कृष्णराजदेवे'··· एवं ८८० शक के दान पत्र मे "तं दीण दिण्ण धण कणयपयरु महिपरिभमतु मेलाडिणयरु" उल्लेखित है।

२५ दीनानाथ धन सदा बहुजन प्रोत्फुल्ल वल्लीवनं।
मान्याखेटपुरं पुरदर पुरी लीलाहरं सुन्दरम्।
धारानाथ नरेन्द्रकोप शिखिना दग्ध विदग्धं प्रिये।
क्वेदानीं वसति करिष्यति पुन: श्री पुष्पदन्त: कवि:॥
—यह पद सदिग्ध और क्षेपक है) महापुराण ५०वी सधि।

२६ जणवय नीरसि दुरियमलीमसि,
कइणिदायरि दुसहे दुइयरि।
पडियकवालइणरककालइ, बहुरकालइ अइ दुक्कालइ।
पवरागारि सरसाहारि, सण्हि चेलि वरतबोलि।
महु उवयारिउ पुण्णि पेरिउ,
गुणभत्तिल्लउ णण्णु महल्लउ।
होउ चिराउसु············"
—यशोधर चरित ४।३१ पृ० १००

२७ विक्कम कालस्स गए अउणतीसुत्तरे सहस्सम्मि।
मालवनरिदधाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि॥
—पाइअलच्छी नाममाला पृ० ४५

२८ अल्तेकर राष्ट्रकूटाज पृ० १०७-१०८

थे[29] । मन्त्रियो की संख्या सीमित रखने का उल्लेख सोमदेव ने किया है[30] । मंत्रिमण्डल मे मंत्रियों के अतिरिक्त अमात्य (रेवेन्यु मिनिस्टर) सेनापति, पुरोहित, दण्डनायक आदि भी होते थे । गाँवों के मुखियों का उल्लेख आदि पुराण मे है । तलार जो नगर अधिकारी था का उल्लेख आदिपुराण, नीतिवाक्यामृत और यशस्तिलक चम्पू मे भी है । अष्टादश श्रेणिगण प्रधानो का भी उल्लेख यत्र तत्र मिलता है । नीतिवाक्यामृत मे कई प्रकार के गुप्तचरो का उल्लेख है । राज्य कर जो प्राय: धन के रूप मे लिया जाता था यह उपज का एक भाग था । इनके अतिरिक्त शुल्क मंडपिकाओं द्वारा भी सगृहीत किया जाता था । राजाओं के ऐश्वर्य का सविस्तार वर्णन है । इनके राज्याभिषेक के समय किये जाने वाले उत्सवो का भी आदिपुराण मे वर्णन है । राजाओ का अभिषेक भी एक विशिष्ट पद्धति द्वारा कराया जाता था । राज्याभिषेक के समय "पट्टबधन" होता था । यह पट्टबधन युवराज पद पर नियुक्त करते समय भी बाधा जाता था । पट्टबधन[31] का उल्लेख शिलालेखों मे भी मिलता है । अन्तःपुर की व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है । इसकी रक्षा के लिए वृद्ध कचुकी गण नियुक्त थे । राजाओं द्वारा जलक्रीडाएँ और कई प्रकार की गोष्ठियाँ किये जाने का भी वर्णन मिलता है ।

**सांस्कृतिक सामग्री :**

उस समय सांस्कृतिक गतिविधियो के अध्ययन के लिए जैन सामग्री बहुत ही महत्वपूर्ण है । वर्णव्यवस्था[32] वर्णाश्रमधर्म[33], सामाजिक सस्कार[34], वेश्यावृत्ति[35], भोजन व्यवस्था[36], शिक्षा[37], चित्रकला[38], सगीत[39], आभूषण[40], सौन्दर्य प्रसाधन[41], चिकित्सा साधन[42], खेतो की व्यवस्था[43] का इनमे सागोपाग वर्णन मिलता है । समसामयिक के वास्तुशिल्प का भी सविस्तार वर्णन मिलता है । मन्दिर महल आदि के वर्णनों मे इस प्रकार की सामग्री उल्लेखनीय है । श्री अल्तेकर जी ने अपने ग्रन्थ राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स मे इस सामग्री का अधिक उपयोग नही किया है । इस सामग्री का अध्ययन वांछनीय है ।

---

२९ 'सन्तान क्रमतोगताऽपि हि रम्या कृष्टा प्रभोः सेवया' महामंत्री भरत ने वंश परपरागत पद को जो कुछ दिनों के लिए चला गया था पुनः प्राप्त किया ।
—महापुराण भा० ३ पृ० १३

३० "बहवो मन्त्रिणः परस्पर स्वमतीरुत्कर्षयन्ति । १०-७३

३१ पट्टबन्धापदेशेन तस्मिन् प्राध्व कृतेव सा ।
— आदि पु० ११-४२

राजपट्ट बबन्धास्य ज्यायासमवधीरयत् ।
—आदि पु० ५—२०७

"मण्णे' के शक सं० ७११ के लेख मे—राष्ट्रकूट पल्लवान्वयतिलकाभ्या मूर्द्धाभिषिक्त गोविन्दराज नन्दि वर्माभिधेयाभ्या समुनिष्ठित —राज्याभिषेकाभ्या निजकर घटित पट्ट विभूषित ललाट-पट्टो विख्यात ।" इसी प्रकार पट्टबन्धो जगद्बन्धो. ललाटे विनिवेशित । आ० पु० १६—२३३ का उल्लेख है । पुष्पदन्त ने राजाओं के अभिषेक और चमरो का उल्लेख व्यंग के साथ किया है । "चमराणिल उड्डाविय [illegible]इ, अट्टिसेय धोय सुमणत्तणाइ' ।।'

३२ आदिपुराण १६, १८१—१८८, २४२—२४६, १४७, २६—१४२ ।

३३ ३८—४५—४८ और ४२वां पर्व ।

३४ ४० और ३९वा पर्व ।

३५ ४—७३ ।

३६ ६—१८६—१८८, २०३, १९—७३ ।

३७ १४—[१९०, १९१], १६८ [१०५—१२८] ।

३८ [१७०—१९१] ।

३९ १४ [१०८—१५०] १२ [२०३—२०९] ।

४० १६ [४४—७१] १६ [८१ - ८४] ।

४१ १२ [१७४] ११ [१३१] ६ [३०—३२] ।

४२ ११—५६, ११, ५८, ११, ६६, ११-७४—७६, २८ [३८, ४०] ।

४३ २६ [११२—११५] २६ [४८] २६ [१२३-१२७] २८ [३२—३६] १६ [११७] ।

# दर्शनोपयोग व ज्ञानोपयोग : एक तुलनात्मक अध्ययन

बालचन्द्र सिद्धान्त-शास्त्री

'उपयोगो लक्षणम्' इस सूत्र के अनुसार जीव का लक्षण उपयोग माना गया है। इस उपयोग के लक्षण का निर्देश करते हुए सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थवार्तिक मे कहा गया है कि बाह्य और अन्तरग निमित्त से चेतनता का अनुसरण करने वाला जो परिणाम उत्पन्न होता है उसका नाम उपयोग है[1]।

हरिभद्र सूरि ने उपलब्धि या ज्ञान-दर्शन की समाधि—सम्यक् अर्थात् अपने विषय की सीमा का उल्लघन न करके धारण—को उपयोग कहा है[2]। आचार्य मलयगिरि के अभिमतानुसार वस्तु के जानने के प्रति जो जीव का व्यापार होता है उसे, अथवा जिसके आश्रय से वस्तु का परिच्छेदन होता है उसे उपयोग कहा जाता है[3]।

### उपयोग के दो भेद व उनका स्वरूप

वह उपयोग ज्ञान और दर्शन के भेद से दो प्रकार का है। उनमे साकार उपयोग का नाम ज्ञान और अनाकार उपयोग का नाम दर्शन है[4]। जो उपयोग कर्मता और कर्तृता (उभय) रूप आकार से युक्त होता है उसे साकार तथा जो इस आकार से रहित होता है उसे अनाकार कहा जाता है[5]। यह कथन आत्मविषयक उपयोग को दर्शन और बहिरर्थविषयक उपयोग को ज्ञान मानने पर[6] घटित होता है। तदनुसार 'मै घट को जानता हूँ' इस ज्ञान में जिस प्रकार कर्ता और कर्म दोनो प्रतिभासित होते है उस प्रकार घटज्ञानोत्पादक प्रयत्न से सम्बद्ध आत्मा के वेदनरूप दर्शन मे वे दोनो प्रतिभासित नही होते–केवल कर्ता व आत्मा का ही प्रतिभास उसमे होता है, न कि कर्म का।

यहा यह शका हो सकती है कि आत्मविषयक उपयोग को दर्शन मानने पर उसका

**जं सामण्णग्गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं।**
**अविसेसिदूण अत्थे दंसणमिदि भण्णदे समए॥**

इस परमागम प्ररूपित सामान्यग्रहण स्वरूप दर्शन के साथ क्यो न विरोध होगा? पर इस शका के लिए

---

१ उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः। स. सि. २-८; बाह्याभ्यन्तरहेतुद्वयसन्निधाने यथासम्भवमुपलब्धुश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः। त. वा. २,८,१.

२ उपयोजनमुपयोगः उपलम्भः, ज्ञान-दर्शनसमाधिः। त. भा हरि. वृत्ति २-८; उपयोग उपलम्भः, ज्ञान-दर्शन-समाधिः—ज्ञान-दर्शनयोः सम्यक् स्वविषयसीमानुल्लङ्घनेन धारण समाधिरुच्यते। त.भा.सिद्ध. वृत्ति २-८.

३ उपयोजनमुपयोगः, भावे घञ्, यद्वा उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेद प्रति व्यापार्यते जीवोऽनेनेत्युपयोगः, 'पुनाम्नि घ' इति करणे घ-प्रत्यय, बोधरूपो जीवस्य तत्त्वभूतो व्यापारः प्रज्ञप्तः प्रतिपादितः। प्रज्ञापना म. वृत्ति २९-३१२.

४ स. सि. २-९; त. वा. २,९,१, धवला पु. १३, पृ. २०७; स उपयोगो द्विविधः साकारोऽनाकारश्च, ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेत्यर्थः। त. भा. २-९.

५ को अणागारुवजोगो णाम? सागारुवजोगादो अण्णो। कम्म-कत्तारभावो आगारो, तेण आगारेण सह वट्टमाणो उवजोगो सागारो त्ति। धवला पु १३, पृ. २०७.

६ स्वस्माद् भिन्नवस्तुपरिच्छेदक ज्ञानम्, स्वतोऽभिन्नवस्तुपरिच्छेदक दर्शनम्। धवला पु. १, पृ ३८३–८४, अप्पविसओ उवजोगो दसण। ण णाणमेद, तस्स बज्झट्ठविसयत्तादो। धवला पु ६, पृ. ९, किं दर्शनम्? ज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविद्धस्वसवेदो दर्शनम्, आत्मविषयोपयोग इत्यर्थ। वही पृ. ३२-३३; बाह्यार्थपरिच्छेदिका शक्तिर्ज्ञानम्। धवला पु. १३, पृ. २०६.

कोई स्थान नही है। कारण कि उक्त गाथासूत्र में प्रयुक्त 'सामान्य' शब्द आत्मा का ही वाचक है। जीव चूंकि बिना किसी प्रकार के नियम (विशेषता) के ही तीनों कालविषयक अनन्त अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्यायों से युक्त बाह्य व अन्तरग पदार्थों को विषय करता है, अतएव उसके 'सामान्य' मानने मे कुछ बाधा उपस्थित नही होती[१]।

आत्मविषयक उपयोग के दर्शन मानने मे दूसरी शंका यह भी हो सकती है कि दर्शन के विषयभूत आत्मा मे कुछ भेद न होने से चक्षुदर्शन आदि चारों ही दर्शनों में कुछ भेद नहीं रहेगा? इसका उत्तर यह है कि जो स्वरूपसवेदन जिस ज्ञान का उत्पादक होता है उसका वह दर्शन माना जाता है। इससे उस दर्शन की चतुर्विधता में कोई बाधा नही पहुँचती। जैसे—चक्षुरिन्द्रियावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले ज्ञान के विषयभूत जितने भी पदार्थ सम्भव है उतने ही तत्-तत् नाम वाले आत्मस्थित क्षयोपशम भी होंगे। अतः उनके आश्रय से आत्मा भी उतने ही प्रकारका होगा। इस प्रकार भिन्न-भिन्न शक्ति से युक्त आत्मा के वेदन के दर्शन मानने में दर्शन की विविधता अक्षुण्ण बनी रहती है[२]।

जो यथार्थ वस्तुस्वरूप का प्रकाशक अथवा तत्त्वार्थ का उपलम्भक है उसका नाम ज्ञान तथा प्रकाशवृत्तिका नाम दर्शन है, इस प्रकार भी उक्त ज्ञान-दर्शन का लक्षण अन्यत्र उपलब्ध होता है[३]।

जो जानता है उसका नाम ज्ञान है और वह विशेषग्रहणस्वरूप या साकार है। जो देखता है उसका नाम दर्शन है और वह सामान्यग्रहणस्वरूप या अनाकार है[४]।

हरिभद्र सूरि के मतानुसार घट-पटादि विशेषों का जो निर्विशेष—विशेषरूपता का परित्याग कर सामान्य आकार से—ग्रहण होता है, इसका नाम दर्शन है। तथा उन्ही का जो सविशेष—सामान्य आकार को छोडकर विशेष रूप से—ग्रहण होता है वह ज्ञान कहलाता है[५]।

**साकारता व अनाकारता का स्वरूप**

कर्मता व कर्तृता का नाम आकार है, इस आकार के साथ वर्तमान उपयोग को साकार और उससे भिन्न को अनाकार कहा जाता है[६]।

आकार, विकल्प और अर्थग्रहणपरिणाम, ये समानार्थक है। इस प्रकार के आकार से सहित साकार और उससे

---

१ ······अप्पत्थम्मि पउत्त-सामण्ण-सद्दग्गहणादो। ण च जीवस्स सामण्णत्तमसिद्ध, णियमेण विणा विसयीकयत्तिकालगोयराणतत्थ-वेजणपज्जओवचियबज्झतरगाण तत्थ सामण्णत्ताविरोहादो। धवला पु ७, पृ १००, धवला पु.१, पृ. ३८०; पु. १३, पृ ३५४, ३५५ और जयधवला १, पृ. ३६० भी द्रष्टव्य है।

२ आत्मविषयोपयोगस्य दर्शनत्वेऽङ्गीक्रियमाणे आत्मनो विशेषाभावाच्चतुर्णामपि दर्शनानामविशेष स्यादिति चेन्नैष दोषः, यद्यस्य ज्ञानस्योत्पादक स्वरूपसवेदन तस्य तद्दर्शनव्यपदेशान्न दर्शनस्य चातुर्विध्यनियमः। यावन्तश्चक्षुरिन्द्रियक्षयोपशम·········। धवला पु १, पृ. ३८१-८२.

३ भूतार्थप्रकाशकं ज्ञान तत्त्वार्थोपलम्भक वा।·········प्रकाशवृत्तिर्दर्शनम्। धवला पु. ७, पृ. ७.

४ जाणइ त्ति नाणं, त च ज विसेसग्गहण तं णाण, सागारमित्यर्थः। पासति त्ति दसण, तं च ज सामण्णग्गहणं तं दसणं, अणागारमित्यर्थः। नन्दी. चूर्णि २७, पृ २०.

५ ज एत्थ णिव्विसेस गहो विसेसाण दंसण होति।
सविसेस पुण णाण ता सयलत्थे तओ दो वि॥
जं सामण्णपहाण गहण इतरोवसज्जण चेव।
अत्थस्स दंसण त विवरीय होइ णाण तु॥
धर्मसग्रहणी १३६४ व १३६८.

दर्शनावरणकर्मक्षयोपशमादिज सामान्यमात्रग्रहण दर्शनमिति। उक्तं च—जं सामण्णग्गहण भावाण कट्टु नेय आगार। अविसेसिऊण अत्थ दसणमिति वुच्चए समए॥ अनुयो. हरि. वृत्ति पृ. १०३.

विशेषग्राहि ज्ञानम्, सामान्यग्राहि दर्शनम्। पंचास्तिकाय अमृत. वृत्ति ४०; सविकल्प ज्ञानम्, निर्विकल्प दर्शनम्। (जयसेन वृत्ति)

६ को अणागारुवजोगो णाम? सागारुवजोगादो अण्णो। कम्म-कत्तारभावो आगारो, तेण आगारेण सह वट्टमाणो उवजोगो सागारो त्ति। धवला पु. १३, पृ. २०७; आयारो कम्मकारय सयलत्थसत्थादो पुध काऊण बुद्धिगोयरमुवणीयं, तेण आयारेणं सह वट्टमाण सायारं। तव्विवरीयमणायारं। जयधवला १, पृ. ३३८.

विपरीत अनाकार कहा जाता है[1]।

अन्यत्र प्रतिनियत अर्थग्रहण परिणाम को आकार कहा गया है। जो उपयोग इस आकार के साथ रहता है वह साकार कहलाता है। अभिप्राय यह है कि सचेतन अथवा अचेतन वस्तु के विषय में उपयोग को लगाने वाला आत्मा जब पर्याय (विशेष) सहित ही वस्तु को ग्रहण करता है तब वह उपयोग साकार कहलाता है। इस आकार से रहित उपयोग को अनाकार कहा जाता है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार हाथी, घोड़ा एव पादचारी आदि भेद से रहित सामान्य सेना को स्कन्धावार कहा जाता है उसी प्रकार जो वस्तु को सामान्य रूप से ग्रहण करता है उसे अनाकार उपयोग समझना चाहिये[2]।

**दर्शनोपयोग के भेद**

उपर्युक्त दोनो उपयोगो मे से दर्शनोपयोग चार प्रकार का है—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

चक्षुओ को जो प्रकाशित होता है अथवा दिखता है, उसका नाम चक्षुदर्शन और शेष इन्द्रियो के प्रकाश का नाम अचक्षुदर्शन है[3]। परमाणु को आदि लेकर अन्तिम स्कन्ध पर्यन्त मूर्तिक द्रव्यो को जो प्रत्यक्ष (साक्षात्) देखता है वह अवधिदर्शन कहलाता है। जो लोक व अलोक को तिमिर से रहित करता है— उन्हे प्रकाशित करता है— उसे केवलदर्शन कहते है[4]।

धवला मे इनके लक्षण इस प्रकार देखे जाते है— चाक्षुष ज्ञान के उत्पादक प्रयत्न से सम्बद्ध आत्मा के संवेदन मे 'मै रूप के दर्शन मे समर्थ हूँ' इस प्रकार की सम्भावना का जो हेतु है उसे चक्षुदर्शन कहते है। शेष इन्द्रियो और मन के दर्शन को अचक्षुदर्शन कहा जाता है। अवधिज्ञान के दर्शन का नाम अवधिदर्शन और केवल—प्रतिपक्ष से रहित—दर्शन का नाम केवलदर्शन है[5]।

अनुयोगद्वार सूत्र मे दर्शनचतुष्टय के स्वरूप की सूचना इस प्रकार की गई है—चक्षु इन्द्रिय के द्वारा चक्षुदर्शनी जीव के जो घट, पट, चटाई और रथ आदि द्रव्य

---

१ आकारो विकल्पोऽर्थग्रहणपरिणाम इत्यनर्थान्तरम्। सहाकारेण साकार', तद्विपरीतोऽनाकारः। त भा हरि. वृत्ति २-६; आकारो विकल्पः, सह आकारेण साकारः, अनाकारस्तद्विपरीत., निर्विकल्प इत्यर्थः। त. भा. सिद्ध. वृत्ति २-६; साकार सविकल्पकम्, ज्ञानमित्यर्थः। अनाकार निर्विकल्पकम्, दर्शनमित्यर्थ। त. सुखबोधा वृत्ति २-६.

२ आकार. प्रतिनियतोऽर्थग्रहणपरिणामः. 'आगारो अ विसेसो' इति वचनात्। सह आकारेण वर्त्तते इति साकार', स चासावुपयोगश्च साकारोपयोग। किमुक्तं भवति? सचेतने अचेतने वा वस्तुनि उपयुञ्जान आत्मा यदा सपर्यायमेव वस्तु परिछिनत्ति तदा स उपयोग साकार उच्यते। स कालतः छद्मस्थानामन्तर्मुहूर्तकालः, केवलिनामेकसामयिकः। तथा न विद्यते यथोक्तरूप आकारो यत्र सोऽनाकारः। स चासावुपयोगश्च अनाकारोपयोगः, यस्तु वस्तुनः सामान्यरूपतया परिच्छेदः सो अनाकारोपयोगः स्कन्धावारोपयोगवदित्यर्थः। प्रज्ञापना मलय. वृत्ति २९-३१२.

३ धवला पु ७ (पृ १००) मे 'सेसिदियप्पयासो णादव्वो सो अचक्खु त्ति' के स्थान मे 'दिट्ठस्स य ज सरण णायव्व त अचक्खु त्ती' पाठ है। तदनुसार अचक्षुदर्शन का लक्षण 'देखे हुए पदार्थ का स्मरण' ठहरता है।

४ पचसग्रह १, १३९-४१, गो. जी. ४८३-८५. प्रकृत गाथाये धवला पु. १, पृ. ३८२ पर उद्धृत पायी जाती है। पूर्व की दो गाथायें धवला पु ७, पृ. १०० पर भी उद्धृत है। वहाँ उनका विशेष अर्थ भी द्रष्टव्य है जो वीरसेन स्वामी के द्वारा किया गया है।

५ तत्र चक्षुर्ज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविद्धस्वसवेदने रूपदर्शनक्षमोऽहमिति सम्भावनाहेतुश्चक्षुर्दर्शनम्।········· शेषेन्द्रिय-मनसा दर्शनमचक्षुर्दर्शनम्।············ अवधेर्दर्शनम् अवधिदर्शनम्।········· केवलमसपत्नम्, केवल च तद् दर्शन च केवलदर्शनम्। धवला पु ६, पृ. ३३, चक्खुविण्णाणुप्पायणकारण सगसवेयण चक्खुदसण णाम।·········सोद-घाण-जिब्भा-फास-मणेहितो समुप्पज्जमाणणाणकारणसगसवेयणमचक्खुदसण णाम।·········परमाणुआदिमहक्खधंत-पोग्गलदव्वविसयओहिणाणकारणसगसवेयण ओहिदसण·········केवलणाणुप्पत्तिकारणसगसवेयण केवलदसणं णाम। धवला पु १३, पृ. ३५५.

विषयक दर्शन होता है वह चक्षुदर्शन कहलाता है। शेष इन्द्रियो के द्वारा अचक्षुदर्शनी जीव के उक्त घट-पटादि द्रव्यों का जीव के साथ सम्बन्ध होने पर जो उनका दर्शन होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते है। (यहाँ अचक्षुदर्शन के लक्षण मे जीव के साथ सम्बन्ध का निर्देश करके शेष इन्द्रियों की प्राप्यकारिता को सूचित किया गया है।) अवधिदर्शनी जीव के जो समस्त रूपी द्रव्यो और उनकी कुछ पर्यायो का दर्शन होता है उसे अवधिदर्शन कहा जाता है। केवलदर्शनी जीव के जो समस्त द्रव्यो और समस्त पर्यायों का दर्शन होता है उसका नाम केवल-दर्शन है[1]।

श्री चन्द्रमहर्षि अपने पचसग्रह की स्वो. व्याख्या मे नेत्रों के द्वारा होने वाले दर्शन को नयन (चक्षु) दर्शन और शेष इन्द्रियों से होने वाले दर्शन को अनयन (अचक्षु) दर्शन कहते है[2]।

तत्त्वार्थभाष्य की वृत्ति मे कहा गया है कि स्कन्धावार के उपयोग के समान अथवा उसी दिन उत्पन्न हुए शिशु की नेत्रोपलब्धि के समान चक्षु इन्द्रिय के द्वारा जो उपलब्धि —सामान्य अर्थ का ग्रहण—होता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। शेष श्रोत्रादि इन्द्रियो के द्वारा होने वाले सामान्य-ग्रहण का नाम अचक्षुदर्शन है। अवधिदर्शनावरण के क्षयोपशम से विशेषग्रहण से विमुख अवधिदर्शन कहा जाता है। इसका स्वामी नियम से सम्यग्दृष्टि ही होता है[3]।

आत्मा स्वभावत. समस्त आत्मप्रदेशों मे व्याप्त रहने वाले विशुद्ध अनन्तदर्शन सामान्य स्वरूप है, पर उसके वे प्रदेश अनादि काल से दर्शनावरण कर्म के द्वारा आच्छादित हो रहे है। वही आत्मा चक्षुदर्शनावरण के क्षयोपशम और चक्षु इन्द्रिय के आलम्बन से मूर्त द्रव्य को जो कुछ अश मे सामान्य से जानता है उसका नाम चक्षुदर्शन है। अचक्षुदर्शनावरण के क्षयोपशम और चक्षु को छोड़कर इतर चार इन्द्रियो व मन के आलम्बन से जो मूर्त व अमूर्त द्रव्यो का कुछ अश मे सामान्य से अवबोध होता है, वह अचक्षुदर्शन कहलाता है। अवधिदर्शनावरण के क्षयोपशम मे मूर्त द्रव्य का जो कुछ अंश मे सामान्य से अवबोध होता है उसे अवधिदर्शन कहा जाता है। समस्त दर्शनावरण के अत्यन्त क्षय से जो अन्य किसी की भी सहायता के बिना समस्त मूर्त और अमूर्त द्रव्यो का सामान्य से अवबोध होता है, यह स्वाभाविक केवलदर्शन का लक्षण है[4]।

### दर्शन-ज्ञान की क्रमाक्रमवृत्तिता

उक्त दोनो उपयोगो मे मति आदि चार ज्ञान और चक्षुदर्शनादि तीन दर्शन क्षायोपशमिक है, जो छद्मस्थ के पाये जाते है। तथा केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो क्षायिक उपयोग है और वे केवलीके पाये जाते है। छद्मस्थ

---

१ चक्खुदसण चक्खुदसणिस्स घड-पड-कड-रहाइएसु दव्वेसु, अचक्खुदसण अचक्खुदसणिस्स आयभावे, ओहिदसण सव्वरूविदव्वेसु न पुण सव्वपज्जवेसु, केवल-दसण केवलदसणिस्स सव्वदव्वेसु अ सव्वपज्जवसु अ। अनुयोग. सूत्र १४४, पृ. २१६-२०.

इसकी टीका मे हरिभद्र सूरि (हरि वृत्ति पृ. १०३) और मल. हेमचन्द्र सूरि (अनु. वृत्ति पृ. २१६-२०) ने चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन मे इतनी विशेषता सूचित की है कि ये दोनों दर्शन विवक्षित इन्द्रियावरण के क्षयोपशम और द्रव्येन्द्रिय के अनुपघात में होने है। साथ ही यह भी एक विशेषता प्रगट कर दी है कि दर्शन का विषय सामान्य ही है, प्रकृत मे जो घट-पटादि विशेष द्रव्यो का निर्देश किया गया है उससे उनसे (विशेषोंसे) अनर्थान्तिर्भूत—कथचित् अभिन्न—सामान्य को ग्रहण करना चाहिए।

२ नयनाभ्या दर्शन नयनदर्शनम्।······शेषेन्द्रियैर्दर्शन अनयनदर्शनम्। पचस. स्वो. व्याख्या ३–१२२, पृ ३४.

३ त. भा. सिद्ध. वृत्ति २-५.

४ पचास्तिकाय अमृ. वृत्ति ४२; आ मलयगिरि के द्वारा इनके लक्षण इस प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं—चक्षुषा दर्शनं चक्षुर्दर्शनम्।·········अचक्षुषा—चक्षु-र्वर्जशेषेन्द्रिय-मनोभिर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनम्।············अवधिरेव दर्शनमवधिदर्शनम्।······केवलमेव दर्शन केवलदर्शनम्। प्रज्ञापना मलय. वृत्ति २३-२९३ व २९-३१२ तथा पंचसग्रह वृत्ति २-४, पृ. ११०.

के पूर्व मे दर्शन और तत्पश्चात् ज्ञान हुआ करता है। इस प्रकार छद्मस्थ के दोनों उपयोगों मे क्रमवृत्तिता है[1]। परन्तु केवली के ये दोनों उपयोग क्रम से होते है या युगपत्, इसमें कुछ मतभिन्नता है जो इस प्रकार है—

कितने ही आचार्य इन दोनों उपयोगों का अस्तित्व केवली के युगपत् मानते है[2]। इसके लिए वे निम्न युक्तिया देते है—

केवली के केवलज्ञानावरण का क्षय हो जाने पर जिस प्रकार केवलज्ञान प्रादुर्भूत होता है उसी प्रकार केवलदर्शनावरण के क्षय से केवलदर्शन भी उनके होना ही चाहिए[3]।

सूत्र में केवलज्ञान और केवलदर्शन को सादि-अनन्त कहा गया है। यदि उक्त दोनो उपयोगो को साथ न माना जाय—एकान्तरित माना जाता है—तो उनकी यह सूत्रोक्त अनन्तता समाप्त हो जाती है[4]।

---

१ दसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोण्णि उवओगा। जुगवं जम्हा·········॥ द्रव्यसंग्रह ४४.
मणपज्जवणाणतो णाणस्स दरिसणस्स विसेसो। समतितर्क २।३.
·········ज्ञान-दर्शनोपयोगौ क्रमेण भवत इति यावत्। तथाहि—चक्षुरचक्षुरवधिज्ञानानि चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनेभ्य. पृथक्कालानि, छद्मस्थोपयोगात्मकज्ञानत्वात् श्रुत-मन पर्यायज्ञानवत्। समतितर्क अभय. वृत्ति २।३

२ जुगव वट्टइ णाण केवलणाणिस्स दसण च तहा। दिणयरपयास-ताव जह वट्टइ तह मुणेयव्व॥
—नियमसार १६०.
ण च दोण्हमुवजोगाणमक्कमेण वुत्ती विरुद्धा, कम्मकयस्स कमस्स तदभावेण अभावमुवगयस्स तत्थ सत्तविरोहादो। जयध. १, पृ ३५६ ५७
·········केवलिणाहे तु ते दो वि॥ द्रव्यसग्रह ४४.
अभयदेव सूरि के अनुसार समतितर्क के कर्ता सिद्धसेन सूरि भी केवली के केवलज्ञान और केवलदर्शन को युगपत् स्वीकार करते है। यथा—केवलज्ञान पुन. केवलाख्यो बोध. दर्शनमिति वा ज्ञानमिति वा यत् केवल तत् समानम्—समानकालम्, द्वयमपि युगपदेवेति भावः। समति अभय. वृत्ति २।३.
अभयदेव के समान हरिभद्र सूरि भी उन्हे उक्त दोनो उपयोगो को युगपत् स्वीकार करने वाले प्रगट करते है। वे नन्दीसूत्र की अपनी वृत्ति में उद्धृत "केई भणंति जुगव जाणइ पासइ य केवली णियमा।" इस गाथार्ध का अर्थ इस प्रकार करते है—'केचन' **सिद्धसेनाचार्यादयः** 'भणति'। किम् ? 'युगपद' एकस्मिन्नेव काले 'जानाति पश्यति च'। क. ? केवली, न तु अन्य। नियमात्—नियमेन। नन्दी. हरि. वृत्ति पृ ४० (ई० १९६६).
परन्तु जयधवलाकारके अभिप्रायको देखने हुए ऐसा प्रतीत होता है कि वे सिद्धसेन सूरि को केवलज्ञान और केवलदर्शन की एकता (अभेद) के पक्षपाती मानते है। उन्होंने जयधवला (१, पृ. ३५७) में 'जेण केवलणाण स-परपयासय, तेण केवलदसणं णत्थि त्ति के वि भणंति' यह सूचित करके आगे 'एत्थुवउज्जतीओ गाहाओ' लिखकर समतितर्ककी 'मणपज्जवणाणंतो' इत्यादि गाथा (२।३) को उद्धृत कर 'एद पि ण घडदे' आदि सदर्भ के द्वारा निरसन किया है। यहा विचारणीय यह है कि गाथा उन्होंने केवल एक ही उद्धृत की है, पर 'एत्थुवउज्जतीओ गाहाओ' लिख कर सूचना उन्होंने अनेक गाथाओ के उद्धृत करने की की है। यह कुछ विसगतिसी दिखती है। नन्दी· चूर्णि (पृ २८—ई० १९६६) और उक्त हरि. वृत्ति मे प्रकृत गाथा के आगे उन दोनो उपयोगो के अभेद की सूचक 'अण्णे ण चेव वीसु दसणमिच्छंति जिणवरिंदस्स। ज चिय केवलणाण त चिय से दसण वेति॥' यह एक अन्य गाथा भी उपलब्ध होती है। सभव है लेखक के प्रमादवश यह गाथा जयधवला मे लिखने से रह गई हो। यह गाथा हरिभद्र की धर्मसग्रहणी में भी प्रकृत गाथा के आगे १३३७ न० पर पायी जाती है।

३ समति २।५, ज्ञान-दर्शनयोरक्रमेण प्रवृत्ति. कि न स्यादिति चेत् किमिति न भवति ? भवत्येव, क्षीणावरणे द्वयोरक्रमेण प्रवृत्त्युपलम्भात्। धवला पु. १, पृ. ३८४.

४ समति. २, ७-८; धर्मसग्रहणी १३३८.

ज्ञानावरण और दर्शनावरण दोनों के एक साथ क्षय को प्राप्त हो जाने पर भी यदि केवली के वे दोनों उपयोग एक काल मे नही रहते है तो केवलज्ञानकाल मे केवलदर्शन के अभाव से जैसे दर्शनावरण का क्षय निरर्थक ठहरता है वैसे ही केवलदर्शन के काल में केवलज्ञान के बिना ज्ञानावरणका क्षय भी निरर्थक सिद्ध होता है। लोक मे भी देखा जाता है कि जिन दो दीपको का आवरण हटा लिया गया है वे दोनो युगपत् ही घट-पटादि पदार्थों को प्रकाशित करते है—ऐसा नही है कि दोनो के निरावरण होने पर भी उनमे जब एक पदार्थो को प्रकाशित करता है तब दूसरा न करता हो। अथवा, उन दोनो (केवलज्ञान व दर्शन) के परस्पर आच्छादकता का प्रसग अनिवार्य हो जाता है। अथवा, आवरण के क्षीण हो जाने पर भी यदि उन दोनो मे एक का अभाव रहता है तो अन्वय-व्यतिरेक के अभाव मे आवरण की कारणता समाप्त हो जाती है। तब वैसी अवस्था मे एक किसी उपयोग का या तो सदा सद्भाव रहेगा या अभाव ही रहेगा[1]।

इसके अतिरिक्त दोनो उपयोगो के एक साथ न मानने पर केवली के केवलदर्शन के काल मे असर्वज्ञता का तथा केवलज्ञान के काल मे असर्वदर्शित्व का प्रसग भी कैसे टाला जा सकता है[2] ?

**दोनों उपयोगों की क्रमवृत्तिता**

जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण[3] आदि कितने ही आचार्य उक्त दोनो उपयोगो को अयुगपद्वृत्ति—क्रमवर्ती—मानते हैं[4]। वे युगपद्वाद मे दी गई युक्तियो का खण्डन इस प्रकार करते है[5]—

पूर्वोक्त आदि-निधनता के प्रसग का निरसन करते हुए कहा गया है कि आगम मे मति आदि तीन ज्ञानो के क्षयोपशम का काल छयासठ सागरोपम कहा गया है। परन्तु उपयोग की अपेक्षा उन क्षायोपशमिक तीन ज्ञानो मे एक ही कोई सम्भव है और वह भी अन्तर्मुहूर्त काल तक। फिर भी लब्धि की अपेक्षा जिस प्रकार उनके इस क्षयोपशम-काल (६६ सा.) मे कोई बाधा नही आती उसी प्रकार केवलज्ञान और केवलदर्शन की सादि-अनिधनता मे भी कोई बाधा उपस्थित नही होती—उपयोग की अपेक्षा इन दोनो मे से किसी एक के होने पर भी लब्धि की अपेक्षा उन दोनो की सादि-अनन्तता बनी रहती है[6]। इस पर यदि यह कहा जाय कि क्षायिक ज्ञान-दर्शन के लिए क्षायोपशमिक ज्ञान का दृष्टान्त देना उचित नही है, तो इसके लिए दूसरा दृष्टान्त यह दिया जाता है कि अरहत के पाच प्रकारके अन्तराय का क्षय हो जाने पर भी वे निरन्तर न दान देते है, न लाभ लेते है, न भोगते है और न उपयोग वस्तु का अनुभव भी करते है। फिर भी उनके अन्तरायक्षय के कार्य-भूत इन दानादि की जिस प्रकार सम्भावना की जाती है उसी प्रकार ज्ञानावरण और दर्शनावरण के क्षय के कार्य-भूत केवलज्ञान और केवलदर्शन निरन्तर नही रहते, किन्तु एक काल मे उन दोनो मे से एक ही कोई रहता है। फिर भी उक्त क्षायिक दानादि के समान इन दोनो उपयोगो का भी अस्तित्व उनके समझना चाहिए। जिस प्रकार अन्तराय के क्षय का यह प्रभाव है कि केवली मे दानादि के एक साथ न रहने पर भी यदि वे देने आदि मे प्रवृत्त होते है तो उसमे कोई विघ्न उपस्थित नही हो सकता है, इसी प्रकार केवली के ज्ञान और दर्शन मे उपयुक्त होने पर आवरण के क्षय का यह प्रभाव है कि उनके उसमे बाधा होना सम्भव नही है[7]।

१ नन्दी. चू. (उ. ४), पृ. २८; ध. स. १३३६

२ नन्दी. चू. (उ. ५ व ११) पृ. २८, २९, ध.स.१३४०.

३ अन्ये—जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रभृतयः— एकान्तरित जानाति पश्यति चेत्येवमिच्छन्ति श्रुतोपदेशेन — यथा-श्रुतागमानुसारेणेत्यर्थः। नन्दी. हरि. वृत्ति (उ १), पृ. ४०, अत्र च जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपूज्यानाम-युगपद्भाव्युपयोगद्वयमभिमतम्। मल्लवादिनस्तु युग-पद्भावि तद्द्वयमिति। समति अभय वृत्ति २।१०.

४ नाणम्मि दसणम्मि य एत्तो एगतरयम्मि उवउत्ता। सव्वस्स केवलिस्स वि जुगवं दो नत्थि उवओगा ॥(नि) विशे. भा. ३७३६ (ई. १९३७); नन्दी. चूर्णि (उ. २२), पृ. ३० ;

५ एव परेणोक्ते सति आगमवादी जिनभद्रगणिक्षमा-श्रमण आह—धर्मसग्रहणी मलय. वृत्ति १३४१.

६ विशे. भा. ३७४०-४१, नन्दी. चू. (उ. ६) पृ २८; ध. स. १३४१.

७ नन्दी. चू. (उ. ७-१०) पृ. २९; ध. स. १३४२-४५.

असर्वज्ञता और असर्वदर्शित्व के प्रसग के विषय मे यह कहा जाता है कि मत्यादि चार ज्ञान वाला जीव उन चारो ज्ञानो के द्वारा युगपत् न जानते हुए भी जिस प्रकार चतुर्ज्ञानी माना गया है[1] उसी प्रकार दोनो उपयोगो के एकान्तरित होने पर भी अरहत को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी स्वीकार करना चाहिए[2]।

दोनो उपयोगो को युगपत् न मानने पर यहा एक प्रश्न यह भी उपस्थित हो सकता है कि जब ज्ञानावरण और दर्शनावरण दोनो का ही युगपत् क्षय होता है तब दोनो उपयोगो के क्रमवर्ती मानने पर उन दोनो मे प्रथमत कौन-सा उपयोग उत्पन्न होता है—ज्ञान या दर्शन ? यदि ज्ञान को पहले उत्पन्न हुआ माना जाय तो दर्शनावरण के भी क्षय के होते हुए दर्शन को पहिले उत्पन्न हुआ क्यो न माना जाय ? और यदि दर्शन को पहिले माना जाता है तो ज्ञान को पहिले क्यो न माना जाय, यह भी प्रश्न बना रहता है। इसके समाधान मे प्रकृत मे यह कहा गया है कि दोनों उपयोगो के एक साथ उत्पन्न होने पर भी यह कोई नियम नही है कि उपयोग रूप मे भी उन दोनों को साथ ही होना चाहिए—उपयोग रूप मे तो वे क्रम से ही होते है। उदाहरण स्वरूप सम्यक्त्व, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान; ये एक साथ उत्पन्न होते है, पर उपयोग उन सबमे युगपत् नही होता। ठीक इसी प्रकार केवलीके शक्ति की अपेक्षा केवलज्ञान और केवलदर्शन दोनो के साथ उत्पन्न होने पर भी उन दोनो के विषय मे उपयोग एक साथ नही होता—वह तो क्रम से ही होता है[3]।

प्रकृत क्रमवाद के समर्थन मे आगम का आश्रय लेते हुए यह भी कहा गया है कि प्रज्ञप्ति और प्रज्ञापना[4] आदि मे भी यह कहा है कि जिस समय जिन भगवान् अणु आदिक को तथा रत्नप्रभादिक को जानते है उस समय वे उन्हे देखते नही है। इससे सिद्ध होता है कि केवलज्ञान और दर्शन दोनो उपयोग एक साथ नही होते—क्रम से ही वे होते है[5]।

इसके अतिरिक्त आगम मे जो साकार व अनाकार उपयोगी जीवो का अल्पबहुत्व बतलाया गया है वह पृथक्-पृथक् दोनो का ही बतलाया गया है। यदि केवली के दोनो उपयोग युगपत् सम्भव होते तो उभयोपयोगियो का भी अलग से अल्पबहुत्व कहा जाना चाहिये था—सो वह नही कहा गया है।

### केवल ज्ञान-दर्शन का अभेद

उक्त दोनो उपयोगो के विषय मे एक (तीसरा) पक्ष यह भी है कि ज्ञानावरण के क्षय को प्राप्त हो जाने पर जिस प्रकार केवली के देशज्ञानों की—मति-श्रुतादि की—सम्भावना नही रहती उसी प्रकार केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण इन दोनो आवरणो के क्षीण हो जाने पर केवली के केवलदर्शन की भी सम्भावना नही रहती—दोनो मे एक मात्र केवलज्ञान ही उनके रहता है[6]।

इस मत का निराकरण करते हुए कहा जाता है कि जिस प्रकार केवली के मति आदि देशज्ञान का अभाव हो जाने पर केवलज्ञान की उत्पत्ति स्वभावत. कही गई है उसी प्रकार चक्षुदर्शनादि देशदर्शन के अभाव मे केवलदर्शन भी उनके स्वरूपत. पृथक् होना चाहिए। फिर भी यदि देशज्ञान और देशदर्शन दोनो के भी अभाव मे यदि एक मात्र केवलज्ञान ही अभीष्ट है और

---

१ त. सू. १–३०.

२ नन्दी. चू. (उ. १२) पृ. २६, ध स. १३४७.

३ नन्दी. चू. (उ १३-१५) पृ. २६, ध. स १३४८-५०

४ केवली ण. भते इम रयणप्पभ पुढवि आगारेहि हेतूहि उवमाहि दिट्ठतेहि वण्णेहि सठाणेहि पमाणेहि पडोयारेहि ज समय जाणति त समय पासइ, ज समय पासइ त समय जाणइ ? गो० नो तिणट्ठे समट्ठे। से केणट्ठेण भते एव वुच्चति—केवली ण इम रयणप्पभ पुढवि आगारेहि० ज समय जाणति नो त समय पासति, ज समय पा० नो त समय जा० ? गो० सागारे से णाणे भवति अणागारे से दसणे भवति, से तेणट्ठेण जाव णो त समय जाणाति एव जाव अहे सत्तम। ·········प्रज्ञापना ३०-३१४, पृ. ५३१

५ विशेषा भा. ३७५२, नन्दी चू. (उ. १६) पृ. २६, ध स १३५१.

६ नन्दी. चू. (उ. २ व १७) पृ. २६ व ३०, ध. स. १३३७ व १३५२.

केवलदर्शन अभीष्ट नही है तो इसे युक्तिविहीन इच्छा मात्र ही कहा जायगा। दूसरे, सूत्र मे अवधिज्ञानी—के लिये कहा गया है कि वह जानता है और देखता है, फिर भी जैसे अवधिज्ञान और अवधिदर्शन मे अभेद नही माना गया वैसे ही केवलज्ञान और केवलदर्शन मे भी अभेद नही होना चाहिये[1]।

अन्त मे कहा गया है कि भगवतीसूत्र के पच्चीसवें शत (अध्ययन) सम्बन्धी छठे उद्देश मे स्नातक (केवली) के विशेष रूप से एकतर उपयोग बतलाया गया है। इस प्रकार आगम से भी इन दोनो उपयोगो मे क्रमवृत्तिता के साथ पृथक्ता भी सिद्ध होती है[2]।

क्रमवर्तित्व के विरुद्ध यहाँ यह कहा जा सकता है कि दर्शन जब सामान्य को विषय करता है और ज्ञान विशेष को विषय करता है तब उन दोनो के केवली मे क्रमवर्ती मानने पर न्यायानुसार केवली को दर्शनकाल मे सर्वज्ञ और ज्ञानकाल मे सर्वदर्शी नही माना जा सकता है। समस्त पदार्थ स्वरूपतः सामान्य-विशेषात्मक है। उनमे परस्पर कथचित् भेद-अभेद के होने पर भी किसी एक (ज्ञान या दर्शन) के द्वारा समुदित रूप मे उभय—सामान्य विशेष स्वरूप—को नही ग्रहण किया जा सकता है, यह न्याय की प्रेरणा है। उदाहरण के रूप में रूप-रसादिक मे परस्पर कथचित् भेद-अभेद के होने पर भी उन्हे किसी एक ही इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण नही किया जाता, किन्तु रूप को चक्षु मे व रसादि को जिह्वा आदि भिन्न इन्द्रियो से ही ग्रहण किया जाता है। तदनुसार जैसे विशेष का ग्राहक केवली के केवलज्ञान है उसी प्रकार सामान्य का ग्राहक केवलदर्शन भी उनके पृथक् होना चाहिए। और तब वैसी अवस्था मे सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता का अभाव अनिवार्य प्रसक्त होगा ही[3]।

क्रमिकवाद मे इसके उत्तर मे कहा गया है कि सामान्य वही कहा जाता है जो विशेषो से गर्भित होता है, इसी प्रकार विशेष भी वे कहलाते है जो सामान्य से गर्भित होते है। इस प्रकार दोनो के परस्पर सापेक्ष मानने पर ही सामान्य-विशेषात्मक वस्तु की व्यवस्था बनती है, अन्यथा नही। इस न्याय से वस्तु मात्र के सामान्य-विशेषात्मक सिद्ध होने पर विशेषो का जो निर्विशेष—सामान्य रूप से—ग्रहण होता है, इसका नाम दर्शन और इस सामान्य रूप को गौण कर जो उनका विशेष रूप से ग्रहण हुआ करता है, इसका नाम ज्ञान है। इस प्रकार से ज्ञान और दर्शन दोनो ही जब समस्त पदार्थो के ग्राहक सम्भव है तब केवली के सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता का अभाव कैसे हो सकता है? नही हो सकता[4]।

तात्पर्य यह कि सामान्य और विशेष धर्मों मे कथचित भेदाभेद के होने पर उनका परस्पर निरपेक्ष ग्रहण नही होता—परस्पर सापेक्ष ही उनका ग्रहण होता है। इससे दर्शन वही कहा जाता है जो विशेषो को गौण कर सामान्य की मुख्यता से वस्तु को विषय करता है, इसी प्रकार ज्ञान भी वही कहा जाता है जो सामान्य धर्म को गौण कर विशेष की मुख्यता मे वस्तु को ग्रहण करता है। दर्शन न तो केवल सामान्य धर्म से विशिष्ट ही वस्तु को विषय करता है और न ज्ञान विशेष धर्म विशिष्ट ही वस्तु को विषय करता है। अतः विवक्षा के अनुसार एक की प्रमुखता और दूसरे की गौणता से वस्तु का ग्रहण होने पर उपर्युक्त दोष सम्भव नहीं है[5]।

१ नन्दी चू (उ १८–२०) पृ ३०, ध स १३५३, १३५४-५५.

२ उवओगो एगयरो पणुवीसइमे सए सिणायस्स।
भणिओ वियडत्थो च्चिय छट्ठुद्दे मे विसेसेउ ॥
विशेषा. भा. ३७६०, नन्दी चू (उ. २३) पृ ३०, ध स १३५८

(भगवती सूत्र के शतक २५, उ. ६ मे हमने इस के खोजने का प्रयत्न किया, पर इस रूप मे वहाँ हमे उपलब्ध नही हुआ। वहाँ "पुलाए ण भंते कि सागारोवउत्ते होज्जा अणागारोवउत्ते वा होज्जा। एव जाव सिणाए।" [भगवती भा ४, श २५, उ ६ सू ८५—वि. स १९८८] यहाँ 'वा' शब्द का विकल्प अर्थ यदि किया जाय तो दोनों उपयोगो मे 'एकतर' उपयोग की सम्भावना की जा सकती है। पर प्रकृत मे 'वा' का अर्थ 'और' प्रतीत होता है।)

३ ध. स. १३६०-६१.

४ वही १३६२-६४.

५ ध. स. १३६५-६८.

**आ. वीरसेन कुन्दकुन्दाचार्य के मत से सहमत नहीं**

आचार्य कुन्दकुन्द विरचित नियमसार एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है। उसके शुद्धोपयोगाधिकार में केवली के ज्ञान व दर्शन उपयोगों के विषय में अच्छा विचार किया गया है। वहां सर्वप्रथम यह कहा गया है कि केवली भगवान् व्यवहार नय से सब को जानते देखते है और केवलज्ञानी नियम से—निश्चय से—आत्मा को जानते देखते है[1]। इसका अभिप्राय यही है कि जिस प्रकार केवली का ज्ञान व्यवहार नय से समस्त पदार्थों को विषय करता है उसी प्रकार उनका दर्शन भी व्यवहार नय से समस्त पदार्थों को विषय करता है तथा निश्चय से जैसे उनका ज्ञान आत्मा को जानता है वैसे ही उनका दर्शन भी उसी आत्मा को देखता है।

इसको स्पष्ट करते हुए आगे और भी शका-समाधान के रूप मे कहा गया है कि ज्ञान परप्रकाशक और दर्शन आत्मप्रकाशक ही है; इस प्रकार आत्मा स्व-परप्रकाशक है, ऐसा यदि कोई मानता है तो क्या हानि हो सकती है ? इसके उत्तर मे कहा गया है कि यदि ज्ञान को परप्रकाशक माना जाता है तो ज्ञान से दर्शन को भिन्न मानना पडेगा, जिसका अभिप्राय होगा कि दर्शन परद्रव्यगत नही है—आत्मगत ही है। तब ऐसी अवस्था म आत्मा के ज्ञान से रहित हो जाने का प्रसग प्राप्त होता है। इसी प्रकार आत्मा के परप्रकाशक मानने मे भी यही आपत्ति बनी रहेगी। इससे वस्तुस्थिति यह समझना चाहिये कि ज्ञान और आत्मा जो परप्रकाशक है वे व्यहार नय से हैं। इसीलिये दर्शन को भी व्यवहार नय से परप्रकाशक जानना चाहिये। वही ज्ञान और आत्मा दोनो निश्चय नय से आत्मप्रकाशक है, इसीलिये दर्शन भी आत्मप्रकाशक है[2]।

आगे फिर कहा गया है कि केवली भगवान् आत्मस्वरूप को देखते है लोक-अलोक को वे नहीं देखते है, इस प्रकार यदि कोई कहता है तो उसे क्या दूषण हो सकता है ? इसके उत्तर में यह कहा है कि मूर्त-अमूर्त द्रव्य तथा चेतन व अचेतन स्व एव अन्य सभी को देखने वाले केवली का ज्ञान प्रत्यक्ष व अतीन्द्रिय है, यह वस्तुस्थिति है। इसके विपरीत जो नाना गुणों और पर्यायों से सयुक्त पूर्वोक्त समस्त द्रव्य को यथार्थ नही देखता है उसकी दृष्टि ( दर्शन ) को परोक्षता का प्रसग प्राप्त होगा[3]।

इसी प्रकार जो यह कहता है कि केवली भगवान् लोक-अलोक को जानते है, आत्मा को नही जानते है, उसके इस कथन को दूषित करते हुए कहा गया है कि ज्ञान जीवका स्वरूप है, इसलिये आत्मा अपने को जानता है। यदि ज्ञानमय आत्मा अपने को नही जानता है तो वह ज्ञान आत्मा से भिन्न ठहरेगा। इसलिये निःसन्देह आत्मा को ज्ञान और ज्ञान को आत्मा समझना चाहिये। इस प्रकार स्व-परप्रकाशक जैसे ज्ञान है वैसे ही दर्शन भी स्व-परप्रकाशक है[4]।

---

१ जाणदि पस्सदि सव्व ववहारणएण केवली भयव।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाण ॥
नि. सा १५८

२ णाण परप्पयास दिट्ठी अप्पप्पयासया चेव।
अप्पा स-परपयासो होदि त्ति हि मण्णसे जदि हि ॥
णाण परप्पयासं तइया णाणेण दसण भिण्ण।
ण हवदि परदव्वगयं दंसणमिदि वण्णिद तम्हा ॥
अप्पा परप्पयासो तइया अप्पेण दसण भिण्ण।
ण हवदि परदव्वगओ दसणमिदि वण्णिद तम्हा ॥
णाण परप्पयास ववहारणएण दसण तम्हा।
अप्पा परप्पयासो ववहारणएण दसण तम्हा ॥
णाण अप्पपयास णिच्छयणएण दसण तम्हा।
अप्पा अप्पपयासो णिच्छयणएण दसण तम्हा ॥
नि. सा. १६०-६४.

३ अप्पसरूव पेच्छदि लोयालोय ण केवली भगव।
जइ कोइ भणइ एव तस्स य कि दूसण होइ ॥
मुत्तममुत्त दव्व चेयणमियर सग च सव्व च।
पेच्छतस्स दु णाण पच्चक्खमणिदिय होइ ॥
पुव्वुत्तसयलदव्व णाणागुण-पज्जएण सजुत्त।
जो ण य पेच्छइ सम्म परोक्खदिट्ठी हवे तस्स ॥
नि. सा. १६५-६७.

४ लोयालोय जाणइ अप्पाण णेव केवली भगव।
जइ कोइ भणइ एव तस्स य कि दूसण होइ ॥

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है (पृ. ११९-२०) आचार्य वीरसेन आत्मविषयक उपयोग को दर्शन और बाह्यार्थविषयक उपयोग को ज्ञान मानते है[1]। विभिन्न लक्षणो के द्वारा वे इसी बात को पुष्ट करते है। जैसे—सामान्य-विशेषात्मक बाह्य अर्थ के ग्रहण का नाम ज्ञान और तदात्मक—सामान्य-विशेषात्मक—स्वरूप (आत्मरूप) के ग्रहण का नाम दर्शन है[2]। अथवा, आलोकनवृत्तिका नाम दर्शन है। 'आलोकते इति आलोकनम्' इस निरुक्ति के अनुसार आलोकन का अर्थ वे आत्मा करते है, तदनुसार आलोकन की वृत्ति (व्यापार) को—स्व के सवेदन को—दर्शन जानना चाहिये। अथवा, प्रकाशवृत्तिका नाम दर्शन है। यहा वे प्रकाश का अर्थ ज्ञान लेते है, इस प्रकाश के लिये जो आत्मा की प्रवृत्ति होती है वह दर्शन कहलाता है। अभिप्राय यह है कि विषय (रसादि) और विषयी (इन्द्रियों) के सपात—ज्ञानोत्पत्ति की पूर्वावस्था—को दर्शन कहा जाता है[3] (धवला पु० १३, पृ० २१६)।

इस प्रकार वीरसेनाचार्य ने धवला मे अनेक स्थानों पर दर्शन के विषय मे विचार किया है तथा आवश्यकतानुसार समतितर्क आदि पूर्व ग्रन्थो के वाक्यो को भी उद्धृत किया है। पर आश्चर्य की बात यह है कि उपर्युक्त नियमसार के उनके समक्ष रहते हुए भी उन्होने न तो उसकी किसी गाथा को उद्धृत किया है और न वहा प्ररूपित दर्शन के सम्बन्ध मे भी कुछ विचार प्रगट किया है। इससे यही समझा जा सकता है कि दर्शन का स्व-परप्रकाशकत्व स्वरूप (१७०), अथवा व्यवहार नय से परप्रकाशकत्व और निश्चय नय से आत्मप्रकाशकत्व (१६३-६४) स्वरूप जैसा कुन्दकुन्दाचार्य को अभीष्ट रहा है वैसा वह आचार्य वीरसेन स्वामी को अभीष्ट नही रहा।

### उपसंहार

पदार्थ सामान्य-विशेषात्मक है। उसके ये दोनों धर्म कथचित् तादात्म्यस्वरूप है—वे न तो सर्वथा भिन्न ही है और न सर्वथा अभिन्न ही है। उनमें सामान्य धर्म को ग्रहण करने वाला दर्शन और विशेष धर्म को ग्रहण करने वाला ज्ञान है।

दर्शन निराकार (निर्विकल्पक) और ज्ञान साकार (सविकल्पक) है।

छद्मस्थ के पूर्व मे दर्शन और तत्पश्चात् ज्ञान होता है—बिना दर्शन के उसके ज्ञान नही होता। परन्तु केवली के वे दोनों सूर्य के प्रकाश और आतप के समान एक साथ होते है। इसका कारण यह है कि केवली के ज्ञान का प्रतिबन्धक ज्ञानावरण और दर्शन का प्रतिबन्धक दर्शनावरण दोनों युगपत् क्षयको प्राप्त हो चुके है एवं भविष्य मे उनके उदय की सम्भावना भी नही रही।

केवली सबको जानते देखते है, यह व्यवहार है। वास्तव मे तो वे आत्मा को ही जानते देखते है।

यथार्थ मे आत्मा है सो ज्ञान है और ज्ञान है सो आत्मा है—दोनो मे कोई भेद नही है। अत: जिस प्रकार ज्ञान स्व-परप्रकाशक है उसी प्रकार उससे कथचित् अभिन्न दर्शन को भी स्व-परप्रकाशक समझना चाहिये।

दर्शन के लिये दीपक और ज्ञान के लिये दर्पण का दृष्टान्त घटित हो सकता है—दीपक पदार्थ के आकार को न ग्रहण कर सामान्य रूप से सीमित प्रदेश मे स्थित सभी पदार्थों को प्रकाशित करता है, पर दर्पण सामने स्थित पदार्थ के आकार को ग्रहण कर विशेष रूप से उसे प्रकाशित करता है।

हम चलते-फिरते व उठते-बैठते अनेक वस्तुओ को देखते है, पर प्रयोजन न होने से उनकी विशेषता का अनुभव नही करते, प्रयोजन के वश उनकी विशेषता को भी पृथक्-पृथक् जानते है। इसी प्रकार निर्विकल्प सामान्य प्रतिभास को दर्शन और विशेष प्रतिभास को ज्ञान जानना चाहिये।

---

णाण जीवसरूप तम्हा जाणेइ अप्पग अप्पा।
अप्पाण ण वि जाणदि अप्पादो होदि विदिरित्त ॥
अप्पाण विणु णाण णाण विणु अप्पगो ण सदेहो।
तम्हा स-परपयास णाण तह दसण होदि ॥

नि. सा. १६८-७०.

१ सामान्य-विशेषात्मकबाह्यार्थग्रहण ज्ञानम्, तदात्मकस्वरूपग्रहणं दर्शनम्। धवला पु १, पृ १४७.

२ धवला पु. १, पृ. १४८-४९

# कवि छीहल

परमानन्द शास्त्री

नाल्हिग वश के विद्वान कवि छीहल का जन्म अग्रवाल कुल में हुआ था। आपके पिता का नाम शाह नाथू या नाथूराम था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा और जीवन घटनाओ का कोई उल्लेख नही किया इसलिये उनके सम्बन्ध मे यहा लिखना कुछ शक्य नही है। आप की इस समय तक ५ पाच रचनाएं प्रकाश मे आई है—पच सहेली गीत, पन्थीगीत, उदरगीत, पचेन्द्रिय वेलि और बावनी आदि है। पंच सहेलीगीत एक शृगार परक रचना है जो स० १५७५ मे फाल्गुन सुदि १५ के दिन रची गई थी। रचना मे पच सहेलियो का वर्णन है। वर्णन सहज और स्वाभाविक है। पच सहेलियो का प्रश्नोत्तररूप मे अच्छा सकलन हुआ है।

**पन्थीगीत**—ससारिक दु ख का एक पौराणिक उदाहरण है। इसे रूपक काव्य कहा जा सकता है। यह पौराणिक दृष्टान्त महाभारत और जैन ग्रथो मे पाया जाता है वहा इसे ससार वृक्ष के नाम से उल्लेखित किया गया है.—

एक पथिक चलते-चलते रास्ता भूल गया और सिहों के वन मे पहुंच गया। वहा रास्ता भूल जाने से वह इधर-उधर भटकने लगा। उसी समय उसे सामने एक मदोन्मत हाथी आता हुआ दिखाई दिया, उसका रूप अत्यन्त रौद्र था और वह क्रोधवश अपने भुजदण्ड को हिलाता हुआ आ रहा था। पथिक उसे देख भयभीत होकर भागने लगा। और हाथी उसके पीछे पीछे चला, वहा घास-फूस से ढका हुआ एक अन्धा कुआ था। पन्थी को वह न दिखा, और वह उसमे गिर गया, उसने वृक्ष की एक टहनी पकड ली और उसके सहारे लटकता हुआ दुःख भोगने लगा। उस कुए के किनारे पर हाथी खडा था, उस कुवे मे चारो दिशाओ मे चार सर्प और बीच मे एक अजगर मुहबाए पडा था। उस कुए के पास एक वट वक्ष था, उसमे मधु मक्खियो का एक छत्ता लगा हुआ था। हाथी ने उसे हिला दिया, जिससे अगणित मधु-मक्खिया उड़ने लगी, और मधु की एक-एक विन्दु उस पथिक के मुह मे पड़ने लगी। इसमे कूप संसार है, पथी जीव है, सर्प गति है, अजगर निगोद है, हाथी अज्ञान है और मधु विन्दु विषय-सुख है। कवि कहता है कि—'यह संसार का व्यवहार है। अतः हे गवार ! तू चेत, जो मोह निद्रा मे सोते है वे अधिक असावधान है। इन्द्रिय रस मे मग्न हो परम-ब्रह्म को भुला दिया है, इस कारण तेरा नर जन्म व्यर्थ है। कवि छीहल कहते है कि हे आत्मन् ! अब तू जिनेद्र प्रतिपादित धर्म का अवलम्बन कर कर्म बन्धन से छूट सकता है—जैसा कि उक्तगीत के निम्नपद्य से प्रकट है:—

**संसार को यहु विवहारो चित चेतहुरे गवांरो**
**मोह निद्रा में जे जन सूता ते प्राणी अति बे गूता**
**प्राणी बे गुता बहुत ते जिन परमब्रह्म बिसारियो**
**भ्रम भूलि इन्द्रिय तनौ रस नर जनम वृथा गवांइयो**
**बहुत काल नाना दुःख दीरघ सहघा छीहल कहे करि धर्म**
**जिन भाषित जुगतिस्यों त्यों मुक्ति पद लह्यौ ॥**

**पचेन्द्रियवेलि**—यह चार पद्यो की एक लघु रचना है, जिसमे आत्म सम्बोधन का उपदेश निहित है। अपने आराध्यदेव को घट मे स्थापित करने के लिये हृदय की पवित्रता आवश्यकता है, यदि घट अपवित्र है तो जप, तप तीर्थयात्रादि सब व्यर्थ है अत घट की आन्तरिक शुद्धि को लक्ष्य मे रखकर भव -समुद्र के तिरा जा सकता है।

चौथी कृति बावनी है। यह पिगल भाषा की एक छोटी सी रचना है जो अब तक अप्रकाशित है। इसमे ५३ कवित्त या छप्पय है। कवि ने अन्तिम पद्य मे अपना परिचय दिया है। और बावनी का रचना काल वि० स०

१५८४ कार्तिक शुक्ला अष्टमी गुरुवार बतलाया है[1]। यह नीति विषयक एक मुक्तक रचना है। इसका प्रत्येक छन्द काव्य की दृष्टि से उत्तम कोटि का है। रचना भावपूर्ण और सुन्दर है। इस प्रकार की नीति-परक रचना बहुत कम देखने मे आती है। रचना चूंकि १६वी शताब्दी के अन्तिम चरण की है ग्रथगत नीति पद्य बड़े ही मार्मिक और दृष्टान्तके साथ वस्तुतत्त्व का ज्ञापन कराते है। रचना पर संस्कृत साहित्य के सुभाषतो का आधार रहा है। कवि ने सस्कृत के अनेक नीति-तथा सुभाषित-विषयक पद्यो का सार लेकर उनका भाव अकित किया होगा। प्रायः प्राचीन भारतीय रचनाओं में पूर्वाधार का होना उनकी प्रामाणिकता का सबूत है। रचना के दो ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं जो संस्कृत के पद्यो के आधार को प्रामाणित करते है।

**चैत्रमास वनराइ फलं फुल्लं तरुवर सह**
**तौ क्यौ दोष वसंत पत्र होवं करीर नहूं।**
**दिवस उलूक जुग्रंध तनौ रवि कौ कोऊ अवगुन।**
**चातक नीर न ग्रहै नत्थि दूषन वरषा घन ॥**
**दु.ख सुख दईव जो निर्मयौ लिपिललाट सोई लहै**
**बकवाद न करि रे मूढ नर कर्म दोष छीहल कहै ॥२५**

इस पद्य का भाव भर्तृहरि की नीति शतक के इस पद्य में लक्षित है:—

**पत्रं नैव यदा करीर विटपे दोषो वसन्तस्य किं**
**नो लूको प्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।**
**धारा नैव पतन्ति चातक मुखे मेघस्य किं दूषण**
**यत्पूर्वं विधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥**
—नीति शतक

**भ्रमर इक्कि निसि समय परयौ पंकज के संपुटि**
**मन मइं मंडे आस रयनि खिन मध्य जाइ घटि।**
**करि हैं जलज विकास सूर परभात उदय जब**
**मधुकर मन चितवं मुकत ह्वं है बंधन तब ॥**
**छीहल्ल द्विरद तेही समय सर सपत्तौ दईव वसि।**
**अलि कमल पत्र पर इन सहित निमिष मध्य सो गयौ ग्रसि ॥**
—बावनी

निम्न सम्कृत सुभाषित पद्य का अनुवाद उक्तपद्य में कवि ने किस सफलता के साथ करने का उपक्रम किया है।

**रात्रि गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं**
**भास्वान् वेष्यति हसिष्यति पंकज श्रीः**
**इत्थं विचिन्तयति कोष गते द्विरेफे।**
**हा हन्त-हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥** —सुभाषित पद्य

इस पद्य का अनुवाद और भी अनेक कवियों ने किया है।

२३ वे पद्य मे कवि ने बतलाया है कि राज द्वार पर घड़ी-घडी मे घड़ियाल बजती है, वह पुकार-पुकार कर मानवो से मानो कह रही है कि यह आयु क्षण-क्षण मे छीजती जा रही है सपत्ति श्वास और शरीरके समान अनिश्चल है—विनष्ट होने वाली है। वह वृक्ष के पत्तो पर पड़ी ओस के बिन्दु के समान चचल है। ऐसा जान कर मूढ मानव तू चित्त में चेत, कवि छीहल कहता है कि उच्च हाथो से दान दीजिये अन्यथा वह विनष्ट हो जायगी।

यथा—**घरी-घरी नृप द्वार एह घरियावल बज्जं**
**कहे पुकारि-पुकारि आउ खन ही खन छिज्जं।**
**संपति स्वांस शरीर सदा नर नाही निसचल**
**पर इनि पत्र पतंत बूंद जल लव जिम चंचल ॥**
**यह जानि जगत जातौ सकल चित चेतौ रे मूढ नर।**
**······सो इव छीहल कहि दिज्जं दानहि उच्च कर ॥२३**

एक दूसरे पद्य में कवि कहता है—कि—

ज्ञानवन्त कुलीन पुरुष यद्यपि धन से हीन है फिर भी वह विषमावस्था मे भी कभी हीन बचन नही कहता। दुःख के अधिक सताने पर भी वह नीच कर्म नही करता। वह मरना पसन्द करता है किन्तु अपनी नाक नीची नही करता कवि छीहल कहते हैं कि दम्पति (सिंह) सदा मृग मांस खाता है किन्तु बहुत दिनों तक लंघन करने पर भी कभी घास नहीं खाता।

**ज्ञानवंत सुकुलीन पुरुष जो है धन हीना**
**विषम अवस्था परें वयन नहिं भाखं रीना।**

---

१ **चौरासी अग्गला सय जु पनरह संवच्छा।**
**सुकल पच्छ अष्टमी मास कातिग गुरु वासर।**
**हृदय बुद्धिउ घनी नाम श्री गुरु कौ लीनौ**
**सारद तनं पसाय कवित संपूरन कीनौ ॥**
**नातिग बंस नाथू सुतन अगरवाल कुल प्रगट रवि**
**बावनी बसुधा विस्तरी कहि सेवग छीहल कवि ॥ ५३**

निध कर्म नहि करै रोर जो अधिक सतावै ।
वर मदिवो अंगवै निमिष सो नाक न नावै ।।
छीहल्ल कहै मृगपति सदा मृग आमिष भक्खन करै ।
जो बहुत दिवसलंघन परै तऊ न केहरि तृण चरै ।।२४

३५ वें पद्य मे बताया है कि हे मूढ नर ! थोड़े-थोडे समय कुछ सुकृत ( पुण्य ) भी करना चाहिये और जब तक शरीर मे जोस है विनय सहित सारे दिन अपने हाथ से धन को देना चाहिये । मरने के बाद लक्ष्मी साथ नही जाती । कवि छीहल कहते है कि देखो राजा वीसल ने उन्नीस करोड द्रव्य सचित किया, किन्तु भोग कर उसका लाभ नही उठाया । अन्त मे वह उसे छोड कर चला गया ।

इस तरह यह रचना बडी ही सुन्दर और भावपूर्ण है । और प्रकाशित करने के योग्य है ।

पांचवीं रचना सामने न होने से उसका परिचय यहा नही दिया जा सका । कवि की अन्य रचनाओं का अन्वेषण होना चाहिए । ●

# कुलपाक के माणिक स्वामी

**पं० के० भुजबली शास्त्री, सिद्धान्ताचार्य**

'अनेकान्त' वर्ष २१ किरण १ (अप्रैल, १९६८) मे कुलपाक के माणिक स्वामी' शीर्षक से डा० विद्याधर जोहरापुरकर का एक लेख प्रकाशित हुआ है । उस लेख मे मान्य लेखक ने अनुमानित तेरहवीं शताब्दी के विद्वान् उदयकीर्ति की अपभ्रंश रचना 'तीर्थ वंदना,' चौदहवी शताब्दी के लेखक जिनप्रभसूरिका 'विविध तीर्थ कल्प,' पंद्रहवीं शताब्दी के मराठा लेखक गुणकीर्ति का 'धर्मामृत,' पंद्रहवी या सोलहवी शताब्दी के लेखक सिंहनन्दि का 'माणिक स्वामी बिनती,' सोलहवी शताब्दी के गुजराती लेखक सुमतिसागर की 'तीर्थजयमाला,' सत्रहवी शताब्दी के लेखक शीलविजय की 'तीर्थमाला,' सत्रहवी शताब्दी के गुजराती लेखक सुमतिसागर की 'तीर्थ जयमाला,' सत्रहवी शताब्दी के गुजराती लेखक ज्ञानसागर की 'तीर्थ वदना,' सत्रहवी शताब्दी के ही जयसागर की 'तीर्थ जयमाला' और उसी शताब्दी के कारजा के भट्टारक जिनसेन का 'मान्यता विवरण' इन कृतियो के आधार पर कुलपाक के माणिक स्वामी पर प्रकाश डाला है ।

विद्याधर जी का कहना है कि इस समय क्षेत्र पूर्णत: श्वेताम्बर संप्रदाय के अधिकार मे है । पर उपर्युक्त कृतियों के वर्णनों से स्पष्ट है कि मध्य युगमे दिगम्बर भी यात्रा को यहा पर बराबर जाते रहे है । जहां के मंदिर के सभागृह में मुख्य मूर्ति माणिक स्वामी के अतिरिक्त, अन्य बारह भव्य अर्ध पद्मासन मूर्तियां भी है और उनकी शिल्प शैली दक्षिणी भारत के श्रवण बेलगोल कारकल, मूडबिद्री आदि स्थानों की मूर्तियो के समान ही है । साथ ही साथ लेखक यह भी कहते है कि मूर्तियो के पाद पीठो पर प्रतिष्ठा सम्बन्धी लेख अवश्य ही रहे होंगे । पर इनके पैरों तक सीमेन्ट प्लास्टर किये जाने के कारण आज पाद पीठ नष्ट प्राय. हो गये है ।

अब कुलपाकके माणिक स्वामी के सम्बन्ध मे मुझे भी कुछ कहना है । वह निम्न प्रकार है : कुलपाक या कोल्लिपाक से सम्बन्ध रखने वाली एक रचना कन्नड भाषा मे भी है । इसके रचयिता जैन कवि नागव है । इनका समय ई० सन् १७०० वी शताब्दी है । कवि नागव की इस रचना का नाम 'माणिकचरिते है । इस कथा का सम्बन्ध रामायण से जोडा गया है । बहुत कुछ सभव है रामायण और महाभारत जनप्रिय महाकाव्य होने के कारण ऐसा किया गया हो । वस्तुत यह एक ऐतिहासिक घटना है । कथा का सार इस प्रकार है ·

एक दिन देवेन्द्र रजतगिरि के रत्न खचित जिन मदिरों का दर्शन कर पुष्पक विमान पर लौट रहा था । अकस्मात् पुष्पक विमान वीच में रुक गया । तब देवेन्द्र ने नीचे देखा । नीचे लंकाधीश रावण की पत्नी मंदोदरी लका नगर के बाहर, शातीश्वर के मदिर मे बड़ी भक्ति से पूजा कर रही

थी। देवेन्द्र उसे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। तत्क्षण वह विमान से उतर कर पूर्वोक्त जिन मदिर मे गया। मंदिर के दर्शन करने के उपरात देवेन्द्र ने मंदोदरी से कहा कि मै तुम्हारी भक्तिसे बहुत खुश हूँ। इसलिये तुम कोई अभीष्ट वस्तु मागो। मदोदरी ने उसका उत्तर दिया कि मुझे किसी भी चीजकी कमी नही है। हा स्वर्ग मे आपके द्वारा पूजी जाने वाली जिन प्रतिमा को आप मुझे दे दें तो बड़ी कृपा होगी। तब देवेन्द्र ने मदोदरी को सानद मरकत रत्न निर्मित अपनी जिन प्रतिमा को दे दिया। इस जिन प्रतिमा को मंदोदरी बडी भक्ति से बराबर पूजती रही। राम-रावण के युद्ध काल मे डर कर मदोदरी ने इस प्रतिमा को समुद्र मे डाल दिया। इसके बाद की कथा सुनिये।

एक दिन एक भील ने राजा शकर गड से निवेदन किया कि प्रातःकाल मध्यान्ह और सायंकाल तीनों काल समुद्र मे हाव-भाव के साथ दर्शन देने वाली और डूबने वाली जिन प्रतिमा का एक बार आप अवश्य दर्शन करे। इस बात को सुनकर दूसरे दिन शकर गड अपने मत्री एव पुरवासियों के साथ समुद्र तीर मे जाकर वहा से नाव के द्वारा प्रतिमा स्थित स्थान पर पहुँचा वहा पर भील की बात यथार्थ निकली। बाद सूर्यास्त के समय पर राजा शकर गड अपने महल मे लौट आया। पर उसके मन मे उक्त प्रतिमा को लाकर पूजा करने की बलवती अभिलाषा सताने लगी। उसी दिन रात को निद्राधीन शकर गड से यक्षी ने आकर कहा कि तुम्हारे राज्य की किसी सुशीला, पतिव्रता स्त्री की सहायता से सागर स्थित वह प्रतिमा महल मे लाई जा सकती है। पर लाते समय उक्त प्रतिमा को तुम मुडकर मत देखना। अगर देखोगे तो प्रतिमा उसी स्थान पर स्थिर हो जायगी अर्थात् आगे नही जावेगी। दूसरे दिन राजा शकर गडने अपने आस्थान मे गत रातकी घटना को कह सुनाया। तब मत्रियों ने राजा से निवेदन किया कि अपने नगर में किसी पतिव्रता स्त्री का पता लगाना चाहिये। इसके लिये सुवर्ण मुद्राओं के साथ मुनादी करना ही सबसे उत्तम उपाय है। इसी प्रकार किया गया।

इस मुनादी को धनदत्त श्रेष्ठी की पत्नी गुणवती के नौकरानाने सुना और उसने राज दूतों से बहुमान स्वरूप उन सुवर्ण मुद्राओं को लेकर वह अपनी स्वामिनी के पास पहुँचा। मुनादी की बातों को सुनाकर वह गुणवती से कहने लगा कि इस महत्वपूर्ण धर्म कार्य के लिये आप ही सर्वथा योग्य है। क्योकि मै आपकी पातिव्रत्य की महिमा को कई बार देख चुका हूँ। बाद नौकराना के आग्रह से गुणवतीको उस बहुमानको स्वीकार करना पडा। राजाज्ञा के अनुसार दूसरे दिन प्रातःकाल गुणवती स्नान आदि से शुचिभूत होकर सुवर्ण थाल मे पूजा द्रव्य लेकर अपने पूज्य पति तथा नौकराना के साथ राजमहल मे पहुची। वहा से राजा शकर गड अपनी रानियो, मत्री, सेनानायक, सेना हाथी, घोड़ा, बाजा आदि के साथ बड़े धूम-धाम से निकला और ठीक समय पर समुद्र तीर मे पहुंचा। उसी समय सती गुणवती सकेत पाकर अपने पातिव्रत्य के बलसे पानी के ऊपर पैदल ही जिन प्रतिमा के पास पहुची। वहा पर बडी भक्ति से भगवान् की पूजा कर स्तुति-स्तोत्र पूर्वक उक्त प्रतिमा को भक्ति से शिर पर उठा लायी। तीर मे पहुचते ही एक नवीन विशिष्ट गाडी पर मूर्ति को विराजमान कर सभी नगर की ओर बढ़े। चलते-चलते नगर जब ८-१० मील पर रह गया था, तब अकस्मात् वह गाड़ी रुक गयी। उस समय पूर्व के स्वप्न की सूचना को भूल कर शकर गड ने मुड कर पीछे देखा। फल स्वरूप वह माणिक स्वामीकी प्रतिमा वही पर स्थिर हो गयी। उस स्थान का नाम कुलपाक या कोलिपाक था। निरुपाय हो उसी स्थान पर राजा के द्वारा पूर्वोक्त प्रतिमा को स्थापित करना पडा। यही सक्षेप मे पूर्वोक्त रचना का सार है। अब इस कथा को ऐतिहासिक दृष्टि से देखना है।

उक्त कुलपाक एक जमानेमे कर्णाटकमे शामिल रहा। पूर्वोक्त कथामे प्रतिपादित राजा शकर गड दशवी शताब्दीके उत्तरार्ध मे राज्य करने वाला एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। वह राष्ट्रकूट चक्रवर्ती तृतीय कृष्ण का महासामताधिपति होकर बनवासिमे शासन करता रहा। उसी समय उपर्युक्त कृष्ण के आस्थान-महाकवि पोन्न को 'उभय भाषा कवि चक्रवर्ती की उपाधि एवं उसी कृष्ण मांडलिक अरिकेसरी के आस्थान में सेनानायक तथा कवि के रूप में विराजने वाले महाकवि पंप को कविता गुणार्णव की उपाधि दी गयी थी। थोड़े ही समय के बाद चालुक्य चक्रवर्ती तैलपदेवने

महाकवि रन्नको अपने आस्थान मे बुलाकर, 'कविचक्रवर्ती' की उपाधि से समलकृत किया था। महाकवि इस रन्न ने अपने सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'अजितनाथपुराण' मे, अपनी पोषिका अत्तिमब्बे को स्मरण करने वाले पद्य में ही इन महाकवियों के समय मे ही वर्तमान शकर गड को भी एक प्रतिष्ठित धार्मिक व्यक्ति के रूप मे स्मरण किया है। शकर गड और अत्तिमब्बे के वजोमान मे अन्तर होने पर भी ये दोनो समकाली न रहे। पूर्वोक्त कथा में एक व्यापारी की पत्नी के रूप मे प्रतिपादित सती गुणवती सभवत: 'गुणदककीर्ति' उपाधि प्राप्त दानचितामणि अत्तिमब्बे ही हो सकता है। क्योंकि उपर्युक्त कथा एक व्यापारी के द्वारा जनश्रुति के आधार पर ७०० वर्षो के बाद लिखी गयी है। धारवार जिले के लक्कुडि के शासन मे अन्यान्य अतिशयो के साथ-साथ अत्तिमब्बे के द्वारा नदी से एक जिन प्रतिमा को उठा लाने का उल्लेख भी पाया जाता है। १२ वीं शताब्दी के श्रवण बेल्गोल के शिलालेख मे भी अत्तिमब्बे से सम्बन्ध रखने वाली इन बातों का उल्लेख विस्तार से मिलता है। पूर्वोक्त समुद्र और गोदावरी जहा बगाल समुद्र मे जा मिलता है वही स्थान हो सकता है। क्योकि कवि नागव ने शकर गड को ओरगल्लु निवासी बतलाया है। ओरगल्लु और कुलपाक ये दोनो गोदावरी के ही पास है। इसीलिये इस क्षेत्र का नाम कुलपाक की अपेक्षा कोल्लिपाक अधिक सुसगत जचता है। क्योकि कोल्लि शब्द का अर्थ है खाडी।

अस्तु, सितम्बर १९५८ मे हैदराबाद से ४५ मील दूर पर स्थित, कुलपाक को स्वयं गया हूँ। वहा के जिनालय प्राचीन मूर्तिया भूगर्भ से उपलब्ध अन्यान्य स्मारक इन सब वस्तुओं के देखने से मुझे भी विश्वास हुआ कि यह क्षेत्र श्वेताम्बरों के अधिकार मे आने के पूर्व दिगम्बर क्षेत्र ही रहा है। यद्यपि इधर श्वेताम्बर भाइयो ने मदिर और मूर्तियों में विशेष परिवर्तन कर लिया है। फिर भी मदिर के शिखर पर आज भी अनेक मूर्तियां दिगम्बर मुद्रा मे ही दृष्टि गोचर होती है। भूगर्भ से प्राप्त मूर्तियां भी दिगम्बर मुद्रा मे ही वर्तमान है। जिनालय मे विराजमान अन्यान्य विशालकाय मनोज्ञ मूर्तिया दक्षिण भारत के अन्यान्य मदिरो मे अधिक परिमाण मे उपलब्ध होने वाली दिगम्बर सप्रदाय की मूर्तियो की तरह अर्धपद्मासन मे ही विद्यमान है। विद्याधर जी का कहना यथार्थ है कि इस समय मूर्तियों के लेख बिलकुल नजर नही आते है। पूर्व मे मूर्तियों मे लेख अवश्य रहे होगे। आज भी मदिर मे अर्धपद्मासनस्थ नीलरग वाली ऋषभ भगवान् की मूर्ति विराजमान है। मूर्ति बहुत मनोज्ञ है।

मै कुलपाक के मदिर को देखने के बाद हैदराबाद मे स्थित आंध्र प्रदेशीय पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष डा० पी० श्री निवासाचार्य से मिला था। आप सुयोग्य विद्वान् है। वे बहुत प्रेम से मिले। अन्यान्य बात-चीत के सिलसिले मे मैने उनसे कुलपाक क्षेत्र के सम्बन्ध मे भी चर्चा की। उस पर उन्होने यो कहा कि कुलपाक मूल मे दिगम्बर सप्रदाय के अधिकार मे ही रहा। यह वस्तुत: दिगम्बर सप्रदाय की ही तीर्थ है। इस बात को समर्थन करने वाले अनेक कन्नड शिलालेख मिले है। वे शिलालेख पुरातत्त्व विभाग की ओर से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाले है। प्रकाशित होने के बाद उन शिलालेखों को आप के पास भेज दूगा। पर बाद मे यह बात मेरे दिमाग से एकदम उतर गयी। 'अनेकान्त' के इस लेख को देखने के बाद ही पूर्वोक्त बात याद आयी। खैर इस समय कुलपाक के सम्बन्ध मे इतना ही कहना है। पूर्वोक्त कन्नड शिलालेखों को प्राप्त करने के उपरांत फिर मै लिखूगा। ★

## सुभाषित

**स जीवति यशो यस्य कीर्तिर्यस्य सजीवति।**
**अयशोऽकीर्तिसंपन्नो जीवन्नपि मृतोपमः॥**
**साधोः प्रकोपितस्यापि मनो ना याति विक्रियाम्।**
**नहि तापयितु शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया॥**

# कवि टेकचंद रचित श्रेणिक चरित और पुन्याश्रव कथाकोष

**श्री अगरचन्द नाहटा**

'सन्मति सदेश' के सितम्बर ६८ के अक मे श्री चंपालाल सिघई का एक लेख 'विदिशाके कवि टेकचद' नामका प्रकाशित हुआ है। जिसमे उन्होने कवि के 'बुद्धि प्रकाश' ग्रन्थ का विवरण दिया है। साथ ही कतिपय पूजा ग्रथो का भी उल्लेख किया है। कवि के बुद्धि प्रकाश की २ प्रतिया हमारे सग्रह मे है जिनमे मे एक सवत् १८२८ की लिखी हुई है अर्थात् ग्रथ रचना के दो वर्ष बाद की ही प्रति है कवि टेकचद की दूसरी एक रचना जिसका उल्लेख श्री चम्पालाल सिघई ने नही किया है हमारे सग्रह मे है। यह ग्रन्थ भी काफी बडा और महत्व पूर्ण है। और रचना के समय की ही लिखी हुई प्रति हमारे सग्रह मे है। खेद है कि इस महत्वपूर्ण और तत्कालीन लिखित प्रति के प्राथमिक ग्यारह पत्र प्राप्त नहीं है। और १२ वे १६ वे पत्राक तक मे भी उदई लग जाने से काव्य का कुछ अश नष्ट हो गया है। ग्रथ मे १६ सन्धिया है जिनमे से पहली सन्धी तो इस प्रति मे है ही नही, दूसरी सन्धि के भी २६१ पद्य नही है। ग्रन्थ की अतिम प्रशस्ति इस प्रकार है।—

**ऐसें श्रेणिक चरित बखानि पूरण कियो महा मुनि आनि।**
**आगें जे नर धर्मी भया, तानें सहसकिरत तें लया ॥८१॥**
**गुजराती भाषा में सार, नाना छंद ढाल मय धार।**
**सो अब अल्प बुद्धि के जोग, समझें नहीं इम भाषा लोग ॥८२**
**हमभी तुच्छ ज्ञान पर भाय, ढाल छंद का मग नहीं पाय।**
**भाषा देस तनी समझेय, और ढाल इन भेद न लेय ॥८३**
**अरथ तणों भ्रम पायो जाय, पं नहि चाल ढाल की आय।**
**तब मोसे लधु बुद्धी और, रोचिक धर्म—पुन्य कों दौर ॥८४**
**तिन मिल कही नेह उपजाय, श्रेणिक चरित महा सुख दाय।**
**अरथ भलो धर्महित करा, पं इसभाषा समझि न परा॥८५**
**तातें देस-भाषा में होय, तो समझें वाचें सब कोय।**
**इमसुनि हम मनहरषत भयो, यह शुभकाज इन्होंनें चयो॥८६**
**जो यह ग्रंथ देस छंद में होय, तो बहु वाचें पुन्यलें सोय।**
**फिरिछंद करतें मनवच काय, एक ठामधर्म अंगलगवाय॥८७**
**आरति रूद्र ध्यान मिटि जाय, धर्म-ध्यान मय परिणत ठाय।**
**ऐसी जानि सरल छंद लेय, रचना करि धर्म धरि जेय ॥८८**
**जो या ग्रन्थ में कथन समानि, सो मन्य ग्रन्थसुं यामें आनि।**
**पाय पिरोजन कियौविशेष साविधि आगं जिन धुनि लेख ॥८६**
**भूल चूक जो छंद में होय, तथा अर्थ नहीं भाष्यो कोय।**
**तो बुधिजनलख क्षमि सुध करो, यह विनती हृदयमें धरो ॥६०**

॥ दोहा ॥

**देस मालवा के विसें, 'रायसेनगढ़ जोय।**
**तहां थान जिन गेह में कथा रची सुख होय ॥६१**
**संवत् अष्टादस दस सही, ऊपरि गिनि तेतीस।**
**मिति आसोज सुदि तृतीय, सोमवार निशि ईस ॥६२**
**ऐसे ग्रंथ पूरण कियो, मगल कारन एक।**
**मनवच तन शुभ जोग धनि, सीस नमावत टेक ॥६३**
**इति श्री महा मंडलेसुर राजा श्रेणिक चरित्रे सामान्य।**
**षट्काल रचना वर्णनो नाम १६ वीं संधि ॥**

इति श्री श्रेणिक चरित्र सपूर्ण ॥ शुभ भवतु मंगल। सवत् १८३३ मिति कुवार सुदि १० लिखावत साधर्मी भाई टेकचन्द ॥ लेखक किसनचद ब्राह्मण ॥

प्रशस्ति से स्पष्ट है कि इस श्रेणिकचरित्र की रचना सवत् १८३३ के आसोज सुदि सोमवार को रायसेनगढ़ मे पूर्ण हुई। प्राप्त प्रति रचना के ८ दिन बाद स्वय टेकने लिखायी और किसनचद ब्राह्मण ने लिखी। मालूम होता है कवि ज्यों-ज्यों ग्रन्थ रचता गया, किसनचद ब्राह्मण उसकी नकल करता गया, अन्यथा ८ दिन मे तो इतना बडा ग्रथ लिखा जाना सम्भव नही है। प्रति की पत्रसख्या १४२ है। प्रति पृष्ठ १२ पक्तियाँ प्रति पक्ति अक्षर ५०-५२ के करीब है। इस तरह इस ग्रन्थ का परिमाण ५५०० करीब श्लोकों का बैठता है। इसकी दूसरी प्रति मालवा के भण्डारों में मिलनी चाहिये। खोज की आवश्कता है।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के प्रकाशित हस्त लिखित हिन्दी ग्रंथो का सक्षिप्त विवरण नामक ग्रथमान के पृष्ठ ३७६ मे टेकचदकी दो रचनाम्रो का विवरण दिया है—टेकचद आचार्य शाहीपुर के राजा उम्मेदसिंह के आश्रित। सवत् १८२२ के लगभग वर्तमान।

व्रत कथा कोष (पद्य) १७-१६३। टेकचंद (जैन)—(?)

पच परमेष्ठी की पूजा (पद्य) ३२-२१५

इससे एक नवीन और महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है कि कवि टेकचदने बुद्धि प्रकाशसे पहले एक और बड़े ग्रन्थ की रचना मेवाड़ के शाहपुर मे रहते हुये नृप उम्मेद के राज्य में की थी। यह पुण्यास्रव कथा कोष जिसका नाम प्रति के प्रारम्भ मे 'व्रत कथा कोश दिया। है १२३२० श्लोक परिमित वृहतग्रथ पूर्ण हुआ। इसकी ३५२ पत्रो की प्रति सरस्वती भण्डार जैन मदिर खुर्जा के सग्रह मे बतलाई गई है १२३२० श्लोक की सख्या तो विवरण मे लिखी गई है। ग्रथकार ने तो ग्रथ सख्या १४००० से भी अधिक बतलायी है। इस तरह टेकचंद एक बहुत बडा और अच्छा कवि सिद्ध होता है जिसने सवत् १८२२ मे शाहपुर मे १८२६ मे माडल नगर-विदिशा मे और सवत् १८३३ रायसेनगढ मे तीन बडे ग्रथ पद्य मे बनाये।

नागरी प्रचारिणी सभा की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट (सन् १९१७-१९ तक की) राय बहादुर हीरालाल सम्पादित गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद से १९८० मे छपी थी। वह अब प्राय: नही हैं। अत: उसमें छपे हुए 'व्रत कथा कोश' का प्रकाशित विवरण नीचे दिया है।

No. 193 Brata Katha Kosa by Teka Chand Substance-country made paper. Lines —352. Size 12 1/2"×8". Lines per page—14. Extent—12, 320 Slokas. Appearance—new charactor—Nagari. Date of Composition—Samvat 1822 or A. D. 1765. Date of Manuscripts—Samvat 1956 or 1899. A.D. Place of deposit Sarswati Bhandara, Jain Mandir, Khurja.

ऊ नमः सिद्धेभ्यः ॥ श्री परमात्मने नम: ॥ अथ
श्री व्रत कथा कोष भाषा लिख्यते

मन वच वृषभजिनंद के, वदो निस दिन पाय ॥
तातै निति मंगल रहै सबै उ दगल जाय ॥१॥
वदो अजितनाथ सभव, अभिनंदन के पूजू पांय ॥
प्रणामु सुमति पदम जिन वदु, फिर सुपार्श्व ध्याउं मनल्याय
सेऊ चंद्रप्रभ जिन स्वामी, पुष्पदन्त पूजू सुखदाय ॥
शीतल वंदों श्रेयान्स जिन, प्रणमु वासु पूज्य सिरनाय ॥
विमलनाथ प्रणमु अनन्त जिन धर्मनाथ सवकु सुषदानी ॥
शांतिनाथ फिर कुथ जिनेश्वर अरहन से मल्लि गुण स्वामी
मुनि सुव्रतमै नमूं नमि नेमि मनाय पारस हित ठानी ॥
वर्द्धमान आदिक चोवीसो, बंदू मगलदासुरआंनी ॥३॥
इन अतिसय जुत देव ज्यों, सुरग सुकति सुखदाय ॥
तिन अतिशय के नाम अब, सुनो भविक मन लाय ॥

॥ चौपाई ॥

तन पसेव मल तन मैं नांहो, संसथान सम चतुर कहाही ॥
संहनन बज्र वृषभनाराच, काय सुगध मधुर जिनवाच ॥५
महारूप लक्छित सुभ जानि, रुधिर सुपेद अनत बल मांनि ॥
ये दस जनमत जिन कै होय, सो भगवंत और नहि कोय ॥६

॥ पद्धडी छद ॥

जो सम्यक कथा सुनै अनूप ॥ सो जाने दय धर्म सरूप ॥
इत्यादिक सब धर्म अंग जानि,
तातै सिव सुरसुख होय आनि ॥४०॥
दोहा—यह पुन्याश्रव ग्रन्थ जो, सुनै पढ़ै मन लाय ॥
सो जिय पुण्य सग्रह करे, पूरव पाप नसाय ॥४६॥
शाहिपुरा शुभ थान मै भलो सहारो पाय ॥
धर्म लियो जिन देव को, सु नरभव सफल कराय ॥५०॥
नृप उमेद तापुर विर्षं, करै राज बलवान ॥
तिन अपने भुजबल थकी, अरी सिर कीन्हें आनि ॥५१॥
ताके राज सुराज मैं ईति भीति नहीं जांनि ॥
अब भूपुर मैं सुष थाको, तिष्ठै हरष जुमांनि ॥५२॥
करी कथा इस ग्रंथ की, छंद बंधपुर माहि ॥
ग्रन्थ करन कुछ बीच में, आ कुल उपजी नांहि ॥५३॥
साहि नगर साह मै भयो, पायो शुभ अवकास ॥
पूरन ग्रंथ सुख ते कियो, पुण्याश्रव पुण वास ॥५४॥

॥ चौपाई ॥

सवत् अष्टादस सत जांनि, ऊपर बीस दोय फिरि आनि ॥

फागन सुदि ग्यारसि निस मांहि,
किंयो समापत उरटुल साहि ।।५५।।
दोहा—विसपतवार सुहावनो, हरष करन कूं ग्राय ।।
ता दिन ग्रंथ पूरन भयो, सो सुखको वरनाय ।।५६।।
मानूं तेरह पथ कूं, फल मैं पहुंतै जाय ।।
सुगम पथ आगें भलो, पायो ग्रति सुणदाय ।।५७।।
देव धर्म गुरु वदितें, सब ही मंगल पाय ।।
सुख तें ग्रन्थ पूरन भयो, जै जै जै जिनराय ।।५८।।
ग्रन्थ सख्या इम जानि, भव्य सहस्र चतुर्दश मानि ।।
ऊपरि पचीस से जानियें, यह संख्या उर ग्रानि ।।५९।।
पूरन पुन्याश्रव कियो, पूरब ले ग्रनुवार ।।
जिन ग्राम्याय लखे बचन लेव, तौ ग्रन्थ निरधार ।।६०।।
छंद मात्र ग्रक्षर कहू, सोधि लेहु बुधिवान ।।
जो लेषक चुक्यो कहूं दिष्ट पड़े को थान ।।६१।।
शुद्ध करे ते परमाद कछु कीजे नाहि समान ।।
ताते बुद्धि तै कीनही लिपि देषि शुध ठानि ।।६२।।

इति श्री कथाकोष भाषा चौपाई छंद दोहा टेकचद कृत संपूर्णः ।। समाप्त ।। मिती भादों वदी ।।५।। संवत् १९५६ शाके १८२१ ।।श्री। ।।श्री।। ।।श्री। इह कथा कोष पंचायती बड़े मदिर जी के है । भा पत्र ३५२ ।।★

## महावीर वाणी

नित पीजौ धीधारी, जिनवानि सुधासम जानके ।।टेक।।
वीर मुखारविंद तें प्रगटी जन्म-जरा-गद टारी ।
गौतमादि गुरु उरघट व्यापी, परम सुरुचि करतारी ।।१
सलिल समान कलिलमल गंजन, बुधमनरंजनहारी ।
भजन विभ्रम धूलि प्रभंजन, मिथ्या जलद निवारी ।।२
कल्यानक तरु उपवन धरिनी, तरनी भव जल तारी ।
बंध विदारन पैनी छैनी, मुक्ति नसैनी सारी ।।३
स्व-पर-स्वरूप प्रकाशन को यह, भानुकला ग्रविकारी ।
मुनि-मन-कुमुदिनि-मोदन शशिभा, शमसुख सुमन सुवारी ।।४
जाको सेवत वेवत निजपद, नसत ग्रविद्या सारी ।
तीन लोक पति पूजत जाको, जान त्रिजग हितकारी ।।५
कोटि जीभ सों महिमा जाकी, कहि न सके पविधारी ।
दौल ग्रल्पमति केम कहै यह, ग्रधम उधारनहारी ।।६

जिनवाणी को ग्रमृत के समान जानकर विद्वानो को उसका निरन्तर पान (श्रवण) करना चाहिए। भगवान् महावीर के मुखारविन्द से प्रगट हुई वह जिनवाणो जन्म-जरा (बुढ़ापा) रूपी रोग का विनाश करने वाली है। गौतमादि मुनीन्द्र के हृदयरूप घट मे व्याप्त होने से वह ग्रतिशय रुचि को उत्पन्न करने वाली है। जल के समान पापरूपी मल को नाश करने वाली होने से बुधजनो के मन को ग्रनुरजायमान करने वाली है। वह जिनवाणी ग्रज्ञानरूपी धूल उडाने के लिए वायु के समान ग्रौर मिथ्यात्वरूप मेघों की विनाशक है। पच कल्यानकरूपी वृक्षो के लिए उपवन धारिणी है—उद्यानभूमि है। भवसमुद्र से तारने के लिए नौका है। कर्मरूपी बध की विनाशक पैनी छैनी है। ग्रौर मुक्ति रूपी महल की नसैनी-सीढ़ी है। स्व-पर के स्वरूप को प्रकाशित करने के लिए उत्तम सूर्य किरण है। ग्रौर मुनियों की मनरूपी कुमुदिनी को प्रफुल्लित करने के लिए चन्द्रमा की चाँदनी है। समता-सुखरूपी पुष्पो की ग्रच्छी वाटिका है। जो उसकी सेवा (मनन) करता है वह निज पद का ग्रनुभव करता है ग्रौर उसका सव ग्रज्ञान नष्ट हो जाता है। तीनों लोको की हितकारी जानकर उसकी तीन भुवन के राजा इन्द्र, धरणेन्द्र व चक्रवर्ती पूजा करते है। वज्रधारी इन्द्र करोड़ जिह्वाग्रो से भी उसकी महिमा को नही गा सकता है। कविवर दौलतराम जी कहते है कि मै ग्रल्प बुद्धि उसकी महिमा कैसे कह सकता हूं, वह तो ग्रधमजनो का उद्धार करने वाली है।

# सीयाचरिउ : एक अध्ययन

श्री परमानन्द शास्त्री

भारतीय साहित्य में राम, सीता, कृष्ण, पाण्डव, कौरवादि के विषय मे प्रचुर साहित्य लिखा गया है। यदि उस साहित्य को साहित्य-सूची से पृथक् कर दिया जाय तो भारतीय साहित्य निष्प्रभ हो जायगा। केवल राम और सीता पर विविध भाषाओ मे जो विपुल साहित्य रचा गया है उससे उसकी लोकप्रियता का स्पष्ट भान हो जाता है। सीता के सम्बन्ध मे लिखे गये कुछ ग्रन्थो का सक्षिप्त उल्लेख करते हुए अब तक अप्रकाशित एव अज्ञात ग्रंथ प्राकृत के "सीयाचरिउ" का परिचय प्रस्तुत करना ही इस लेख का प्रमुख उद्देश्य है।

भारतीय नारियो मे सीता का चरित्र अत्यन्त पावन और समुज्ज्वल रहा है। वह नारी जीवन के आदर्श के साथ धैर्य और विवेक की गरिमाको भी उद्भासित करता है। इतना ही नही, अनेक विषम एव दुःखद प्रसगो पर सीता अपने विवेक के सन्तुलन को कायम रखती हुई किसी को अपराधी नही ठहराती, प्रत्युत अपने पुराकृत अशुभ कर्म को ही दोषी मानती है। उस अवस्था मे भी सीता का वह विवेक उसे सुदृष्टि प्रदान करता है। इस कारण वह समागत आपदाओं से रंचमात्र भी नही घबराती, धैर्य और समभाव से उन्हे सहती है। यही सब घटनाएं उसकी लोक मे प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठा की द्योतक है।

रावण सीता का अपहरण करके ले जाता है, और उसे देव-रमण उद्यान मे रखता है, उसे प्रसन्न करने के लिये विविध उपाय किये जाते है। वैभव का नजारा दिखाया जाता है, समझाया, डराया-धमकाया भी जाता है। किन्तु इन सब का उसके अन्तर्मानस पर कोई प्रभाव अकित नही हुआ। उसकी आत्मनिर्भयता, महान् शक्तिशाली शत्रु के यहा अक्षुण्ण बनी रही। यही उसके सतीत्व की गरिमा का प्रतीक है। इससे पाठक सीता के सतीत्व की महत्ता का अंदाज लगा सकते है।

गर्भवती सीताको रामचन्द्र लोकापवाद के भयसे कृतान्तवक्त्र सेनापति द्वारा भीषण एवं हिसक जन्तुओं से व्याप्त कानन में छुडवा देते है। उस वन की भयानकता सीता की कोमलता और गर्भ-भार की विषमता को देखकर सेनापति का मानस भी रो देता है। जब सीता को सेनापति से ज्ञात होता है कि रामचन्द्र ने लोकापवाद के भय से मेरा परित्याग किया है, तब वह सेनापति से कहती है—"हे भाई, तुम स्वामी से मेरा यह सन्देश कह देना कि जिस प्रकार लोकापवाद के भय से मेरा परित्याग किया है, उसी तरह अपने धर्म का परित्याग न कर देना। पाठक देखे सीता के इस सद्विवेक को, जिसकी वजह से वह लोकपूजित हुई है। इसी कारण सीता की पावन जीवन-गाथा पर विविध भाषाओ मे जो साहित्य रचा गया है वह उसकी आदर्श जीवनी का दिग्दर्शन मात्र है, इसीसे हजारो वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी सीता की लोकप्रियता कम नही हुई।

जैन साहित्य मे सीता के सम्बन्ध मे जो साहित्य रचा गया है, उसमे से यहा कुछ ग्रन्थो का दिग्दर्शनमात्र कराया जाता है—

१. "सीताचरित"—आचार्य भुवनतुग की कृति है, जिसे उन्होने प्राकृत गाथाओ में निबद्ध किया है। कृति मे उसका रचनाकाल दिया हुआ है। अतः उसके रचनाकाल का निर्णय करना कठिन है। ग्रन्थका आदि-अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि—**जस्स पय-पउम नहचद जुहजलजालिखालियमलोह।**
**ति जगंपि सुईजायं तं मुणिसुव्वयजिणं नमिउं॥**

अन्त—**सीलगुणसवण संभूयर परमाणंदकारणारइय।**
**चरिय सिरि भुवणतुंग पयसाहणं होउ॥४२॥**

२. "सीताचरित"—महाकाव्य सर्ग ४, गाथा ६५, ६६, १५३, और २०६ है। कर्ता का नाम ज्ञात नही हुआ।

यह कृति स० १३३६ के द्वितीय कार्तिक में लिखे गए गुच्छक मे मौजूद है, जो पाटन के भण्डार मे सुरक्षित है।

३. **"रामलक्खण सीयाचरित"**—नामकी है, यह कृति भी अज्ञात कर्ताकी है इसमे २०८ गाथाओ मे उक्त चरित दिया हुआ है ग्रंथ का आदि-अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि—**भणियं सीयाचरियं पुव्वभवविवागसूयगं किंचि।**
**अह रामक्लखणाण त लवमित्त पकित्तेमि ॥**

अन्त—**रामो वि केवली विहरिऊण महिमंडलंमि सयलंमि।**
**पडिबोहियभव्वजणो पत्तो सिवसपय विउलं॥२०८**

हिन्दी भाषा मे सीता के चरित्र का अच्छा चित्रण हुआ है। कुछ कृतियो का उल्लेख नीचे किया जाता है—

कविवर भगवतीदास अग्रवाल ने सवत् १६८७ मे चैत्र शुक्ला चतुर्थी-चद्रवार के भरणी नक्षत्र मे 'सिहरदि' नगर मे "लघुसीता सतु" की रचना की है। रचना सुन्दर और भावपूर्ण है। ग्रथ मे बारहमासो के मदोदरी-सीता प्रश्नोत्तर के रूप मे कविने रावण और मदोदरी की चित्त-वृत्तिका चित्रण करते हुए सीता के सतीत्व का कथन किया है। वह बडा ही सुन्दर और मनमोहक है। अतः ग्रथ सर्वसाधारण के लिये बहुत उपयोगी और शिक्षाप्रद है। पाठको की जानकारी के लिए आषाढ मास का प्रश्नोत्तर नीचे दिया जाता है—

**तब बोलइ मन्दोदरी रानी, रुति अषाढ़ घन घट घहरानी।**
**पीय गये ते फिर घर आवा, पामरनर नित मन्दिर छावा।**
**लवहि पपीहे दादुर मोरा, हियरा उमग धरत नहि मोरा।**
**बादर उमहि रहे चौपासा, तियपिय विनु लिहि उसन उसासा**
**नन्हीं बून्द झरत झरलावा, पावस नभ आगमु दरसावा।**
**दामिनिदमकत निशि अन्धियारी, विरहनि कामबान उरिमारी**
**भुगवहि भोगु सुनहि सिख मोरी, जानत काहे भई मति बोरी**
**मदन रसायनु हइ जगसारु, सजमु नेमु कथन विवहारु।**

दोहा—**जब लग हंस शरीरमहिं, तब लग कीजइ भोगु।**
**राज तजहिं भिक्षा भमहिं इउं भूला सबु लोगु।**

सोरठा—**सुख विलसहिं परबीन, दुख देखहिं ते बावरे।**
**जिउ जल छांडे मीन तड़फि मरहिं थलि रेत कइ।**
**यहु जग जीवन लाहु न मन तरसाइए।**
**तिय पिय सम संजोगि परम सुहु पाइए ॥**

**जो हु समज्जणहारु तिसहिं सिख दीजिये।**
**जाणत होइ अयाणु तिसहिं क्या कीजिये॥**
**शुक-नासिक मृग-दृग पिक-बइनी,**
**जानुक वचन लवइ सुखि रइनी।**
**अपना पिउ पय अमृत जाणि,**
**अवर पुरिस रवि—दुग्ध-समानी॥**
**पिय चितवन चितु रहइ अनन्दा,**
**पिय गुन सरत बढ़त असकन्दा।**
**प्रीतम प्रेम रहइ मन पूरी,**
**तिनि बालिम संगु नाहीं दूरी।**
**जिनि पर पुरिष तियारति मानी**
**लखे न सो आदि विकानो ?॥**
**करत कुशील बढ़त बहु पापू,**
**नरकि जाइ तिउ हइ संतापू।**
**जिउ मधु बिन्दु तनू सुख लहिये,**
**शील बिना दुरगति दुख सहिये।**
**कुशल न हुइ पर पिय रसबेली,**
**जिउ सिसु मरइउरग-सिउ खेली।**

दोहा—**सुख चाहइ ते बावरी पर पति संग रति मानि।**
**जिउ कपि शीत विथा मरइ तापत गुंजा आनि॥**

सोरठ—**तृष्णा तो न बुझाइ जलु जब खारी पीजिये।**
**मिरगु मरइ धपि धाइ जल धोखइ थलि रेतकइ॥**
**पर पिय सिउ करि नेहु सुजनमु गमावना।**
**दीपगि जरइ पतंग सु पेखि सुहावना।**
**पर रमणी रस रंग कवणु नरु सुहु लहइ।**
**जब कब पूरी हानि सहित जिह अहि रहइ॥**

दूसरी रचना "सीताचरित" है जो हिन्दी का एक महत्वपूर्ण काव्य है जिसे कवि रायचन्द्र ने स० १७१३ में बनाकर समाप्त किया है। रचना पद्यबद्ध और मध्यम दर्जे की है। परन्तु रचना मे गतिशीलता (प्रवाह) है। पद्यों की संख्या अढ़ाई हजार से ऊपर है। ग्रंथ में सीता के जीवन पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

तीसरी रचना "सीताचउपई" है, जो ३२७ पद्यों की लघुकाय कृति है। इसके कर्ता खरतरगच्छ शाखाके समय-ध्वज हैं।

चौथी रचना "सीताप्रबन्ध" है, जो ३४९ पद्यों मे रचा गया है, रचनाकाल स० १६२८ है।

पाँचवी रचना "सीताविरहलेख" है जिसमे ८१ पद्यों द्वारा कवि अमरचद ने सीता के विरह पर अच्छा प्रकाश डाला है। रचना सवत् १६७१ के द्वितीय आषाढ के दिन पूर्ण हुई है।

छठी रचना "सीतारामचौपई" है, जिसे कवि समयसुन्दर ने स० १६७३ में अपने जन्म स्थान साचौर मे बना कर समाप्त की है।

सातवी रचना "सीता चउपई" है, जिसे तपागच्छीय कवि चेतनविजय ने संवत् १८५१ के वैशाख सुदी १३ को बंगाल के अजीमगंज में रचा है।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक रचनाएँ शास्त्रभडारो मे विद्यमान होगी जिन पर फिर कभी प्रकाश डाला जावेगा।

'सीयाचरिउ' प्राकृत भाषा का गद्य-पद्यमय एक चम्पू काव्य है। भाषा सरल और मुहावरेदार है। अनुमानतः इसमें ३००० गाथाएँ और कुछ गद्य भाग है। ग्रथ की अनेक प्रतियाँ श्वेताम्बरीय शास्त्रभडारो मे उपलब्ध होती है। ग्रथ अभी तक अप्रकाशित है। इसकी प्रति श्री अगरचदजी नाहटा के सौजन्य से कलकत्ता के नाहर भण्डार से प्राप्त हुई है जिनकी मैने कापी की है और बाद मे दूसरी प्रति से मिलान भी किया है। इतने बडे ग्रथ मे कही सन्धि सर्ग या प्रकरण वगैरह नही है, इसलिए कथानकका सम्बन्ध भी लम्बा और दुरूह हो गया है। पाठक को उसके जानने में बडी कठिनाई होती है। ग्रथ मे कितनी ही गाथाएँ विमलसूरी के 'पउमचरिउ' से समानता रखती है। कितने ही विषयोमे समानता दृष्टिगोचर होती है, कही कुछ पाठभेद मिलता है। ग्रथ मे काव्य का विशेष आडम्बर नही है. नगर, देश, नदी, ग्राम, वन आदि का सामान्य वर्णन या नामोल्लेख मात्र किया है। युद्ध का वर्णन भी पूर्वग्रन्थ-परम्परानुसार ही है। हां, कही किसी कथानक मे विशेषता लाने का उपक्रम अवश्य किया है। उदाहरणस्वरूप वज्रकर्ण-कथानक में कहा गया है कि वह धर्म रहित और शिकारी था। एक दिन वह वन में शिकार खेलने गया और वहाँ उसने गर्भवती हिरणी को बाण से मार दिया। बाण लगते ही हिरणी जमीन पर धडाम से गिरी और गिरते ही उसके पेटसे तड़फड़ाता हुआ एक बच्चा निकला। वज्रकर्ण इस भ्रूणहत्या के महापाप से अत्यन्त व्यथित हुआ[1] और विचारने लगा कि इस महापाप से कैसे बच सकता हू। ऐसा विचार कर वह इधर-उधर घूम रहा था कि उसकी सहसा दृष्टि एक शिला पर बैठे हुए ध्यानस्थ मुनि पर पड़ी। वज्रकर्ण ने उन्हे नमस्कार करके पूछा—'भगवन्! आप इस जगलमें क्या करते है?' मुनि ने कहा...'मै आत्महित करता हूँ।' वज्रकर्ण ने कहा—'भख, प्यास, सर्दी, गर्मी की परीषह सहते हुए वन मे अकेले कैसे आत्महित होता है?' तब मुनि ने उसे गृहस्थ और मुनिधर्म का स्वरूप समझाया, जिससे राजा को प्रतिबोध हुआ। उसने मद्य-मासादि के त्याग के साथ सम्यग्दर्शन और श्रावकधर्म को ग्रहण किया और यह प्रतिज्ञा की कि मैं जिनेन्द्रदेव और जिनगुरु को छोडकर अन्य किसी को नमस्कार नहीं करूंगा[2]।

प्रस्तुत काव्य मे सीता का चरित्र पूर्व परम्परानुसार ही चित्रित किया है। यद्यपि कवि ने उसे विस्तृत रूप मे लिखने का प्रयत्न किया है किन्तु यहा इस छोटे से परिचय लेख मे उसका संक्षिप्त सार ही दिया जाता है। ग्रन्थ मे काव्यगत वैशिष्ट्य का अभाव, खटकता है। भाषा सरल है। कही-कही कुछ सुभाषित एवं नीतिपरक पद्य उपलब्ध होते है जिससे पाठक ऊबता नही। जहाँ सती सीता सुशीला और मिष्टभाषिणी है वहाँ कष्टसहिष्णु, पतिभक्ता, विवेकनी, कर्तव्यपरायणा आज्ञाकारिणी और स्वदोष प्रेक्षिणी भी है।

वह मिथला के राजा जनक और विदेहा की पुत्री है। वह युगलरूप मे उत्पन्न हुई थी, किन्तु भाई के अपहृत हो

१. ज तस्य पिया अहिय पारद्धी धम्मबुद्धि-रहियस्स।
वच्चइ तेण अरण्णे ममाइ धायत्थ अणुदियह॥
अन्नमि दिणे पहया हरिणी बाणेण तेण गब्भवई।
पडिओ य तीए गब्भो दरीय कुच्छीअ सहसत्ति॥
दट्ठूण तडफडत मयसावं (सो) विसायमावण्णो।
चिंतइ महापाव मए कयं भूणधाएण॥
—सीयाचरिउ, का० पृ० २८

२. सीयाचरिउ प० २९

जाने के कारण उसका अकेले ही लालन-पालन और शिक्षा हुई थी। अयोध्या के राजा के पुत्र रामचन्द्र के साथ उनका विवाह हुआ। केकई के वर के कारण जब राम-लक्ष्मण वन को जाने लगे तब सीता भी साथ में गई। सीता अपने पति राम और लक्ष्मण के साथ वन-वन घूमती हुई क्रमश: दण्डक वन मे पहुची। वहाँ कुछ समय सुख से निवास करती है। वन मे होने वाले कष्टो से वह न कभी खेद-खिन्न हुई और न समागत आपदाओ से घबराई। उसे स्वकीय कर्म का विपाक समझ कर सन्तुष्ट रहती थी।

कुछ समय बाद रावण कपट से उसे हरण कर ले जाता है। वह पुष्पक विमान मे रोती-चिल्लाती, आँसू बहाती तथा आभूषणो को यत्र तत्र बिखेरती हुई जाती है। रावण लका में पहुचकर उसे किसी उद्यान मे ठहरा कर और रक्षको की व्यवस्था कर अन्तःपुर मे चला जाता है। सीता राम का अनुचिन्तन करती हुई अपने अशुभोदय का विचार करती है और प्रतिज्ञा करती है कि जब तक राम और लक्ष्मण का कुशल समाचार नही मिलेगा तब तक मैं अन्न-जल, स्नान और गधमाल्यादि का ग्रहण नही करूगी।[1] वह कभी मन मे पच परमेष्ठी का स्मरण करती है, कभी राम लक्ष्मण का चितन करती है और कभी अपने अशुभोदय की निन्दा करती है। सीता रावण के वैभव को तृण के समान तुच्छ गिनती है। यद्यपि रावण ने सीता को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रयत्न किये किन्तु उसे किंचित् भी सफलता नही मिली। रावण की परिचारिकाएँ रावण से कहती है कि सीता जब भोजन की भी इच्छा नहीं करती, तब वह आपकी कैसे इच्छा कर सकती है?[2] यह सुन

१. तह वि न इच्छइ सिणाण न भोयण गंधमल्लाइ।
अच्छइ एगग्गमणा झायंती राहव णिच्चं॥
भणइ भोयणविसए न जावदइयस्स बंधुसहियस्स।
लद्धा कुसलपउत्ती भुजामि य भोयण ताव॥
—सीयाचरिउ पृ० ३८

२. सीयावइयरमावेइऊण रमणीहि रावणो भणइ।
जा भुत्तं पि न इच्छइ सा इत्थिइच्छइ कहे णु तुमए॥
सोऊण इमं वयणो मयणानलेण डज्झमाणसव्वंगो।
पडियो वसणसमुद्दे दहवयणो दुक्खियो अहियं॥
—सीयाचरिउ पृ० ८

रावण को बड़ा दुख हुआ। उसका शरीर मदनानल से झुलस जो रहा था। यह देख मदोदरी रावण से कहती है—'तुम उसका बलात् सेवन क्यों नही करते?' तब रावण कहता है—'मैने मुनिपुंगव अनन्त-वीर्य के सम्मुख यह नियम लिया था कि जो स्त्री मुझे न चाहेगी मै उसकी इच्छा न करूगा।'[3]

रोती हुई सीता को देखकर विभीषण ने पूछा—"यह किसकी पुत्री और किसकी भार्या है?" सुनकर सीता ने कहा—"मै जनक की पुत्री, भामंडल की बहिन तथा राम देव की प्रथम पत्नी हूँ, यह पापी (रावण) मुझे अपहरण कर ले आया है—

**पुच्छइ विभीसणो तं रूयमाणिं कस्स त दुहिया।**
**कस्स वि भज्जा सा वि हु साहेइ जहट्ठिय सव्व॥**
अविय-**जणयस्स अह तणया भगिणी भामंडलस्य गुणनिहिणो।**
**रामस्स पढम घरिणी अवहरियाणेण पावेण॥**
—सीयाचरिउ पृ० ६७-६८

विभीषण सीता को आश्वासन देकर चला गया, वह मधुर वचनो से रावण से कहता है—"तुम पर-रमणी को क्यों लाए? परनारी अग्नि-शिखा के समान है, विषलता, नागिन, और कुपित व्याघ्री के समान सताप, विनाश और दुःख का कारण है, कुल का कलक है, यश का घातक है, अतएव तुम परनारी को छोडो, दुर्गति मे मत पडो।" तब रावण ने कहा—"संपूर्ण पृथ्वी मेरी है। इसमे किंचित् भी वस्तु परकीय नही है, तब उसके परित्याग का प्रश्न ही नही उठता।"

**आसासिऊण सीयं महुरगिरेहिं विभीसणो भणइ।**
**दहवयण कीस तुमए पररमणी आणिया इहयं?॥**
**हुयवहसिहिव्व, विसकन्दलिव्व, भुयगिव्व, कुविय वग्घिव्व परणारी होइ सताव-विणास-दुहहेउ। मा आणेसु**

३. कि पुण बला वि अबला तीए अलिंगणं विहेऊण।
पूरेसि तुम नियए मणोरहे नाह साहेहि।
एव पुच्छिओ पभणिओ दहवयणो—
अत्थिमए पडिवन्नो अभिग्गहो अणंतविरियपयमूले।
जह भोत्तव्वाजुवई अणिच्छमाणा न कइयावि॥
—सीयाचरिउ पृ० ६६

**कलंक कुलस्स नासेसु । मा जस निययं, मा पडसु दोग्गईए, मुंचसु एय परं पुरंधि ।**

—सीयाचरिउ पृ० ६८

इधर राम जब अपने निवास स्थान पर आये और सीता को वहाँ न देखा, तब बहुत खेदखिन्न और दु:खी हुए। इतने में लक्ष्मण भी खरदूषण को मारकर आ गया। दोनो भाइयो ने सीता की इधर-उधर खोज की परन्तु कही पता न चला।

सीता का पता लगाने के लिए चारो ओर लोग दौडाए और सुग्रीव स्वयं भी पता लगाने के लिए गया। तब पता चला कि रावण सीता को हर कर ले गया है. इसे सुनकर विद्याधर भय से काँपने लगे। किन्तु राम लक्ष्मण ने समझा कर उनका भय दूर किया। राम ने हनुमान को अपनी मुद्रिका और सब समाचार देकर कहा—तुम जाओ सीता से मिलकर उसका चूड़ामणि लेते आना, तथा वहाँ का सब समाचार भी लाना, जिससे मुझे सीता के सम्बन्ध मे प्रत्यय हो सके।

हनुमान ने लका मे पहुँच कर प्रच्छन्न हो राम की मुद्रिका सीता के अग के वस्त्र पर छोड़ी, उसे देख सीता कहने लगी—"राम की यह मुद्रिका यहाँ कैसे आई ? जो कोई इस मुद्रिकाको यहाँ लाया हो वह प्रकट हो जाय। तब हनुमान ने प्रकट होकर, अपने नाम, स्थान एव कुलादि का परिचय देते हुए राम का सब समाचार सुनाया। सीता को विश्वास हो गया कि राम और लक्ष्मण सकुशल है। वे जल्दी ही यहाँ आयेगे। इससे सीता को प्रसन्ता हुई। हनुमान ने सीता से कहा—अब आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई, भोजन-पान ग्रहण करो। तब सीता ने ग्यारहवे दिन पंचनमस्कार मंत्र का स्मरण कर भोजन किया। तत्पश्चात् हनुमान ने सीता से कहा—मेरे कधे पर बैठ जाइए मै राम के पास पहुँचा दूँ। सीता बोली—पति की ऐसी आज्ञा नही और न इस प्रकार जाना उपयुक्त ही है। सीता ने अपना चूडामणि उतार कर हनुमान को दिया और अपनी उन जीवन घटनाओं का वृत्तान्त भी कहा जिसे सुन कर राम को विश्वास हो गया कि सीता जीवित है और वह मेरे वियोग से पीड़ित है।

राम ने रावण के पास दूत भेजा और कहलाया कि तुम सीता को वापिस पहुँचाओ अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। रावण अभिमानी था, उसने सीता को वापिस न कर युद्ध किया जिसका नतीजा उसे भोगना पडा। राम-रावण का युद्ध प्रसिद्ध ही है। उसकी भीषणता का वर्णन परम्परानुसार चरितकार ने किया है। अन्त मे लक्ष्मण के हाथ रावण मारा गया। राम लक्ष्मण ने लका मे प्रविष्ट होकर सीता को प्राप्त किया। लका में कुछ समय राज्य कर और विभीषण को लका का राज्य देकर राम सीता और लक्ष्मण सहित अयोध्या को चले। अयोध्या मे राम सीता और लक्ष्मण का भव्य स्वागत हुआ। भरत ने जिन दीक्षा ले ली। और राम लक्ष्मण का राज्याभिषेक हुआ। दोनो भाई वहा सुख से राज्य करने लगे।

**अशुभोदय में विवेक :**

कुछ समय के बाद अयोध्या मे सीता के सम्बन्ध मे लोकोपवाद की वार्ता सामने आई, राम ने उस कलक से बचने के लिए सीता के परित्याग का निश्चय किया। यद्यपि लक्ष्मण ने बहुत समझाया पर राम अपने निश्चय पर दृढ रहे और कृतान्तवक्त्र सेनापति को बुला कर यह आदेश दिया कि सीता को बियाबान जगल मे छोड़ आओ। सेनापति सीता को रथ मे बैठाकर ले चला और अयोध्या से बहुत दूर एक भयानक वन मे रथ को रोककर सीता से बोला—आप उतर जाएँ।

जब सीता हिंसक जन्तुओं से भरे उस विकट वन में उतरी तो भय से काँपने लगी। सेनापति ने रोते हुए सीता से कहा—मुझे आप क्षमा करें, मैने तो केवल स्वमी के आदेश का पालन किया है। सेनापति सीता की खिन्नमुद्रा, वन की भीषणता, नीरवता तथा गर्भ के भार की पीड़ा को देख कर अत्यन्त द्रवित हो गया। उसने जगल मे छोडने का कारण लोकोपवाद बतलाया। तब सीता ने जो कहा उसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। सेनापति सीता के विवेक और धैर्य से अत्यन्त प्रभावित होता है, अपने कृत्य पर पश्चाताप करता है और कहता है—यह सब कार्य मुझे पराधीनतावश करना पड़ा है। देवी, मेरा यह अपराध क्षमा करो। कवि के वे वाक्य इस प्रकार है:—

**सेवावित्ती पुरिसो पहुवयणा विसइ जलणंमि ।**
**जणणीए कीस जाओ सो पुरिसो जो करेइ परसेवं ।।**
**सेच्छाए जेण कओ न लहइ सो किंचि करणिज्जं ।।**
**तो खमियव्वो सामिणि मह अवराहो इमो अहन्नस्स ।**
**एगागिणी अरण्णे जं परिचत्ता मए तमिह ।**

तओ बाहुल्ललोयणाए भणिय सीयाए, कहेहि केण पुण कारणेण एसो अम्ह भीसणमेक चडो दडो कारविओ राहवेण ? तेण भणियं—देवि, सम्म न जाणामि । किन्तु मए वि सुओ जणप्पवाओ, जहा लंकाहिवइणा अवहरिय जीए सीलवररयणं सा सीया णियभवेण कह आणिया राहवेण ।

**इयय सकल काउमन्ने भीएण पउमनाहेण ।**
**सुयणु तुमं परिचत्ता णो अण्णो कोइ अवराहो ।।**
**अह वा न तुज्झ दोसो दोसा महचेव पुव्व पावस्स ।**

० ० ०

**जह नाह अह तुमए परिचत्ता आणइ अभावेउं ।**
**तह मा मुंचसु सामिण जिणवयण विसुणवयणेहिं···।।**
**मुक्कस्स मए पच्छा अवगणतस्स विगयविलियस्स ।**
**इह चेव भवे तिक्ख होही पिअयम महादुक्ख ।।**
**चिंतामणिसारिच्छो जिणवरधम्मे मए विमुक्कं ।**
**नाणाविहदुक्खाणं भवे भवे भायणं होसि ।।**

—सीयाचरिउ का० पृ० १३५

सेनापति के जाने ही सीता रोती और विलखती है और अपनी निन्दा करती है, परन्तु वहाँ उसका कौन है, जो उसे उस दुःख मे सान्त्वना दे, ढाढस बधावे । वह कभी जिनदेव का स्मरण करती है, कभी अपने माता-पिता और लक्ष्मण को याद करती है, कभी अपने भाई भामडल को याद करती है । और कभी अत्यन्त करुण विलाप करती है ।

उसके इस करुण विलाप को सुनकर वज्रजघ की सेना रुक गई । वज्रजघ ने सीता के शब्द सुने । उसने पास आकर जब सीता से उसका परिचय पूछा, तब सीता ने अपना परिचय दिया और वनवास का कारण बतलाया ।

वज्रजघ ने अपना परिचय देते हुए कहा—धर्मविधि से तुम मेरी बडी बहिन हो । सीता उसे अपना भाई मानकर उसके साथ नगर में चली गई । वज्रजघ सीता को सम्मान के साथ पालकी में लाया, और वहाँ उसके साथ भगिनी के योग्य व्यवहार किया । सीता ने वहाँ युगल पुत्रों को जन्म दिया जिनका नाम 'लव' और 'अंकुश' रक्खा गया । दोनो पुत्रो का वही लालन-पालन, शिक्षण और विवाह हुआ । उन्होंने द्विग्विजय की । पश्चात् अयोध्या आकर रामचन्द्र से युद्ध कर अपनी वीरता का परिचय दिया और आदर के साथ अयोध्या मे प्रवेश किया ।

**अग्नि परीक्षा और आर्यिका की दीक्षा :**

कुछ दिनो के पश्चात् राम की स्वीकृति पाकर विभीषण, हनुमान, सुग्रीव और भामडल आदि राजा गण सीता को लेने के लिए पुडरीकणी नगरी गये, और सीता को ले आये । किन्तु जब सीता राम के सम्मुख आई, तब राम ने उसे कहा—देवि, मै तुम्हारे शील को जानता हूँ, किन्तु किसी कर्मोदयवश जो जनापवाद रूप कलक हुआ उसे धोने के लिए अग्नि मे प्रवेश कर आत्म-शुद्धि करो ।

**तो राहवेण पगलंतअंसुसलिलेण जंपियं दइए ।**
**जं मणसि तुमं सच्चं सव्व पि हु नत्थि सन्देहो ।**
**जाणामि तुज्झ सील अणन्नसरिसं कुलीणयं लज्जं ।**
**न कित्तिमं च पेम्मं जह तुह तह कस्स भुवणंमि ।**
**तहविहु जणाववाओ केणइ कम्मेण उच्छलिओ ।**

० ० ०

**पाविहिसि जसं धवलं लहिसि पसिद्धो जणंमि सयलंमि ।**
**ता जलणपवेसेणं करेसु तं अत्तणो सुद्धि ।।**
**हेमस्स व जेण मलो अयसकलंको समुत्तरइ ।**
**एसो सिग्घं चिय तह सुन्दरि जाणइ मणनिव्वुइ अम्हं ।।**

सीयाचरिउ का० पृ० १६०

सीता ने भी वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए अपनी स्वीकृति दी ।

अग्निकुण्ड तैयार कराया गया और जब वह प्रज्विलित हो उठा सीता ने पचनमस्कामत्र का स्मरण कर सभा मे बैठे लोगो से कहा—यदि मैने इस जीवन मे अपने पति रामचन्द्र को छोडकर अन्य पुरुष का स्वप्न मे भी स्मरण किया हो तो मेरा यह शरीर इस अग्नि मे जल जाये और न किया हो तो न जले, तत्पश्चात् सीता ने अग्नि में प्रवेश

किया। लोग हाय-हाय करने लगे, किन्तु जब सीता अपने शीलव्रत-माहात्म्य से न जली तब सबने उसके शील की प्रशंसा की। कुण्ड से निकलने पर सीता ने ससार की अनित्यता और अशरणता का अनुभव कर आत्मकल्याण करने का निश्चय किया। रामचन्द्र ने घर चलने का आग्रह किया और यह भी कहा कि मैं तुझे सोलह हजार रानियों की पटरानी बनाऊँगा, किन्तु सीता ने अपने केशो को लुचन कर सर्वगुप्त मुनि के निकट आर्यिका की दीक्षा ले ली और विधिपूर्वक तपश्चरण द्वारा आत्मशुद्धि की।

सीयाचरिउ मे सीता के पवित्र जीवन की जो झाकी दी गई है, उसका यह सक्षिप्त सार है, चरित ग्रंथ सुन्दर व प्रकाशन के योग्य है।

ग्रथ का कथानक दिगबर परपरा को लिए हुये है। उसमें ऐसी कोई बात नही है जिससे उसके विषय में सशय को अवकाश मिले। प्रस्तुत ग्रथ का तुलनात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट ज्ञात होता है, कि कर्ताने विमलसूरिके पउमचरिउ को अवश्य देखा है, क्योंकि उसका प्रभाव उन पर अकित है। ग्रथ के कितने ही पद्य ज्यो के त्यो साधारण पाठ-भेद के साथ पउमचरिउ मे उपलब्ध होते है। कुछ पद्य "अन्न च", 'भणियं' तथा 'उक्त च' कह कर दिये गये है। वे उससे उद्धृत किये गये जान पड़ते है। उदाहरणार्थ—

अन्नं च—

**महिला सहावचवला अदीहपेही सहाइ माइल्ला।**
**तं मे खमाहि पुत्तय जं पडिकूलं कयं तुम्ह ॥१६६॥**
**तो भणइ पउमणाहो अम्मो किं खत्तिया अलियवाई।**
**हु ति महाकुलजाया तम्हा भरहो कुणाउ रज्जं ॥**

सीयाचरिउ १६७

**महिला सहावचवला अदोहपेही सहावमाइल्ला।**
**तं में खमाहि पुत्तय जं पडिकूलं कय तुज्झ ॥३२-५१॥**
**तो भणइ पउमणाहो अम्मो किं खत्तिया अलियवाई।**
**होन्ति महाकुलजाया, तम्हा भरहो कुणउ रज्ज ॥**

—पउमचरिउ ३२-५२

भणियं च—

**समणो गावो विप्पा इत्थीओ बालवुड्ढरोगत्ता।**
**एए न हु हन्तव्वा कयावराहा वि धीरेहिं ॥**

—सीयाचरिउ कापी पृ० ३८

**समणा य बम्भणा वि य, गोपसु इत्थीय बालया वुड्ढा।**
**जइ वि हु कुणन्ति दोस, तह वि य एए न हन्तव्वा ॥**

—पउमचरिउ ३५·५१

**रचनाकाल :**

इस ग्रथ का रचयिता कौन है और ग्रंथ कहाँ रचा गया, इसके जानने का कोई पुष्ट साधन अभी तक उपलब्ध नहीं है। ग्रन्थ मे रचनाकाल और गुरुपरपरा का भी कोई उल्लेख नही है। किन्तु ग्रन्थ के अन्त मे एक गाथा निम्न प्रकार से उपलब्ध है।

**एय सीयाचरिय वुच्चरिय सेणियस्स नरवइणो।**
**जह गोयम तह महसूरिहिं निवेइय किंचि ॥**

इसमें बतलाया है कि सीताचरित को गौतम ने जैसा राजा श्रेणिक से कहा वैसा ही महसूरि ने कुछ निवेदन किया। इस गाथा मे "मह" शब्द अपूर्ण जान पडता है और वह अन्य शब्द 'सेन" की अपेक्षा रखता है। पूरा नाम महसेन सूरि होना चाहिए। इतिहास मे महसेन और महासेन नाम के विद्वानो का उल्लेख मिलता है। बहुत सभव है कि इस ग्रन्थ के रचयिता कोई महसेन या महासेन नामक विद्वान हो।

बघेरा के निम्न मूर्तिलेख मे आचार्य महसेन का उल्लेख स्पष्ट है, यह लेख सफेद पाषाण की खड्गासन मूर्ति के नीचे अकित है।

स० १२१५ वैशाख सुदी ७ श्री माथुरसंघे आचार्य श्री महसेनेन दीक्षिता आर्यिका ब्रह्मदेवी श्री चन्द्रप्रभु प्रणमिति।"

कुछ विद्वान् "मह" का अर्थ मुझ बतलाते है पर वह यहा सगत नही जान पडता।

इस ग्रथ की अनेक प्रतियाँ उपलब्ध है, संभव है उनमें से किसी पुरातन प्रति मे कर्ता का उल्लेख मिल जाय।

# साहित्य-संगोष्ठी विवरण

१२ अक्टूबर से १४ अक्टूबर तक वाराणसी मे होने वाले प्राच्यविद्या सम्मेलन के अवसर पर भारतीय ज्ञान पीठ द्वारा ११ अक्टूबर को साहित्य-सगोष्ठी का आयोजन किया गया था। ज्ञानपीठ के सस्थापक साहू शान्तिप्रसाद जी ने गोष्ठी का प्रारभ किया और डा. ए. एन. उपाध्ये ने अध्यक्षता की। डा० साहब के अग्रेजी भाषण के बाद डा० हीरालालजी के द्वारा भेजे गये सुझाव सुनाए गये। सुझाव महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। समागत सभी विद्वानो ने उन्हे पसन्द किया। इतना ही नही किन्तु सभी विद्वानो ने अपने भाषणो मे उनकी अनुमोदना की। सूझाव अभी अप्रकाशित है। जिन विद्वानों ने भाषण दिया उनके नाम निम्न प्रकार है :—प० कैलाशचन्द जी सि० शास्त्री, डा० देवेन्द्रकुमारजी, डा० नेमिचन्द जी शास्त्री, डा० राजाराम जी, प० वशीधरजी एम ए, डा० नथमल टाटिया, डा० हरीन्द्रभूषण जी, डा० मोहनलाल जी मेहता, डा० विमलप्रकाश जी जबलपुर, डा० दरबारीलाल जी प० गोपीलाल 'अमर', प्रो० भागचन्दजी इटारसी, डा० कस्तूर-चन्द कासलीवाल, प० हीरालालजी सि. शा. श्री नीरजजी डा० भागचन्दजी नागपुर और परमानन्द शास्त्री आदि।

प० कैलाशचन्द जी सि० शास्त्री ने अपने भाषण मे डा० हीरालाल जी के सुझावो का स्वागत करते हुए यह कहा कि इस पीढी के वरिष्ठ विद्वान डा० हीरालाल जी और डा० ए. एन उपाध्ये जी अब वृद्ध हो चले है। अत-एव नई पीढी के विद्वानो को उनके द्वारा की गई महान् साहित्यिक सेवाओ को ध्यान मे रखते हुए आगे बढने का प्रयत्न करना चाहिये। प० वशीधर जी ने डा० हीरालाल जी के सुझावो की सराहना की, और ग्रन्थो की बिक्री आदि सम्बन्ध मे होने वाली असुविधा का उल्लेख करते हुए कहा कि ज्ञानपीठ के माध्यम से बिक्री का प्रबन्ध सुचारुरूप से हो सकता है। प्रो. कुलभूषण जी ने अपने भाषण मे बिक्री की समस्या को अत्यन्त जटिल बतलाते हुये कहा कि जीवराज ग्रन्थमाला शोलापुर मे दो लाख रुपये की पुस्तके बिक्रीके लिए पडी हुई है। मैने इसके लिये बहुत प्रयत्न किया, किन्तु तक अभी उसमे पूरी सफलता नही मिली, यदि सारी पुस्तके बिक जाय तो अन्य साहित्य के प्रकाशन मे सुविधा हो सकती है। डा. कस्तूरचन्द जी कासलीवाल ने डा. हीरालाल जी के सुझावो को मान्य करते हुए कहा कि मैने महावीरक्षेत्र की ओर से राजस्थान के ग्रन्थ भडारो की सूची का कार्य किया उससे साहित्यिक विद्वानों को शोध करने में सहायता मिली। अब ग्रन्थसूची का पाचवा भाग प्रकाशित होकर आपकी सेवामें पहुँचेगा। डा. विमलप्रकाश जी ने डा. हीरालाल जी के सुझावों को महत्त्वपूर्ण बतलाते हुए कहा कि डा. साहिब ने उन सुझावों मे अपने जीवन के अनुभवोंका निचोड उपस्थित किया है। उन पर अमल करनेसे बिक्रीकी समस्याभी हल हो जायगी।

इस तरह उक्त सभी विद्वानो ने डा. हीरालाल जी के सुझावो को मान्य किया। मैने भी उनकी सराहना करते हुए बतलाया कि अब तक तक दि. जैन साहित्य की कोई मुकम्मिल सूची नही है। दि. जैन भण्डारो मे प्रका-शित अप्रकाशित-ग्रन्थो की सख्या दश हजार से कम नही है। किसी-किसी कविकी तो छोटी बडी ६० साठ रचनाए तक है। उनकी सूची बनने पर शोधक विद्वानों को अनु-सन्धान करने मे सुविधा हो सकती है।

दूसरे, जैन मन्दिर और मूर्ति-लेखो का प्रामाणिक संकलन, अप्रकाशित तथा प्रकाशित ग्रन्थो की आद्यन्त प्रशस्तियो का सकलन, प्रकाशन और जैन कलाविषयक प्रामाणिक पुस्तक का निर्माण तथा आधुनिक पठनक्रम की पुस्तक का भी निर्माण किया जाय।

साहु शान्तिप्रसादजी ने अपने भाषणमे महत्वपूर्ण विचार उपस्थित किये। भारतीय ज्ञानपीठ ने साहित्य-सगोष्ठीका केवल आयोजनही नही किया प्रस्तुत उसकी समुचित व्यवस्था भी की। साहू दम्पति उसमे स्वय शामिल हुए, और भोज-नादि की सुन्दर व्यवस्था की। विद्वानो के भाषणो के अनन्तर डा. ए. एन. उपाध्ये ने भाषणो और योजना पर अपने विचार अंग्रेजीमे व्यक्त किये। इसके लिये एक कमेटी का निर्माणभी किया गया, जो ग्रन्थोंके प्रकाशन और बिक्री के सम्बन्धमे योजनाको कार्यान्वित करनेका सुझाव देगी।

भारतीय ज्ञानपीठ के व्यवस्थापक डा गोकुलचन्दजी इस कार्यमे अत्यन्त व्यस्त दिखाई देते थे। इस योजनाको सम्पन्न करने मे उन्होने जो अथक श्रम किया उसीका परिणाम है कि गोष्ठी का कार्य अच्छी तरह से सम्पन्न हो सका। साहित्य संगोष्ठी का यह कार्य अत्यन्त सराहनीय रहा है। आशा है भारतीय ज्ञानपीठ आगे होने वाले प्राच्य विद्या सम्मेलनो के समय इसी तरह साहित्य सगोष्ठी को सफल बनाने का प्रयत्न करती रहेगी। —**परमानन्द शास्त्री**

# प्रगतिशील पं० दरबारीलाल जी कोठिया

जैन समाज के वरिष्ठ विद्वान न्यायाचार्य प० दरबारीलाल जी कोठिया एम. ए. ने काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय से **"जैन तर्कशास्त्र में अनुमान पर विचार : ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक अध्ययन"** विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर पी एच. डी. की सम्मानित उपाधि प्राप्त की है। कोठिया जी न्याय शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान है। उनके इस निबन्ध से जैन न्याय के क्षत्र मे कार्य करने वाले विद्वानो को दिशाबोध के साथ जैन न्याय के सम्बन्ध मे प्रस्तुत किये गये विशेष चिन्तन की विशेषताओ का भी परिज्ञान होगा। डा० कोठिया जी ने भारतीय अनुमान-के चिन्तन मे एक नई दृष्टि प्रदान की है।

**डा० दरबारीलाल कोठिया न्यायाचार्य एम. ए. पी-एच. डी.**

कोठिया जी अध्ययनशील, कर्मठ एव प्रतिभाशाली विद्वान है। आप ग्रन्थ-शोधन, सम्पादन तथा तुलनात्मक और समीक्षात्मक अध्ययन में लगे रहते है। उनके द्वारा सम्पादित अनुवादित न्यायशास्त्र के दो ग्रन्थ (न्यायदीपिका और आप्तपरीक्षा) वीरसेवा मन्दिर से प्रकाशित हो चुके है। जैन न्याय के क्षेत्र मे उनकी यह शोधात्मक पहली कृति है। डा० कोठिया जी के इस उत्कर्ष के लिए वीर सेवामन्दिर और अनेकान्त परिवार अभिनन्दन करता है।

श्री कोठिया जी ने जो अष्टसहस्री और श्लोकवार्तिक ग्रन्थों के सम्पादन कार्य को हाथ मे लिया है वह स्तुत्य है। आशा है आधुनिक पद्धति से सुसम्पादित होकर दोनो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाश मे आ जायेगे। वर्तमान मे ये दोनों ग्रन्थ अलभ्य भी हो चुके है।

# वीर-सेवा-मन्दिर के उपयोगी प्रकाशन

R. N. 10591/62

(१) पुरातन-जैनवाक्य-सूची—प्राकृत के प्राचीन ४६ मूल-ग्रन्थो की पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादिग्रन्थो मे उद्धृत दूसरे पद्यो की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। सपादक मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी की गवेषणापूर्ण महत्व की ७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलकृत, डा० कालीदास नाग, एम. ए. डी. लिट् के प्राक्कथन (Foreword) और डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट् की भूमिका (Introduction) से भूपित है, शोध-खोज के विद्वानोके लिए अतीव उपयोगी, बडा साइज, सजिल्द १५.००

(२) आप्त परीक्षा—श्री विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज्ञ सटीक अपूर्व कृति, आप्तों की परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयक सुन्दर, विवेचन को लिए हुए, न्यायाचार्य पं दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद से युक्त, सजिल्द। ८.००

(३) स्वयम्भूस्तोत्र—समन्तभद्रभारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोरजी के हिन्दी अनुवाद, तथा महत्व की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना से सुशोभित। ... ... २-००

(४) स्तुतिविद्या—स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापो के जीतने की कला, सटीक, सानुवाद और श्री जुगल किशोर मुख्तार की महत्व की प्रस्तावनादि से अलकृत सुन्दर जिल्द-सहित। १-५०

(५) अध्यात्मकमलमार्तण्ड—पचाध्यायीकार कवि राजमल की सुन्दर आध्यात्मिकरचना, हिन्दी-अनुवाद-सहित १ ५०

(६) युक्त्यनुशासन—तत्वज्ञान से परिपूर्ण समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नही हुआ था। मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादि से अलकृत, सजिल्द। ... ·७५

(७) श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र—आचार्य विद्यानन्द रचित, महत्व की स्तुति, हिन्दी अनुवादादि सहित। ·७५

(८) शासनचतुस्त्रिंशिका—(तीर्थपरिचय) मुनि मदनकीर्ति की १३वी शताब्दी की रचना, हिन्दी-अनुवाद सहित ·७५

(९) समीचीन धर्मशास्त्र—स्वामी समन्तभद्र का गृहस्थाचार-विषयक अत्युत्तम प्राचीन ग्रन्थ, मुख्तार श्रीजुगलकिशोर जी के विवेचनात्मक हिन्दी भाष्य और गवेषणात्मक प्रस्तावना से युक्त, सजिल्द। ... ३-००

(१०) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति सग्रह भा० १ सस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थो की प्रशस्तियो का मगलाचरण सहित अपूर्व सग्रह उपयोगी ११ परिशिष्टो और पं० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य परिचयात्मक प्रस्तावना से अलकृत, सजिल्द। ... ... ४-००

(११) समाधितन्त्र और इष्टोपदेश—अध्यात्मकृति परमानन्द शास्त्री की हिन्दी टीका सहित ४-००

(१२) अनित्यभावना—आ० पद्मनन्दीकी महत्वकी रचना, मुख्तार श्री के हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ सहित ·२५

(१३) तत्वार्थसूत्र—(प्रभाचन्द्रीय)—मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या से युक्त। ... २५

(१४) श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैनतीर्थ। १-२५

(१५) महावीर का सर्वोदय तीर्थ ·१९ पैसे, (१६) समन्तभद्र विचार-दीपिका ·१९ पैसे, (१७) महावीर पूजा ·२५

(१८) बाहुबली पूजा—जुगलकिशोर मुख्तार कृत (समाप्त) २५

(१९) अध्यात्म रहस्य—प० आशाधर की सुन्दर कृति मुख्तार जी के हिन्दी अनुवाद सहित। १-००

(२०) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति सग्रह भा० २ अपभ्रंश के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थोकी प्रशस्तियो का महत्वपूर्ण सग्रह। ५५ ग्रन्थकारो के ऐतिहासिक ग्रथ-परिचय और परिशिष्टो सहित। स. प० परमानन्द शास्त्री। सजिल्द १२-००

(२१) न्याय-दीपिका—आ अभिनव धर्मभूषण की कृति का प्रो० दरबारीलालजी न्यायाचार्य द्वारा स० अनु० ७-००

(२२) जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ सख्या ७४० सजिल्द (वीर-शासन-सघ प्रकाशन ५-००

(२३) कसायपाहुड सुत्त—मूलग्रन्थ की रचना आज से दो हजार वर्ष पूर्व श्री गुणधराचार्य ने की, जिस पर श्री यतिवृषभाचार्य ने पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र लिखे। सम्पादक पं हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री, उपयोगी परिशिष्टो और हिन्दी अनुवाद के साथ बडे साइज के १००० से भी अधिक पृष्ठों में। पुष्ट कागज और कपडे की पक्की जिल्द। ... ... २०-००

(२४) Reality आ० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अग्रेजी में अनुवाद बडे आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६-००

---

प्रकाशक—प्रेमचन्द जैन, वीरसेवा मन्दिर के लिए, रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, दरियागज, दिल्ली से मुद्रित।

द्वै मासिक

अक्टूबर १९६८

# अनेकान्त

बघेरवाल वंशी शाह जीजा द्वारा निर्मापित दिगम्बर जैन कीर्तिस्तम्भ

समन्तभद्राश्रम (वीर-सेवा-मन्दिर) का मुख पत्र

## विषय-सूची



★



**अनेकान्त में प्रकाशित विचारो के लिए सम्पादक मण्डल उत्तरदायी नहीं हैं। —व्यवस्थापक अनेकान्त**

## निवेदन

वीर-सेवा-मन्दिर एक शोध-सस्था है। इसमें जैन-साहित्य और इतिहास की शोध-खोज होती है, और अनेकान्त पत्र द्वारा उसे प्रकाशित किया जाता है। अनेक विद्वान रिसर्च के लिए वीर-सेवामन्दिर के ग्रन्थागार से पुस्तकें ले जाते है। और अपना कार्य कर वापिस करते है। समाज के श्रीमानो का कर्तव्य है कि वे वीर-सेवा-मन्दिरकी लायब्रेरी को और अधिक उपयोगी बनानेके लिए प्रकाशित अप्रकाशित साहित्य प्रदान करे। जिससे अन्वेषक विद्वान उससे पूरा लाभ उठा सके। और प्रकाशित सस्थाएँ अपने अपने प्रकाशित ग्रन्थों की एक एक प्रति अवश्य भिजवाये। आशा है जैन साहित्य और इतिहास के प्रेमी सज्जन इस ओर ध्यान देंगे।

व्यवस्थापक '**वीरसेवामन्दिर**'
**२१ दरियागंज, दिल्ली**

## अनेकान्त के ग्राहकों से

अनेकान्त के प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि वे अपना वार्षिक मूल्य शीघ्र भेज दें। जिन ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक मूल्य नहीं भेजा है। और न पत्र का उत्तर ही दिया है। उनसे सानुरोध प्रार्थना है कि वे अपना वार्षिक मूल्य ६) रु० शीघ्र भेजकर अनुग्रहीत करें। अनेकान्त जैन समाज का ख्याति प्राप्त एक शोध पत्र है, जिसमें धार्मिक लेखों के शोध-खोज के महत्वपूर्ण लेख रहते है। जो पठनीय तथा सग्रहणीय होते है। मूल्य प्राप्त न होने पर अगला अक वी० पी० से भेजा जावेगा।

व्यवस्थापक : '**अनेकान्त**'
**वीरसेवामन्दिर २१, दरियागज, दिल्ली।**

**अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपया**
**एक किरण का मूल्य १ रुपया २५ पैसा**

ओम् अर्हम्

# अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ।।

वर्ष २१ किरण ४ | वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६ | वीर निर्वाण सवत् २४९५, वि० सं० २०२५ | अक्टूबर सन् १९६८

## स्वयंभूस्तुति

पुनातु नः संभवतीर्थकृज्जिनः पुनः पुनः संभवदुःखदुःखिताः ।
तदर्तिनाशाय विमुक्तिवर्त्मनः प्रकाशकं यं शरणं प्रपेदिरे ॥३
निजैर्गुणैरप्रतिमैर्महाजनो न तु त्रिलोकीजनतार्चनेन यः ।
यतो हि विश्वं लघु तं विमुक्तये नमामि साक्षादभिनन्दनं जिनम् ॥४
नय-प्रमाणादिविधानसद्धटं प्रकाशितं तत्त्वमतीव निर्मलम् ।
यतस्त्वया तत्सुमतेऽत्र तावकं तदन्वयं नाम नमोऽस्तुते जिन ॥५

—मुनि श्री पद्मनन्दि

**अर्थ**—बार-बार जन्म-मरण रूप ससार के दु ख से पीडित प्राणी उस पीड़ा को दूर करने के लिए मोक्ष-मार्ग को प्रकाशित करने वाले जिस सम्भवनाथ तीर्थकर की शरण मे प्राप्त हुए थे वह सम्भव जिनेन्द्र हमको पवित्र करे ।।३।। जन्म-मरण से रहित जो अभिनन्दन जिनेन्द्र अपने अनुपम गुणो से महिमा को प्राप्त हुए है, न कि तीन लोक मे स्थित जनता की पूजा से; तथा जिनके आगे विश्व तुच्छ है—जो अपने अनन्त ज्ञान के द्वारा समस्त विश्व को जानते देखते है, उन अभिनन्दन जिनके लिए मै मुक्ति के प्राप्त्यर्थ नमस्कार करता हूँ ।।४।। हे सुमति जिनेन्द्र ! चूकि आपने नय एव प्रमाण आदि की विधि से सगत तत्व (वस्तु स्वरूप) को अतिशय निर्दोष रीति से प्रकाशित किया था, अतएव आपका सुमति (सु शोभना मतिर्यस्यासौ सुमति=उत्तम बुद्धि वाला) यह नाम सार्थक है । हे जिन ! आपको नमस्कार हो ।।५।।

# चित्तौड़ के जैन कीर्तिस्तम्भ का निर्माण काल

**श्री नीरज जैन**

चित्तौड़ के किले में निर्मित जैन कीर्तिस्तम्भ अनेक दृष्टियो से हमारा एक महत्त्वपूर्ण, ऐतिहासिक और प्रभावना जनक धर्मायतन है। इसका महत्त्व तब और बढ जाता है जब हमें ज्ञात होता है कि इसी किले में निर्मित राणा कुम्भा का बहु प्रसिद्ध नौ मंजिला विजय स्तम्भ, इसी जैन कीर्ति स्तभ से प्रेरणा लेकर, इसके निर्माण के बहुत समय बाद बनाया गया। राणा कुम्भा ने इस स्तम्भ की अपेक्षा अपने स्तम्भ मे कुछ परिष्कार करने का भी इसी के आधार पर प्रयास किया[1]।

जैन मन्दिरों के सामने मानस्तम्भ बनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। तीर्थंकरो के समवशरण के सामने वर्णित मानस्तम्भ से यह परम्परा चली है। जैन मानस्तम्भो की शृखला मे कालक्रम से चित्तौड़ का यह स्तम्भ भले ही प्राचीनतम न ठहरे और स्थापत्य के कलागत मूल्यांकन मे भी चाहे इसे सर्वोत्तम न माना जाय परन्तु अपनी अद्वितीय और आकाश-विलासिनी ऊँचाई के कारण निर्माण योजना के सौष्ठव और अनुपात की विशिष्टता के कारण तथा समस्त समकालीन स्थापत्य के बीच अपनी विविधता के कारण यह स्तम्भ देश के प्रायः सभी उपलब्ध जैन मान-स्तम्भों मे विशिष्ट, श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय पुरा विद्या और पुरातत्त्व के प्रायः सभी निष्पक्ष ज्ञाताओं ने इस स्तम्भ को बारहवी शताब्दी ईस्वी या उसके पूर्व की रचना माना है। स्तम्भ की निर्माण शैली और उस पर अकित कला के आधार से तथा अन्य अनेक उद्धरणों और आधारों से इन विद्वानों ने अपने इन अनुमानों की पुष्टि यथा स्थान की है जिसका उल्लेख मै आगे करूँगा। इधर पिछले बीस-पच्चीस वर्षों से कतिपय शोधक विद्वानो ने उपरोक्त मान्यता की अवहेलना करके यह तथ्य स्थापित करने का प्रयास किया है कि इस स्तम्भ का रचना काल बारहवी शताब्दी न होकर पद्रहवी या सोलहवी शताब्दी ईस्वी है। यद्यपि इस नवीन स्थापना का समर्थन साहित्य या कला क्षेत्र के किसी भी कोने से नहीं हो पा रहा है परन्तु फिर भी प्रस्तुत किये उक्त स्थापनाओं के साथ आधार भी प्रस्तुत किये गये है अतः वास्तविकता की कसौटी पर उनका परीक्षण आवश्यक है।

अनेकान्त वर्ष २१ के जून ६८ के अक मे पृष्ठ ८३ पर श्रीमान् प० नेमचन्द धन्नूसा जैन का एक लेख इस कीर्तिस्तम्भ के निर्माण काल के सम्बन्ध मे प्रकाशित हुआ है। इस लेख मे लेखक ने एक महत्त्वपूर्ण प्रतिमा लेख का उद्धरण देकर श्री मुनि कातिसागर के एक लेखाश (अनेकान्त वर्ष ८ पृ० १४२) का परिष्कार करने का उद्यम किया है; तथा इस स्तम्भ की शैली आदि के आधार पर भी इसके निर्माण काल की ईसा की बारहवी शताब्दी के आसपास की मान्यता को ही समर्थन देना चाहा है। लेखक ने स्पष्टता पूर्वक स्वीकार किया है कि उन्हे स्तम्भ के निरीक्षण का अवसर प्राप्त नही हुआ है और मुनि जी के लेखवाला अनेकान्त का उक्त अक भी उनके सामने नही है।

यह मात्र प्रसग की बात है कि अपने गत राजस्थान प्रवास मे इसी सितम्बर मास मे मुझे चित्तौड़ की यात्रा का सौभाग्य मिला था। अनेकान्त के सभी पिछले अक भी मेरे सग्रह मे है और इस विषय की कुछ और सामग्री भी मेरे पास उपलब्ध है, इसलिए मैं श्री पं० नेमचन्द धन्नूसा की आकाक्षा के अनुरूप इस सम्बन्ध में यह लेख लिखने का साहस कर रहा हूँ।

मैं समझता हूँ कि पहिले हम एक दृष्टि में इस बात

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा, अनेकान्त वर्ष ८ पृ० १४०. "चित्तौड़ के जैन कीर्तिस्तम्भ का निर्माण काल एवं निर्माता"

का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लें कि इस स्तम्भ के निर्माण काल के विषय में पुरातत्त्व के पारखी किन विद्वानों ने क्या-क्या अनुमान लगाये है। यह जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त मैं अपनी मान्यता और उसके आधार प्रस्तुत करने का उपक्रम करूँगा।

**१. शासकीय प्रकाशन**[२] : जनरल ए. कनिघम ने उल्लेख किया है कि यह कीतिस्तम्भ ७५॥ फुट ऊँचा ३२ फुट व्यास का नीचे वा १५ फुट ऊपर है। यह बहुत प्राचीन है। इसके नीचे एक पाषाण खण्ड मिला था जिसमें लेख था—"श्री आदिनाथ व २४ जिनेश्वर, पुण्ड-रीक, गणेश सूर्य और नवग्रह तुम्हारी रक्षा करे। सं० ६५२ वैशाख सुदी गुरुवार[३]।

आर्क्यलॉजिकल सर्वे की ही रिपोर्ट[४] के अनुसार "जैन कीतिस्तम्भ बहुत पुरानी इमारत है जो शायद सन् ११०० के करीब बनी थी। इस रिपोर्ट में यह भी अनु-मान लगाया गया है कि राजा कुमारपाल के राज्यकाल (बारहवी शताब्दी के मध्य) मे इस पहाड़ पर बहुत से दिगम्बर जैनियो का निवास रहा होगा[५]।

इस कीति-स्तम्भ के निर्माता का उल्लेख भी शास-कीय अभिलेखों में कई प्रकार से मिलता है। एक लेख के अनुसार राजा कुमारपाल ने इसका निर्माण कराया था[६]। जब कि दूसरे दो अभिलेखो[७] में इसे एक बघेरवाल महा-जन जीजा या जीजक द्वारा निर्मित कहा गया है[८]।

**२. श्री ब्र० शीतल प्रसाद जी** : ब्रह्मचारी जी ने इस सम्बन्ध में अपनी मान्यता इन शब्दों में व्यक्त की है—

"यहाँ सबसे प्राचीन मकान जैन कीतिस्तम्भ है जो ८० फुट ऊँचा है, जिसको बघेरवाल महाजन जीजा ने १२वी या १३वी शताब्दी मे जैनियो के प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ की प्रतिष्ठा में बनवाया"[९]।

राणा कुम्भा के जय स्तम्भ के नीचे जो पुराना मदिर है उसके लेख से प्रगट है कि गुजरात के सोलकी राजा कुमारपाल ने इस पर्वत के दर्शन किये थे[१०]।

यदि इस कीतिस्तम्भ का सम्बन्ध मूल में किसी मन्दिर से होगा तो यह मन्दिर शायद उस स्थान पर होगा जहाँ वर्तमान में पूर्व की ओर अब पाषाण का ढेर है[११]। जो श्वेताम्बर मन्दिर अब इस स्तम्भ के पास दक्षिण-पूर्व में है, उसका सम्बन्ध इस स्तम्भ से नही है क्योंकि वह ३५० वर्ष पीछे बना।

डा० जी० आर० भण्डारकर के कथनानुसार दक्षिण कालेज लाइब्रेरी में एक प्रशस्ति है जिसको—"श्री चित्र-कूट दुर्ग महावीर प्रसाद प्रशस्ति" कहते हैं। यह प्रशस्ति कहती है कि यह कीति स्तम्भ मूल मे सन् ११०० के अनुमान रचा गया था, किन्तु राणा कुम्भा के समय में सन् १४५० के आसपास इसका जीर्णोद्धार हुआ।

यह प्रशस्ति प्राचीन है जिसको चारित्रगणि ने वि० स० १४९५ में सकलित किया तथा वि० स० १५०८ मे इसकी नकल की गई। प्रशस्ति लेख में किसी शिलालेख की नकल है जो श्री महावीर स्वामी के जैन मन्दिर में मौजूद था तथा कीतिस्तम्भ उसके सामने खड़ा था। यही लेख यह भी कहता है कि धर्मात्मा कुमारपाल ने यह ऊँची इमारत कीतिस्तम्भ नाम की बनवाई।

जो मूर्तियाँ इस कीतिस्तम्भ पर बनी हैं वे सब दिगंबर जैन हैं। यदि कुमार पाल ने इसे बनवाया हो तो यह मानना पडेगा कि कुमारपाल या तो दिगम्बर जैन होगा या दिगम्बर जैन धर्म का प्रेमी होगा[१२]।

२. ये उद्धरण ब्र० शीतल प्रसाद द्वारा सपादित—"मध्यप्रान्त, मध्यभारत और राजपूताना के प्राचीन जैन स्मारक" नामक पुस्तक से लिए गये है।

३. आर्क्यलॉजिकल सर्वे आफ इडिया रिपोर्ट, जिल्द २३, पृ० १०८.

४. आर्क्यलॉजिकल सर्वे आफ इंडिया, फार १९०५–६, पृष्ठ ४३.

५. It belongs to the Digamber Jains, many of whom seem to have been upon the hill in Kumarpals' time.

६. इम्पीरियल गजेटियर आफ इडिया (राजपूताना) १९०८

७. आर्क्यलॉजिकल सर्वे आफ इडिया १९०५-६ पृ. ४९.

८. A.P.R. of W. India 1906.

९. मध्यप्रान्त, मध्यभारत और राजपूताना के प्राचीन जैन स्मारक, पृष्ठ १३४

१०. वही पृष्ठ १३५

११. वही पृष्ठ १३६

१२. वही पृष्ठ १३७

**३. श्री परसी ब्राउन :** ने अपने ग्रन्थ में इस स्तम्भ का उल्लेख जिन शब्दों में किया है, उनका आशय इस प्रकार है—"विशाल स्तम्भों में सोलंकी काल का यह सुनियोजित और असाधारण स्तम्भ बारहवी शताब्दी मे निर्मित हुआ। यह स्तम्भ चित्तौड का प्राचीन स्तम्भ है। (दूसरा स्तम्भ भी वही पर है जिसका निर्माण पन्द्रहवी शताब्दी मे हुआ था)। मूलत. यह स्तम्भ एक मन्दिर के सामने बनाया गया कीर्तिस्तम्भ (Piller of Name) था, पर वह मन्दिर अब पूर्णतः नष्ट हो गया है। इस स्तम्भ के पास अब जो मन्दिर दिखाई देता है वह सभवतः उसी प्राचीन मन्दिर के अवशेषों पर चौदहवी शताब्दी मे बनाया गया।

यह आठ मजिला स्तम्भ अस्सी फुट ऊँचा है। इसकी सयोजना के समस्त जीवत अभिप्राय यह सिद्ध करते है कि यहाँ के कलाकार केवल मन्दिर शैली के ही दास नही थे। वरन् आवश्यकता पडने पर वे वैसे ही सुन्दर अन्य अभिप्राय के प्रासाद निर्माण भी उतनी ही योग्यता से कर सकने थे। स्तम्भ की प्रत्येक मजिल को छज्जेदार बातायनों, प्रकोष्ठों, सुन्दर छतों और प्रासाद विधा के अन्य अनेक सशक्त अभिप्रायो से सजाया गया है। यह स्तम्भ सौन्दर्य और सुदृढ़ता का ज्वलत उदाहरण है"[१३]।

**४. श्री आनन्द के० कुमार स्वामी** ने चित्तौड के प्रसंग मे राणा कुम्भा द्वारा सन् १४४०–४८ मे निर्मित बडे स्तम्भ की चर्चा करके लिखा है—" ऐसा ही किन्तु इससे कुछ छोटा जैन स्तम्भ भी चित्तौड मे है जो बारहवी शताब्दी का निर्मित है"[१४]।

**५. माधुरी देसाई** द्वारा भूला भाई मेमोरियल इस्टीट्यूट बम्बई से प्रकाशित पुरातत्त्व सबन्धी चार्ट मे तो चित्तौड से केवल एक ही चित्र प्रकाशित किया गया है। उक्त चार्ट मे चित्तौड़ का प्रतिनिधित्व करने वाला यह चित्र इसी जैन कीर्तिस्तम्भ का है। सूची मे इसे श्रीअल्लट अथवा कैतन-रानी-स्तम्भ के नाम से उल्लिखित करके इसका काल बारहवीं शताब्दी ईस्वी बताया गया है"[१५]।

**६. भारत सरकार के टूरिज्म विभाग ने** राजस्थान के दर्शनीय स्थलो की एक परिचय पुस्तिका निकाली है। इसमे चित्तौड का उल्लेख करते हुए लिखा है—"किले की मुख्य इमारते दो स्तम्भ हैं। ये कीर्ति स्तम्भ और जयस्तम्भ कहलाते है। इनमे कीर्तिस्तभ प्राचीन है। इसका निर्माण एक जैन व्यापारी द्वारा बारहवी शताब्दी मे हुआ था। यह प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ को समर्पित है। यह स्तम्भ नीचे से ऊपर तक विविध सुन्दर प्रतीकों के अकन से तथा नग्न तीर्थंकर मूर्तियो से सजाया गया है जो इस बात का प्रतीक है कि यह स्तम्भ दिगवर जैनो का है"[१६]।

**७. श्री विजयशंकर श्रीवास्तव** ने चित्तौडगढ़ महावीर जिनालय प्रशस्ति के उद्धरण पूर्वक स० १४९५ मे उक्त मन्दिर के जीर्णोद्धार की पुष्टि की है। इन्होने इस प्रशस्ति का प्रकाशन सदर्भ देते हुए इसकी भण्डारकर सूची का क्रमाक ७८१ तथा रायल एसियाटिक सोसाइटी जनरल (बम्बई ब्रान्च) भाग २३ के पृष्ठ ४९ पर इसे प्रकाशित बताया है"[१७]। यह मन्दिर कीर्तिस्तम्भ के समीप स्थित कहा गया है।

श्रीवास्तव जी ने इस घटना की पुष्टि करने हुए अन्यत्र अपने लेख मे लिखा है—"चित्तौड दुर्ग स्थित जैन स्तम्भ के निकट वाले महावीर स्वामी के मन्दिर का जीर्णोद्धार महाराणा कुम्भा के समय मे वि. स. १४९५ मे ओसवाल महाजन गुणराज ने कराया[१८]।"

**८. श्री जी० एस० आचार्य**, राजस्थान परिचय ग्रथमाला के प्रथम पुष्प मे इसी मान्यता का पोषण करते है—"सूरज पोल से उत्तर जैन कीर्तिस्तम्भ आता है। इस सात मजिले, ७५ फुट ऊँचे स्मारक का निर्माण दिगंबर सम्प्रदाय के बघेरवाल महाजन सानाय के पुत्र जीजा ने

१३. पारसी ब्राउन, इडियन, आर्चिटेक्चर (बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू) पृष्ठ १५०–१५१.

१४. हिस्ट्री आफ इडियन एड इन्डोनेशियन आर्ट, बाई आनन्द के. कुमार स्वामी, पृष्ठ १११.

१५. माधुरी देसाई, आर्चिटेक्चुरल एन्ड स्कल्पचरल मानूमेन्ट्स आफ इंडिया, १९५४, सूची क्र० ३०.

१६. इडिया (राजस्थान) फरवरी १९६२, पृ० ४६.

१७. राजस्थान-भारती (महाराणा कुम्भा विशेषांक) मार्च १९६३ अंक १–२, पृ० १४६.

१८. वही पृ० ५६.

कराया था। इसका निर्माण बारहवी शताब्दी का माना जाता है। यह कीर्तिस्तम्भ आदिनाथ का स्मारक है। इसके चारों पार्श्व पर पाँच-पाँच फुट ऊँची आदिनाथ की दिगबर मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। जैन कीर्तिस्तम्भ के पास ही महावीर स्वामी का जैन मन्दिर है। इसका जीर्णोद्धार महाराणा कुम्भा के समय सन् १४२८ ई० मे ओसवाल महाजन गुण राज ने कराया था[१९]।

**९. श्री ई० बी० हावेल** : ने भी चित्तौड के केवल दोनो स्तम्भों का ही उल्लेख किया है। उन्होदे जैन कीर्तिस्तम्भ को नवमी शताब्दी की ही रचना माना है—"वास्तु शिल्प और चित्र कला के क्षेत्र मे भी इन गौरवशाली जैन कलाकारो ने स्वयं को उत्कृष्ट सिद्ध किया वे निर्माता अद्भुत थे और उनकी निर्माण शैली के कारण विश्व मे अद्वितीत है[२०]।

**१०. श्री फर्ग्युसन** : चित्तौड के जैन कीर्तिस्तम्भ को समकालीन स्थापत्य मे एक उत्कृष्ट निर्माण मानते है।—"चित्तौड में अल्लट का स्तम्भ बहुत सुन्दर है। स्तम्भ के समीप कुछ समय पूर्व तक स्थित एक शिलालेख के अनुसार इस स्तम्भ का निर्माण सन् ८८६ ईस्वी मे हुआ। निर्माण शैली से भी इसके नवमी शताब्दी मे निर्मित होने मे कोई सन्देह नही रह जाता। यह स्तम्भ प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ को समर्पित किया गया था। इस पर सैकडो तीर्थंकर प्रतिमाओ का अंकन हुआ है। यह लगभग ८० फीट ऊँचा है और नीचे से ऊपर तक विविध कलात्मक अकनो और मूर्तियो से सजा हुआ है। इस स्तम्भ को कला का एक अति सुन्दर उदाहरण कहने मे कोई अतिशयोक्ति नही है[२१]।"

**११. डाक्टर सत्यप्रकाश** : राजस्थान पुरातत्त्व विभाग के निर्देशक है। उन्होने फर्ग्युसन साहब की उपरोक्त मान्यता से अपनी असहमति प्रकट करते हुए लिखा है—"निर्माण की शैली को दृष्टि में रखते हुए यह कालानुमान बहुत प्राचीन ज्ञात होता है। संभावना यह है कि यह स्तंभ बारहवी शताब्दी का निर्मित होना चाहिए। कहा जाता है कि यह प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ को समर्पित किया गया था। इस पर सैकड़ो नग्न तीर्थंकर प्रतिमाएं अकित है जिससे यह दिगबर जैन स्तभ ठहरता है। इसके समीप ही दक्षिण की ओर जो मन्दिर बना है वह इस स्तभ से बहुत पीछे की रचना है और एक अन्य विलुप्त मन्दिर के अवशेषो पर निर्मित है[२२]।"

**१२. डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह** की मान्यता है कि इस कीर्तिस्तभ का निर्माण सन् ११०० ईस्वी के आस पास हुआ तथा सन् १४५० मे इसका जीर्णोद्धार कराया गया। उनका अनुमान है कि मूलतः यह एक मन्दिर के सामने का मान-स्तम्भ था और इसमें ऊपर एक सर्वतो भद्रिका (चतुर्मुख) जिन प्रतिमा स्थापित थी। 'कीर्तिस्तभ' नाम से इसकी ख्याति बाद मे हुई। इसकी समानता करने वाला दूसरा कोई स्तंभ देखने मे नही आता[२३]।

**१३. बाबू कामता प्रसाद जी** के अनुसार—"कीर्तिस्तभ को स० ९५२ मे बघेरवाल जाति के जीजा या जीजक ने बनवाया था—उसका लेख कर्नल टॉड को मिला था। आर्क्यालॉजिकल रिपोर्ट आफ वेस्टर्न इडिया १९०६ मे २२०५ से २३०९ तक चित्तौड के शिलालेख है, उनमे बघेरवाल के बनवाने का उल्लेख है[२४]।"

बाबू जी ने ही दूसरे स्थान पर इसको "दिगबर जैन बघेरवाल महाजन जीजा ने १२-१३वी शताब्दी मे प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ की प्रतिष्ठा मे बनवाने का उल्लेख किया है[२५]।"

**१४. श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा** अपने ग्रन्थ—"उदयपुर के राज्य का इतिहास" मे लिखते है :—

—"जैन कीर्तिस्तभ आता है, जिसको दिगबर सम्प्रदाय के बघेरवाल महाजन सानाय के पुत्र जीजा ने **विक्रम सवत् की चौदहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध में बनवाया था[२६]।"**

---

१९. जी० एस० आचार्य, चित्तौड दुर्ग, पृ० ६५. (शिव प्रकाशन बीकानेर)
२०. ई-बी० हावेल, दि आर्ट हैरिटेज आफ इडिया, नवीन सस्करण, पृ० १७३.
२१. श्री फर्ग्युसन हिस्ट्री आफ इडियन एड ईस्टर्न-आर्चिटेक्चर, पृ० २५१.
२२. एज स्टोन स्पीक इन राजस्थान, पृ० ५. (चित्तौड़)
२३. स्टडीज इन जैन आर्ट, पृष्ठ २३.
२४. अनेकान्त वर्ष ८, पृष्ठ १४१
२५. जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, पृष्ठ ८७
२६. अनेकान्त वर्ष ८, पृष्ठ १४१

**१५. मुनि ज्ञान विजय जी** इस स्तंभ को धर्म प्रेमी अल्लट राजा द्वारा वि० संवत् ८९५ मे बनवाया हुआ मानते हैं। मुनि जी का यह भी कथन है कि "जब दिगंबर और श्वेताम्बरों में प्रतिमा भेद प्रारम्भ नही हुआ था तब की यह एक श्वेताम्बर कृति है[२७]।"

**१६. डा० कैलाशचन्द जैन** : अनेकान्त वर्ष ८ पृष्ठ १३९ के संदर्भ में इसे पन्द्रहवी शताब्दी की रचना मानते है[२८]।

**१७. मुनि कांतिसागर जी** नान्द गाँव के एक प्रतिमा लेख के आधार पर सन् १९५२ तक इस स्तंभ को पंद्रहवी शताब्दी का निर्माण मानते थे[२९]। सन् १९५३ मे उन्होने इस स्तभ की आयु मे से गत सौ वर्ष और घटाकर इसे सोलहवी शताब्दी का निर्मित लिखा[३०]। उनका काल निर्णय जिस प्रतिमालेख पर आधारित है वह मुनि जी की दोनो पुस्तको मे एक सा ही प्रकाशित है। यह लेख अनेकान्त मे भी दो बार प्रकाशित हो चुका है[३१]।

**१८. श्री अगरचन्द नाहटा** ने अपने लेख का उपसंहार करते हुए उनकी दृष्टि मे आये प्रमाणो पर सक्षिप्त विचार करके अपना अनिश्चित सा मत दिया है कि नान्द गाँव का प्रतिमा लेख १५४१ सवत का है अतः कीर्तिस्तभ सभवतः सवत् १५०० के आस पास ही बना होगा[३२]।

इस प्रकार इस कीर्तिस्तंभ के निर्माणकाल के सबन्ध मे मुझे जो उल्लेख प्राप्त हो सके उन्हे मैने यथावत ऊपर की पंक्तियो में प्रस्तुत कर दिया है। अब हम इन सभी उद्धरणो पर तथा कीर्तिस्तभ की कलागत विशेषताओं पर चित्तौड़ तथा आस-पास के जैन पुरातत्व पर और नान्द गाँव के प्रतिमा लेख पर क्रमशः विचार करेगे।

**विद्वानों की मान्यतायें :**

ऊपर दिये गये उद्धरणो से हमे पता चलता है कि श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा तथा मुनि कांति सागर ये दो ही विद्वान ऐसे है जो इस स्तंभ का निर्माण काल चौदहवी शताब्दी या उसके बाद का मानते हैं। इनमें भी यह अन्तर ध्यान देने योग्य है कि ओझा जी अपनी मान्यता का कोई आधार प्रस्तुत नही करते तथा उनका काल—अनुमान चौदहवी शताब्दी ईस्वी नहीं वरन्, "विक्रम संवत का चौदहवी शताब्दी" है। इस प्रकार ईस्वी सन में उनका कालानुमान जानने के लिए इसमे से छह दशक और घटाकर इसे देखना होगा जो तेरहवीं शताब्दी का अन्त या चौदहवी का केवल प्रारम्भ बैठेगा।

मुनि कांति सागर जी के कालानुमान का आधार नान्द गाँव की एक प्रतिमा पर अंकित लेख है जिस पर आगे विचार किया जावेगा। स्तभ को बारहवी शताब्दी का निर्माण मानने वाले विद्वानो की बुद्धि पर मुनि जी ने व्यंग तो किया है पर अनुमान को सिद्ध करने के लिए स्तभ की कला पर कोई विचार उन्होने अपने लेख मे नही किया।

इन दो विद्वानो के अतिरिक्त शेष सोलह विद्वानो की मान्यता में इस स्तभ का निर्माण काल नवमी शताब्दी से बारहवी शताब्दी ईस्वी के बीच निर्धारित होता है। इन मान्यताओं का सविस्तार उल्लेख ऊपर किया जा चुका है फिर भी हम इनमे से मोटे रूप से जो सर्वमान्य तथ्य निकालना चाहते है वे इस प्रकार है—

१. स्तंभ के निर्माण का नवमी शताब्दी का अनुमान सर्व श्री फर्ग्युसन और बाबू कामता प्रसाद जी ने वहाँ किसी समय देखे गये एक शिलालेख के आधार पर लगाया है। यह आधार बहुत विश्वस्त नही लगता। सभवतः इसीलिए बाबू कामताप्रसाद जी ने एक अन्य स्थान पर इसे १२–१३वी शताब्दी की रचना स्वीकार किया है।

२. मुनि ज्ञान विजय जी इसे प्राचीन भी मानना चाहते है और संभवतः श्वेतांबर कृति भी सिद्ध करना चाहते है, अतः केवल इसी कारण वे इसका निर्माण काल विक्रम सं० ८९५ तक खींच कर यह दिखाना चाहते है कि "जब दिगबर और श्वेताम्बरों मे प्रतिमा भेद प्रारभ नहीं हुआ था तब की यह एक श्वेतांबर कृति है।" मुनि

---

२७. अनेकान्त वर्ष ८, पृष्ठ १४१
२८. जैनिज्म इन राजस्थान, पृष्ठ ३०
२९. श्रमण सस्कृति और कला, पृष्ठ ७२
३०. खण्डहरों का वैभव, पृष्ठ १२१
३१. अनेकान्त वर्ष ८, पृष्ठ १४२; व वर्ष २१ पृ. ८४
३२. अनेकान्त वर्ष ८, पृष्ठ १४३

जी का यह अनुमान पक्ष मोह से प्रेरित है, प्रत्यक्ष बाधित है और सही नही है। श्री अगरचन्द नाहटा ने भी इस मान्यता को अमान्य किया है[33]।

३. श्री अगरचन्द नाहटा अपने एक ही लेख में एक जगह इस स्तभ को राणा कुंभा के विजय-स्तभ से बहुत पूर्व का बना सिद्ध करते है[34] और दूसरी जगह अनुमान लगाते है कि यह स्तंभ संवत १५०० के आस पास बना होगा[35]। राणा कुंभा का विजय स्तभ स० १४९७ मे प्रारंभ होकर स० १५०५ में बन कर पूर्ण हुआ और उसकी औपचारिक प्रतिष्ठा भी उसी वर्ष माघ कृष्णा दशमी को हुई[36]। इस तथ्य से नाहटा जी का अन्तिम अनुमान उनके पूर्वानुमान का विरोधी तथा वस्तुतः गलत सिद्ध होता है।

४. शेष विद्वानों और कला पारखियों के मतानुसार—

अ—इस स्तभ का निर्माण ग्यारहवी—बारहवीं शताब्दी ईस्वी मे हुआ।

ब—इसके समीप एक जिनालय था जो कालान्तर मे नष्ट हो गया तथा सभवतः उसी के अवशेषों पर वर्तमान मन्दिर का निर्माण हुआ।

स—विक्रम सं० १४९५ के आसपास इस स्तभ का जीर्णोद्धार संपन्न हुआ। उसी समय समीपस्थ जिनालय का भी जीर्णोद्धार हुआ। जीर्णोद्धार का यह कार्य महाराणा कुंभा के राज्यकाल में सन् १४२८ ई० में ओसवाल महाजन गुणराज ने कराया था यह निर्विवाद है।

**कीर्तिस्तम्भ की कला तथा आसपास का पुरातत्त्व :**

ऊपर हम भली भाँति देख चुके है कि कला की कसौटी पर प्रायः सभी विद्वानों ने इस स्तभ को राणा कुंभा के विजय स्तभ से श्रेष्ठ, प्राचीन और महत्त्वपूर्ण माना है। स्तभ की संयोजना तथा उस पर उत्कीर्णित सैकड़ो जैन प्रतिमाओं के शारीरिक अनुपात आदि को देखने से भी यह बात भली प्रकार समझी जा सकती है। जब राणा कुंभा के विजय स्तंभ का निर्माण काल (स० १५०५ विक्रम) सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट और सर्वमान्य है तब जैन कीर्तिस्तभ की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए हमें उसकी तुलना बहुत अधिक शिल्पावशेषों से करने की आवश्यकता नही पड़ेगी। केवल विजय स्तंभ की कला से अपने स्तंभ की कला को तौल कर ही हमें निश्चय हो जाता है कि इन दोनों के निर्माणकाल मे लगभग दो सौ वर्षो का अन्तर अवश्य है।

प्रसगवश मै यहाँ दोनों स्तभों के निर्माण के सबन्ध मे यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि दोनों ही स्तभ देव प्रासादों के सामने कीर्ति स्तंभो की तरह स्थापित किये गये थे। जैन स्थापत्य मे जिस प्रकार जिनालय के समक्ष मानस्तभ बनाने की परम्परा है उसी प्रकार वैष्णव परम्परा मैं भी मन्दिरो के सामने विष्णुध्वज आदि के नाम से कीर्तिस्तंभ बनाने की परपरा मिलती है। राणा कुंभा का विजयस्तभ भी वस्तुतः उनके कुंभ स्वामी मन्दिर के सामने बनवाया गया विष्णु स्तभ ही है। भ्रम वश लोग इस स्तभ का निर्माण मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी तथा गुजरात के सुलतान कुतुबुद्दीन की सयुक्त सेना पर महाराणा कुंभा की विजय की स्मृति स्वरूप मानने लगे है। वस्तुस्थिति तो यह है कि उक्त विजय विक्रम स० १५१४ मे हुई थी[37]। अतः नौ वर्ष पूर्व ही उस विजय की स्मृति स्वरूप विजय स्तभ का निर्माण कैसे हो सकता है ?

महाराणा कुंभा के राज्यकाल (१४३३–१४६८ ई०) मे जैन मन्दिरों का निर्माण और मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी बहुतायत से हुई है। प्रायः इस समस्त निर्माण का इतिहास भी उपलब्ध है। यदि जैन कीर्तिस्तभ का निर्माण इस काल में हुआ होता तो उसका भी उल्लेख इनके बीच अवश्य होता। इससे भी ज्ञात होता है कीर्तिस्तंभ इसके बहुत पूर्व बन चुका था और जब इन अनेक मन्दिरों का निर्माण हो रहा था तब तक कीर्तिस्तंभ और उसके समीपस्थ जिनालय का जीर्णोद्धार होने लगा था।

---

३३. अनेकान्त वर्ष ८, पृष्ठ १४१

३४. वही पृष्ठ १४०

३५. वही पृष्ठ १४३

३६. कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति श्लोक १८९

३७. विजयशकर श्रीवास्तव, राजस्थान भारती, महाराणा कुम्भा विशेषांक मार्च १९६३ पृष्ठ ४६.

महाराणा कुभा का राज्यकाल विक्रम संवत १४६० से १५२५ तक रहा। जैन मन्दिरों के निर्माण की दृष्टि से भी यह काल महत्त्वपूर्ण है। राणकपुर और शृगार चौरी जैसे कलापूर्ण जिनालय इसी काल में बने। महाराणा कुंभा के प्रीति पात्र शाह गुणराज ने अजारी, पिंड वाडा (सिरोही तथा सालेरा (उदयपुर) मे नवीन जिनालय बनवाये तथा कई पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया। बसन्तपुर और भूला मे भी जैन मन्दिर बने। नागदा की ६ फुट ऊँची शातिनाथ प्रतिमा तथा देलवाडा की अनगिनती प्रतिमायें, आबू, बसन्तपुर तथा अचलगढ़ की सैकडो प्रतिमाये इसी काल की कृति है। मूर्ति स्थापन के अतिरिक्त जैन मन्दिरो के जीर्णोद्धारका कार्य भी हुआ। चित्तौड दुर्ग स्थित जैन स्तभ के निकट वाले महावीर स्वामी के मन्दिर का जीर्णोद्धार महाराणा कुभा के समय में ही वि० सं० १४६५ मे ओसवाल महाजन गुणराज ने कराया था[३८]।

इस प्रकार हम देखते है पन्द्रहवी शताब्दी ईस्वी मे जिस जैन स्थापत्य का निर्माण हुआ उसके बीच इस कीर्ति स्तंभ का कहीं उल्लेख नही मिलता, उल्टे उस काल मे इस स्तंभ का तथा इसके समीपस्थ जिनालय का जीर्णोद्धार हुआ ऐसा वर्णन प्राप्त होता है। ऐसे प्रशस्त स्तभ को जीर्णोद्धार की अवस्था तक पहुँचाने मे स्वाभाविक ही कम से कम दो ढाई सौ साल तो लगे ही होगे। उपरोक्त अनेको मन्दिरो तथा सैकडो मूर्तियों की शैली, परिकर, सज्जा आदि से इस स्तभ की शैली, परिकर, सज्जा आदि का मिलान करने पर भी निर्माण काल का यह अन्तर परिलक्षित होता है।

**नांद गाँव का प्रतिमा लेख :**

अब हम इतिहास के उस इकलौते तथ्य पर विचार करेंगे जिसका उद्घाटन भारतीय पुरातत्त्वके महान शोधक विद्वान मुनि कांति सागर ने किया और जिसके एकमात्र आधार पर उन्होंने चित्तौड के इस स्तंभ के निर्माण काल विषयक, पूर्व मान्यता प्राप्त धारणा को बदलने का प्रयास किया। यह लेख सवत् १५४१ का है और मुनि जी ने नान्द गाँव की एक प्रतिमा पर इसे पढ़ा था। पहिली बात तो यह है कि इस लेख को और मुनि जी द्वारा कल्पित उसके संदर्भित अर्थ को यदि एक दम सही मान लें तो स० १५४१ का यह लेख कीर्तिस्तभ के निर्माता शाह जीजा की तीसरी या चौथी पीढी में अंकित हुआ। यह लेख स्वयं ही पन्द्रहवी शताब्दी ईस्वी (सन् १४८४) में लिखा गया। इस प्रतिमा लेख के अनुसार भी इस तिथि मे से चार पीढियों का समय घटाना पड़ेगा। इसके बावजूद भी मुनि जी ने इस स्तंभ को सोलहवी शताब्दी की कृति माना है[३९]। मुझे लगता है यह भूल या तो मुनि जी की सामग्री की प्रेस कापी करने वाले के प्रमाद का फल है या फिर प्रेस के भूतो की कृपा। जो हो, मगर इस भूल के कारण अनेक लोग दिग्भ्रमित हुए इसमें सन्देह नही।

वास्तव मे यह लेख अस्पष्ट है और अधूरा ही पढा जा सका है। स्वय मुनि जी ने ही यह बात स्वीकार की है। इस लेख का अभिप्रेत भाग इस प्रकार है—

× × × मेद पाट देशे चित्रकूट नगरे श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र चैत्यालय स्थाने निज भुजोपार्जितवित्तबलेन श्री कीर्तिस्तभ आरोपक शाह जिजा सुत शाह पुर्नसिहस्य······ ······साहदेउ तस्य भार्या पुई तुकार। × × ×"

यहाँ शाह जीजा के पुत्र साह पुर्नसिह के नाम के आगे एक शब्द या तो मिट गया प्रतीत होता है या प्रमादवश लिखने से छूट गया लगता है। अधिक सभावना इसी की है कि यह शब्द मिट गया या अस्पष्ट हो गया है और मुनि जी के पढने मे नही आया। इस शब्द का स्थान शायद इसीलिए मुनि जी ने इस लेख को उद्धरित करते समय तीनो जगह, "श्रमण सस्कृति और कला" मे, खण्डहरो का वैभव" में तथा अनेकान्त वर्ष ८ मे खाली छोडकर·········इस प्रकार के डाट रखकर इस शब्द का सकेत निर्देश किया है। यह शब्द क्या रहा होगा इसका यदि अनुमान किया जा सके तो हम लेख का अधिक निर्दोष अर्थ प्राप्त कर सकते है।

मेरे विचार से यहाँ पर **"आम्नाये"** या **"वशे"** जैसा कोई शब्द होना चाहिए। इस शब्द के साथ पढने पर सिद्ध होगा कि कीर्तिस्तभ के सस्थापक शाह जीजा के पुत्र

---

३८. वही पृष्ठ ५६

३९. खण्डहरो का वैभव पृष्ठ १२१

पुनसिंह के वंश में उत्पन्न शाह देउ ने सं० १५४१ मे यह लेख अंकित कराया। ऐसा पढने पर यह लेख इतिहास सम्मत भी हो जायगा तथा लेखों की परंपरा के अनुसार भी इसकी संगति अधिक ठीक बैठ जायगी। अपनी इस धारणा की पुष्टि में मैं तीन प्रमाण विद्वानों के विचारार्थ यहाँ प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

१. अकोला के सेनगण दिगंबर जैन मन्दिर में पीतल की नन्दीश्वरी बावन चैत्यालय प्रतिमा पर इसी संवत् १५४१ का इन्हीं सज्जनों द्वारा अंकित कराया ठीक ऐसा ही एक महत्त्वपूर्ण प्रतिमा लेख प्राप्त हुआ है। यह लेख श्रीमान् पं० नेमचन्द धन्नूसा ने अपने लेख मे प्रकाशित किया है[४०]। अन्तर केवल इतना है कि नान्द गाँव का लेख सं० १५४१ के ज्येष्ठ शुक्ला ६ शुक्रवार का है और यह लेख ज्येष्ठ शुक्ला ११ भानुवार (रविवार) का है। वैसे जब छटमी शुक्रवार को पडेगी तो एकादशी किसी भी प्रकारभानुवार को नही हो सकती अतः यह भानुवार—भौमवार की जगह प्रमाद से लिखा गया प्रतीत होता है, पर यह एक अलग विषय है।

इस लेख का प्रयोजनीय भाग बहुत स्पष्ट है—

"××× चित्रकूट नगरे श्री कीर्तिस्तंभस्यारोपक सा. जिजा सुत साह **पुन सिंहस्य आम्नाये** सा. देउ भार्या तुकाई तयोः पुत्राश्चत्वारः।×××"

अकोला के इस प्रतिमा लेख के उल्लेख के बाद इस संबन्ध में विशेष कुछ कहने को नही रह जाता।

२. बाणपुर (जिला टीकमगढ़, म० प्र०) मे दसवी ग्यारहवी शताब्दी का एक सुन्दर, चतुर्मुख, सहस्रकूट, शिखर बंद मन्दिर बना हुआ है। मैंने एक प्रथक् लेख मे इस मन्दिर का सचित्र वर्णन प्रकाशित किया है[४१]।

इसी मन्दिर के निर्माताओ के वंशधरों ने आगे चल कर स० १२३७ में अहार (टीकमगढ़, म० प्र०) की सुप्रसिद्ध और १८ फुट उत्तुग शातिनाथ प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराई। इस प्रतिमा के मूर्तिलेख का प्रारभ निर्माताओं ने अपने पूर्वजों द्वारा निर्मित बाणपूर सहस्रकूट चैत्यालय के स्मरण से ही किया है। यह मूर्तिलेख इस प्रकार है—

**ॐ नमो वीतरागाय**

**ग्रहपति वंश सरोरुह सहस्र रश्मिः सहस्र कूटं यः।**
**बाणपुरे व्यधितासीत् श्रीमानिह देवपाल इति॥**
**श्री रत्नपाल इति तत्तनयो वरेण्यः।**
**पुण्यैक मूर्तिरभवद् वसु हाटिकायाम्॥**
**कीर्तिर्जगत्त्रयपरिभ्रमणश्रमार्ता।**
**यस्य स्थिराजनि जिनायतनच्छलेन॥**
..............................
..............................
..............................

**सोऽय श्रेष्ठि वरिष्ठ गल्हण इति, श्रीरल्हणख्यादि भूत्॥**
**तस्मादजायत कुलाम्बर पूर्णचन्द्रः।**
**श्री जाहडस्तनुजोदयचन्द्रनामा॥**[४२]

इस लेख मे स्पष्ट हो कहा गया है कि सहस्रकूट के निर्माता देवपाल रत्नपाल आदि पूर्वजों के श्रेष्ठि गल्हण-रल्हण आदि वंशज हुए। मूर्तिकला की दृष्टि से भी अहार की मूर्ति और बाणपुर के मन्दिर के निर्माताओं में छह सात पीढियों का अन्तर सहज ही निर्धारित किया जाता है।

३. खजुराहो के जगत प्रख्यात पारसनाथ मन्दिर का निर्माण संवत् १०११ में पाहिल नामक श्रेष्ठि द्वारा हुआ था। इस मन्दिर के शिलालेख का प्रारम्भ इस प्रकार होता है —

**ॐ सवत् १०११ समये। निजकुल धवलोय-दिव्य मूर्तिः स्वशील, सम दम गुण युक्त—सर्व सत्त्वानुकम्पी॥ स्वजन जनित तोषो धग राज्येन मान्यः। प्रणमति जिन नाथोय भव्य पाहिल नामा**[४३]।

इस लेख से पाहिल द्वारा संवत् १०११ मे इस जिनालय के निर्माण की स्पष्ट पुष्टि होती है। खजुराहो के ही

४०. अनेकान्त वर्ष २१, पृष्ठ ८४
४१. अनेकान्त वर्ष १६ पृष्ठ ५१
४२. नीरज जैन, अतिशय क्षेत्र अहार, अनेकान्त अक्टूबर १९६५, पृष्ट १७८.
४३. नीरज जैन एवं दशरथ जैन, जैन मानुमेन्ट्स एट खजुराहो—पृष्ठ ३३.

मन्दिर नं० २७ में संवत् १२१५ की प्रतिष्ठित एक काले पाषाण की सभवनाथ की प्रतिमा स्थापित है। इस प्रतिमा के मूर्तिलेख में भी पाहिल का उल्लेख हुआ है। यथा—

ॐ **संवत् १२१५ माघ सुदि ५ श्रीमान मदनवर्म्म देव प्रवर्धमानविजयराज्ये। गृहपति वंशे श्रेष्ठि देदू तत्पुत्र पाहिल्लः। पाहिलांग रह साधु साल्हेनेदं प्रतिमा कारतेति**.........[४४]

अब इन दोनों शिलालेखों के सन्दर्भ में यदि हम सं० १०११ में प्रवर्तमान पाहिल के पुत्र के रूप में साधु साल्हे आदि को स्वीकार करें, जिन्होने २०४ वर्ष उपरान्त स० १२१५ मे यह मूर्ति पधराई; तो बड़ी गड़बड़ हो जायगी। यहाँ भी हमें **पाहिलांग रह साधु साल्हेन** शब्दों का यही अर्थ करना पड़ेगा कि—"पाहिल के वश मे उत्पन्न साधु साल्हे द्वारा यह प्रतिमा पधराई गई। पाहिल का यह वंशज कितने काल पश्चात् हुआ यह निर्णय हम प्रतिमा लेख के सवत से करेगे, पाहिल के नामोल्लेख से नही।

४४. वही पृष्ठ ५१

इस प्रकार शिलालेखों, मूर्तिलेखोंकी परपरासे भी सिद्ध होता है कि नाद गाँव व (अकोला) के सवत् १५४१ के मूर्तिलेख चित्तौड़ में कीर्तिस्तभ के निर्माता शाह जीजा के पुत्र पुर्नसिह की आम्नाय में या वश परपरा में उत्पन्न साह देउ नामक ग्रहस्थ द्वारा अकित कराये गये। कीर्ति स्तंभ के निर्माण काल की शोध में हमें इससे इतनी ही सहायता मिलेगी कि उस महान् निर्माता शाह जीजा की अविच्छिन्न वश परंपरा और उसके वशजों की धार्मिक निष्ठा स० १५४१ तक सुरक्षित और प्रवर्तमान थी।

कीर्ति स्तंभ के निर्माण काल की जानकारी करने के लिए हमें या तो उसकी निर्माण शैली पर से अनुमान लगाना पडेगा या भारतीय पुरा विद्या के विशेषज्ञों की बात माननी पडेगी, और इस लेख में मेने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ये दोनो ही तथ्य बहुत स्पष्ट रूप में और बड़ी दृढता से यह घोषित करते हैं कि दिगबर जैन स्थापत्य कला का यह अद्भुत प्रतीक ईसाकी बारहवी शताब्दी मे या उसके कुछ वर्ष पूर्व ही निर्मित हुआ था, पश्चात् नही।

## परिशिष्ट

### नांद गांव को मूर्ति का लेख—

**स्वस्ति श्री संवत् १५४१ वर्षे शाके (१४०६) प्रवर्तमाने कोधीता संवत्सरे उत्तरगणे [ज्येष्ठ] मासे शुक्ल पक्षे ६ दिने शुक्रवासरे स्वाति नक्षत्रे......योगेर कणे मि० लग्ने श्री वराट् (ड़) देशे कारंजा नगरे श्री सुपार्श्व नाथ चैत्यालये श्री (? मू)लसघे सेनगणे पुष्करगच्छे श्रीमत्-वृषसेन [वृषभसेन] गणधराचार्य पारंपर्योद्गत श्रीदेववीर भट्टाचार्याः ? तेषां पट्टे श्रीमद् भाय[राय] राजगुरु वसुन्धराचार्य महावाव वादीश्वर रायवादपिर्वा [पिता] महा [मह] सकल विद्वज्जन सार्घ(र्व) भौम साभिमान वादीभसिंहाभिनय [व] त्रै विद्य [विद्य] सोमसेन भट्टारकाणामुपदेशात् श्री वघेरवालजाति लडवाड गोत्रे अष्टोत्तर शतमहोत्तुंग शिखरबद्ध प्रासाद समुद्धरण धीर त्रिलोक श्री जिन महाबिम्बोद्धारक-अष्टोत्तर-शत् श्री जिन महाप्रतिष्ठा कारक अष्टादशस्थाने अष्टादशकोटि श्रुतभण्डार संस्थापक, सवालक्षबन्दी मोक्षकारक, मेदपाटदेशे चित्रकूट नगरे श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र चैत्यालयस्थाने निजभुजोपार्जित वित्तबलेन श्रीकीर्तिस्तम्भ आरोपक साह जिजा सुत सा० पुर्नसिहस्य [आम्नाये] सा० देउ तस्यभार्या पुई तुकार तयोः पुत्राश्चत्वारः तेषु प्रथम पुत्र साह लखमण..............चैत्यालयोद्धरणधीरेणनिजभुजोपार्जित वित्तानुसारे महायात्रा प्रतिष्ठा तीर्थक्षेत्र.........।** (अपूर्ण)

—खण्डहरों का वैभव पृ० १२५

# पिण्डशुद्धिके अन्तर्गत उद्दिष्ट आहार पर विचार

**बालचन्द्र सिद्धान्त-शास्त्री**

श्री १०८ पूज्य आ० शिवसागर जी व उनके संघस्थ मुनि श्रुतसागर जी महाराज की अनुमति से श्री ब्र० प्यारेलाल जी बड़जात्या के द्वारा पत्रों में प्रकाशित 'उद्दिष्ट आहार पर विचार' शीर्षक में ज्ञातव्य विषय उद्दिष्ट आहार को अपेक्षित देखकर उसके विषय मे आगमानुसार कुछ लिखना अभीष्ट प्रतीत हुआ। इस विषय का विशेष विवरण मूलाचार के पिण्डशुद्धि अधिकार में उपलब्ध होता है। वहां भोजनशुद्धि के विषय मे यह गाथा कही गई है—

**उग्गम उप्पादण एसणं च सजोजण पमाणं च ।**
**इगाल धूम कारण अट्ठविहा पिंडसुद्धी दु'[1] ॥२॥**

उद्गम दोष (१६), उत्पादन दोष (१६), अशन दोष (१०), संयोजना दोष, प्रमाण दोष, अंगार दोष, घूम दोष और कारण; इस प्रकार पिण्डशुद्धि आठ प्रकारकी कही गई है।

**१ उद्गम दोष**—दाता जिन मार्गविरोधी प्रवृत्तियों से भोजन को उत्पन्न करता है उन प्रवृत्तियों को उद्गम दोष के नाम से कहा जाता है। ये उद्गम दोष १६ कहे गये हैं।

**२ उत्पादन दोष**—पात्रस्वरूप साधु जिन मार्गविरोधी अभिप्रायो से भोजन को प्राप्त करता है वे उत्पादन दोषो के अन्तर्गत हैं[2]। ये उत्पादन दोष भी १६ ही कहे गये हैं।

**३ अशन दोष**—ये भोजनविषयक दोष परोसने वाले आदि से सबन्ध रखते है। ये संख्या मे दस हैं[3]।

**४ संयोजना दोष**—शीत-उष्ण या सचित्त-अचित्त अन्न-पान का सयोग करना, यह संयोजना दोष कहलाता है[4]।

**५ प्रमाण दोष**—अत्यधिक आहार के करने पर प्रमाण दोष उत्पन्न होता है[5]।

अत्यधिक आहार का स्पष्टीकरण करते हुए प. आशाधर जी ने कहा है कि उदर के चार भागो में से दो भागों को व्यंजन (दाल-शाक आदि) के साथ भोजन से तथा एक भाग को पानी आदि से पूर्ण करके शेष एक भाग को वायुसंचरण आदि के लिये रिक्त रखना चाहिए। इसका अतिक्रमण करने से अतिक्रम नाम का दोष होता है।[6]

---

१ पिंडे उग्गम उप्पायणेसणा[सं] जोयणा पमाण च ।
इंगाल धूम कारण अट्ठविहा पिंडनिज्जुत्ती ॥ पि. नि.१

भगवती-आराधनामे इन दोषों का उपयोग आहार के साथ शय्या—वसतिका—और उपधि के विषय मे भी किया गया है। यथा—

उग्गम-उप्पादण-एसणाविसुद्धाए अकिरियाए दु ।
वसदि असंसत्ताए णिप्पाहुडियाए सेज्जाए ॥२३०॥
उग्गम-उप्पायण-एसणाहि पिंडमुवधि सेज्ज च ।
सोधितस्स य मुणिणो विसुज्झए एसणासमिदी ॥११६७

२ यैरभिप्रायैर्दातृ-पात्रगतैराहारादिस्ते उद्गमोत्पादन-दोषाः आहारार्थानुष्ठानविशेषाः। मूला. वसु. वृत्ति ६-२
दातुः प्रयोगा यत्यर्थे भक्तादौ षोडशोद्गमाः ।
औद्देशिकाद्या धात्र्याद्याः षोडशोत्पादना यतेः ॥
भक्ताद्युद्गच्छत्यपथ्यैर्यैरुत्पाद्यते च ते ।
दातृ-यत्योः क्रियाभेदा उद्गमोत्पादनाः क्रमात् ॥
अन. ध. ५-२ व ४.

३ अश्यते भुज्यते येभ्यः पारिवेषिकेभ्यस्तेषामशुद्धयो-ऽशनदोषाः। मूला. वृत्ति ६-२.

४ सजोयणा य दोसो जो संजोएदि भत्त-पाण च ।
मूला. ६-५७ पू.; अन. ध. ५-३७.

५ अदिमत्तो आहारो पमाणदोसो हवदि एसो ।
मला. ६-५७ उ.

६ अद्धमसणस्स सव्विजणस्स उदरस्स तदियमुदयेण ।
वाऊसचरणट्ठं चउत्थमवसेसये भिक्खू ॥ मूला. ६-७२
सव्यञ्जनाशनेन द्वौ पानेनैकमशमुदरस्य ।
भृत्वाऽभृतस्तुरीयो मात्रा तदतिक्रमः प्रमाणमलः ॥
अन. ध. ५-३८.

प्राकृतिक आहार का प्रमाण पुरुष का ३२ ग्रास और महिला का २८ ग्रास है[1]। एक ग्रास का प्रमाण एक हजार (१०००) चावल मात्र है[2]।

६ **अंगार दोष**—मूर्छित होकर—आसक्तिपूर्वक—आहार करने से अगार दोष होता है[3]।

७ **धूम दोष**—भोजन को प्रतिकूल जानकर निन्दा का भाव रखते हुए आहार करने पर धूम दोष उत्पन्न होता है[4]।

८ **कारण**—आहार ग्रहण के छह कारण है, जिनके आश्रय से धर्म का आचरण हो सकता है। तथा छह ही कारण ऐसे है जिनके आश्रय से आहार ग्रहण करने पर धर्म से विमुख रह सकता है, अतः वे परित्याज्य है[5]। ये दोनो प्रकारके कारण इस प्रकार है—

१ क्षुधा की वेदना, २ वैयावृत्य, ३ आवश्यक क्रियाओ का परिपालन, ४ सयमका परिपालन, ५ प्राणों की स्थिति और ६ धर्मचिन्ता; इन कारणो से भोजन लेना धर्म का साधक होने से आवश्यक है[6]।

१ आतंक—रुग्णावस्था, २ मुनिधर्म का विघातक देव-मनुष्यादिकृत उपद्रव, ३ ब्रह्मचर्यका सरक्षण, ४ प्राणि-दया—बहुघात का परिहार, ५ तप के निमित्त और ६ शरीरपरिहार—समाधिमरण; इन कारणों से धर्म के संरक्षणार्थ भोजन का परित्याग करना आवश्यक है[7]।

उपर्युक्त उद्गमादि दोषो को विविध ग्रन्थो के आधार से निम्न तालिकाओं द्वारा ज्ञात कीजिए—

**१६ उद्गम दोष**

| | मूलाचार (६,३-४) | आचारसार (८,१९-२०) | अन. ध. (५,५-६) | पिण्डनिर्युक्ति (९२-९३) |
|---|---|---|---|---|
| १ | औद्देशिक | उद्दिष्ट | उद्दिष्ट | आधाकर्म |
| २ | अध्यधि | अध्यवधि | साधिक | औद्देशिक |
| ३ | पूति | पूति | पूति | पूतिकर्म |
| ४ | मिश्र | मिश्र | मिश्र | मिश्रजात |
| ५ | स्थापित | स्थापित | प्राभृतक | स्थापना |
| ६ | बलि | बलि | बलि | प्राभृतिका |
| ७ | प्रावर्तित (पाहुडिह) | प्राभृत | न्यस्त | प्रादुष्करण |
| ८ | प्रादुष्कार | प्रावि.कृत | प्रादुष्कृत | क्रीत |
| ९ | क्रीत | क्रीत | क्रीत | अपमित्य (पामिच्चे) |
| १० | प्रामृष्य (पामिच्छ) | प्रामुष्य | प्रामित्य | परिवर्तित |
| ११ | परिवर्तक | परिवृत | परिवर्तित | अभिहृत |
| १२ | अभिघट (अभिहिड) | अभिहत | निषिद्ध | उद्भिन्न |
| १३ | उद्भिन्न | उद्भिन्न | अभिहृत | मालापहृत |

---

१ बत्तीस किर कवला आहारो कुक्खिपूरणो होइ।
पुरुसस्स महिलियाए अट्ठावीस हवे कवला॥
भ. आ. २११; मूला. ५-१५३; पि. नि. ६४२.
('कुक्खिपूरणो होइ' के स्थान में यहाँ 'कुच्छिपूरओ भणिओ' पाठ है)।

२ ग्रासोऽश्रावि सहस्रतदुलमितो········। भ. आ. मूलाराधना टीका २११ मे उद्धृत।

३ त होदि सयगाल ज आहारेदि मुच्छिदो संतो।
मूला. ६-५८ पू.; पि. नि. ६५५ पू.

४ तं पुण होदि सधूम ज आहारेदि णिंदिदो।
मूला. ६-५८ उ.; पि. नि. ६५५ उ. (णिंदिदो–निंदंतो)

५ छहि कारणेहि असण आहारंतो वि आयरदि धम्मं।
छहि चेव कारणेहि दु णिज्जुहवंतो वि आचरदि॥
मूला. ६-५९.

छहिं कारणेहिं साधू आहारितो वि आयरइ धम्मं।
छहि चेव कारणेहि णिज्जूहितोऽवि आयरइ॥
पि. नि. ६६१.

६ वेयण-वेज्जावच्चे किरियाठाणे य संजमट्ठाए।
तध पाण-धम्मचिता कुज्जा एदेहि आहारं॥ मूला.६-६०

वेयण-वेयावच्चे इरियट्ठाए य संजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए छट्ठं पुण धम्मचिंताए॥पि.नि. ६६२
(आगे की गा. ६६३-६४) द्वारा इन छह कारणों का यहाँ स्पष्टीकरण भी किया गया है।)

७ आदके उवसग्गे तिर-[तिति-]क्खणे बभचेरगुत्तीओ।
पाणिदया-तवहेऊ सरीरपरिहार वोच्छेदो॥ मूला.६-६१
आयंके उवसग्गे तितिक्खया बभचेरगुत्तीसु।
पाणिदया तवहेउ सरीरवोच्छेयणट्ठाए॥ पि. नि. ६६६

| | | | |
|---|---|---|---|
| १४ मालारोहण | मालिकारोहण | उद्‌भिन्न | आच्छेद्य |
| १५ आच्छेद्य | आच्छेद्य | आच्छेद्य | अनिसृष्ट |
| १६ अनिसृष्ट (अणिसिट्ठ) | अनिसृष्ट | आरोह | अध्यवपूरक |

### १६ उत्पादन दोष

| मूलाचार (६.२६-२७) | आ. सा. (८,३५-३६) | अन. ध. (५-१९) | (पि. नि. ४०३ व ४०८-९) |
|---|---|---|---|
| १ धात्री | धात्री | धात्री | धात्री |
| २ दूत | दूत | दूत | दूति |
| ३ निमित्त | भिषग्वृत्ति | निमित्त | निमित्त |
| ४ आजीव | निमित्त | वनीपक | आजीव |
| ५ वनीपक | इच्छाविभाषण | आजीव | वनीपक |
| ६ चिकित्सा | पूर्वस्तुति | क्रोध | चिकित्सा |
| ७ क्रोधी | पश्चात्स्तुति | मान | क्रोध |
| ८ मानी | क्रोध | माया | मान |
| ९ मायी | मान | लोभ | माया |
| १० लोभी | माया | प्राग्नुति | लोभ |
| ११ पूर्वस्तुति | लोभ | अनुनुति | पूर्वसस्तव |
| १२ पश्चात्स्तुति | वश्यकर्म | वैद्यक | पश्चात्सस्तव |
| १३ विद्या | स्वगुणस्तवन | विद्या | विद्या |
| १४ मत्र | विद्या | मत्र | मत्र |
| १५ चूर्णयोग | मत्र | चूर्ण | चूर्णयोग |
| १६ मूलकर्म | चूर्णोपजीवन | वश | मूलकर्म |

### १० अशनदोष

| मूलाचार (६-४३) | आ. सा. (८-४५) | अन. ध. (५-२८) | पिंडनिर्युक्ति (५१४-१५,५२०) |
|---|---|---|---|
| १ शकित | शकित | शकित | शकित |
| २ म्रक्षित | म्रक्षित | पिहित | प्रक्षिप्त (मक्खिय) |
| ३ निक्षिप्त | निक्षिप्त | म्रक्षित | निक्षिप्त |
| ४ पिहित | पिहित | निक्षिप्त | पिहित |
| ५ संव्यवहरण | उज्भित | छोटित | सहृत |
| ६ दायक | व्यवहार | अपरिणत | दायक |
| ७ उन्मिश्र | दातृ | साधारण | उन्मिश्र |
| ८ अपरिणत | मिश्र | दायक | अपरिणत |
| ९ लिप्त | अपक्व | लिप्त | लिप्त |
| १० त्यक्त | लिप्त | विमिश्र | छर्दित (छड्डिय) |

### ४ इतर दोष

| मूला. (६,५७-५८) | आ. सा. (८,५४-५७) | अन. ध. (५, ३७-३८) | पिं नि. |
|---|---|---|---|
| १ सयोजना | संयोजन | अगार | संयोजना (६२९-४१) |
| २ प्रमाण | प्रमाण | धूम | प्रमाण ६४२ |
| ३ अंगार | अंगार | सयोजना | अंगार ६५६-५७ |
| ४ धूम | धूम | प्रमाण | धूम ६५८-५९ |

### अधःकर्म

सोलह उद्‌गम दोषो मे पहिला अधःकर्म और दूसरा औद्देशिक है[१]।

पृथिवीकायिकादि छह जीवनिकायो की विराधना और उपद्रवण—जीवों को उपद्रवित (पीडित) करना[२]—आदिसे जो सिद्ध हो, वह चाहे स्वय किया गया हो या

१ मूलाचार मे इन उद्‌गम दोषोका नामनिर्देश गा. ६, ३-४ द्वारा किया गया है। तदनुसार ये दोष १७ होते है। पर अन्त में 'उग्गमदोसा दु सोलसिमे' कह-कर उनकी संख्या १६ ही निर्दिष्ट की गई है।

इसकी वृत्ति मे आ. वसुनन्दी ने प्रकृत अधःकर्म को पिण्डशुद्धि के बाह्य महादोष कहा है। यथा—गृहस्थाश्रितं पचसूनासमेत तावत् सामान्यभूतमष्टवि-धा पिण्डशुद्धि बाह्य [विधपिण्डशुद्धिबाह्यं] महा-दोषरूपमधःकर्म कथ्यते।

पं. आशाधर जी इस अधःकर्म को स्पष्टतया छया-लीस दोषो से बाह्य मानते है। यथा—

षट्चत्वारिंशता दोषैः पिण्डोऽधःकर्मणा मलैः।
द्विसप्तैश्चोज्भितोऽविघ्न योज्यस्त्याज्यस्तथार्थतः॥

अन. ध. ५-१

२ जीवस्य उपद्रवण ओद्दावण णाम। धवला पु. १३, पृ. ४६.

दूसरे से कराया गया हो, अधःकर्म कहलाता है[1]।

इस अधःकर्म से परिणत—अपने लिए किया गया है, इस प्रकार मानने वाला[2]—साधु प्रासुक द्रव्य के ग्रहण करने पर भी बन्धक कहा गया है और इसके विपरीत जो शुद्ध—अधःकर्म से विशुद्ध—आहार को खोज रहा है वह अधःकर्म के होने पर भी शुद्ध माना गया है[3]।

पं० आशाधर जी ने इसे कुछ विकसित कर यह कह दिया है कि अध.कर्म करने वाला गृहस्थ ही पापका भागी होता है, साधु नही। जैसे—जलाशय मे मछलियो को मूर्छित करनेवाले चूर्ण आदि के डालने पर मछलियाँ ही विह्वल होती है, मेढक नही[4]।

मूलाचार मे आगे यह स्पष्टतापूर्वक निर्देश कर दिया गया है कि प्रासुक होने पर भी यदि वह अपने लिए किया गया है तो वह अशुद्ध—अग्राह्य—ही है। उपर्युक्त प. आशाधरजी का उदाहरण यहाँ है ही, पर वह इस प्रकार से है—जिस प्रकार मछलियों को लक्ष्य कर जलमें प्रक्षिप्त मादक चूर्ण आदि से मादक हुए जलके सम्बन्ध से मछलियाँ ही विह्वल होती है, मैंढक नही; इसी प्रकार पर के लिए (अपने लिए नही) किए गए आहार के ग्रहण में साधु विशुद्ध—निर्दोष—रहता है[5]। अभिप्राय यह है कि यहाँ जो उक्त दृष्टान्त पात्रके लिए दिया गया है उनका उपयोग अनगारधर्मामृत मे दाता के लिए किया गया है।

पिण्डनिर्युक्ति मे इस अधःकर्म या आधाकर्म की निकृष्टता को प्रगट करते हुए कहा गया है कि जो साधु आधाकर्म दोष से दूषित भोजन को खाता है उसके इस दोष की शुद्धि प्रतिक्रमणसे सम्भव नहीं है। वह बोड—मुण्डित-मस्तक—इस प्रकार लोक मे परिभ्रमण करता है जिस प्रकार कि लुचित-विलुचित—सर्वथा बालों से रहित कबूतर इधर-उधर फिरता है। तात्पर्य यह कि अधःकर्म-भोजीकी लोच आदि अन्य क्रियाये सब निरर्थक है[6]।

### औद्देशिक दोष

दूसरा उद्गम दोष औद्देशिक है। उसका स्वरूप इस प्रकार है—

**देवद-पासंडत्थं किविणट्टं चावि जं तु उद्दिसियं।**
**कदमण्ण समुद्देसं चदुव्विहं वा समासेण॥** मूला. ६-६.

अर्थात् नागयक्षादि देवताओं के लिए, पाखण्डियों—जैनदर्शन बाह्य वेषधारी साधुओं—के लिए और कृपण (दीन) जनों के लिए जो भोजन तैयार किया गया है वह औद्देशिक—उद्देश से निर्मित—कहलाता है। अथवा, वह संक्षेप से चार प्रकार का है—

---

१ त ओद्दावण-विद्दावण - परिदावण-आरंभकदणिप्फण्ण त सव्व आधाकम्म णाम। ष. ख. ५,४,२२ (पु. १३, पृ. ४६).
छज्जीवणिकायाणं विराहणोद्दावणादिणिप्पण्णं।
आधाकम्म णेय सय-परकदमादसंपण्णं॥मूला. ६-५.
ओरालसरीराणं उद्दवण तिवायण च जस्सट्ठा।
मणमाहित्ता कीरइ आहाकम्म तयं बेति॥ पि नि. ९७
आधानम् आधा, 'उपसर्गादात:' इत्यङ् प्रत्ययः—साधुनिमित्त चेतसा प्रणिधानम्, यथा अमुकस्य साधोः कारणेन मया भक्तादि पचनीयमिति, आधया कर्म पाकादिक्रिया आधाकर्म, तद्योगाद् भक्ताद्यप्याधाकर्म। ·········यद्वा आधाय—साधु चेतसि प्रणिधाय—यत् क्रियते भक्तादि तदाधाकर्म। पिं. नि. मलय. वृत्ति ९२.

२ प्रासुके द्रव्ये सति यद्यधःकर्मपरिणतो भवति साधुः—यद्यात्मार्थ कृत मन्यते गौरवेण—तदासौ बन्धको भणितः—कर्म बध्नाति। मूला. वृत्ति ६-६८.

३ आधाकम्मपरिणदो पासुगदव्वे वि बधओ भणिओ।
सुद्ध गवेसमाणो आधाकम्मे वि सो सुद्धो॥ मूला. ६-६८

४ योक्ताधःकर्मिको दुष्येन्नात्र भोक्ता विपर्ययात्।
मत्स्या हि मत्स्यमदने जले माद्यन्ति न प्लवाः॥
अन. ध. ५-६८.

५ पगदा असओ जम्हा तम्हादो दव्वदो त्ति तं दव्व।
पासुगमिदि सिद्धे वि य अप्पट्ठकदं असुद्ध तु॥
जह मच्छयाण पयदे मदणुदये मच्छया हि मज्जति।
ण हि मंडूगा एव परमट्ठकदे जदि विशुद्धो॥
मूला. ६, ६६-६७.

६ आहाकम्मं भुंजइ न पडिक्कमए य तस्स ठाणस्स।
एमेव अडइ बोडो लुक्क-विलुक्को जह कवोडो॥
पिं. नि. २१७.

**जावदियं उद्देसो पासंडो त्ति य हवे समुद्देसो ।**
**समणो त्ति य आदेसो णिग्गंथो त्ति य हवे समादेसो**[1] ॥
मूला. ६-७.

उपर्युक्त औद्देशिक भोजन चार प्रकारका है—उद्देश, समुद्देश, आदेश और समादेश । १. जो भी कोई आवेगे उन सभी के लिए भोजन दूंगा, इस उद्देश से निर्मित भोजन को उद्देश औद्देशिक कहा जाता है । २. जो भी पाखण्डी आवेंगे उन सबको भोजन दूंगा, इस प्रकार के उद्देश से जो भोजन बनाया जाता है उसे समुद्देश औद्देशिक कहते है । ३. आजीवक और तापस आदि जितने भी श्रमण—वेषधारी साधु—भोजन के लिए आवेगे उन सभी को आहार दूगा, इस प्रकार श्रमणो के उद्देश से निर्मित भोजन का नाम आदेश औद्देशिक है । ४. जो भी निर्ग्रन्थ साधु आवेगे उन सबके लिए आहार दूगा, इस प्रकार जैन साधुओं को लक्ष्य कर बनाया गया भोजन समादेश औद्देशिक कहलाता है। यह चारो प्रकारका भोजन उद्देश से निर्मित होने के कारण औद्देशिक दोष से दूषित होता है, अतः शुद्धि का विघातक होने से साधु के लिए वह अग्राह्य होता है ।

**पिण्डनिर्युक्ति प्ररूपित औद्देशिक**

पिण्डनिर्युक्ति यह श्वेताम्बर सम्प्रदायका मान्य ग्रन्थ है । यद्यपि दिगम्बर साधु और श्वेताम्बर साधुओंकी गोचरीमे भेद है, फिर भी जैसा कि ऊपरकी तालिकाओं से स्पष्ट है, दोनों सम्प्रदायगत इन दोषों मे बहुत कुछ समानता भी है । इसीलिए तुलनात्मक विचार की दृष्टि से यहाँ पिण्डनिर्युक्ति में जिस प्रकार इस दोषकी प्ररूपणा की गई है उसे भी दे देना उपयोगी प्रतीत होता है ।

यहाँ औद्देशिकके दो भेद निर्दिष्ट किये गये है—ओघ औद्देशिक और विभाग औद्देशिक । ओघका अर्थ सामान्य होता है, अतः सामान्यसे—स्व और पर के विभाग से रहित—जो प्रतिदिन बनाये जाने वाले नियमित भोजनमें भिक्षा देने के विचारसे कुछ और चावल आदि को मिलाकर भोजन बनाया जाता है वह ओघ औद्देशिक कहलाता है और अपने स्वामित्व को हटाकर भिक्षा देनेके लिए जो कुछ मात्रामें भोजन सामग्रीको पृथक् कर दिया जाता है वह विभाग औद्देशिक माना जाता है ।

कभी दुष्काल आदि के पड़ने पर उसमें जीवित बचा रहा गृहस्थ विचार करता है कि मैं इस भीषण दुर्भिक्षमें जीवित बच गया हूँ, अतएव प्रतिदिन कुछ भिक्षा दूंगा । कारण कि पूर्वमें दिया है सो अब भोगनेमें आ रहा है, अब इस समय यदि कुछ पुण्य कार्य न किया जाय तो परलोकमें फल कहाँसे प्राप्त हो सकता है; अतः भिक्षा दानादि पुण्य कार्य करना उचित है । ऐसा विचार होने पर गृहिणी विना किसी प्रकारके विभागके जितना भोजन प्रतिदिन बनाया जाता है उसमे पाखण्डियों या गृहस्थों को भिक्षा दानार्थ कुछ और भी चावल आदिको डालकर भोजन बनाती है । यह ओघ औद्देशिक है ।

यहा यह शका उद्भावित की गई है कि साधु तो छद्मस्थ है—केवल ज्ञानी तो नही है; तब वैसी अवस्था मे वह यह किस प्रकार जान सकता है कि अमुक भोजन उपर्युक्त उद्देशपूर्वक बनाया गया है और अमुक बिना किसी प्रकारके उद्देशके बनाया गया है ?

इसके उत्तर मे कहा गया है कि साधु यदि उपयुक्त है—सावधान है—तो वह गृहस्थकी शब्दादि चेष्टाओसे उसे ज्ञात कर सकता है । जैसे—यदि भिक्षाके सकल्पसे नियमित वनाये जाने वाले भोजनमे कुछ अधिक चावल आदि का प्रक्षेप किया गया है तो वहुधा गृहस्थकी चेष्टा इस प्रकार हुआ करती है—यदि गृह पर भिक्षार्थ कोई साधु पहुँचता है तो गृहपति गृहिणीसे भिक्षा देनेके लिए कहता है । तब वह कहती है कि पाच भिक्षाये प्रतिदिन दी जाती है सो वे इतर साधुओं को दी जा चुकी हैं । अथवा कभी-कभी गृहिणी इन भिक्षाओंकी गणनाके लिए भित्ति आदि पर रेखाये बनाती जाती है, अथवा पहिली व दूसरी आदि गिनती हुई भिक्षा देती है । कभी-कभी प्रमुख गृहिणी बहू आदिसे यह कहती हुई देखी जाती है कि इस पात्रमें से भिक्षा देना—इसमे से नही देना । तथा साधु जब किसी विवक्षित घर पर पहुँचता है तो कोई स्त्री किसी दूसरीसे कहती है कि भिक्षादानार्थ इतनी भोज्य

---

१ उद्देसिय समुद्देसियं च आएसियं च समाएसं ।
एवं कडे य कम्मे एक्केक्कि चउक्कओ भेओ ॥
जावंतियमुद्देसं पासडीणं भवे समुद्देसं ।
समणाणं आएसं निग्गंथाणं समाएसं ॥
पि.नि. २२९-२३०

सामग्री पृथक् कर लो। इत्यादि चेष्टाओं को देख-सुन कर साधु उद्दिष्ट भोजनका अनुमान कर सकता है[1]।

विभाग औद्देशिक उद्दिष्ट, कृत और कर्म के भेद से तीन प्रकार का है। विवाहादि महोत्सवके समय प्रचुर भात व व्यजन आदिको देखकर गृहस्थ किसी कुटुम्बीजन से पुण्य सम्पादनार्थ भिक्षुको के लिए भिक्षा देनेको कहता है। तब यदि जैसा है उसी प्रकार से देता है तो इसे उद्दिष्ट कहा जाता है। यदि भिक्षा देने के लिए पूर्व भोज्य सामग्रीसे कुछ और करम्ब (दध्योदन) आदि नवीन वस्तु बनायी जाती है तो वह कृत कहलाता है। तथा यदि लड्डू आदिका चूर्ण रखा हुआहो और फिरसे चाशनी आदि बनाकर लड्डू आदि बनाये जाते है तो उसका नाम कर्म होता है[2]।

उक्त तीनो विभाग औद्देशिकोमेसे प्रत्येक औद्देशिक, समुद्देशिक, आदेशिक और समादेशके भेदसे चार-चार प्रकारका है[3]। इस प्रकार विभाग औद्देशिकके सब भेद बारह हो जाते हैं। इन उद्दिष्ट औद्देशिक आदिके छिन्न-अच्छिन्न आदि और भी कितते ही अवान्तर भेदोका यहा निर्देश किया गया है[4]।

**भोजन का उद्देश व उसकी विशुद्धि**

साधु जन जो भोजन करते है वह ज्ञान, संयम और ध्यानकी सिद्धिके लिए करने है। वे इसलिए भोजन नही किया करते है कि उससे शरीर बलिष्ठ हो, आयु वृद्धिगत हो, शरीरका उपचय (पुष्टि) हो और वह दीप्तिमान् हो। रसना इन्द्रियके विजेता व अनासक्त होनेसे वे स्वाद के लिए भी भोजन नहीं किया करते[5]।

भोजन भी वे ऐसा ही ग्रहण करते है जो नौ कोटियों—मन, वचन, काय, व कृत, कारित, अनुमोदना—से विशुद्ध हो, ब्यालीस दोषों (उद्गम १६+ उत्पादन १६+ अशन १०=४२) व संयोजनासे विहीन हो, प्रमाणसे युक्त—परिमित—हो, विधिपूर्वक—नवधा भक्तिसे—दिया गया हो, अंगार व धूम दोषोंसे विरहित हो, पूर्वोक्त छह कारणोंसे संयुक्त हो, विपरीत क्रमसे रहित हो, और केवल यात्राका—प्राणधारण अथवा मोक्ष प्राप्तिका—साधन हो। उक्त भोजन नख, रोम, जन्तु, अस्थि, कण (गेहूँ आदिका बाह्य अवयव), कुण्ड (धान आदि भीतरी सूक्ष्म अवयव), पीव, चमडा, रुधिर, मास, बीज, फल (जामुन, आम व आवला), कन्द और मूल; इन चौदह मलों से वर्जित भी होना चाहिए[6]।

इसके अतिरिक्त उस भोजनका जैसे प्रासुक—'प्रगता असव. यस्मात् तत् प्रासुकम्' इस निरुक्तिके अनुसार प्राणिविहीन—होना अभीष्ट है वैसे ही अपने लिए न किया जाना—अनुद्दिष्ट होना—भी अनिवार्य है[7]। (देखिये पीछे पृ १५८)।

**निष्कर्ष**

सबका फलितार्थ यह है कि साधुका मार्ग अतिशय कण्टकाकीर्ण है। उस परसे साधारण पथिकका जाना सम्भव नही है। उस पर से तो वे ही पथिक चल सकते है जो परावलम्बन को छोड़कर स्वावलम्बी बन गये है, जो इन्द्रियोंका दमन कर शरीरसे भी निर्मम हो चुके है, जिन्हें इस लोक व परलोक के वैभव की चाह नहीं रही है, जिनके लिए शत्रु भी मित्र प्रतीत होने लगे है, जो संसारसे विरक्त हो एक मात्र मुक्तिसुखकी प्राप्तिके लिए रत्नत्रयाराधनामे निरत है, जो निन्दा व प्रशसामें समता-भावको प्राप्त होकर न निन्दासे विषण्ण होते है और न प्रशंसा से हर्षित भी होते है, तथा जिनका सभी अनुष्ठान लोकानुरजनके लिए न होकर केवल आत्मकल्याण के लिए ही है। आचार्य गुणभद्र ऐसे ही साधु महात्माओ को महत्त्व देते हुए कहते है—

आशारूप बेलि उन्हीं तपस्वियों की तरुण—हरी भरी—रहती है, जिनका मनरूप मूल (जड़) ममत्वरूप जलसे

---

१ छउमत्थोघुद्देस कहं वियाणाइ चोइए भणइ।
उवउत्तो गुरु एवं गिहत्थसद्दाइचिट्ठाए ॥
दिन्नाउ ताउ पंचवि रेहाउ करेइ देइ व गणति।
देहि इओ मा य इओ अवणेह य एत्तिया भिक्खा ॥
पि. नि. २२२-२३.

२ पि. नि. मलय. वृत्ति २१९ व २२८.

३ पि. नि. २२९ (देखिये पीछे पृ. १५९)

४ वही २३१-३३.

५ ण बलाउ-साउअट्ठ ण सरीरस्सुवचयट्ठ तेजट्ठं।
णाणट्ठ संजमट्ठं झाणट्ठं चेव भुंजेज्जो ॥ मूला. ६-६२

६ मूला. ६-६५; अन. ध ५-३९.

७ मूला. ६-६६.

तर रहता है। यही सोचकर विवेकशील मनस्वी साधु इस चिरपरिचित शरीरमें भी निःस्पृह होकर निरन्तर कष्टप्रद आरम्भों—आतापनयोग आदि—के साथ काल-यापन करते हैं[1]।

जो एकाकीपन को साम्राज्य के समान, शरीरकी च्युति (मृत्यु) को अभीष्ट प्राप्तिके सदृश, दुष्ट कर्मोंसे निर्मित दुरवस्था को दुख, सांसारिक सुखके परित्याग को सुख और प्राण निर्गमनको सब कुछ देकर किये जाने वाले महान् उत्सव जैसा समझते हैं; ऐसे महामना महर्षियोंके लिए अनुकूल-प्रतिकूल सभी कुछ सुखरूप ही प्रतिभासित होता है—दुखरूप कुछ भी प्रतीत नहीं होता। इसीलिए वे सदा सुखी रहते हैं[2]।

जिन्हें शरीरगत धूलि (मैल) भूषण के समान प्रतीत होती है, स्थान जिनका शिलातल हैं, शय्या जिनकी कंकरीली भूमि है, सिंहों की गुफा जिनका सुन्दर घर है, तथा सब प्रकार के मानसिक सकल्प-विकल्पों से निर्गत होनेसे जिनकी अज्ञानरूप गांठ खुल चुकी है; वे मुक्तिसुख के वांछक विवेकी निःस्पृह साधु हमारे मनको पवित्र करें[3]।

इससे निश्चित है कि साधुचर्या कष्टप्रद तो है ही, पर जिन्होंने घर-द्वार व स्त्री-पुत्रादि से नाता तोड़कर स्वेच्छा से इस असिधाराव्रत को धारण किया है उन्हें वह कष्टकर प्रतीत नहीं होना चाहिए। अन्तःकरण की साक्षीपूर्वक उसका यथोचित परिपालन करने पर भी यदि कोई उनकी निन्दा करता है तो उससे उन्हे क्षुब्ध नही होना चाहिए, और यदि कोई प्रशसा भी करता है तो उससे सन्तुष्ट भी नही होना चाहिए। कारण कि यह निन्दा-स्तुति तो कदाचित् स्वभावसे और कदाचित् किसी स्वार्थ विशेष की सिद्धिके लिए भी की जा सकती है। हां यह अवश्य है कि यदि उस निन्दा मे कुछ तथ्य है तो उस पर ध्यान देकर निन्दकके मनोगत भावको न देखते हुए अपनी उस कमी की पूर्तिके लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये तथा उसके लिए निन्दकका मनःपूर्वक आभारही मानना चाहिए। आचार्य अमितगति की यह उक्ति कितनी महत्त्वपूर्ण है—

दोषों के रहते हुए यदि कोई उनके कारण शाप देता है—निन्दा व अपमानित करता है—तो यह विचार करते हुए उसे सहन करना चाहिए कि वह सच ही तो कह रहा है, इसमें उसका क्या दोष है? और यदि इसके विपरीत दोषों के न रहते हुए भी कोई शाप देता है तो वह मिथ्या कह रहा है—उससे उसी की हानि हो सकती है, मेरी कुछ हानि होने वाली नही है—ऐसा विचार करते हुए उसको सह लेना चाहिए[4]।

अब रही उद्दिष्ट भोजन की बात, सो इस विषयमें मेरा अभिमत यह है कि जैसा कि आप ऊपर आगमिक कथन को देख चुके हैं तदनुसार वर्तमानमें आहार तो प्रायः उद्दिष्ट ही प्राप्त हो रहा है, इससे आनाकानी नही की जा सकती है। इसके लिए मुमुक्षु भव्य जीवको सर्वप्रथम तो देश-काल और गृहस्थों की वर्तमान परिस्थिति का विचार करना चाहिए। तत्पश्चात् अन्तःकरण से यदि मुनिधर्म के निर्वाह की प्रेरणा मिलती है तो इस दुद्धर व्रतको स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा गृहस्थ रहकर भी यथासम्भव प्रतिमाओं का परिपालन करते हुए धार्मिक जीवन बिताया जा सकता है। धर्मका सम्बन्ध बाह्य क्रियाओं की अपेक्षा आत्मीक परिणामों से अधिक है। यही कारण है जो आचार्य समन्तभद्र मोही मुनिकी अपेक्षा निर्मोह गृहस्थको अधिक महत्त्व देते हैं[5]।

परन्तु जो इस धर्मको स्वीकार कर चुके है उन्हे परिस्थितिजन्य उस कमीका अनुभव करते हुए अन्तःकरण से उस पर पश्चात्ताप करते रहना चाहिए। यह सोचना उचित नहीं होगा कि वर्तमान में जैसे श्रावक अपने धर्म का परिपालन नहीं कर रहे वैसेही यदि साधुभी अपने धर्म से कुछ च्युत होते है तो इसमे अनहोनी बात क्या है? कारण कि दूसरों की भ्रष्टता से स्वयं भ्रष्ट होना, यह बुद्धिमत्ता की बात नहीं होगी।

---

१ आत्मानुशासन २५२. २ वही २५६. ३ वही २५९.

४ दोषेषु सत्सु यदि कोऽपि ददाति शापं
सत्य ब्रवीत्ययमिति प्रविचिन्त्य सह्यम्।
दोषेष्वसत्सु यदि कोऽपि ददाति शापं
मिथ्या ब्रवीत्ययमिति प्रविचिन्त्य सह्यम्॥
सुभाषित. २-३१.

५ गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः॥
र. क. श्रा. ३३

# श्रीपुर क्षेत्र के निर्माता राजा श्रीपाल

**नेमचन्द धन्नूसा जैन**

गत साल कारणवश नागपुर को ३-४ दफे जाने का योग आया। तब वहाँ के इतिहासज्ञ डा० य० खु देशपाडे की भी मुलाकात होती थी। सयोगश उनके यहाँ प्रो० मधुकर वावगांवकर तथा प्रो० ब्रह्मानन्द देशपाडे की पहचान हुई। समान विषय होने से परिचय होने में देर न लगी। शिरपुर के प्राचीन मन्दिर पर अप्रकाशित दो शिलालेख हैं, ऐसा बताने पर वे दोनों वहाँ जाने को उतारू हुए। और समय पाकर उन्होंने उस शिलालेख के तथा कुछ मूर्तिलेख, स्तभलेख आदि के छाप भी लाये।

उसमे से एक छाप उन्होने मुझे दिया, उससे मैं संतोषित तो नहीं हुआ। लेकिन कैमरों से उसके फोटो निकालने की योजना बनाकर मैं शिरपुर गया। उनका जो वाचन मैं कर सका वह नीचे दिया है। इस वाचन में जो स्पष्ट शब्द दिखाई दिये वह देकर जो अस्पष्ट है या होना चाहिये ऐसा लगा वे शब्द कस मे दिये है। ऊपर के पट्टी पर का लेख ४ पंक्ति में है। वह इस प्रकार है—

पंक्ति (१) शाक ६०६ (आषाढ़ शुक्ल) पंच······ मूल संघे······(बलात्कार गने) भट्टारक श्री जि (२) न······रा)ज्ञी) रा(जा) मति······**श्रीपाल** भूप······ श्री पार्श्वनाथ बिं (३) (ब) ······(राष्ट्रकूट संघ)··· श्रीजिन (प्रतिष्ठित) महो(त्सवे इन्द्र) राज हते श्रीपाल इह श्रीपुरायतनं (४) संप्रतिष्ठापितम् ॥

नीचेकी पट्टी पर का लेख तीन पक्ति में है वह इस प्रकार है—

**(१) "सके १३३८ वंशाख सुदि ८ (गुरौ) श्रीमालवस्थ सेठ रामल पौत्र ठ० भोज पु (२) त्र अमर (कुल) समुत्पन्न सघपति ठ० श्री जगसीहेन अतरिक्ष श्री पार्श्वनाथ (३) निजकुल (उद्धारक) खटवड वंश······राज॥**

इन दोनों शिलालेखों से दोनों लेख भिन्न काल के तथा भिन्न कर्त्तृत्व के जान पड़ते है। तथा इन दोनों लेखों से यह स्पष्ट है कि, उसके कर्त्ता निःसंशय दिगंबर जैन ही थे। क्योंकि ऊपर लेख मे मूलसंघ तथा बलात्कार गण का उल्लेख है और नीचे के लेख में खटवड गोत्र का उल्लेख है। ये बाते दिगबर आम्नाय की ही द्योतक हैं।

इन लेखो पर से आगे का इतिहास निश्चित होता है—पहले लेख का अर्थ—शक ६०६ या सवत् १०४४ के आषाढ माह के शुक्ल पंचमी या पच दशमी तिथी को मूलसघ और बलात्कारगण के भट्टारक श्रीजिन······के उपदेश से रानी राजमति तथा राजा श्रीपाल ने श्रीपार्श्वनाथ बिब की राष्ट्रकूट राजा इद्रराज (चतुर्थ) की मृत्यु होने के बाद श्रीजिन प्रतिष्ठा पूर्वक इस श्रीपुरायतन की प्रतिष्ठा की।

यह एक स्वतत्र अनुसधान का विषय है कि आषाढ से कार्तिक तक पच कल्याणक प्रतिष्ठा नही होती। अतः यह तिथी सिर्फ मन्दिर या वेदी प्रतिष्ठाकी होनी चाहिये। यानी उस समय विराजमान होने वाली मूर्ति पूर्व प्रतिष्ठित होगी।

शिरपुर क्षेत्र में आषाढी पूनम तथा कार्तिक पूनमको ऐसे दो दफे यात्रा भरती है। कार्तिक पूनम वार्षिक उत्सव के रूप में मनाया जाता है। अगर आषाढी पूनम को यह प्राचीन हेमाडपंथी मन्दिर की वर्षगांठ महोत्सव के रूप में स्वीकार किया जाय तो एक इतिहास की पुष्टि बन जाती है। जो इतिहास संवत् १०४४ से आज यानी सवत् २०२८ तक कायम रहा।

तथा इसमे उल्लेखनीय श्रीपाल राजा राष्ट्रकूट संघ का था यानी राष्ट्रकूटों का सामत था। और स० १०४४ से पूर्व ही स० १०३६ में अन्तिम राष्ट्रकूट राजा इन्द्रराज (चतुर्थ) की मृत्यु हो गई थी। उसके बाद राष्ट्रकूटों का राजा कोई न होने से उसका निर्देश इसमे न हुआ। साथ में यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि सं० १०४४ में

बुध हरिषेण चित्तौड़ से अचलपुर आये थे। और वहां उनके द्वारा 'धर्मपरीक्षा' नाम का ग्रंथ समाप्त करने का उल्लेख किया जाता है। ग्रंथकी प्रशस्ति में हरिषेण लिखते है—

**"सिरि चित्तउडु चइवि अचलउर हो, गयउ नियकज्जे जिनहरपउरहो। तहिं छंदालंकार-पसाहिय, धम्मपरीक्ख एह ते साहिय॥"**

इससे इतना तो निर्विवाद है कि 'धम्मपरीक्षा' की रचना अचलपुर में हुई थी। लेकिन उसकी प्रशस्ति किसी और जगह लिखो गयी है क्योकि **'गयउ'**, **'तहिं'** ये शब्द अचल पुर में बैठ कर लिखे नही जाते। प्रशस्ति के प्रारंभ में ही हरिषेण लिखते हैं—**'इह मेवाड-देसि'-जन संकुलि'** ........' इसमें 'इह' शब्द पर मेरा ध्यान जाता है और मैं इस मान्यता में हूँ कि हरिषेण, प्रशस्ति लिखते समय वापिस मेवाड मे ही होंगे। अगर मेरा यह अनुमान सफल रहा तो बुध हरिषेण सिर्फ कुछ काल के लिये ही अचलपुर आये थे ऐसा मानना उचित होगा। और वह काल अगर इस प्राचीन पवली मन्दिर के प्रतिष्ठा का होगा तो वह चौमासा हरिषेण ने अचलपुर में बिताया होगा और वहां धर्म परीक्षा की रचना करके चौमासा के बाद फिर अपने क्षेत्र चले गये और वहां प्रशस्ति जोड़ के ग्रय की समाप्ति की, ऐसा लगता है; क्योकि सिरपुर या मुक्तागिरि का वार्षिक मेला कार्तिक सुदी पूनम को ही भरता है। साथ में मुझे तो ऐसा लगता है कि शिलालेख मे उल्लेखित जो भट्टारक है उनका भी चौमासा शिरपुर या अचलपुर में ही हुआ होगा। और भट्टारक श्रीका गमन होने पर हरिषेण भी अपने स्थान को चले गये होंगे।

इस शिलालेख से इस प्राचीन मन्दिर तथा उसके निर्माता राजा श्रीपाल का काल निश्चित हो गया। जो हमारे भूत लेखों मे वर्णित काल से अभिन्न ही है। श्वेताम्बर लोग इस मन्दिर के निर्माण का काल स० ११४२ मानते है। यह मान्यता सौ साल बाद की और निश्चित गलत है। सिर्फ अभयदेव सूरि जैसे महान् तपस्वी आचार्य के साथ श्रीपाल राजा का सम्बन्ध बिठाने के लिए स्वकल्पित काल झूठा है यह सिद्ध करने की इस शिलालेख से अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती।

दूसरा जो लेख है वह तो स्पष्ट ही है। तथा 'अंतरिक्ष श्री पार्श्वनाथ निजकुल' का अर्थ गर्भगृह ऐसा करें तो अमरकुल मे उत्पन्न सेठ जगसिंह ने इस मन्दिर का सके १३२७ (ई० स० १४०६) में इसका जीर्णोद्धार कराया था। इनका वंश खटवड था।

गत साल के उत्खनन में एक स्तंभ मिला था, उसके ऊपर सं० १८११ माघ सुदि १०मी को मन्दिर का उद्धार किसी सेतवाल ने किया है ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। मतलब यह है कि आज तक इस मन्दिर के कितने समय उद्धार कार्य हुये होंगे तो भी वह सब अधूरे हैं। स० १८६८ का वयस्क आदमी भी यही कहता था कि 'मन्दिर उस समय तक कभी भी पूरा नही हुआ।'

आज भी वैसी ही स्थिति है। मन्दिर पर पाँच जगह शिखर बनाने की योजना होने पर भी एक जगह भी शिखर नही बन पाया। सिर्फ गर्भागार के ऊपर ईंटों का बनाना चालू था तो वह भी ३ फीट के ऊँचाई में अधूरा छोड़ा गया।

खैर अभी सारे जैन समाज का ध्यान इधर है, मंदिर की माल की तथा ताबा अपना ही है और कोर्ट से भी इस मान्यता को पुष्टी मिली और इस मन्दिर की इर्द-गिर्द जमीन दिगबरों के हाथ आने का फैसला हाल ही अकोला कोर्ट से मिला है।

१६ साल बाद इस मन्दिर को एक सहस्र साल पूरे होंगे। तब एक सहस्री अच्छे उत्साह के साथ मनाने की योजना चली है। तब तक इस मन्दिर पर शिखर बनना, धर्मशाला का निर्माण होना आदि कार्य पूरे होने चाहिए। इसके लिये एक लाख रुपये का बजट होना चाहिए। समाज का ध्यान तथा हमारे अगुये का लक्ष इस सस्थान की ओर है तो यह कार्य निश्चित ही पूरा होगा ऐसी शुभ कामना के अलावा अभी मै कुछ भी नही लिख सकता। ★

# शुभचन्द्र का प्राकृत लक्षण : एक विश्लेषण

**डा० नेमिचन्द्र शास्त्री एम. ए. डी. लिट्, आरा**

चण्डकृत प्राकृत लक्षण के अतिरिक्त शुभचन्द्रभट्टारक का चिन्तामणि नामक स्वोपज्ञवृत्ति सहित एक प्राकृत लक्षण नाम का प्राकृत व्याकरण उपलब्ध है। इस व्याकरण ग्रन्थ के आदि और अन्त मे ग्रन्थ का नामकरण अंकित है। तथा—

**श्री ज्ञानभूषणं देवं परमात्मानमव्ययम् ।**
**प्रणम्य बालसद्बुद्ध्यै वक्ष्ये प्राकृतलक्षणम् ।।**

ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति मे—

**शुभचन्द्रमुनीन्द्रेण लक्षणाब्धिं विगाह्य वै ।**
**प्राकृतं लक्षणं चक्रे शब्दचिन्तामणिस्फुटम् ।।५।।**
**शब्दचिन्तामणिंधीमान् योऽध्येति धृतिसिद्धये ।**
**प्राकृतानां सुशब्दानां पारं याति सुनिश्चितम् ।।६।।**
**प्राकृतं लक्षणं रम्यं शुभचन्द्रेण भाषितम् ।**
**योऽध्येति वै सुशब्दार्थघनराजो भवेन्नरः ।।७।।**—

अंतिम प्रशस्ति

उपर्युक्त पद्यो से स्पष्ट है कि प्रस्तुत व्याकरण का नाम प्राकृत लक्षण और वृत्ति का चिन्तामणि है।

रचयिता शुभचन्द्रने अपनी पट्टावली भी इस ग्रन्थ के अन्त मे अंकित की है। बताया है कि भुवनकीर्ति के शिष्य ज्ञान भूषण हुए, ज्ञानभूषण के शिष्य विजयकीर्त्ति और विजयकीर्ति के शिष्य शुभचन्द्र थे। इन्होने काव्य, पुराण, चरित, दर्शन, अध्यात्म, व्रतविधान एव व्याकरण विषयक रचनाएँ लिखीं है। इनके षड्भाषा कविचक्रवर्ती एवं त्रैवेद्य विद्याधर आदि विशेषण प्रसिद्ध है। इनके द्वारा रचित चन्द्रप्रभचरित, जीवन्धर चरित, करकण्डुचरित, श्रेणिक चरित, संशयवदनविदारण, षट्दर्शन प्रमाणप्रमेयानुप्रवेश, अंगपण्णत्ती, पाण्डवपुराण आदि अड़तालीस ग्रन्थ है।[1]

प्राकृत लक्षण मे रचनाकाल का अकन नही किया गया है, पर पाण्डव पुराण की प्रशस्ति मे उसका रचनाकाल उल्लिखित है तथा उक्त चिन्तामणि व्याकरण का भी निर्देश आया है, अतः इस ग्रन्थ का रचनाकाल वि० सं० १६०८ से पूर्व है।[2]

अगपण्णत्ती मे त्रैवेद्य और उभय भाषा परिवेदी कहा गया है।[3] अत. ज्ञात होता है कि शुभचन्द्र सस्कृत और प्राकृत इन दोनों ही भाषाओं के विद्वान् थे। इनका यह व्याकरण सरल और आशुबोध गम्य है।

प्रस्तुत व्याकरण मे त्रिविक्रम के व्याकरण के समान तीन अध्याय मे चार-चार पाद है। प्रथम अध्याय के प्रथमपाद मे ५६ सूत्र, द्वितीयपाद मे १३० सूत्र, तृतीयपाद मे १४७ सूत्र और चतुर्थपाद मे १२८ सूत्र है। तृतीय माध्यम के प्रथमपाद मे १७२ सूत्र, द्वितीयपाद मे ४०, तृतीयपाद मे ४३ और चतुर्थपाद मे १४७ सूत्र है। इस प्रकार समस्त द्वादशपादों मे कुल १२१५ सूत्र है। सूत्रो पर ग्रन्थकर्त्ता की स्वविरचित चिन्तामणि नामक वृत्ति है,

---

१ चन्द्रनाथचरित चरितार्थं पदमनाभचरितं शुभचन्द्रम् ।
मन्मथस्य महिमानमतन्द्रो जीवकस्य चरितं चकार ।।
चन्द्रनायाः कथा येन दृब्धा नान्दीश्वरी तथा ।
आशाधरकृताचारवृत्तिः सद्वृत्तिशालिनी ।
सशयवदनविदारणमपशब्द सुखण्डनं परतर्क ।
सत्तत्त्वनिर्णय वरस्वरूपसम्बोधिनी वृत्ति ।।
अध्यात्मपद्यवृत्ति सर्वार्थापूर्वसर्वतोभद्रम् ।
योऽकृत सद्व्याकरण चिन्तामणिनामधेय च ।।

२ श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहते स्पष्टाष्टसंख्ये शते,
रम्येष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ ।
···श्रीशाकवाटेपुरे···विरचित···पुराण चिरम् ।
—पाण्डवपुराण, ७२, ७३, ७७, ७८, तथा ८६

३ तप्पयसेवणसत्तो तेवेज्जो उहयभासपरिवेई ।
सुहचदो तेण इणं रइयं सत्थ समासेण ।।
—सिद्धान्तसारादिसंग्रह के अन्तर्गत

जिसमें सूत्रों के अर्थस्पष्टीकरण के साथ प्राकृत शब्दों के उदाहरण हैं।

वररुचि ने द्वादशाध्यायी प्राकृत व्याकरण लिखा था, उसी के अनुकरण पर त्रिविक्रम ने द्वादशपदी लिखा और त्रिविक्रम के व्याकरण का अनुकरण कर शुभचन्द्र ने द्वादशपादों में उक्त प्राकृत लक्षण नाम का व्याकरण लिखा है। सूत्र सख्या और प्रयुक्त उदाहरणों की दृष्टि से यह व्याकरण ग्रन्थ अबतक के उपलब्ध समस्त प्राकृत व्याकरणो में बृहत्तर है। हेमचन्द्र ने सिद्ध हेम शब्दानुशासन के प्राकृत भाग में १११६ सूत्र और त्रिविक्रम ने कुल १०३६ सूत्र रचे हैं। शब्दानुशासन की दृष्टि से प्राकृत भाषा को अवगत करने के लिए यह व्याकरण बहुत ही सुबोध है। इस व्याकरण मे प्राकृत भाषा के स्वरूप गठन के सम्बन्ध मे अच्छा विचार किया है। प्रथम अध्याय के प्रथमपाद मे पन्द्रह सज्ञा सूत्रो के अनन्तर '**प्राकृतम्**' सूत्र का अधिकार आरम्भ कर "**देश्यं तद्भवं तत्समभार्षञ्च**" १।१।१६—तत्प्राकृतं क्वचिद्देशेभव, क्वचित्सस्कृतभव क्वचित् सस्कृतसमान क्वचित् ऋषिप्रोक्तमिति बहुधा स्यात्। तद्यथास्थान दर्शयिष्यामः। अर्थात् प्राकृत भाषा के कुछ शब्द देशज है, कुछ सस्कृतसे उत्पन्न है, कुछ सस्कृत समान हैं और कुछ शब्द आर्ष है। इन शब्दोका यथा स्थान विवेचन किया जायगा।

इस प्रकार प्राकृत भाषा का स्वरूप निर्धारण कर प्राकृत शब्दों के रूपों को 'बहुल' कहा है अर्थात् प्राकृत शब्दों के रूप विकल्प से निष्पन्न होते है।

इस प्राकृत लक्षण की प्रमुख विशेषता स्पष्ट रूप में शब्दानुशासन की है। यहां उदाहरणार्थ दो-एक सूत्र उद्धृत कर उक्त तथ्य की पुष्टि की जायगी। व्यञ्जन के लोप होने पर जो स्वर शेष रह जाता है, उस स्वर की सन्धि नहीं होती। इस नियम का प्रतिपादन आचार्य हेमचन्द्र ने "**स्वरस्योद्वृत्ते**" १।१।८—व्यञ्जनसपृक्तः स्वरो व्यञ्जने लुप्ते योऽवशिष्यते स उद्वृत्त इहोच्यते। स्वरस्य उद्वृत्ते स्वरे परे सन्धिर्न भवति। यथा—निसा-अरो।

हेम के उक्त नियमानुसार उद्वृत्त स्वर की सन्धि नहीं होती। इसी नियम का प्रतिपादन त्रिविक्रम व्याकरण में निम्न प्रकार हुआ है—

**शेषेऽव्यचः** १।१।२२—युक्तस्य हलोलोपे योऽवशिष्यतेऽच् स शेष तस्मिन् शेषे स्वरे परे अचः सन्धिर्न भवति। यथा—कुम्भ आरो।

शुभचन्द्र ने उक्त नियम के सम्बन्ध में लिखा है—

**शेषे स्वरस्य** १।१।२३—व्यञ्जने लुप्ते य स्वरोऽव शिष्यते स शेषः तस्मिन् शेषे स्वरे परे स्वरस्य सन्धिर्न भवति। यथा—गयणेच्चिऊ गन्धउडि कुणन्ति।

उक्त तीनों शब्दानुशासकों के नियमो की तुलना से यह स्पष्ट है कि शुभचन्द्र की प्रतिपादन प्रक्रिया सरल और स्पष्ट है। शुभचन्द्र ने सूत्रो को स्पष्ट रूप मे लिखने का पूरा प्रयत्न किया है।

इस व्याकरण मे वर्गों का व्यत्यय सम्बन्धी अनुशासन अन्य प्राकृत व्याकरणो की अपेक्षा स्पष्ट और विस्तृत है। यहा उदाहरणार्थ करेणु, वाराणसी, मरहट्ठ, आणाल, अचलपुर, णलाड, दहो, गुटह, हलिआरो, हलुओ, दव्वोधरो, णिहवो आदिको उपस्थित किया जा सकता है। उक्त शब्द वर्णव्यत्यय से सिद्ध किये गये है। शुभचन्द्र ने इस सन्दर्भ मे लगभग १५ सूत्रो की रचना कर उक्त विकरण का अनुबन्धन किया है।

पुल्लिङ्ग शब्दो से स्त्रीलिंग रूप बनाने की विधि का निरूपण करते हुए लिखा है—

"**नुरजातेरीर्वा**" २।२।२६—अजातिवाचिनः पुलिङ्गात् स्त्रिया वर्तमानात् ई प्रत्ययो वा भवति। यथा—हसमाणी, हसमाणा, सुप्पणही, सुप्पणहा, सीली, सीला, काली, काला, नीली, नीला, आदि।

इस प्रसग मे गोरी, कुमारी प्रभृति शब्दो का रूप सस्कृत रूपो के समान प्रतिपादित कर "**प्रत्यये**" २।२।३७ सूत्र द्वारा अण् प्रत्ययान्त पुल्लिङ्ग शब्दों को स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'ई' प्रत्यय का विधान किया है। यथा—साहणी, साहणा, कुरुचरी, कुरुचरा आदि। इस प्रसग मे सस्कृत व्याकरण मे प्रतिपादित नियमों के अतिरिक्त प्राकृत के देशज और संस्कृतोद्भव शब्दो के स्त्रीलिंग मे निबन्धित रूपों का भी प्रतिपादन हुआ है। साधारणतः यह अनुशासन अन्य सभी प्राकृत व्याकरणों में पाया जाता है, पर यहां विस्तार के साथ स्पष्टता भी वर्तमान है।

प्राकृत के देशज शब्दों को गणों में विभक्त कर प्रद-

शित किया है। गोणाद्या, अहिआंबा, तूनांबा, पुआयाद्यावा प्रभृति गणों में देशी शब्द परिगणित किये है। निपातन से सिद्ध होने वाले देशी शब्दों का प्रयोग किस-किस अर्थ में होता है, यह सूत्र-वृत्ति सहित निरूपित है। विभक्ति—अर्थ का विचार पर्याप्त विस्तार पूर्वक किया है। द्वितीय अध्याय के तृतीय पाद के ३६वें सूत्र से ५१वे सूत्र तक विचार किया है। अन्य प्राकृत व्याकरणो की अपेक्षा कतिपय नये नियम और उदाहरण भी आये हैं।

तृतीय अध्याय के प्रथम पाद मे क्रियारूपोंका विस्तार पूर्वक निरूपण किया है। कृदन्त और तद्धित प्रत्ययों का कथन भी इस व्याकरण में सोदाहरण आया है। इन उदाहरण रूपों में देशज और आर्ष शब्दों की एक लम्बी तालिका है।

प्रस्तुत व्याकरण में शुभचन्द्र ने सामान्य प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिक पैशाची और अपभ्रश इन छ: प्राकृत भाषाओं का अनुशासन निबद्ध किया है। सामान्य प्राकृत का नियमन नौ पादों में और दशवे पाद के ३६ सूत्रों तक आया है। शौरसेनी प्राकृत का नियमन करते हुए अन्त मे "**प्राकृतवच्छेषं**" ३।२।४० कह कर सामान्य प्राकृत के नियमानुसार शौरसेनी के नियमो को अवगत करने की ओर सकेत किया है। इसी प्रकार मागधी के अनुशासन सम्बन्धी प्रमुख नियमो को बतला कर 'शेष प्राकृतवत्' जान लेने का सकेत किया है। तृतीय अध्याय के तृतीय पाद के अन्त में निम्नलिखित पांच भाषाओ के नियमन की चर्चा की गई है। यथा—

**भाषापंचक सद्व्याख्या शुभचन्द्रेण सूरिणा।**
**शब्द चिन्तामणौ नून विहिता बुद्धिसिद्धये॥**

तृतीय अध्याय के चतुर्थ पाद मे १५८ सूत्रो मे अपभ्रंश भाषा के स्वरूप-गठन का निरूपण किया है। इस अनुशासन में अन्य प्राकृत व्याकरणो की अपेक्षा उदाहरणों को विशेषता है। हेमचन्द्र और त्रिविक्रमने अपभ्रंश शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए अपभ्रंश के पुराने दोहे उपस्थित किये है, जिससे उदाहरणों की संख्या उतनी नहीं आ सकती है, जितनी होनी चाहिए थी। शुभचन्द्र ने सूत्रों के नियमो की चरितार्थता दिखलाने के लिए दोहों मे से केवल उन शब्दों को ही उदाहरण के रूप मे रखा है, जिनकी आवश्यकता थी। इन पुराने उदाहरणों के अतिरिक्त कुछ नये उदाहरण शब्द भी उपस्थित किये गये हैं।

अपभ्रंश अनुशासन का प्रारंभ "प्रायोऽपभ्रंशे स्वराणां स्वरा:" ३।४।१ सूत्र से किया है। यह सूत्र भाव की दृष्टि से त्रिविक्रम के समान और शब्दविन्यास की दृष्टि से हेम के तुल्य है। इस सूत्र के स्पष्टीकरण के लिए दिये गये उदाहरणो में हेम और त्रिविक्रम दोनो की ही अपेक्षा मा, रेखा, कच्छु, कच्छा शब्द अधिक आये हैं। अपभ्रंश भाषा के अनुशासन को निम्नलिखित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

१ अपभ्रंश में संज्ञा शब्दों के अन्तिम स्वर विभक्ति लगने के पूर्व कभी ह्रस्व और कभी दीर्घ हो जाते हैं। यथा—ढोल्ल=ढोल्ला, सामल=सामला, स्वर्णरेखा=सुवण्णरेइ।

२ अपभ्रंश मे किसी शब्द का अन्तिम अ कर्त्ता और कर्म के एक वचन मे उ के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। यथा—दहमुह, भयकरु, चउमुहु, भयकद।

३ अपभ्रंश मे पुलिङ्ग सज्ञा शब्दों का अन्तिम अ कर्त्ताकारक एकवचन मे प्राय: ओ मे परिवर्तित हो जाता है।

४ अपभ्रंश मे सज्ञाओ का अन्तिम अ करणकारक एकवचन मे इ या ए; अधिकरण कारक एकवचन मे भी इ या ए मे परिवर्तित होता है। इन्ही संज्ञाओं के करण कारक बहुवचन में विकल्प से 'अ' के स्थान पर ए होता है। अकारान्त शब्दोमे अपादान एकवचनमे हे या हु विभक्ति अपादान बहुवचन मे हुँ विभक्ति; सम्बन्धकारक एकवचन में सु और होस्सु विभक्तियो एव सम्बन्धकारक बहुवचन में हें विभक्तियां जोड़ी जाती है।

५ इकारान्त और उकारान्त शब्दों के परे षष्ठी विभक्ति के बहुवचन 'आम्' प्रत्यय के स्थान पर हुँ और हे, पञ्चमी एकवचन मे हे; बहुवचनमे हुँ; सप्तमी एकवचन मे हि तथा तृतीय विभक्ति एकवचन में हुँ और ण विभक्ति चिन्हो का प्रयोग होता है।

६ अपभ्रंश भाषा में कर्त्ता और कर्म के एकवचन

और बहुवचन की विभक्तियों का तथा सम्बन्ध कारक की विभक्तियों का प्रायः लोप होता है।

७ सम्बोधन कारक के बहुवचन में हो अव्यय का प्रयोग और अधिकरण कारक के बहुवचन में हि विभक्ति का प्रयोग होता है।

८ स्त्रीलिङ्गी शब्दों में कर्त्ता और कर्म के बहुवचन में उ और ओ; करण कारक के एकवचन में ए; अपादान और सम्बन्धकारक के एकवचन में हे, हु तथा सप्तमी विभक्ति एकवचन मे हि प्रत्यय का प्रयोग होता है।

९ नपुंसकलिंग में कर्त्ता और कर्मकारकों में ई विभक्ति जुड़ती है।

१० धातुरूपों के प्रसंग में बतलाया है कि ति आदि में जो आद्य त्रय है, उनमें बहुवचन में विकल्प से 'हिं' आदेश; मध्यत्रय में से एकवचन के स्थान मे हि आदेश, बहुवचन मे हु आदेश तथा अन्य त्रय में एकवचन मे से और बहुवचन में हुँ आदेश होता है।

११ अनुज्ञा मे संस्कृत के ही और स्व के स्थान पर इ, उ और ह ये तीन आदेश होते है। भविष्यत्काल मे स्य के स्थान पर विकल्प से सो होता है।

१२ भू धातु के स्थान पर हुच्च, ब्रू के स्थान पर ब्रुव, व्रज के स्थान पर वुअ और तअ के स्थान पर घोल्ल आदेश होता है। दश् के स्थान पर पस्स, गृह के स्थान पर गण्ह, गर्ज के स्थान पर घुडक्क एव क्रीज् के स्थान पर कीसु आदेश होता है।

१३ वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप अंत और माण प्रत्यय जोड़कर बनाये जाने का नियमन किया है। यथा—कर+अत=करत; उग्गम+अंत=उग्गमंत; वज्ज+अत=वज्जत। वट्ट+माण=वट्टमाण; हुच्च+माण=हुच्चमाण।

१४ भूतकालिक कृदन्त रूपो के लिए अ, इ अ और इय प्रत्यय जोड़ने का विधान किया है। यथा—हु+अ=हुअ, ग+अ=गअ; गाल+इअ=गालिअ, मक्ख+इअ=मक्खिअ। कह+इअ=कहिय; छड्ड+इअ=छड्डिअ।

१५ पूर्वकालिक क्रिया का अर्थ व्यक्त करने के लिए सम्बन्ध कृदन्त के रूपों के लिए इ, इउ, इवि, अवि, एप्पि, एप्पिणु, एविणु एवं एवि प्रत्ययों के जोड़ने का नियमन किया है। यथा—लह+इ=लहि; कर+इउ=करिउ; कर+इवि=करिवि; कर+अवि=करवि; कर+एप्पि=करेप्पि; कर+एविणु=करेविणु; कर+एवि=करेवि।

१६ क्रियार्थक या हेत्वर्थ कृदन्त के लिए एव, अण, अणइ, सप्प, एप्पिणु, एवि प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यथा—देवं, करण, भुजणह, करेप्पि, करेप्पिणु, करेवि, करेविणु आदि।

१७ विध्यर्थक कृदन्त पदों के लिए इएव्वउ, एव्वउं, एवं एवा प्रत्यय लगते है। यथा—किरएव्वउ, करेव्वउं, करेवा आदि।

१८ शीलधर्म बतलाने के लिए अणम प्रत्यय लगता है। यथा—हसणअ, हसणउ, करणअ, करणउ।

१९ क्रियाविशेषण के निमित्त वहिल्लउ, निच्चट्टु, कोड्डु, ढक्करि, विट्टालु, अप्पणु, सड्ढलु, खण्ण एवं वढ आदि का प्रयोग होता है।

प्रस्तुत व्याकरण में अपभ्रंश के ६५ अव्यय पद भी परिगणित है। शुभचन्द्र ने वृत्ति मे अव्ययों के अर्थ का स्पष्टीकरण भी किया है।

स्वार्थिक प्रत्ययो मे अ, अउ और उल्ल प्रत्यय की गणना की गयी है यथा—दोसडा, कुडुल्ली, गोरडी आदि।

अपभ्रंश नियमन प्रसंग में इव अर्थ मे छः प्रत्ययों का प्रयोग बतलाया है। यथा—"**वार्थे नाइ नावइ नइं नं जाणि जाणु**:" ३।४।२४—इवार्थे षडादेशा भवन्ति। नाइ साहु; नावइ गुरु; नइ सूरु; न चदो; जाणि चपय; जणु कणय।

भाव अर्थक त्व और त प्रत्ययोंके स्थान पर अपभ्रंश मे त्तणु और प्पणु प्रत्ययों का विधान किया है। यथा—"**तृणप्पणौतत्त्वयो**:" ३।४।१६—भावेऽर्थे विहितयोस्तत्त्वप्रत्ययो त्तणप्पणौ स्याताम्। बडत्तणु, वडप्पणु।

निस्सन्देह प्राकृत के सभी अंगो को समझने के लिए यह व्याकरण उपादेय है। छहो भाषाओं का सम्यक् परिज्ञान इस अकेले व्याकरण से हो सकता है। अपभ्रंश मे समाहित झाड, गोप्पी, गोंजी, असारा, मोरत्तओ, ओहंस, आडोरो, सिणी, मंतक्खरं, खंदजी, बहुराणो, पादुग्गो, सइदिट्ठं, झडी, चेडो, खहंगो, कुतो प्रभृति देशल शब्दों

का भी कथन किया है। त्रिविक्रम ने 'झडादि' के अन्तर्गत जिन देशज शब्दों की गणना की है, वे प्रस्तुत व्याकरण में किसी एक गण में पठित नहीं है। इनका उल्लेख यत्र-तत्र फुटकर रूप में हुआ है।

शुभचन्द्र ने उदाहरणों में 'महुरव्व पाडलिपुत्ते पासाया' (२।१।१२), पाणिनीया—पाणिनेः इमे शिष्याः (२।१।१६), मइ अयरेका—मदीयपक्षः (२।१।१६), गणहुत्तं (२।१।१६), पियहुत्त पस्सइ (२।१।१६), अवरिल्लो (२।१।२१), मयल्लिपुत्ती (२।१।२६), तिस्सा मुहस्स भरिमो (२।२।३६), पिउहर माउसिआ माउमडलं (१।२।८६), माहिवाओ (१।२।१२१); पयागजल (१।३।२); गुडो, गुलो (१।६।१६); टगरो (शृगरहितो-वृषभः), दूबरो (श्मश्रुरहित पुरुषोवा १-३।३३), मट्ट (स्वीकरण), थाणू (त्यक्तवृत्त १।४।५), सप्फ (वालतृण) प्रभृति ऐसे पद है, जिनमे सस्कृत का इतिहास निहित है।

संक्षेप में इस व्यारण में निम्नलिखित विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं :—

१ अनुशासन में लाघव प्रक्रिया का प्रयोग।
२ प्रायः सूत्रों द्वारा ही नियमों का स्पष्टीकरण।
३ संस्कृत के पूरे-पूरे शब्दों के स्थान पर प्राकृत के पूरे शब्दों के आदेश का नियमन।
४ कृत और तद्धित प्रत्ययों का विस्तारपूर्वक निर्देश।
५ अवर्णान्त, इवर्णान्त, उवर्णान्त, ऋवर्णान्त और व्यञ्जनान्त शब्दों की रूपावलि का विस्तारपूर्वक उल्लेख।
६ सामान्य प्राकृत का विस्तारपूर्वक निरूपण।
७ देशज शब्दों का यथास्थान निर्देश।
८ मागधी, पैशाची और चूलिका पैशाचो की शब्दावलि का कथन।
९ वर्णविकार का सोदाहरण निरूपण।
१० वर्ण व्यत्यय, आदेश, लोप, द्वित्व प्रभृतिका कथन।
११ अन्य वैयाकरण के समान य श्रुति का निरूपण।

—:o:—

# बिहारी सतसई की एक अज्ञात जैन भाषा टीका

श्री अगरचन्द नाहटा

प्राकृत और सस्कृत सप्तशती की परपरा हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती में सतसई के रूप मे खूब विकसित हुई। सस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी गुजराती चारो भाषाओ की प्राप्त सतसइयों की खोज इधर ५-७ वर्षो मे मैने विशेष प्रयत्नपूर्वक की और प्राप्त जानकारी सप्तसिघु, राजस्थान भारती आदि पत्रिकाओं मे प्रकाशित की जा चुकी है।

हिन्दी सतसइयों में सर्वाधिक प्रसिद्धि बिहारी सतसई को मिली। इस सतसई पर संस्कृत और हिन्दी गद्य-पद्य में जितनी टीकायें लिखी गई हैं उतनी और किसी भी सतसई की नही, हिन्दी के किसी भी काव्य पर नही लिखी गई है। इन टीकाओ मे अब तक दो जैन विद्वानों को टीकायें ही प्राप्त थी जिनमे से १८वीं शताब्दी के विजयगच्छीय कवि मानसिंह ने हिन्दी गद्य में टीका लिखी और नागोरी लोंकागच्छ के वीरचन्द्र शिष्य परमानन्द ने सवत् १८६० बीकानेर मे संस्कृत में टीका बनाई। इस टीका का विवरण मैने अपने सम्पादित 'राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज द्वितीय भाग' मे सन् १९४७ में प्रकाशित कर दिया था। अभी रूपनगर दिल्लो के श्रीवल्लभ स्मारक प्राच्य जैन ग्रंथ भडार मे एक और जैन टीका प्राप्त हुई है। जिसका संक्षिप्त विवरण इस लेख मे दिया जा रहा है।

बिहारी सतसई की यह टीका पडित भोजसागर ने संवत् १७६३ मे बनाई है। जिसकी एकमात्र प्रति सवत् १८७८ की लिखी हुई उक्त ग्रथ भडार में प्राप्त हुई है। ४६ पत्रों की इस प्रति में मूल बिहारी सतसई मोटे अक्षरों

में लिखी हुई है। मूल पाठ के ऊपर संक्षिप्त अर्थ रूप टब्बा लिखा गया है। प्रति अंचलगच्छ के खुस्यालसागर विवुधसागर की लिखी हुई है। टीकाकार भोजसागर ने अपने गच्छ, गुरू परम्परा आदि का परिचय नही दिया पर सम्भव है अचलगच्छ का ही हो। सवत् १७६३ के कार्तिक सुदि शनिवार को सूरत बदर में अल्पमति मनुष्यों के समझने के लिए यह बनाई है। जैन विद्वानों ने साहित्य निर्माण और सरक्षण मे सदा उदार बुद्धि रखी है। इसी का परिणाम है कि जैन ग्रन्थ भडारो मे विविध विपयक हजारो जैनेतर रचनाये सुरक्षित है। इतना ही नही उन्होने जैनेतर ग्रन्थो का स्वय गम्भीर अध्ययन किया और दूसरो की सुविधा के लिए उन ग्रन्थों पर सस्कृत एव लोक भाषा मे टीकाएँ बनाई। अब से ३०-३५ वर्ष पहले मैने जैनेतर ग्रन्थो की जैन टीकाओ सम्बन्धी काफी खोज की थी और उनका विवरण भारतीय विद्या नामक शोध पत्रिका के २-३ अको मे प्रकाशित कराया था।

अब भोजसागर रचित बिहारी सतसई की टीका का सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। इसकी और किसी भडार मे कोई प्रति प्राप्त नही हुई। इसलिए उपरोक्त ज्ञान भडार के व्यवस्थापक प० हीरालाल दुगड़ से सक्षिप्त विवरण मगाकर नीचे दिया जा रहा है—

बडल नम्बर ५४७, ग्रन्थ नम्बर X/६१, पत्र ४६, प्रति पृष्ठ पक्ति १४, पत्रों का साईज ११X४।। इंच।

**अन्त**—यह बिहारीदास कृत भाषा को अर्थ कछुक अपनी मति करी बनायो पडित भोजसागर ने। सुसक नर रसिक जन के आणंद के हेतु हुवो। स० १७६३ काती सुदी ८ शनौवार के दिन पूरो भयो। पं० श्री रूपविजय जी के कह्ये ते कह्यो हइं। श्री अचलगच्छे। प० मया सागर जी शि०।। वेलसागर जी शि०।। रत्नसागर जी शि० खुस्याल सागरे लखितं। ऽवधि विवुधेऽर्थे:।। सुकवि बिहारीदास को वचन अगाधि अरथ।

**अलपमति नर समुझवं कौन भांति समरथ।।**
**तब विचार ऐसो कियो भोज पयोनिधि जान।**
**मंद मति उपकार हित, कछु इक करघो वखान।।२।।**
**सत्रह सें तेरानवै, सुदि कार्तिक शनिवार।**
**सुरती बदर में कियो, रूप भूप उपगार।।३।।**
**ऊंच पने मन्दिर अधिक, तेज तरुनि भुवि धीर।**
**सुकवि बिहारी उदधि गुरु, साहस विक्रमवीर।।४।।**

मूल प्रति के लिपिकार मुनि बिवुध सागर ने लिपि की है और अर्थ की लिपि मुनि खुस्यालसागर ने की है।

इति श्री बिहारीदास कृत सतसई सपूर्ण। श्री अंचल गच्छे मुनी कपूर सागर जी तत् सीश्य वीबूध सागरेण लिखित। आत्मार्थ।।

—०:—

## *संसार की स्थिति*

### कविवर भूधरदास

**वे कोई अजब तमासा, देख्या बीच जहान। वे जोर तमासा सुपने का सा।।टेक।।**
**एकों के घर मगल गावें, पूगी मन की आशा।**
**एक वियोग भरे बहु रोवें, भरि भरि नैन निरासा।। वे कोई०।।१**
**तेज तुरगनि पर चढ़ि चलते, पहिरें मलमल खासा।**
*रक भए नागे अति डोलें, ना कोई देय दिलासा।। वे कोई०।।२*
**तरके राज तखत पर बैठा, था खुश वक्त खुलासा।**
**ठीक दुपहरी मुद्दत आई, जगल कीना वासा।। वे कोई०।।३**
**तन धन अथिर निहायत जग में, पानी मांहि पतासा।**
**भूधर इनका गरब करें जे, फिट तिनका जनमासा।। वे कोई०।।४।।**

# ज्ञानसागर की स्फुट रचनाएँ

डा० विद्याधर जोहरापुरकर, मण्डला

ब्रह्म ज्ञानसागर काष्ठासंघ-नन्दीतटगच्छ के भट्टारक श्रीभूषण के शिष्य थे। सं० १६३५ से १६७६ तक श्री भूषण का समय ज्ञात है। यही ज्ञानसागर का कार्यकाल था। ज्ञानसागर की कई रचनाओं का परिचय अनेकान्त मे समय-समय पर प्रकाशित हुआ है। यहां हम शक १६६१ (=संवत् १८३६) में लिखे गये एक हस्तलिखित गुच्छक में प्राप्त कुछ स्फुट रचनाओ का परिचय दे रहे हैं।

१. **समवशरण कवित्त**—इसमें ग्यारह छप्पय हैं तथा भरत चक्रवर्ती द्वारा आदि तीर्थंकर के समवसरण के दर्शन का वर्णन है। इसका अन्तिम छन्द यह है—

**योजना बार प्रमाण समवसरण वृषभेश्वर।**
**मन वच काया शुद्ध वदे भरत नरेश्वर ॥**
**पूजा अष्ट प्रकार स्तवन करि घरइ आइया।**
**वर्त्यो जयजयकार सुरवरने मन भाइया ॥**
**पाले दया पूजा करे व्रत पाले निज घर रहे।**
**श्रावक मार्ग नित अनुसरे ब्रह्म ज्ञानसागर कहे ॥**

२. **दानोपरि छप्पय**—ये १२ छप्पय है। चार प्रकार के दान की प्रशंसा का इनमे वर्णन है। इस रचना के दो छंद पठनीय है—

**लक्ष्मीमति गुणवंत अति दुर्बल धनहीनी।**
**पूज्यपाद मुनि आय प्रार्थना ताहि सु कीनी ॥**
**जो तू दे मुझ आहार तो मुझ पढणो थाये।**
**प्रगटे ज्ञान भंडार मूर्खपणा सवि जाये ॥॥**
**एकांतर निश्चय करी बरस बार स्वामी रह्या।**
**ज्ञान आहार तप दानये शास्त्रमाहि तस गुण कह्या ॥६**
**वस्तुपाल जगसाह दाता सरस कहायो।**
**सारंग समरोसाह दानथी जग जस पायो ॥**
**दाता भैरवदास बंध चित्तोड छुडायो।**
**दाता श्रीधनपाल जैन गुणदान ठरायो ॥**
**दाता जगमें बहु कह्या कविजन गुण वर्णन करे।**
**इह भव पर भव सफल तस ब्रह्म ज्ञान इम उच्चरे ॥११**

इनमें पहले छप्पय से पूज्यपाद आचार्य के बारे में यह कथा ज्ञात होती है कि वे बारह वर्ष एकान्तर (एक दिन उपवास और दूसरे दिन आहार का निरतर क्रम) तपस्या कर अध्ययन करते रहे थे तथा उन्हे इस अवधि मे लक्ष्मी-मती नामक श्राविका ने आहार दान दिया था। दूसरे छप्पय में गुजरात व राजस्थान के प्रसिद्ध दानी महानु-भावों के नाम गिनाये है। वस्तुपाल, समरासाह जैसे श्वेतांबर दानशील पुरुषों का कवि द्वारा उल्लेख होना साप्रदायिक सौमनस्य का अच्छा उदाहरण है।

३. **नाराचबंध चउवीसी**—नाराच छद के २६ पद्यो में चौबीस तीर्थंकरो का स्तवन है तथा उनके जन्मनगर, मात पिता आदि का यथासभव उल्लेख किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

**बानारसी नामे पूर अश्व (विश्व) सेन नृप सूर मेघश्याम काय नूर पार्श्वजी प्रसिद्धहै। कमठ गुमान हारि भव्यजीव हितकारी सदा बालब्रह्मचारी व्रतभार लिद्धहै॥ विदेश कियो विहार सुजन उतारे पार अखंड सुख दातार ज्ञानदान दिद्धहै। काष्ठासंघको शृंगार श्रीभूषण गुरु सार ब्रह्मज्ञान के विचार पार्श्वदेव किद्धहै ॥२३**

४. **गुरुदेव कवित्त**—इसमे २२ छप्पय है। गुरु की कृपा का महत्त्व तथा गुरुहीन की तुच्छता का इसमे वर्णन है। अन्तिम छन्द में प्रसिद्ध जैन गुरुओं के कुछ नाम दिये है—

**गौतम जंबूस्वामि समतभद्र अकलंकह।**
**प्रभाचद्र जिनसेन रामसेन मुनिचदह ॥**
**लोहाचार्य मुनींद्र रविषेणह व्रतधारी।**
**नेमिसेन गुणवत धर्मसेन सुखकारी ॥**

**विश्वसेन संयम सहित विद्याभूषण गच्छपति ।**
**श्रीभूषण नित वंदिये कहत ज्ञानसागर यति ।।**

गुरु जिन्हें नहीं मिल सके उनकी तुच्छता कवि ने इन शब्दों में की है—

**निगुरा जे नर होय ते नर अंध समानह ।**
**निगुरा जे नर होय तेह मिथ्यामति जाणह ।।**
**निगुरा जे नर होय धर्म भेद नहि जाणे ।**
**निगुरा जे नर होय सोहि पाखंड बखाणे ।।**
**निगुरा जे संसार में ते नर भव-भव दुख लहे ।**
**तिस कारण नित सेविये ब्रह्म ज्ञानसागर कहे ।।१३**

इनके अतिरिक्त कुछ परंपरागत विषयो पर कवि ने जो छंद लिखे है उनकी सख्या इस प्रकार है—

षोडशकारण भावना १७, दशलक्षण धर्म १२, जिन-पंचकल्याणक ६, पचपरमेष्ठि ६, सप्तव्यसन फल ८, पचेंद्रिय मोहफल ६, जिनपूजा (अष्टद्रव्य) ६, जिनपूजा-फल (अष्टद्रव्यपूजा फल की आठ कथाओं का सक्षिप्त उल्लेख) ६, पथिक कवित्त (ससार स्वरूप के मधुबिन्दु का वर्णन) ५, नमस्कार मंत्र माहात्म्य ११, सम्यग्दर्शन के अग तथा माहात्म्य १६, सम्यग्ज्ञान स्वरूप तथा माहात्म्य १७, सम्यक् चारित्र के तेरह अग और माहात्म्य २६, जिनदर्शन ६, कर्मफल ६, धर्ममाहात्म्य १२, पापफल १२, द्वादशानुप्रेक्षा १३ । इनके अतिरिक्त सघाष्टक और हरिआली कवित्त ये रचनाये हमने अनेकान्त मे जैन संघ के छः अंग तथा कुछ पुरानी पहेलियां शीर्षक लेखों में प्रकाशित कराई हैं ।

इन स्फुट रचनाओं के समान छोटी-छोटी बहुत सी रचनाएँ हिन्दी जैन साहित्य में पाई जाती हैं । एक-एक कवि की ऐसी रचनाओं के संग्रह के नाम विलासान्त रखे गये हैं । महाकवि बनारसीदास का बनारसी विलास (जिसमे ६२ रचनायें हैं) शायद इस तरह का सबसे पहला संग्रह है—विक्रम की सत्रहवीं सदी का उत्तरार्ध इनका कार्यकाल था । ज्ञानसागर इनके ज्येष्ठ समकालीन थे, किन्तु इनकी रचनाओं को अभी प्रकाशन का सौभाग्य नही मिला है । इस प्रकार के दूसरे संग्रह है—द्यानतराय का धर्मविलास (विक्रम की अठारहवी सदी का उत्तरार्ध), भगवतीदास का ब्रह्मविलास (विक्रम की अठारहवी सदी का मध्य), वृन्दावन का वृन्दावन विलास (विक्रम की उन्नीसवी सदी का उत्तरार्ध), बुधजन का बुधजनविलास (विक्रम की उन्नीसवी सदी का उत्तरार्ध), (दौलतराम दौलतविलास तथा देवीदास का परमानन्दविलास इस प्रकार के अन्य अप्रकाशित ग्रन्थ है ।) जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई द्वारा प० पन्नालाल जी बाकलीवाल तथा पं० नाथूरामजी प्रेमी ने इन विलास संज्ञक ग्रन्थों को इस शताब्दी के पहले चरण मे प्रकाशित किया था हिन्दी जैन साहित्य के प्रकाशन की वह परपरा यदि पुनर्जीवित की जा सके तो बहुत अच्छा होगा ।

—०—

# अध्यातम बत्तीसी

**श्री अगरचन्द नाहटा**

भगवान महावीर से लेकर अब तक हजारों आचार्यों, मुनियो, श्रावको आदि ने छोटी-बडी लक्षाधिक रचनाएँ की । पर उनमे से बहुत-सी तो मौखिक रूप मे रहने के कारण विस्मृति के गर्भ मे विलीन हो गयी । क्योकि वीर निर्वाण के ९८० वर्ष तक तो लेखन की परपरा प्रायः नही रही । लिखे जाने के बाद भी बहुत-सी प्रतियाँ ताड़ पत्र, कागज, स्याही आदि टिकाऊ न होने के कारण नष्ट हो गयी । इसीलिए १०वी-११वी शताब्दी के पहले की एक भी जैन हस्तलिखित प्रति दिगबर, श्वेताबर किसी भी भडार मे प्राप्त नही है । उसके बाद भी हजारों लाखों प्रतियो को उदइ आदि जन्तुओ ने खा डाला । बहुत-सी वर्षा एव सर्दी के कारण चिपक कर नष्ट हो गयी । कुछ को अनुपयोगी समझ कूट्टे के काम ले ली गयी । इसी तरह हजारों प्रतियाँ जलशरण भी कर दी गयी । इधर कुछ वर्षों मे कौडियो के मोल बिकी और पसारियो, कदोईयो आदि ने उनके पन्ने फाड-फाड़कर अपने काम मे ले ली । छोटी-छोटी प्रतियाँ और फुटकर पत्र तो आज जैन भडारो मे हजारों की सख्या मे अज्ञात अवस्था मे पड़े है । गुटकादि संग्रह प्रतियो की सूची भी प्रायः बनाई नही जाती । इसीलिए हजारो छोटी-छोटी रचनाएँ अज्ञात अवस्था मे पडी है ।

बडे-जडे विद्वानो और अच्छे कवियोके भी कुछ प्रसिद्ध और बडे-बडे ग्रन्थो की ही जानकारी प्रकाश मे आई है । उन्होंने और भी बहुत-सी रचनाएँ अवश्य की होगी पर उनका सग्रह नही हो पाया । १७वी शताब्दी से बनारसी विलास की तरह एक-एक कवि की छोटी-छोटी रचनाओ का सग्रह ग्रन्थ तैयार करने का प्रयत्न चालू हुआ । इसमे बहुत सी छोटी रचनाएँ भी सम्मिलित होकर सुरक्षित हो गयी । पर ऐसे सग्रह ग्रन्थो का प्रकाशन भी बहुत ही कम हुआ है । हमने बरसो प्रयत्न करके समयसुन्दर, जिनहर्ष, आदि कवियों की रचनाओ के सग्रह ग्रन्थ प्रकाशित किये है ।

१७वी शताब्दी के दिगबर कवि राजमल्ल उल्लेखनीय ग्रन्थकार है । अभी मुझे एक गुटके मे राजमल्ल की अध्यातम बत्तीसी मिली है । सम्भव है वह प्रसिद्ध राजमल्ल की ही रचना हो । १८वी शताब्दी के श्वेताबर कवि लक्ष्मीवल्लभ जिनका उपनाम राजकवि भी था, उनके रचित उपदेश बत्तीसी प्राप्त है, जिसके बहुत से पद्य राजमल्ल की अध्यातम बत्तीसी से मिलते-जुलते है । अतः राजमल्ल की अध्यातम बत्तीसी की अन्य प्राचीन प्रति की खोज आवश्यक है । प्राप्त प्रति १९वी शताब्दी की है और पाठ भी अशुद्ध है । पर राजमल्ल के नाम से प्राप्त होने से इसे यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है । अन्तिम पद्य में ध्यान बत्तीसी भी नाम आता है । कवि बनारसीदास की ध्यान बत्तीसी और अध्यातम बत्तीसी प्रकाशित है पर वे इससे भिन्न है । अब अध्यात्मिक बत्तीसी राजमल्ल कृत नीचे दी जा रही है—

**किसकी माई किसका भाई, किसकी लोग लुगाई जी ।**
**आतम राम सयाना, जूठें भरम भूलाना ।।१**
**बोलत डोलत तन पांजर बीच, चेतन सेन बतावें जी ।**
**जूं बाजीगर काच पूतलियां, नाना रूप नचावें ।।२**
**पगड़ी खूब जराव दुपट्टा, जामा जरकसी वागाजी ।**
**एते सबही छोड चलेगो, धागावन नहीं नागाजी ।।३**
**चूआ चंदन तेल फूलेला, करता था खसबोई जी ।**
**हंस उडकर जम घर जायगा, तनु बदगाई होई जी ।।४**
**सहस भी जोडी लख भी जोडी, अरब खरब पर धायाजी ।**
**तृष्णा लोभ पलिता लागा, फिर फिर ढूंढे माया जी ।।५**
**मेडी मन्दर मेहेल चणाया, गोख बिंध झरुखाजी ।**
**जगल जाई पाय पसारचा, ने धरणा कुस धोखाजी ।।६**
**चार दिन का मेला सबही, नाही कोई सखाई जी ।**

ज्युं दुतियां हटवाडे मिलकर, ज्यु आवें ज्यु जावेजी ।।७
कोई लाभ गुणाचो बांधी, कोडी मूल गमावें जी ।
ज्यु चेतन दुनियां हटवाडें, नफा जानें करावें जी ।।८
आसरा संसार बन्या घर, लख चौरासी माइं जी ।
नांम करतो सब ही लागा, जीव बटाउ वासी जी ।।९
लोही मांस का गारा बनाया, पत्थर हाड लगाया जी ।
उपर सावर चमरी साई नवे द्वार बसाया जी ।।१०
आयु करम ले घर का भाडा, दिन दिन मांगें लेखा जी ।
मोहत आया फलक न रक्खे, एसा बड़ा अदेखा जी ।।११
सांझ सवेर अवेर न जांणें, न जाणें धूप वराषा जी ।
नाही नेह मुलाजा किसका, काल सबी कुं सरीखा जी ।।१२
जीव अविनासी फिर फिर आवें, करम मुजाई सगीजी ।
जमी ऊपर घर बनाया, प्रीत लगाई सगी जी ।।१३
इस घर मांहि आय वसे हो, सो घर नांहि तेरा जी ।
मूआ पाछें गाडें जालें, अथवा नीर बहावे जी ।।१४
इस घर अंदर आप बडेरा, सो घर नाहीं तेरा जी ।
इसा इसा घर बहोत बनाया, राय चलवा डेराजी ।।१५
जाया सो तो सबही जायगा, जगत जगत जीव बासीजी ।
अपनी खूब कमाई ना वरथी, जीव जावत संगत जासीजी ।१६
जैसे आगर नोबत बाजें, भिर बाजें सीजनाजी ।
असवारी सारी धूज चालें, सो नर कांहि समानाजी ।।१७
जीव अविनासी मरे न जावे, मर मर जाये सरीराजी ।
इसका धोखा कछू न करणा, अपना धरम सुधाराजी ।।१८
मूरख कर कर मेरी मेरी, परसगत दुख पायाजी ।
परका संगत छोडे सुख पाया, जब समता घर आयाजी ।१९
पवन रूपी किया अंदर, हस रहया सब वासीजी ।
पल पल मांहि आयु घटे सें, पांणी सीस पतासी जी ।।२०
नाती गोती सगा संबधी, सब स्वारथ में बूडाजी ।
स्वारथ बिनु सूके तरुवर ज्यों, पखी सब ही उडाजी ।।२१
नवा नवा तो जामा पेहणा, नव नवा घाट घडायाजी ।
तीन काल की तीन अवस्था, सोधे धूप फटायाजी ।।२२
तेरा है सो को नहीं जावें, तु अपणा क्युं खोवेजी ।
वगडा था सो गया पुरानो, तूं मूरख क्या रोवेंजी ।।२३
तन पंजर बीच जीव पंखेरु, उडता उडता आयाजी ।
आवत जावत कछु न देख्या, इसका खोज न पायाजी ।।२४
ए ससार वाडि बिनसें, काल सरूपी मालीजी ।
काचा पाका ए सही तोडे, ज्यों दरखत की डालीजी ।।२५
ज्यो सकरीजे आवें जावें, अंगरी दोर लपटावेंजी ।
सहृत लाख जोधा भुजबल, करतें जंगी एकेलाजी ।
ब्रह्मा विष्णु महेसर दांन, काल सबकुं सरीखाजी ।।२७
तन धन जोवन मतवाला, गणत किसकी नाईजी ।
सजी तरपति भुपति काल ग्रहें सबनाइजी ।।२८
तण पाटण बसे चेतन राजा, मन कोटवाल बैठायाजी ।
पाच गंगा सूं एका करके, तण पाटण मुहायाजी ।।२९
में करता मे कीनी केसी, अबजो कहो करोगाजी ।
मेरे मोत लगासा पीछें, न जाणें जीव नुगराजी ।।३०
भली बुरी तो जो कुछ करता, सोंही तमहीं कुं वेगाजी ।
राह चलतां रोगी समरें, सोई साथ चलेगाजी ।।३१
आवत जावत सास उसासा, करता गुण अभ्यासाजी ।
जावत का कुछ अचरज नांहीं, जीवत का तमासाजी ।।३२
इस पाया का लाहा लीजे, कीजो सुकृत कमाईजी ।
राजमल्ल कहें ध्यान बत्तीसी, सीध का सुमरण कीजेजी ।३३

इति अध्यातम [1]बत्तीसी सपूर्ण

---

[1]यह बत्तीसी पंचाध्यायी के कर्ता राजमल्ल कृति है इसका लेखक ने कोई प्रमाण नही दिया, यह रचना घटिया दर्जे की बहुत साधारण है। यह उन प्रसिद्ध राजमल्ल की कृति नही है। किसी अन्य आधुनिक राजमल्ल की कृति होगी। कविता का भाषा साहित्य भी उस काल का नही है। और न भाषा मे लालित्य है अतएव उन विद्वान राजमल्ल पाडे की कृति नहीं हो सकती। —सम्पादक

—:०:—

साधारण लोगों के सामने सच्चरित्रता का नमूना पेश करना शिक्षित लोगों का कर्तव्य है। वह मौखिक व्याख्यानों द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता। इसके लिए उनको स्वय सच्चरित्र होना होगा और अपने जीवन द्वारा दूसरों को शिक्षा देनी होगी।

—डा० राजेन्द्रप्रसाद

# देवगढ़ की जैन संस्कृति और परमानन्द जी बरया

प्रो० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' एम. ए., शास्त्री

देवगढ़ उत्तर प्रदेश में झांसी जिले की ललितपुर तहसील में २४.३२ उत्तरी अक्षाश और ७८.१५ पूर्वी देशाश पर स्थित जैनियों का एक महत्वपूर्ण तीर्थक्षेत्र तो है ही, वैदिक कला का भी एक प्रसिद्ध और समृद्ध केन्द्र है। वेतवा नदी के किनारे विन्ध्याचल की एक सुरम्य श्रेणी की उपत्यका में बसा हुआ, यह अब एक छोटा सा ग्राम मात्र अवशिष्ट है किन्तु प्राचीन काल में यह नगर अपनी विविध प्रकार की गतिविधियो के लिए विख्यात था।

यहाँ मौर्यकाल से मुगलकाल तक अनेक जैन मन्दिरों, मूर्तियों और मानस्तम्भो आदि का निर्माण होता रहा। कालान्तरमें वहुतसे मन्दिर धराशायी हो गये तथा मूर्तियाँ भी भग्न हुई, किन्तु फिर भी वहा ४० जैन मन्दिर और १८ मानस्तम्भ तथा कई हजार खडित-अखडित मूर्तियां अबभी भव्यता के साथ निदर्शित है। यद्यपि वहा की वैदिक कला का पर्याप्त परिचय पुरातत्व विभाग की विभिन्न रिपोर्टो तथा अन्य अनेक ग्रन्थो तथा अन्य स्रोतो द्वारा प्रकाश में लाया जा चुका है। किन्तु देवगढ के जैन मन्दिरों मूर्तियों तथा वहा की समग्र जैन कला पर अब तक नगण्य जैसा ही कार्य हो सका है। प्रस्तुत पंक्तियो के लेखक ने अनेक बार अनेक महीनो तक देवबढ में रहकर वहा की जैन संस्कृति और कला का सूक्ष्मता से अध्ययन किया है उस सदर्भ में हमने यह निष्कर्ष भी निकाला है कि देवगढ की जैन सस्कृति और कला की वहुमूल्य सामग्री को प्रकाश में लाने तथा सुरक्षित करने का श्रेय मुख्यत: सर्वश्री अलेक्जेन्डर कनिंघम, फुहरर, दयाराम साहनी, विश्वम्भरदास गार्गीय, नाथूराम सिघई, राजधर मोदी जाखलौन, लाला रूपचन्द रईस कानपुर, जुगमन्दिर लाल बैरिस्टर, देवीसहाय जी फीरोजपुर, सेठ पन्नालाल टडैया ललितपुर, सिघई भगवानदास सर्राफ ललितपुर, सवाई सिघई गनपतलाल भैयालाल गुरहा खुरई, सेठ शिवप्रसाद जाखलौन, रामदयाल पुजारी, पं० परमेंष्ठीदास जी, बाबू हरिप्रसाद वकील, साहु शान्तिप्रसाद जी, सिं० शिखरचन्द्र (वर्तमान मंत्री) तथा बाबू विशनचन्द ओवरसियर आदि को तो है ही, इन सबके अतिरिक्त एक ऐसा भी व्यक्ति देवगढ़ की जैन सस्कृति के पुनरुद्धार के साथ प्रारम्भ से ही संलग्न है, जिसने अपना तन, मन और धन या दूसरे शब्दों मे यों कहिये—अपना समग्र जीवन देवगढ के उत्थान, जीर्णोद्धार तथा प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया है—किन्तु उसके व्यक्तित्व और कृतित्व का समुचित मूल्याकन अब तक नही हो सका है। वह है—श्री परमानन्द जी बरया।

श्री बरया जी निश्छल, सरल, पवित्र हृदय, सेवाभावी, स्नेही, शिक्षाप्रेमी, धार्मिक और विवेकसम्पन्न गृहस्थ है। बाह्याडम्बर, प्रदर्शन और आत्मख्यापन की प्रवृत्ति से वह सर्वथा दूर रहे है। आज लगभग ८० वर्ष की अवस्था में भी उनकी हिम्मत, दिलेरी, व्यावहारिकता कार्यक्षमता-कुशलता, अभियान्त्रिकी ज्ञान, मूर्तिज्ञान परिचय और अदम्य उत्साह देखकर "दातो तले अगुली दबाकर" रह जाना पड़ता है। प्रस्तुत निबन्ध मे इन्ही श्री बरया जी के सक्षिप्त परिचय के साथ देवगढ़ के प्रति उनके योगदान का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्री बरया जी का जन्म—मगसिर (अगहन) सुदी एकम विक्रम सं० १९४६ को ललितपुर (झांसी) के एक मध्यम श्रेणी के परिवार मे हुआ था। आपके पिता स्व० श्री वसोरेलाल जी जैन, ललितपुर के प्रख्यात धनपति सेठ मथुरादास पन्नालाल जी टडैया के यहा मुनीमी करते थे। श्री बरया जी के एक बडे भाई भी थे—(स्व०) श्री मुन्नालाल जी। श्री बरया जी की प्राथमिक एवं पूर्वमाध्यमिक-शिक्षा ललितपुर मे ही सम्पन्न हुई। जब बरया जी प्राथमिक-परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, आपके

पिताश्री का स्वर्गवास हो गया। पितृवियोग, धनाभाव और साधनों की न्यूनता ने उन्हें केवल मिडिल-परीक्षा (सन् १६०७) पास करके कर्मक्षेत्र में उतरने को बाध्य करदिया। इसी समय सौभाग्यवश, बरया जी को पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी का सान्निध्य प्राप्त हो गया, जो उस समय ललितपुर में स्व० देवीप्रसाद जी पटवारी के मकान (दि० जैन बडे मन्दिर के निकट) मे रहकर काशी के एक प्रसिद्ध विद्वान् से न्यायशास्त्र एवं धर्मग्रन्थों आदि का अध्ययन कर रहे थे। बरया जी ने स्वयं पूज्य वर्णीजी से धर्म-शिक्षा प्राप्त की। उनके सत्संग से अर्जित संस्कार और शिक्षाओं का सुप्रभाव अब भी बरया जी के व्यक्तित्व में देखा जा सकता है।

अपने जीवन के पूर्वान्ह में बरया जी ने श्री टड़ैया जी एवं श्री चुन्नीलाल बच्चूलाल जी सर्राफ के यहाँ मुनीमी की। सर्राफ जी श्री बरया की कार्यकुशलता और ईमानदारी से बहुत प्रभावित हुए। अतएव उन्होंने अपना समस्त व्यावसायिक कार्यभार इन्हें सौप दिया और स्वयं धर्म-साधना में समय बिताने लगे। सन् १६२२ के करीब सर्राफ जी ने ललितपुर मे श्री जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं गजरथ महोत्सव का आयोजन किया। इस महान् कार्य मे बरया जी की कुशलता और सफलता देख कर वे बहुत प्रभावित हुए। इस गजरथ के पहले (सन् १६२०) से ही बरया जी देवगढ़ के सम्पर्क मे आ गये थे। तब से उन्होंने अनेक धनिकों, कलाप्रेमियों, पुरातत्वज्ञों, धर्मात्माओं, विद्वानों तथा संस्थाओ का ध्यान देवगढ़ के गौरवपूर्ण अतीत, समृद्ध वैभव और उपेक्षित-वर्तमान की ओर आकृष्ट किया। सन् १६२८ से अब भी उन्होने देवगढ़ की जो बहुविध सेवाएँ प्रारम्भ की है और कर रहे है, वे इतिहास में अविस्मरणीय रहेगी और तब तक नही भुलायी जा सकती जब तक देवगढ़ का अस्तित्व है।

शासन से क्षेत्र की वापसी, वन विभाग से भूमि का अधिग्रहण, धर्मशाला, कुआं, व चैत्यालय का निर्माण, इकतीस मन्दिरों का जीर्णोद्धार, मूर्तियों की सुरक्षा प्रबन्ध, जैन चहारदीवारी का निर्माण, मन्दिरों के द्वारों में लोहे के किवाड़ लगवाना आदि आपके अथक परिश्रम, निरन्तर प्रेरणा, अध्यवसाय, कार्यतत्परता और सुयोग्य मार्गदर्शन आदि के सुपरिणाम है।

म० सं० ११ और १२ देवगढ़ के विशाल मन्दिरों में से हैं। वे अनेकशः जीर्ण शीर्ण हो गये थे। सरकारी इंजीनियर, ओवरसियर तथा वास्तुविद्या के ज्ञाता भी इनके जीर्णोद्धार मे हिचकिचाते थे। वे लोग इनके जीर्णोद्धार कार्य को हाथ में लेने का साहस नही कर रहे थे। श्री बरया ने स्वयं के उत्तरदायित्व पर बहुत साहस, सावधानी, अभिरुचि और निष्ठा के साथ इनका जीर्णोद्धार विधिवत् कराया और पूर्ववत् आकर्षक तथा भव्य रूप प्रदान किया।

सोते, उठते, बैठते बरया जी को एक ही चिन्ता रही है कि—देवगढ़ का उद्धार कैसे हो, और इसीलिए उसे समृद्ध एव आकर्षक बनाने की दिशा मे उन्होने जो भी प्रयत्न किये है, उनमें उन्हे अभूतपूर्व सफलताएँ मिली है। उनका जीवन देवगढ़ के लिए सदैव संघर्ष करता आया है। ललितपुर में क्षेत्र के लिए तीन मकानो की उपलब्धि उनकी सुविचारित योजनाओ का ही परिणाम है। क्षेत्र की ओर अनेक मुकदमो आदि मे उन्होने जिस प्रकार का परिश्रम किया है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। ललितपुर से देवगढ तक तथा देवगढ की जैन धर्मशाला से पर्वतस्थ जैन मन्दिरों तक राजमार्ग के निर्माण मे बरया जी के प्रयत्न भी उल्लेखनीय महत्त्व रखते हैं।

उनसे मिलकर प्रत्येक यह अनुभव करता है कि वे धुन के पक्के है। जो काम वे हाथ मे ले, उसे पूर्ण करके ही चैन लेते है। उनके सम्पर्क मे आने पर ऐसा प्रतीत होता है कि—वात्सल्य और प्रभावना अंग उनके माध्यम से मूर्तिमान हो उठे है। उनकी आतिथ्य-पद्धति बहुत निराली और प्रभावशालिनी है।

क्षेत्र पर मेलों का आयोजन तथा १६३६ ई० में श्री गुरहा जी (खुरई) द्वारा आयोजित श्री जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं गजरथ महोत्सव की निर्विघ्न समाप्ति, बरया जी के अदम्य उत्साह, सूझ बूझ और अकथनीय परिश्रम का ही परिणाम है। उनकी हर श्वांस मे देवगढ़ के लिए बेचैनी है। यद्यपि उन्हे धार्मिक, सामा-

जिक और राजनैतिक गतिविधियों मे पर्याप्त अभिरुचि हे, किन्तु उनने इन सबसे ऊपर है—देवगढ़ का लगाव। अध्ययन और मनन भी उनके जीवन के आवश्यक अग है। वे धर्म, कला, सस्कृति और इतिहास से सम्बन्धित ग्रन्थो और पत्र-पत्रिकाओ का आलोडन विलोडन करते रहते है।

उनकी तीर्थभक्ति और तीर्थसेवा से प्रभावित होकर देवगढ प्रबन्धक समिति तथा जैनसमाज ने समय-समय पर 'तीर्थसेवक" "देवगढ का यक्ष" आदि उपाधियो से सम्मानित कर अभिनन्दन-पत्र आदि समर्पित किये है। श्री वरया जी सन् १९५० तक पूरी तरह से देवगड की 'आनरेरी' सेवा मे व्यस्त रहे। किन्तु उनकी सेवाओ को दृष्टि मे रखके तथा आर्थिक क्षीणता पर और वृद्धावस्था पर विचार करके प्रवन्धक समिति ने वन्हे १००) माह "आनरेरियम" के रूप मे अर्पित कर सराहनीय कार्य अवश्य किया है किन्तु मेरे विचार मे उनकी सेवाओं का समुचित मूल्याकन होना चाहिए।

संक्षेप में यदि कहना चाहें तो यही कहेगे कि देवगढ के लिए उन्होने वह सब किया है जो कोई 'डायरेक्टर जनरल' ही कर सकता है। देवगढ के प्रति उनमे जो ममता है, वह अन्य क्षेत्रो में दुर्लभ है। वैसी ही लगन वे भावी पीढ़ी में देखने को आतुर है। यही उनके जीवन की साध प्रतीत होती है।

आज जब वे अपने जीवन के अस्सीवे बसन्त में प्रवेश कर रहे है, हम उनकी सेवाओ का अभिनन्दन करते है तथा यह कामना करते है कि वे शतायु हो—चिरायु हो एवं इसी तरह से देवगढ और श्रमण सस्कृति की उपासना में तन्मय रहे। ●

# अछूता, समृद्ध जैन साहित्य

**रिषभदास रांका**

प्राचीन जैन साहित्य भारत की अनेक भाषाओ मे लिखा गया है। और इतना विशाल है कि स्वयं जैनियों को भी पता नही है कि उनके पास कितना समृद्ध और विपुल यह साहित्य है। जैनियो का अधिकाश साहित्य प्राकृत और अर्धमागधी भाषामे लिखा गया है। बादमे सस्कृत, अपभ्रंश तथा उत्तर की हिन्दी, मराठी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओं मे तथा दक्षिण की कन्नड तथा तमिल भाषा मे। उत्तर की भाषाओ तथा प्राकृत या सस्कृत में लिखे साहित्य का संपादन, प्रकाशन, अध्ययन खोज का काम कुछ अशों मे हुआ है। उसकी विशालता को देखते हुए हमे यह कहना पड रहा है कि यह कार्य भी कुछ अशो मे ही हुआ है। क्योकि अभी तक जैन प्राचीन भण्डारो मे सुरक्षित काफी साहित्य अप्रकाशित है। लेकिन फिर भी उत्तर मे जैनियो का अपने साहित्य के प्रति ध्यान आकर्षित हुआ है। उन्होने उस पर काफी काम किया है। किन्तु दक्षिण के विशाल साहित्य पर तो बहुत ही कम काम हुआ है। कारण स्पष्ट है। उत्तर के जैनी संख्या में समृद्धि मे दक्षिणवालों से अधिक है। यद्यपि दक्षिण मे जैन संस्कृति ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है यह कहने मे अतिशयोक्ति नही है कि दक्षिण की सस्कृति पर श्रमण सस्कृति का अधिक प्रभाव है। दक्षिण का प्राचीन जैन साहित्य अत्यन्त ही समृद्ध तथा विशाल है।

इस बात का परिचय आचार्य तुलसी जी को दक्षिण यात्रा में हुआ। जब उन्होने कर्नाटक मे प्रवेश किया तो देहातो मे हजारो जैनी मिले या जैनत्व से प्रभावित लिगायत मूल के जैनी पर जैनियो मे जब कर्मकाण्ड तथा जाति भेद की विकृति आई तो सुधारक व सबने जैनियो को शैव बनाया और वे लिगायत बनाये गये। भले ही वे लिगायत बने पर अहिसा प्रधान जैन धर्म की अहिसा उन्होने अपनायी और सस्कारों को अपने मे से निकाल नही पाये। और तो क्या भटकल जैसे स्थान पर मुस्लिमों पर जैनत्व का प्रभाव दिखाई पडता है। भटकल यह समुद्र के किनारे महत्त्वपूर्ण बन्दर था। वहाँ से विदेशों को व्यापार होता था। और वहाँ के जैन व्यापारी विदेशों मे

व्यापार के कारण समृद्ध थे। एक बार अरबो ने उनपर धावा बोल दिया। पुरुष स्त्रियोको छोड कर भाग गये जो स्त्रियाँ बची उनमें से कुछने धर्म और सतीत्व के लिए प्राण त्याग दिये, पर जो वैसा नही कर सकी वे मुसलमानों की पत्नी बनकर उनके साथ रहने लगीं। पर जैनियो के पीढियों से चले आये संस्कार न त्याग सकी। उनमे से बहुत सी अब भी रात्रि को भोजन नही करती है।

आचार्य तुलसी के स्वागत में दक्षिण के राजनीतिक, समाजसेवी और विद्वानों ने कहा कि जैनियो का अपना घर तो दक्षिण है। आपको तो यहाँ आकर काम करना चाहिए। जैनियों के विशाल तथा समृद्ध साहित्य तथा जैन संस्कारो से प्रभावित जनता मे काम करना चाहिए। श्री निजलिंगप्पा, दासप्पा, जत्ती, अन्नदुराई आदि चोटी के नेताओ ने कहा कि यदि प्राचीन कन्नड और तमिल भाषा मे से जैन साहित्य निकाल दिया जाय तो आज की तरह समृद्ध न रहकर दरिद्र बन जावेगा। यह बात राजनीतिज्ञ, ने कही हो सो नही पर विद्वानों और शिक्षा शास्त्रियों ने दक्षिण प्रवेश के समय से लगाकर बार बार कही। धारवाड, कन्नड विश्वविद्यालय के सचालको ने बताया कि वहाँ जैन चेयर है और विश्वविद्यालय ने प्राचीन कन्नड जैन साहित्य के प्रकाशन के लिए अर्थ की व्यवस्था भी कर रही है। आवश्यकता है कार्य करने की। कन्नड साहित्य अल्प ही क्यो न हो पर काम तो हुआ है, पर तमिल में तो नही के बराबर ही है। आचार्य तुलसीजी में जैन साहित्य के इस अछूते किन्तु समृद्ध साहित्य पर काम करने की लालसा जगी। भले ही दक्षिण का साहित्य दिगम्बर साहित्य ही क्यो न हो पर उसका सशोधन, सपादन, अध्ययन और प्रकाशन का काम होना चाहिए, यह चितन चलता रहा। हम दक्षिण यात्रा के समय हुबली, नंदीदुर्ग और मद्रास में उनसे मिले, तब तब इस विषय पर चर्चा हुई। पर जब हम अक्टूबर में अणुव्रत के अधिवेशन में जाने वाले थे तब डा० उपाध्ये ने हमे कहा कि आप मद्रास में आचार्य श्री से मिलने वाले है तब उनसे कहना कि तमिल भाषा के प्राचीन जैन साहित्य के लिए कुछ करें। मैंने चर्चा की। दक्षिण साहित्य पर काम करने के लिए संकल्प मे परिवर्तित होकर एक दक्षिण भाषा के जैन साहित्य का शोध संस्थान स्थापन करने का निश्चय हुआ। और उसके लिए दो लाख रुपये भी उनके अनुयायियो ने इस सस्थान को चलाने के लिए एकत्र कर काम प्रारभ कर दिया।

हम छोटी-छोटी बातों को लेकर तीर्थो के लिए झगडने वाले अपने दिगबर तथा श्वेतांबर भाइयों से प्रार्थना करेगे कि उनके धन का आपस मे झगडने से अच्छा उपयोग किया जाय ऐसे कई क्षेत्र है। दक्षिण में प्रायः दिगबर भाई बसते है उनमें से भले ही कुछ सघन हो पर अधिकांश बहुत ही दरिद्र और पिछडे हुए है। उनसे साधुओ, ब्रह्मचारियो तथा कार्यकर्ताओ से सपर्क न रहने से बहुत से अन्य धर्मो मे भी प्रवेश कर रहे है या जो हैं वे भी जैन तत्वों से अपरिचित बनने जा रहे है। सिर्फ नवकार मंत्र और रात्रि मे भोजन न करना यही जैनत्व की निशानी बची है। एक तीर्थ या मन्दिर के झगडो में लाखो खर्च करने वाले भाई दक्षिण मे जाकर देखे कि सैकड़ों मन्दिर व्यवस्था के अभाव मे खण्डहर बन रहे है। या अन्य धर्म वालों के अधीन हो गये है। वे दक्षिण में रहने वाले इन सात लाख दक्षिण के जैन भाइयो मे काम करे यह आवश्यक है और उपयोगी भी। कर्नाटक में पांच लाख और तमिल में दक्षिण के मूल निवासी जैन है। तमिल में जैनियो को नयनार कहते है। बहुत ही गरीब और पिछडे हुए है। उनसे सपर्क कर उनमे काम करना अत्यन्त आवश्यक व उपयोगी है। वहाँ जो साहित्य है उसका विविध भाषाओ मे अनुवाद होना चाहिए। हम यहा सिर्फ तमिल भाषा मे जो महत्वपूर्ण साहित्य है उसकी सूची दे रहे है। इससे कुछ पता चल सकता है कि इस दक्षिण के महत्वपूर्ण साहित्य पर काम करना कितना आवश्यक और उपयोगी है क्या हम अपने जैन भाइयों को आपसी झगड़ो मे होने वाले धन व्यय को इस महत्त्वपूर्ण व उपयोगी कार्य में खर्च करने के लिए आकर्षित कर सकेंगे। भले ही पूर्णरूप से वे उस धन व्यय को इस काम मे न भी लगा सकें तो भी इस महत्वपूर्ण कार्य के विषय में अवश्य चिंतन करेंगे। और आचार्य तुलसी जी ने सप्रदाय का विचार न कर दक्षिण के जैन साहित्य के लिए जो शोध संस्थान शुरू किया है उसमें सक्रिय सहयोग देंगे।

**तमिल भाषा के जैन ग्रंथ :**

१. पेरकत्तियम् ।
२. तोलकाप्पियम् ।
३. तिरुक्कुरल ।
४. शिलप्पदिकारम् ।
५. जीवकचिन्तामणी ।
६ नरि वृत्तम् ।
७. पेरंकथै ।
८. चूलामणी ।
९. वलैयापति ।
१०. मेरुमन्त्रपुराणम् ।
११. नारदर चरिदम् ।
१२. शान्तिपुराणम् ।
१३ नीलकेशी ।
१४ उदयकुमार कावियम् ।
१५. नाम[ग]कुमार कावियम् ।
१६. नम्मि अकप्पोरुल ।
१७. कलिगत्तुप्परणि ।
१८. यशोदर कावियम् ।
१९. रामकाथै ।
२०. किलीवृत्तम् ।
२१. एलिवृत्तम् ।
२२ तत्वदर्शन ।

**व्याकरण :**

१. नन्नूल ।
२ याप्परुगलम् ।
३. याप्परुगलक्कारिहै ।
४. नेमिनाद[थ]म् ।
५. अविनयम् ।
६. वेण्पा पाट्टियल ।
७. चन्दमूल ।
८. इन्दिरकाणियम् ।
९ अणियियल ।
१०. वायपियम ।
११ मोपिवरि ।
१२ कडिय नन्नियम् ।
१३ काक्कैपाडिनियम ।

**कोष :**

१. चूडामणणी निक[ध]ण्डु ।
२. दिवाकरम् ।
३. पिंगलन्ते ।

**नीति :—**

१. नालडियरि ।
२ पषभौपि नन्नुल ।
३. एलादि ।
४. शिरुपञ्ज मूलम् ।
५. तिर्णमाले नूरेपदु ।
६. आचारकोवै ।
७. अरनेरिचारम् ।
८ अरुकलचप्पु ।
९. जीवसपोदनै ।
१०. औवै 'अहृत्तिल चूडि'
११. नानमणिकडिकै ।
१२. इन्ना नार्पतु ।
१३. इनियवै नार्पेलु ।
१४. तिरि कडुकम् ।
१५. कोगुमण्डल शतकम् ।
१६. नेमिनाद(थ) शतकम् ।

**गणित :—**

१. केट्टि गण्डुवडी ।
२. कणक्कदिकारम् ।
३. नन्निलक्क वायपाडू ।
४. शिरुकुपी वायपाडु ।
५. कीपवाय इलक्वम् ।
६. पेरुक्कल वायपाडु ।

**गीत :—**

१. पेरुकुरुहु ।
२. वेरुर्नार ।
३. शौर्थियिम ।
४. भरत सेनापतियम् ।
५. शयन्तम ।

**प्रबन्ध :—**

१. तिरूक्कलमवकम् ।
२. तिरुनूरन्दरदि ।
३. तिरुवेपावै
४. तिरूपामाले ।
५. तिरूप्पुकष ।
६. आदिनादर पिल्लै तमिल ।
७ आदिनादर उला ।
८. तिरूमेदियन्दादि ।
९. धर्मदेवियन्दादि ।
१०. तिरूनादराकुन्रत्तु पत्तु पदिकम् ।

**ज्योतिष :—**

१. जीनेन्द्र माले ।
२. उल्लमुडेयान ।

# चित्तौड़ का दिगम्बर जैन कीर्तिस्तम्भ

**परमानन्द शास्त्री**

चित्तौड़ राजस्थान का प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल रहा है। यह नगर सवा तीन मील लम्बे आध मील चौड़े पाच सौ फुट ऊँचे पर्वत पर बसा हुआ है। इसका नाम चित्तौड़ या चित्रकूट, चित्रकूट दुर्ग या चित्तौड़गढ़ उपलब्ध होता है। जो मौर्य राजपूतो के सरदार 'चित्रग' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होने सातवी शताब्दी के लगभग राज किया है। बापा रावलने सन् ७३४ मे मौर्योसे इसे हस्तगत किया था। उसके बाद वहां सोलकी, चालुक्य, चौहान और गुहिलवंशियों आदि राजपूतो ने राज किया है। यह वैष्णव सस्कृति का केन्द्र रहा है। यहां के राज्यकीय मन्दिर बड़े सुन्दर और कलापूर्ण है। वे हिन्दू सस्कृति के उज्ज्वल प्रतीक है। चित्रकूट जैन परम्परा का भी प्राचीन समय से केन्द्र रहा है। वहाँ अनेक साधु-सन्तो का निवास स्थल भी रहा है। उस समय वहाँ उभय सस्कृतिया बराबर पनप रही थी। जैनियों मे दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनो सम्प्रदाय के अनेक मन्दिर और मूर्तियाँ बराबर प्रतिष्ठित होती रही है। यह नगर अनेक विद्वानो और आचार्यो का विहारस्थल रहा है और ग्रन्थ निर्माण स्थल भी।

विक्रम की ८वी शताब्दी के विद्वान याकिनीसूनू हरिभद्र सूरि चित्तौड के ही निवासी थे, जिन्होने अनेक प्राकृत-सस्कृत ग्रन्थो की रचना की है। इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार के अनुसार सिद्धान्त तत्वज्ञ एलाचार्य चित्रकूटपुर के ही निवासी थे। वीरसेन ने उनके पास चित्रकूट मे रहकर षट्खण्डागम आदि सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन किया था और ऊपर के निबंधनादि आठ अधिकार भी लिखे थे, फिर वे गुरु की आज्ञा से चित्रकूट से वाट ग्राम में आये और वहां आनतेन्द्र के बनवाये हुए मन्दिर मे ठहरे थे[1]। वहाँ उन्हे 'व्याख्या प्रज्ञप्ति' भी मिल गई। बाद मे उन्होंने धवला टीका को शक सं० ७३८ मे पूर्ण किया। चित्रकूट मे भट्टारकीय गद्दी भी रही है। भट्टारक पद्मनन्दि की पट्ट परम्परा १५वी शताब्दी मे दो भागो में विभक्त हो गई थी। एक पट्ट नागौर मे और दूसरा पट्ट चित्तौड़ में रहा है। चित्तौड के पट्ट का प्रारम्भ भट्टारक प्रभाचन्द्र से माना जाता है और उस पट्ट के १६ भट्टारकों के नाम उल्लिखित मिलते है[2]।

वि० स० ११९२ मे जयकीर्ति के शिष्य अमलकीर्ति ने 'योगसार' की प्रति विद्यार्थी वामकीर्ति के लिए लिखवाई थी[3]। और वि० स० १२०७ मे इन्ही जयकीर्ति ने प्रशस्ति लिखी थी[4]। प्रस्तुत जयकीर्ति के शिष्य रामकीर्ति थे और रामकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति ने 'जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला' नामक वैद्यक ग्रन्थ की रचना की थी[5]।

जिनदास शाह ने वहाँ पार्श्वनाथ का एक मन्दिर निर्माण कराया था, और विक्रम की १६वी शताब्दी मे

---

१ काले गते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटपुरवासी।
श्रीमानेलाचार्यो बभूव सिद्धान्त तत्वज्ञः।
तस्य समीपे सकल सिद्धान्त मधीत्य वीरसेनगुरुः।
उपरितन निबंधनाद्यधिकारानष्ट च लिलेख।
आगत्य चित्रकूटात्ततः सभगवान्गुरोरनुज्ञानात्॥
वाट ग्रामे चान्नानतेन्द्र कृत जिन स्थित्वा॥
व्याख्या प्रज्ञप्ति मवाप्यपूर्व पट्खण्डतस्तस्मिन्॥
इन्द्रनन्दि श्रुतावतार

२ देखो, जैन सिद्धान्त भास्कर भाग १ किरण ४ पृ. ७९

३ श्री जयकीर्ति सूरीणा शिष्येणामलकीर्तिना।
लिखित योगसाराख्य विद्यार्थीवामकीर्तिनात्॥
सं० ११९२ ज्येष्ठ शुक्लपक्षे त्रयोदस्या पडित साल्हेण लिखितमिदं।

४ श्री जयकीर्ति शिष्येण दिगम्बर गणेशिनः। प्रशस्तिरीदृशीचक्रे···श्रीरामकीर्तिनः॥ स० १२०७ सूत्रधा० देखो, एपिग्राफिया इंडिका जिल्द २ पृ० ४१ पिटर्सन रिपोर्ट ५ ग्रंथ ९०.

५ देखो, अनेकान्त वर्ष ३, किरण १२, पृ० ६८६।

मूलसघ शारदागच्छ बलात्कारगण कुन्दकुन्दान्वय और नन्दि आम्नाय के विद्वान् नेमिचन्द्र ने लालावर्णी के आग्रह से गुर्जरदेश से आकर चित्रकूट मे जिनदास शाह के उस पार्श्वनाथ मन्दिर मे ठहर कर गोम्मटसार की जीवतत्त्व प्रदीपिका टीका की रचना सस्कृत मे की थी। जो केशव वर्णी (शक सं० १२८१ वि० स० १४१६) द्वारा रचित कर्णाटक वृत्ति का आश्रय लेकर खडेलवाल वशी साहु सागा और साहु सेहस की प्रार्थना से बनाई थी[६]। इस तरह चित्तौड़ दिगम्बर संस्कृति का केन्द्र रहा है।

प्रस्तुत चित्तौड मे दो कीर्तिस्तम्भ है। एक जयस्तंभ या विष्णुध्वजस्तभ, यह अपने ढग का एक ही स्तंभ है जो अधिक ऊंचा और अधिक चौडा है। उसके भीतर से ही ऊपर जाने का मार्ग है, उसमे ११३ सीढी है। इसके नौ खन है। यह कलापूर्ण और देखने में सुन्दर प्रतीत होता है। इसकी प्रतिष्ठा वि० स० १५०५ माघ वदी दशमी को हुई थी[७]। कुछ विद्वान इसे जयस्तभ बतलाते है पर उनका यह मानना ठीक नही है; जैन मन्दिरों के सामने मानस्तभ का निर्माण करने की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। हिन्दुओं मे भी यह परम्परा रही है। राणा कुभा ने विष्णु की भक्तिसे प्रेरित होकर इस विष्णु-ध्वज का निर्माण कराया है। इस स्तभ में प्रवेश करते ही विष्णु की मूर्ति का दर्शन होता है। इसमे जनार्दन अनत आदि विष्णु के विभिन्न रूपों और अन्य अवतारो की मूर्तियो का अकन किया गया है। इस कारण इसे कीर्ति-स्तभ या विष्णुध्वज कहा जा सकता है। जयस्तभ नही। यह हिन्दुओ के पौराणिक देवताओ का अमूल्य कोष है। क्योकि उसमे उत्कीर्ण मूर्तियो के नीचे उनका नाम भी अंकित है[८]। और महाराणा कुभा ने माडू के सुलतान महमूद खिलजी और गुजरात के सुलतान कुतुबुद्दीन की संयुक्त सेना पर वि० सं० १५१४ मे विजय प्राप्त की थी[९]। और उक्त स्तम्भ का निर्माण इस विजय से ९ वर्ष पूर्व हो चुका था। ऐसी स्थिति में उसे जयस्तभ नही कहा जा सकता।

दूसरा जैन कीर्तिस्तंभ ७ मंजिल का है जो ८० फुट के लगभग ऊँचा और नीचे ३२ फुट व्यास को लिए हुए है। ऊपर का व्यास १५ फुट है। यह स्तभ अपनी शानी का अद्वितीय है, प्राचीन है और कलापूर्ण है। इस अपूर्व स्तम्भ का निर्माण बघेरवाल वशी शाह जीजा द्वारा वि० की १३वी शताब्दी मे कराया गया था। श्रद्धेय ओझा जी इसे विक्रम की १४वीं शताब्दी के उत्तरार्घ का बना हुआ बतलाते है। इस सम्बन्ध मे उन्होने कोई प्रमाण नही दिया। पर वह सम्भवत: १३वी शताब्दी के लगभग का बना हुआ होना चाहिए। मुनि कान्तिसागर जी ने नादगांव की एक मूर्ति के लेखानुसार स० १५४१ का बना बतलाया है। पर उन्होने ऐसा लिखते हुए यह विचार नही किया कि जब राणा कुभा का स्तभ स० १५०५ का है, और कुभा ने इस स्तभ को देखकर ही उसका निर्माण सुधार रूप मे किया था एव अन्य ऐतिहासिक विद्वानो की दृष्टि मे भी वह पूर्ववर्ती है। तब उसे १६वी शताब्दी का कैसे कहा जा सकता है? दूसरे जिस शिलालेख पर से उन्होंने उसे १६वी शताब्दी (१५४१) का बतलाया, उस मूर्तिलेख मे जीजा की वश परम्परा के उल्लेख को भी ध्यान मे रखना था। अतएव उनका उक्त निर्णय ठीक नही है। वह कीर्तिस्तभ आदिनाथ का स्मारक है। इसके चारो पार्श्व पर आदिनाथ की एक विशाल जैन नग्न मूर्ति स्थित है और बाकी भाग पर छोटी-छोटी अनेक मूर्तियाँ उत्कीर्ण की हुई है। इस कीर्तिस्तंभ के पास ही महवीर का मन्दिर है। जिसका स० १४९५ मे गुणराज ने जीर्णोद्धार कराया था। जैन कीर्तिस्तभ जिस स्थान पर बना है उसके पास चन्द्रप्रभ का प्राचीन दिगम्बर मन्दिर था। यह उल्लेख उसी सं० १५४१ के मूर्तिलेख से स्पष्ट

---

६ ·········गौर्जर देशाच्चित्रकूट जिनदास साह निर्मापित पार्श्वप्रभु प्रासादाधिष्ठितेनामुनानेमिचन्द्रेणाल्पमेधसाऽपि भव्यपुण्डरीकोपकृतीहानुरोधेन सकल ज्ञातिसिर: शेखरायमाण खण्डेलवाल कुलतिलक साधु वशावतश जिनधर्मोद्धरणधुरीण साह साग साह सहसा विहितप्रार्थनाधीनेन विशदत्रैविद्यविद्यास्पदविशालकीर्तिसहायादिम यथा कर्णाटवृत्ति व्यरचि।

—गोम्मटसार जीवतत्त्व प्रदी० वृत्ति प्रशस्ति।

७ देखो, राजपूताने का इतिहास प्रथम एडीसन पहली जिल्द पृ० ३५२

८ देखो, राजस्थान भारती का कुभा विशेपाक पृ० ४६

९ राजस्थानी का महापुराण कुंभा विशेषाक पृ० ४५

है :— **मेवपाटदेशे चित्रकूटनगरे श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र चैत्यालय स्थाने"** वाक्यों से प्रकट है। कीर्तिस्तभ दिगम्बर है और वह बघेरवाल वंशी खडवड गोत्री शाह जीजा द्वारा निर्मापित है। जो महाजन सानाय का पुत्र था।

इस दिगम्बर कीर्तिस्तम्भ के सम्बन्ध मे कुछ श्वेतांबरीय विद्वानों ने उसे श्वेतांबर बनाने के लिए अनेक निराधार कल्पनाएँ की है। और कीर्तिस्तभ को स्पष्टतया श्वेतांवर कीर्तिस्तंभ लिखने तक का दुःसाहस किया है। इस प्रकार के प्रयत्न श्वेताम्बरों द्वारा किये जाते रहे है। स्व० मोहनलाल दलीचन्द देसाई अपने जैन तीर्थो वाले निबन्ध मे लिखते है कि—"जे कीर्तिस्तंभ ऊपर जणाव्यो छे ते कीतिस्तंभ प्राग्वाटवंश (पोरवाड) संघवी कुमार पाल ने आ प्रासादनी दक्षिणे बधाव्यो हतो।"

मुनि दर्शन विजय अपने जैन राजाओ वाले लेख में अल्लट राजा का परिचय देते हुए लिखते है कि—"आ राज ना समयमा चित्तोडना किल्ला मा अेक महान जैन स्तभ बनेल छे जे श्वेतांबर-दिगम्बरोना वादमा श्वेताम्बरो ना विजयनु प्रतीक होय अेवो शोभे छे, तेनीसाथेज भ० महावीर स्वामीनु श्वेताबर जैन मन्दिर छे, जेनो जीर्णोद्धार सघपति गुणराजे मोकलराणाना आदेशथी सं० १४८५ मा करावी तेमा आ० श्रीसोमसुंदरसूरिना हाथे प्रतिष्ठा करावी हती। आ स्तभ अत्यारे कीर्तिस्तभतरीके प्रख्यात छे।"

— (जैन सत्य प्रकाश वर्ष ७ दीपोत्सवी अक पृ० १५०)

मुनि ज्ञान विजय ने जैन तीर्थो वाले लेख मे लिखा है कि—"चित्तोड़ना किल्ला मां वे ऊँचा कीर्तिस्तभो छे, जे पैकीनो अेक भट्टारक महावीर स्वामीना मन्दिर ना कपाउण्डमां जैनकीर्तिस्तंभ छे, जे समये श्वेताम्बर अने दिगम्बरना प्रतिमा भेदो पड्या न हता ते समयनो अेटले वि० सं० ८९५ पहेलानो अे जैन श्वेतांबर कीर्तिस्तभ छे। अल्लटराज जैनधर्म प्रेमी राजा हतो, ते वादी जेता आ० प्रद्युम्न सूरि आ० नन्दगुरु आ० जिनयश (आ० समुद्रसूरि) वगेरे श्वे० आचार्यो ने मानतो हतो, अेटले संभव छे केतेना समयमां भ० महावीर स्वामीनु मन्दिर अने कीर्तिस्तभ बन्या हशे, आ कीर्तिस्तभनु शिल्प स्थापत्य अने प्रतिमा विधान ते समय ने अनुरूप छे।" (जैनसत्यप्रकाश वर्ष ७ दीपोत्सवी अक पृ० १७७)।

इन उद्धरणो से जो सम्प्रदाय व्यामोह के आवेश में लिखे गये है और जिनमे यह कल्पना की गई है कि श्वेताबर-दिगबर वाद मे श्वेताबर विजय का यह प्रतीक स्तभ है। दूसरे महावीर स्वामी के मन्दिर का जीर्णोद्धार राणा मोकल की आज्ञा से गुणराज ने स० १४८५ (९५) मे कराया था। तीसरे यह कीर्तिस्तभ उस समय बना जब दिगबर श्वेतांबर प्रतिमा भेद नही पड़ा था। दोनों श्वेताबर साधुओं की ये कपोल कल्पनाये कितनी निराधार और अप्रमाणिक है। इसे बतलाने की आवश्यकता नही। सम्प्रदाय का व्यामोह बुद्धि को भ्रष्ट बना देता है। कीर्तिस्तभ को श्वेतांबरी बनाने के प्रयास मे उक्त कल्पनाओं को स्वयं गढा गया है। श्वेताबर-दिगबरो का ऐसा कोई बड़ा वाद नही हुआ जिसमें श्वेतांबरो ने विजय पाई हो। तथा दिगबरो को हारना पडा हो और उसकी खुशी में किसी स्तभ के बनाने की कल्पना उठी हो। लेखक ने इसका कोई प्रमाण नही दिया, जबकि उसका प्रामाणिक उल्लेख देना आवश्यक था।

कीर्तिस्तभ महावीर स्वामी के कपाउण्ड मे नही बना, बल्कि महावीर स्वामी मन्दिर किसी पुराने मन्दिर के खण्डहरों पर बना है। उस समय कीर्तिस्तभ बना हुआ हुआ था। जीर्णोद्धार के समय ही उक्त मन्दिर में महावीर की मूर्ति पधराई गई है। जिसकी प्रतिष्ठा का दर्शन विजय जी ने उल्लेख किया है। बहुत संभव है कि वह पुरातन मन्दिर किसी अन्य तीर्थंकर का रहा हो। यह मन्दिर कीर्तिस्तभ के दक्षिण-पूर्व मे है। इससे कीर्तिस्तंभ का कोई सम्बन्ध नही है। कीर्तिस्तंभ तो स० १५४१ के लेखानुसार चन्द्रप्रभ मन्दिर के स्थान मे बना था जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

अब रही प्रतिमा भेद की बात, सो यदि स्तंभ के निर्माता की जाति नाम आदि का उल्लेख न मिलता तो उक्त कल्पना को कुछ सहारा भी मिलता, परन्तु कीर्तिस्तभ का परिकर दिगम्बरत्व की झांकी का स्पष्ट निदर्शन करता है। और विद्वान तथा पुरातत्त्वज्ञ ही उसे दिगंबर नही बतलाते किन्तु श्वेताबर चैत्य परिपाटी मे भी उसे दिगंबर लिखा हुआ है, जिसका उल्लेख आगे किया जायगा।

मोहनलाल दलीचद देशाई ने कीर्तिस्तंभ को प्राग्वाट (पोरवाड) वशी कुमारपाल द्वारा बनाए जाने की कल्पना की है। जो समुचित नही प्रतीत होती। अनेक पुरातत्त्वज्ञो ने उस स्तंभ को बघेरवाल वंशी जीजा द्वारा बनाए जाने का स्पष्ट उल्लेख किया है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ विद्वान गौरीशकर हीराचन्द जी ओझा ने राजपूताने के इतिहास में लिखा है कि—"मार्ग मे पहले बाई ओर सात मजिल वाला जैन कीर्तिस्तंभ आता है, जिसको दिगबर सप्रदाय के बघेरवाल महाजन सानाय के पुत्र जीजा ने वि० सं० की चौदहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे बनवाया था। यह कीर्तिस्तंभ आदिनाथ का स्मारक है। इसके चारो पार्श्व पर आदिनाथ की एक विशाल दिगबर (नग्न) मूर्ति खड़ी है और बाकी के भाग पर अनेक छोटी-छोटी जैन-मूर्तिया खुदी हुई है।" (राजपूताने का इतिहास प्रथम एडीसन पहली जि० पृ० ३५२)

मुनि कान्तिसागर और अगरचन्द नाहटा भी कीर्तिस्तभ को दिगबर ही मानते है। इसके अतिरिक्त श्वेताबर विद्वान गयदि ने स० १५७३ मे रचित अपनी चैत्य परिपाटी मे कीर्तिस्तभ को स्पष्टत. दिगबर बतलाया है। किन्तु उसे हुंबडवशी पूना द्वारा बतलाना किसी भूल का परिणाम है। सभव है लेखक को शाह जीजाका नाम और जाति का स्मरण न रहा हो। अथवा ज्ञात ही न हो, इस कारण हुंवड वश की कल्पना की हो। और उसमे नौ सौ जिनबिम्बों के होने की बात लिखी है।

**पासइ हुंबड पूनानी सुता देवात कहइ इक ताता तारन रे।**
**त्रखडी मइ धनवेगि करा वीउरे कीरतिथंभ विख्यात रे।**
**चउ परि चोखी चिहु पर कोरणी रे श्रंचउ अति विस्तार रे।**
**चढता जे भुइ सात सोह मणीरे बिंब सहस दोइ सारनर ?**
**ढाल—हवइ दिगम्बर देहरइरे तिहां जे नवसइ बिंब।**
**भामडल पूठइ भवऊरे छत्रत्रय पडिबिंब**
**भविया पूजइ पास ए तु पूरइ मन की आस**
**चर्चो चंदन केवडउरे गोरी गावइ रास॥**

कीर्तिस्तभ को श्वेताबर मानने की जो कल्पना उठी उसका कारण स० १५०८ मे गढ़ी गई महावीर प्रशस्ति का निम्न पद्य है, जिससे लोगो को भ्रम हुआ है—

**उच्चैर्मंडप पंक्ति देवकुलिका वीस्तोर्णमाणश्रियं।**
**कीर्तिस्तंभ समीपवर्तिनममुं श्रीचित्रकूटान्वये।**
**प्रासाद सृजत ? प्रसादमसमं श्रीमोकलार्वीपते।**
**आदेशात् गुणराज साधुरचित स्वच्चे दधाषीन्मुदा॥८६**

इस पद्य मे बतलाया है कि कीर्तिस्तंभ के समीप मोकलराय के आदेश से महावीर चैत्यालय या मन्दिर बनाया गया है उसके दक्षिण मे प्राग्वाट (पोरवाड) वंशी कुमारपाल का जिन मन्दिर था। इसमे कीर्तिस्तभ के समीपवर्ती लिखा हुआ होने से दिगंबर कीर्तिस्तभ को भी श्वेताबर वतला दिया गया है। जब कि अनेक प्रमाणो से कीर्तिस्तभ दिगंबर है और उसके निर्माता बघेरवाल वशी शाह जीजा है।

यहां यह बतलाना आवश्यक है कि उक्त कीर्तिस्तभ का रचना समय ठीक ज्ञात नही हो सका, किन्तु अन्य प्रमाणो की रोशनी मे उसका निर्माणकाल १५वी शताब्दी के उत्तरार्ध से बहुत पूर्ववर्ती है। मेरे ख्याल मे कीर्तिस्तभ का समय विक्रम की १३वी या १४वी शताब्दी जान पड़ता है। आशा है विद्वान इस पर विचार करेगे।

मुनि कान्तिसागर जी ने नादगाव की मूर्ति का जो लेख 'खण्डहरो के वैभव' और अनेकान्त मे प्रकाशित किया है। उसका परिचय कराते हुए लिखा है कि "भट्टारक विश्व सोमसेन उस समय के समाज मे प्रसिद्ध व्यक्ति मालूम पडते है क्योकि उनकी प्रतिष्ठा के दो लेख नागदा की दि० जैन मूर्तियो पर उत्कीर्णित है।" साथ ही उनके जीवन पर प्रकाश डालने वाली पुरुषार्थ सिद्धयुपाय और करकडु चरित की जो पुष्पिकाए उनके पास है उनसे उनकी दो कृतियो का पता चलता है। समयसार वृत्ति और अमर कोष की हिन्दी टीका। इस सम्बन्ध मे यहाँ इतना लिखना ही पर्याप्त है कि लेख मे कुछ नाम गल्ती पढ़े गये है। लेख मे स्पष्टरूप मे **अभिनव त्रैविद्य सोमसेन का** उल्लेख है न कि विश्व सोमसेन का, अब मुनिजी को सोमसेन त्रैविद्य की उपलब्ध सब सामग्री प्रकाशित कर देनी चाहिए। लेख मे और भी कई स्थल है जो पढ़ने में नही आए, या गलत पढ़े गए। उन स्थलो को नीरज जी के लेख के परिशिष्ट में खडी ब्रेकट मे दे दिया गया है। जैसे वृषमान [वृषभसेन]......[आम्नाये या वशे] आदि, उसमे एक दो स्थल और है जैसे योगे [......] र केण के स्थान में

[रक्सगणे] ऐसा कोई पाठ होना चाहिए, जिसे मैंने छोड दिया है। अकोला की ५२ जिनालय वाली मूर्ति का लेख यदि दुबारा सावधानी से पढा जाय तो लेख की सभी अशुद्धियाँ दूर हो सकती है। और उस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। कारजामे भट्टारक पीठ रहा है, वहाँ सोमसेन नाम के चार भट्टारकों का पता चलता है। उन चारों मे अभिनव त्रैविद्य सोमसेन कौन है ? इसका विचार करना चाहिए। उनका अभिनव त्रैविद्य विशेषण उनसे जुदाई का बोधक है। आदि बातें भी विचारणीय हैं। ★

---

**आपदग्रस्तों के लिए सहायक संस्था :**

# महावीर कल्याण केन्द्र

### श्री चिमनलाल चकुभाई शाह

भारत जैसे विशाल देश में हर वर्ष कही न कही प्राकृतिक आपत्ति आती ही रहती है। कही बाढ आई तो कहीं सूखा पडा, कही भूकम्प आया तो कही कुछ आपत्ति आई। ऐसे विपदग्रस्तो को राहत पहुँचाने के लिए महावीर कल्याण केन्द्र जनता की सेवा कर रहा है।

यों तो जैन तथा व्यापारी समाज जनहित के कामों में सदा अगुआ रहा है और हर साल समाज की ओर से अलग-अलग सप्रदायो तथा जातियों की ओर से करोडों का दान भी होता है। अनेक जन कल्याण के काम भी होते रहते है। पर इन विखरे प्रयत्नो का जनता या सरकार पर विशेष न तो प्रभाव ही है और न उनके कार्यों का योग्य मूल्याकन ही होता है। यदि सब जैनी मिल कर योजनापूर्वक काम करे तो बहुत अच्छा कार्य होकर उसका परिणाम भी अधिक हो सकता है। यह अनुभव महावीर कल्याण केन्द्र की सेवाओ को देखकर आता है।

दो साल भी नही हुए बिहार मे भीषण अकाल पडा था महावीर जयन्ती के अवसर पर चारों सप्रदायो और भारत जैन महामण्डल की ओर से सभा बुलाई गई थी उसमे श्री जयप्रकाशनारायण जी को विशेष अतिथि के रूप मे निमत्रित किया था। उन्होंने अपने व्याख्यान मे बताया कि भगवान् महावीर के जन्म और कार्यक्षेत्र में भयानक अकाल है। लोग भूखो मर रहे है। अहिसा प्रेमी जैनियों को चाहिए कि वे वहा पीडितो और भूखो को बचाने के लिए कुछ करे। सभा का सचालन श्री चिमनलाल चकुभाई शाह कर रहे थे। स्टेज पर बैठे साहु श्रेयांसप्रसाद जी, लालचन्द हीराचन्द दोशी, प्रताप भोगीलाल, कातिलाल ईश्वरलाल, फूलचन्द शामजी आदि प्रमुख लोगो से चिमन भाई ने चर्चा की और कुछ रकम एकत्र करने का निर्णय किया। इस क्षेत्र मे भूखो को भोजन देने के लिए कुछ रसोडे चलाने के लिए एक लाख बीस हजार रूपया जैन समाज की ओर से देने की बात हुई। इस निमित्त से चन्दा एकत्र करने के लिए शकुन्तला जैन गर्ल्स हाई स्कूल मे सभा बुलाई गई जिसमे मण्डल के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अमृतलाल कालिदास दोशी, श्रेयामप्रसादजी, प्रताप भोगीलाल, कातिलाल ईश्वरलाल, फूलचन्द शामजी, रतीलाल मनजीभाई, चन्दुलाल कस्तूरचन्द, चिमन भाई, रिषभदास राका, गभीरचन्द, उमेदचन्द, गिरधर भाई दफ्तरी, हीरा लाल एल० शाह आदि उपस्थित थे। रतीलाल मावजी भाई, एक व्यापार से अवकाश प्राप्त सफल व समृद्ध व्यापारी है। उन्होंने सभा को आव्हान किया कि हम कुछ रसोडों के लिए रूपये भिजवावे, इससे तो भगवान महावीर के विहार क्षेत्र मे से कुछ हिस्सा लेकर वहाँ हम उनके नाम पर काम करे। बात ठीक होने पर भी बिहार मे जाकर काम करना आसान बात तो थी नही इसलिए सभा मे कहा गया कि बात ठीक है पर वहाँ जाकर बैठेगा कौन ? वे बोले इसकी चिता मत कीजिए। मैं अपने साथियो को लेकर जाऊँगा और यह कार्य भगवान महावीर के कार्यक्षेत्र मे उन्ही के नामसे ही होना चाहिए। वे बिहार मे कार्यकर्ताओं के साथ गये। वहाँ की स्थिति का अध्ययन किया और खासकर राजगृह तथा पावापुरी

विभाग मे जहाँ भगवान का बिहार और निर्वाण हुआ था उस क्षेत्र मे भगवान महावीर कल्याण केन्द्र के नाम से काम करने का निश्चय किया। इस विभाग मे ४०० गाँव के लिए ४० रसोड़े पाँच महीने तक चलाए गये। वहाँ स्थानकवासी समाज के बुजुर्ग कार्यकर्ता गिरधर भाई दफ्तरी भी गए थे जो समाज से रुपया एकत्र करने मे कुशल है। जिसमें २० रसोडे एक पैसे मे एक रोटी के हिसाब से भोजन दिया और २० रसोड़े मुफ्त मे भोजन बांटने के कार्य में व्यस्त हो गए। महावीर कल्याण केन्द्र कार्यकर्ताओ ने ऐसा व्यवस्थित कार्य किया कि बिहार रिलीफ सोसाइटी, मद्रास के जैन संघ, परदेशी संस्थाओं आदि ने अपना उन्हे सहयोग दिया। साधन, साहित्य और धन भी दिया। कल्पना यह थी कि इस काम मे ढाई लाख से अधिक रुपया लगेगा पर जमा उससे भी अधिक हुआ। और रुपया एकत्र करने मे श्रम भी बहुत अधिक नहीं करना पडा। जिससे वहाँ भली भांति कार्य सपन्न हुआ, और कार्य सपन्न होकर भी केन्द्र के पास कुछ रुपया बचा, मिलकर किए हुए इस काम का अच्छा परिणाम देख कर समाज के नेताओं ने निश्चय किया कि राहत कार्य के लिए यह स्थाई संस्था स्थायी काम करे।

जब भगवान महावीर २५ सौवे निर्वाण महोत्सव के कार्य में सहयोग देने के लिए श्री सोहनलाल जी दूगड से कहा गया तो उन्होंने कहा था कि इस अवसर पर साहित्य प्रदर्शनी, सभाये और उत्सव तो हो ही पर कोई ऐसा जन कल्याण का स्थायी कार्य भी होना चाहिए जिससे करुणानिधि भगवान महावीर की करुणा रचनात्मक कार्य करे। इसके उदर मे हमने भगवान महावीर कल्याण केन्द्र की जानकारी देकर कहा था कि इस संस्था का प्रारम्भ भगवान महावीर जयन्ती के निमित्त से हुआ और इसे २५००वे निर्वाण महोत्सव के कार्यक्रम का ही यह महत्त्व-पूर्ण अंग माना जा सकता है। उनकी इच्छानुसार काम करने वाली इस सस्था के लिए वे स्वय बहुत बड़ी रकम देने वाले थे पर उनका देहावसान हो गया। जैन समाज का कही भी कोई अच्छा कार्य होता है वहाँ दिल खोलकर देता है। महावीर कल्याण केन्द्र के विषय मे भी यही हुआ। तभी गुजरात में बाढ़ आई तब दो लाख रुपये इस कार्य के लिये खर्च करने का सकल्प कर कार्यकर्ता बाढ़-ग्रस्त विभाग मे पहुँचे। तीन महीने रहे और वहाँ सूरत तथा भडौच जिले मे आवश्यक काम किया। जितनी आवश्यकता थी उतनी सहायता कर अब भगवान महावीर कल्याण केन्द्र के कार्यकर्ता अब राजस्थान के अकालग्रस्तों की सहायता को पहुँच गये है।

राजस्थान में स्थिति अत्यन्त भयानक है। खासकर जैसलमेर, बाडमेर, जोधपुर तथा बीकानेर का कुछ हिस्सा भयानक अकाल की चपेट मे आया हुआ है। वहाँ पशुओं को चारा और पानी न मिलने से बहुत बडी सख्या में मर रहे है। हजारो नहीं, पर कहा जाता है कि दो लाख से अधिक पशु मर गये है। यदि सहायता न पहुँचाई गई तो और भी मरने की उम्मीद है। पशुओं को बचाने के लिए गौ सेवा संघ, सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी, राजस्थान रिलीफ कमेटी, मारवाडी रिलीफ सोसायटी आदि संस्थाएँ लगी हुई है। महावीर कल्याण केन्द्र मानव राहत का कार्य हाथ मे लेकर काम करना चाहता है। कार्यकर्ता वहाँ की स्थिति का अध्ययन करके भारत जैन महामण्डल की राजस्थान शाखा के सहयोग से काम करेंगे।

इस प्रकार राहत का कार्य व्यवस्थित रूप से करने वाली यह सस्था धर्म सप्रदाय या जातिका भेद का विचार न कर मानव राहत का कार्य कर रही है। उसमे सबका सहयोग लेती है। राजस्थान के कार्य मे मुख्यमत्री सुखा-डिया जी से बात की उन्होने कल्याण केन्द्र के मत्री चिमन-लाल भाई से कहा कि आप लोग जितना खर्च वहाँ करेंगे उतना खर्च राजस्थान सरकार की ओर से दिया जाएगा। इस प्रकार कल्याण केन्द्र द्वारा अधिक काम कर सकेगा और कल्याण केन्द्र के अनुभवी तथा सेवा भावी कार्यकर्ता द्वारा होने वाले इस काम में जैन समाज ही नही पर सभी से प्रार्थना है कि वे अपने क्षेत्र में चन्दा कर महावीर कल्याण केन्द्र को भिजवावें।

आशा है जैन समाज तथा सभी मानव प्रेमी लोग अपने क्षेत्र मे चन्दा कर महावीर कल्याण केन्द्र को अधिक कार्य करने में सहायक होगे। महावीर कल्याण केन्द्र का दफ्तर एक्जामीनर प्रेस, दलाल स्ट्रीट, बम्बई-१ में है और मंत्री है श्रीचिमनलाल चकुभाई शाह। ●

# अग्रवालों का जैन संकृति में योगदान

परमानन्द शास्त्री

[अनेकान्त वर्ष २१ किरण २ से आगे]

और वे जैनधर्म के श्रद्धालु ही नही रहे, किन्तु जीवन में उसका आचरण भी करने लगे। उनका विचार साहित्य-सेवा और जैनधर्म के प्रचार करने का हुआ। वे देश की अपेक्षा विदेशो में जैनधर्म का प्रसार एव प्रचार करना अधिक उपयुक्त समझते थे।

**समाज-सेवा :**

वैरिस्टर साहब की समाज-सेवा का उपक्रम सन् १९२२ में दि० जैन महासभा लखनऊ के अधिवेशन से शुरु होता है जिसके वे स्वय अध्यक्ष थे। उन्होंने अपने उत्तरदायित्व को जिस सतर्कता और सावधानी से निभाया था वह उनकी दक्षता का एक मापदण्ड हो सकता है। उन्होंने उसके सुधार मे बड़ी सतर्कता वर्ती है। उसके कोष को आपने सावधानी से निकलवाया। वे उसके सत्रुटित तारों को जोड़कर सक्रिय बनाना चाहते थे परन्तु कुछ विचार असहिष्णु स्थिति पालकों को यह कैसे सह्य हो सकता था ? यह विचार असहिष्णुता और सकीर्ण-मनोवृत्ति का परिणाम है कि सन् १९२३ मे महासभा का अधिवेशन दिल्ली मे हुआ, उस समय उसके मुख पत्र जैन गजट की दशा सुधारने का प्रश्न आया। उसके लिए सुयोग्य सम्पादकों का प्रश्न आया तब किसी सज्जन ने वैरिस्टर साहब का नाम उपस्थित कर दिया; किन्तु महा-सभा के सूत्रधारो ने उस योजना को ठुकरा दिया। साथ ही महासभा को वृद्ध विवाहादि कुरीतियों का सुधार भी असह्य हो उठा। परिणामतः परस्पर में मत-विभिन्नता घर कर गई।

इसी मत विभिन्नता में दि० जैन परिषद का जन्म हुआ, वैरिस्टर सा० ने उसके सचालन में अच्छा योग दिया। परिषद् ने मत-विभिन्नता के रहते हुए भी समाज हित के अनेक कार्य किये। जनता की संकीर्ण मनोवृत्ति को बदल कर उदार बनाने का उपक्रम किया। परिषद् की स्थापना से महासभा का दायरा और भी संकीर्ण बन गया, और समाज में अनेकता का बीज बपन किया। दोनों सस्थाएँ यद्यपि जीवित है और अपना-अपना कार्य भी कर रही हैं। परन्तु ठोस कार्य नही हो रहा।

वैरिस्टर साहब ने देश की अपेक्षा विदेश में जैनधर्म का प्रचार किया। उनकी यह हार्दिक कामना थी कि विदेशों में जैनधर्म का प्रचार उच्च स्तर पर किया जाय। जिससे वे जैनधर्म की महत्ता को हृदयंगम कर सकें। और उसके वैज्ञानिक मूल्य को आक सके। जैनधर्म का सर्वोदयी मूल उनके मानस मे उद्वेलित हो रहा था उनके हृदय मे उसकी निष्ठा व्यापक हो गई थी। तीर्थक्षेत्रों की रक्षा के लिए उन्होने कोई कोर कसर नही रक्खी। सम्मेदशिखर की पैरवी के लिए लदन भी गये। और जो प्रयत्न उनसे हो सकता था वह किया। साथ मे बाबू अजितप्रसाद जी एडवोकेट लखनऊ ने भी सहयोग दिया। धर्म प्रचार के लिए भी प्रयत्न किया, अनेक भाषण उनके वहाँ हुए। उनके भाषणो के प्रभाव से कुछ लोगो ने जैनधर्म का अध्ययन भी किया। सन् १९३० मे उन्होने लदन मे जैन लायब्रेरी (Librav) की स्थापना की। साहित्य-सेवा के क्षेत्र में उन्होने जो कार्य किया वह प्रशसनीय है।

**साहित्य सेवा**—वैरिस्टर साहब के द्वारा अनेक ग्रन्थों का निर्माण भी हुआ। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ की आफ नोलेज (Key of Knowledge) है जो ज्ञान की कुजी के नाम से प्रसिद्ध है, उसका जिन लोगो ने अध्ययन किया वे वेरिस्टर साहब की—साहित्य-सेवा का मूल्य आंक सकते हैं। उन्होंने अनेक ग्रन्थों और ट्रेक्टों का निर्माण किया है उनमे से कुछ के नामों का उल्लेख नीचे किया जाता है :—

१. तुलनात्मक धर्म विज्ञान—Science of Comparativ of Religion).

२. ज्ञान की कुजी—(Kay of Knowledge).

३. Conffuence of Opposites (असहमत सगम) इस ग्रथ मे ससार के समस्त प्रचलित धर्मो का सामान्य परिचय कराकर उनका तुलनात्मक विवेचन किया है।

४. जैन लॉजिक (The Science of Thought) न्याय विषयक एक सुन्दर रचना।

५. इष्टोपदेश (Discourse Devine) आ० पूज्यपाद देवनन्दी के आध्यात्मिक ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद।

६. रत्नकरण्डश्रावकाचार (The Housepolders Dharma) का अग्रेजी अनुवाद। यह आचार्य समन्तभद्र की गृहस्थधर्म विषयक अपूर्व रचना का प्रामाणिक भाषान्तर है।

७. व्यावहारिक धर्म—(The Practical Dharma) यह आपकी स्वतत्र रचना है जिसमे द्रव्यानुयोग का निरूपण किया गया है।

८. सन्यासधर्म (The Sannayas Dharma) इसमें मुनि धर्म का विचार किया गया है। और समाधिमरण के महत्त्व का दिग्दर्शन है।

९. आत्मिक मनोविज्ञान—(Jain Psychology) इसमें जीवादि सात तत्त्वो का विवेचन किया गया है।

१०. जैन संस्कृति (Jain Culture) को समझने के लिए अपूर्व पुस्तक।

११. श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र (Faith Knowledge and Conduct) इसमे रत्नत्रय का सुन्दर विवेचन किया गया है।

१२. जैन तपश्चरण (Jain Penance) इसमें आत्म उन्नति कारक तपश्चरण की वैज्ञानिकता पर बल दिया गया है।

१३. ऋषभदेव—(Rishabhadeva) इसमें जैनियों के प्रथम तीर्थकर का जीवन परिचय दिया गया है।

१४. जैन धर्म क्या है ?—(What is Jainism ?) इसमें वैरिस्टर साहब के भाषणो का सकलन है, जो उन्होने लदन आदि मे भाषण दिये थे। इससे वैरिस्टर साहब के उदात्त विचारो का पता चला जाता है। इनके अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाएँ भी होंगी, जो मुझे ज्ञात नही है। इस तरह वैरिस्टर साहब की साहित्य-सेवा अपूर्व है। वह उनके जैनधर्म विषयक ज्ञानकी महत्ता की द्योतक है।

बयालीसवे विद्वान वैरिस्टर जुगमदरदास जी है आप के पिता जी का नाम लाला पन्नालाल जी था। आप सहारनपुर के निवासी थे। आप जन्मकाल से ही पूर्व सस्कारवश बुद्धिमान थे। आप मेट्रिक्यूलेशन (Matriculation) और इन्टरमीडियेट (Intermadiate) परीक्षा मे बराबर सरकारी छात्रवृत्ति पाते रहे। आपने एम ए. प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण किया। एम. ए. की परीक्षा पास होते ही आप इलाहाबाद यूनिवर्सिटी मे अग्रेजी भाषा के अध्यापक और छात्रालयों के प्रबन्धक बना दिये गये। तीन वर्ष अध्यापिकी करने के बाद सन् १९०६ में एकजेटर कालेज ओक्सफोर्ड (Exater College Oxford) लन्दन मे दाखिल हो गये। और सन् १९१० मे वैरिस्टर होकर स्वदेश लौट आये। पश्चात् आप बम्बई के सेठ माणिकचन्द पानाचन्द जी के साथ श्रवणबेलगोला मे बाहुबली के महामस्तकाभिषेक मे शामिल हुये। आपने रोमन लॉ (Roman Law) और जैनधर्म की रूपरेखा (Outlines of Jainisim) दोनो पुस्तकें लदन मे छपवाई।

भारत मे वैरिस्टरी करने मे आपको पर्याप्त सफलता मिली। सन् १९१३ के प्रीवी काउन्सिल (Privy Council) के एक मुकदमे में आपको लन्दनमे भेजा गया। सन् १९१४ से १९२७ तक आप इन्दौर राज्य के न्यायाधीश और व्यवस्थाविधि विधायिनी सभा के अध्यक्ष रहे। बीच मे आप सन् १९२० से १९२२ तक निःशुल्क सरकारी काम असिस्टेन्ट कलक्टरी (Assistant collector) और अमन सभा (Lengue of Paace and Order) के सस्थापक मत्रित्व का कार्य भी करते रहे तथा रायबहादुर उपाधि से भी विभूषित किये गये।

**साहित्य-सेवा :—**

आपने वैरिस्टरी, एव राज्यकीय सेवा और निःशुल्क सरकारी कार्य करते हुए भी अवकाश के समय जैन साहित्य की सेवा का कार्य किया। ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी ने इन्दौर चतुर्मास में उनके साथ बैठकर तत्त्वार्थाधि-

गम सूत्र, आत्मानुशासन, पंचास्तिकाय, समयसार और गोम्मटसार जीवकाण्ड का अंग्रेजी भाषा मे अनुवाद किया अंग्रेजी भाषा में अनुवाद हो जाने के कारण अंग्रेजी पढे-लिखे विद्वान भी उनका अध्यन करने मे समर्थ हो सके। उनका यह उपकार किसी तरह भी भुलाया नही जा सकता। और मौलिक प्रस्तावनाओं के साथ उन्हें प्रकाशित भी किया। आपने जैन पारिभाषिक शब्दों का एक कोश भी तयार किया था। आपका हृदय साधर्मी वात्सल्य से परिपूर्ण था और वह कभी-कभी छलक पड़ता था।

वैरिस्टर साहब ने सन् १९०४ से 'जैन गजट' अंग्रेजी का सम्पादन कार्य भी अपने हाथ में लिया। और उसमें बराबर योगदान देते रहे। भारत जैन महामडल मे भी वैरिस्टर साहब ने जान डाली और उसे बराबर प्रोत्साहन देते रहे। वे साम्प्रदायिकता से कोशो दूर रहते थे।

आपने अपनी मृत्यु से एक वर्ष पहले ही १४ अगस्त १९३६ को अपनी जायदाद का एक वसीयत नामा लिख दिया था कि उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति जन हितार्थ एवं जैन धर्म की रक्षा और जैनधर्म प्रचार मे काम आती रहे। सन् १९२७ मे वैरिस्टर साहब का स्वर्गवास हो गया। उनके बाद ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी जब तक जीवित रहे उसका कार्य लगन से करते रहे; क्योकि ट्रस्टी जो थे। उनके जीवन के बाद उसका वैसा कार्य नही हो सका। रा० ब० सेठ लालचन्द जी ने ब्र० शीतलप्रसाद जी रिक्त स्थान में बा० जौहरीलाल जी मित्तल की नियुक्ति कर ली। और अब बा० लालचन्द सेठी के स्वर्गवास के बाद सेठ भूपेशकुमार जी उज्जैन को बा० जौहरी लाल ने ट्रस्टी बना लिया। ट्रस्टी की सम्पत्ति से जो महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिए था वह नहीं हो सका। और न उनकी स्मृति में कोई ग्रन्थ ही निकाला गया। मात्र किसी संस्था या पत्र को आर्थिक सहयोग दे देना ट्रस्ट या वसीयत के उद्देश्य की पूर्ति नही है। आशा है ट्रस्टीजन ट्रस्ट की सम्पत्ति का विनिमय ट्रस्ट के उद्देश्यों के अनुसार करने का प्रयत्न करेंगे, जिससे ट्रस्टकर्ता की भावना पूरी हो सके। ट्रस्टियों को एक वार ट्रस्ट के उद्देश्यों को प्रकाशित कर देना चाहिए. जिससे जनता को जे. एल. जैनी ट्रस्ट के उद्देश्यों का पता चल सके। और मि० जैनी की स्मृति में भी कोई काम करना चाहिए।

तेंतालीसवे विद्वान मास्टर बिहारीलालजी चैतन्य है। जिनका जन्म बुलन्दशहर मे सन् १८६७ की १५ अगस्त वि० सं० १९२४ श्रावण शुक्ला चतुर्दशीके दिन हुआ था। आपने सन् १८९१ में फारसी भाषा के साथ एन्ट्रेस पास किया। आपके जीवन का लक्ष्य सन्तोष और परिश्रम के साथ ज्ञान द्वारा स्व-पर हित करना था। आप (Self Made) स्वनिर्मित व्यक्ति थे। उन्होने उपासना और स्वाध्याय द्वारा अपने ज्ञान को बढाया और शिक्षण द्वारा छात्रों को, एव पुस्तको द्वारा जन सामान्य को वह सचित ज्ञान प्रदान किया। उनकी भावना थी कि सभी ज्ञानी बने और स्व-पर हितो मे लगें। जब वे किसी से चर्चा करते तब अपने मजे हुये अनुभव से कहते कि सन्तोष से ज्ञानार्जन कर अपने ज्ञान की निरन्तर वृद्धि करना और उसे स्वपर हितार्थ जनता को प्रदान करना अपना कर्तव्य है।

आप सन् १८९३ मे बुलन्दशहर के गवर्नमेन्ट हाई स्कूल मे १२) रु० मासिक पर अध्यापक नियुक्त हुए थे। पश्चात् क्रमश· अपनी उन्नति करते हुए बाराबकी के गवर्नमेन्ट हाई स्कूल मे सहायक अध्यापक के पद पर पहुँच गये। और १२०) रु० वेतन पाने लगे। आप ३० जुलाई सन् १९२४ (वि० स० १९८१ मे रिटायर हुए। शिक्षण कार्य करते हुएआपने अपने समयको कभी व्यर्थ नही गमाया, किन्तु साहित्य-सेवा के कार्य मे बराबर लगे रहते थे।

आप हिन्दी उर्दू में गद्य-पद्य के लेखक थे। आपने हिन्दी उर्दू में छोटी-बडी लगभग ६१ पुस्तके लिखी हैऐसा सुना जाता है उन पुस्तकों मे सबसे बड़ी पुस्तक वृहत् जैन शब्दार्णव नाम का कोष है, जिसके दो भाग प्रकाशित हुए है। उसमे दूसरे भाग का सम्पादन ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी जी ने किया था। भर्तृहरि की नीतिशतक और वैराग्य शतक का अनुवाद भी आपने किया था। पडित रिखबदास जी के मिथ्यात्व तिमिरनाशक नाटक के २-३ भाग उर्दू मे प्रकाशित किये थे। रिटायर्ड होने पर आप अपना पूरा समय स्वाध्याय द्वारा ज्ञानार्जन मे व्यतीत करते थे। आप की पुस्तके अधिकतर उर्दू मे है, इस कारण मै उनका रस न ले सका। हां वृहत् जैन शब्दार्णव को मैंने देखा है।

आपके सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी नहीं मिली।

आपका अवसान वि० स० १९३६-३७ के लगभग हुआ है। आपके सुपुत्र शान्तिचन्द्र जी है जो विजनौर मे रहते है।

चवालीसवे विद्वान बाबू ऋषभदास जी वकील मेरठ है। जो उन्नीसवीं और बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ के विद्वान थे। उस समय के विद्वानों मे आप प्रमुख थे। आप लाला मन्नूलाल जी बैंकर मेरठ के सहोदर थे। और बी. ए. पास कर वकील बने थे। आप बचपन से ही धार्मिक सस्कारो मे पले थे, इसलिए आपके जीवन मे धार्मिक संस्कारों का जुज मौजूद था। देवदर्शन, स्वाध्याय और पूजादि श्रावकोपयोगी कार्यों मे बराबर रुचि रखते थे। शान्तचित्त और सरल परिणामी थे। आपने स्वाध्याय द्वारा अच्छा धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया था। आप हिन्दी उर्दू और अग्रेजी तीनो भाषाओं मे लिखते थे। आपके धार्मिक एव समाजिक लेख उर्दू के 'जैन प्रदीप', 'जैन ससार' और अग्रेजी 'जैन गजट' मे प्रकाशित होते थे। इतना ही नही किन्तु 'कलकत्ता रिव्यु' और 'थियोसोफिस्ट' नामक जैनेतर पत्रो मे भी जैनधर्म सम्बन्धी लेख प्रकाशित होते थे। आपके कुछ लेखो का सग्रह 'इन लाइट इन्टु जैनिज्म' नाम से प्रकाशित हुआ था।

आपने योगीन्द्रदेव कृत परमात्म प्रकाश का अग्रेजी मे अनुवाद और व्याख्या लिखी थी जो 'सेन्ट्रल पब्लिशिग हाउस आरा' से प्रकाशित हुआ है। बाबू सा० जैन प्रदीप के नियमित लेखक थे। प्रेमी जी कहा करते थे कि बाबू ऋषभदेव जी के देहावसान के बाद जैनप्रदीप भी बन्द हो गया। आपकी मृत्यु कब हुई उसकी तिथि वगैरह ठीक मालूम नही हो सकी पर आपके निधन से जैन समाज को काफी क्षति पहुँची

पैतालीसवें विद्वान बाबू अजितप्रसाद जी एडवोकेट है। जिनका जन्म सन् १८७४ के लगभग हुआ था। अपके पिता स्वर्गीय देवीप्रसाद जी बड़े ही दूरदर्शी और धार्मिक प्रकृति के सज्जन थे। वे सन् १८८७ मे लखनऊ आये थे। उस समय आपकी अवस्था १३ वर्ष की थी। सन् १८८९ में देवीप्रसाद जी ने लखनऊ में 'जैनधर्म प्रवर्धनी सभा' की स्थापना की थी। उससे लखनऊ जैनसमाज में नवीन जागृति और जैनधर्म के प्रति विशेष आकर्षण प्राप्त हुआ था। तब लखनऊ मे जैन रथोत्सव का कार्य धूमधाम से सम्पन्न हुआ था। उस समय बाबू अजितप्रसाद जी ने अपनी १५ वर्ष की अवस्था मे एक भाषण दिया था, जो छपाकर वितरित किया गया था।

**सेवा-कार्य :—**

बाबू अजितप्रसाद जी ने अपनी वकालत करते हुए भी जीवन भर समाज सेवा की है। बाबू जी केवल एड-वोकेट ही नही रहे किन्तु जज और चीप जस्टिस जैसे सम्मानीय पदो पर भी रहे है। सन् १९१२ में आपने बम्बई प्रान्तीय सभा के अध्यक्ष पद से एक भाषण पढ़ा था। ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी की प्रेरणा आपको बराबर प्रेरित करती रही है। आपने सन् १९१३ से जीवन पर्यन्त तक अग्रेजी जैन गजट के सम्पादन का कार्य किया है। आप सन् १९०४ से भारत जैन महामण्डल के कार्य-कर्ता, मत्री और सभापति भी रहे है। सन् १९०५ मे बनारस स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थापना हुई थी, तब से कई वर्ष तक आप उसकी प्रवन्ध समिति के सदस्य भी रहे थे। सन् १९२३ मे आप महासभा से पृथक् होकर दि० जैन परिषद् के सस्थापको मे भी रहे।

सन् १९२३ से २९ तक आप तीर्थक्षेत्र कमेटी की ओर से सम्मेदशिखर, राजगिरि और पावापुरी आदि क्षेत्रो के मुकदमों मे हजारीबाग, राची और पटना मे रह कर कार्य किया। और उनसे तीर्थ क्षेत्रों की जो सेवा बन सकी उसमे बराबर अपना योगदान करते रहे।

**साहित्य-सेवा :—**

बाबू अजितप्रसादजी मे जैनधर्म और उसके साहित्यकी लगन तो थी ही, साथ मे ब्र० शीतलप्रसाद जी की प्रेरणा भी उनमे काम कर रही थी। जैन गजट आदि मे कुछ लिखते ही रहते थे। परन्तु उनके पास इतना अधिक समय नही था कि वे स्थायी रूप से साहित्य-सेवा मे जुटे रहें। फिर भी उन्हे जितना अवकाश मिलता था उसमे समाज-सेवा और तीर्थक्षेत्र रक्षादि के कार्यो से समय निकाल कर कुछ समय साहित्य-सेवा मे भी लगाते थे। परिणाम स्वरूप बाबू जी ने अमितगत्याचार्य द्वितीय के सामायिक पाठ का अग्रेजी मे अनुवाद किया था। और विक्रम की दशवी शताब्दी के आचार्य अमृतचन्द्र के पुरु-

षार्थ सिद्धयुपाय का भी आपने अंग्रेजी में अनुवाद किया। जो प्रकाशित हो चुका है। ये सब कार्य आपने अजिताश्रम लखनऊ मे ही सम्पन्न किये। आपकी मृत्यु सन् १९५३-५४ मे हुई है। इसके बाद आपका अजिताश्रम समाज-सेवा से वचित हो गया, उनके पुत्रादिको को समाज-सेवा का अवकाश भी नही मिलता।

छयालीसवे विद्वान कवि ज्योतिप्रसाद जी है, जो देवबन्द के निवासी थे। देववन्द जि० सहारनपुर मे है। यहाँ मुसलमानो का अरबी फारसीका एक विश्व विद्यालय—(दारूल उलूम) भी है जैनियो की भी अच्छी वस्ती है और घरो की सख्या ५०-६० से कम नही है। और चार जिनमन्दिर है। देवबन्द हाथ के बुने सूतो कपड़े खद्दर दुतई और खेश के लिए प्रसिद्ध है। यह एक पुराना कस्बा है। और दो तिहाई के लगभग मुसलमानो की वस्ती है। इसी नगर मे बाबू सूरजभान जी और मुख्तार श्री जुगलकिशोर जो ने वकालत की और जैन गजट का सम्पादन कार्य किया है। और ग्रन्थ परीक्षाएँ लिखी है। इस नगर मे सन् १८८२ वि० स० १९३९ मे बाबू ज्योतिप्रसाद जी का जन्म हुआ। आपके पिता नत्थूमल जी साधारण दुकानदार थे, और बडी कठिनता से अपने कुटुब का निर्वाह करते थे। लाला नत्थूमल की तीन सन्ताने थी। ज्योतिप्रसाद, जयप्रकाश और एक छोटी पुत्री। निर्धनता एक अभिशाप जो है। जब बाबू ज्योतिप्रसाद जी सात वर्ष के थे तभी आपके पिता जी का स्वर्गवास हो गया। उस समय आपकी मुसीबत का क्या कहना। उस समय आपकी माता ने अपने चरित्र के सरक्षण के साथ परिश्रम द्वारा उपार्जित आय से तीनो सन्तानों का पालन-पोषण और शिक्षण कार्य इस तरह से किया जो अनुकरणीय है। ऐसी माताएँ सदा सम्मान के योग्य होती है। निर्धनता मे बच्चों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध नही हो पाता। वह माता धन्य है जिसने परिश्रम द्वारा अर्जित द्रव्य से अपनी सन्तान को शिक्षित बनाया है। उस समय देवबन्द की जैन पाठशाला में अध्यापक कचौरा जिला इटावा के निवासी पंडित भुन्नीलाल जी थे जो वैद्य, कवि और ज्योतिषी भी थे। उन्ही से ज्योतिप्रसाद ने विद्याध्ययन किया था। उसी पाठशाला में उर्दू की शिक्षा भी पाई। यद्यपि आज के समान उनकी शिक्षा नही थी किंतु उस समय के योग्य काम चलाऊ शिक्षण अवश्य था। बुद्धि अच्छी होने के कारण आपने अपने कार्य के योग्य योग्यता प्राप्त कर ली।

वे सादगी को पसन्द करते थे, सादगी मे पले थे। साधारण वस्त्र पहिनते थे। धोती या पायजामा, खद्दर की कमीज, कोट और सिर पर गाधी टोपी या दुपट्टा बाधते थे। चरित्र निष्ठ धार्मिकता, सहज स्नेह और प्रसन्न रहना यह उनके जीवन के सहचर थे। मैने उन्हे देखा है। उनके भाषण भी सुने है। उन्होने सारा जीवन समाज सेवा मे लगाया। वे भावुक कवि भी थे परन्तु कवितामे कोई खास आकर्षण न था। 'ससार दुख दर्पण उनकी अच्छी कविता है भाषा अत्यन्त सरल है। वे सुधारक तो थे परन्तु अन्तर कमजोरी के कारण विवाद आने पर चुप रह जाते थे। लेख भी लिखते थे, पत्रो के सम्पादक भी रहे। जैन प्रदीप तो उन्ही का पत्र था। समाज मे अच्छी ख्याति एव प्रतिष्ठा प्राप्त की। स्थानकवासी समाज मे भी समजसेवा की। पर समाज ने सेवको को कभी अपनाया नही, और न उनको किसी प्रकार का खास सहयोग ही प्रदान किया। यदि सेवकों को अच्छा सहारा मिले तो वे समाज को समुन्नत बनाने का और भी अधिक काम कर सकते है।

बाबू ज्योतिप्रसाद जी की वि० स० १९९४ मे २८ मई सन् १९३७ मे ७ महीने की बीमारी के बाद देहावसान हो गया। समाज से एक सेवक सदा के लिए चला गया। समाज-सेवकों की कमी बरावर बनी रहती है। उसका कारण समाज का उनके प्रति उपेक्षाभाव है।

सैंतालीसवे विद्वान पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार है, जो सरसावा जिला सहारनपुर के निवासी है। आपके पिता जी का नाम लाला नत्थूमल चौधरी और माता का नाम भूई देवी था। आपका जन्म वि० स० १९३४ सन् १८७७ मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के दिन सन्ध्या के समय हुआ था। माता पिता का आचार-विचार रहन-सहन सादा और धार्मिक था। अतः आप पर भी उसका प्रभाव अकित रहा। आपके दो भाई और थे, जो दिवंगत हो चुके है।

आपकी शिक्षा का प्रारम्भ ५ वर्ष की अवस्था मे हो गया। आपने मकतब के मुशी जी से उर्दू फारसी का पढ़ना आरम्भ किया। आपकी बुद्धि अच्छी थी और धारणा शक्ति प्रबल थी, इस कारण आपने उर्दू फारसी का अच्छा ज्ञान जल्दी ही प्राप्त कर लिया। आपने हकीम उग्रसेन जी द्वारा सस्थापित स्थानीय पाठशाला मे हिन्दी सस्कृत का अध्ययन किया। सस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त होते ही आपकी रुचि जैन शास्त्रो के अध्ययन की हुई। परिणाम स्वरूप रत्नकरण्डश्रावकाचार, तत्त्वार्थ-सूत्र और भक्तामरस्तोत्र आदि का अध्ययन किया। आपका १३-१४ वर्ष की अवस्था मे विवाह हो गया उन्ही दिनों सरसावा मे अग्रेजी का एक स्कूल खुला जिसमे मास्टर जगन्नाथजी अध्यापन कराते थे तब आपने अग्रेजी का पांचवी कक्षा तक अध्ययन कर लिया। इसके बाद सहारनपुर के स्कूल मे दाखिल हुए और नौवी कक्षा तक अध्ययन किया। कारण वश स्कूल मे जाना छोड दिया किन्तु प्राइवेट रूप मे एन्ट्रेन्स की परीक्षा मे उत्तीर्णता प्राप्त की, मैट्रिक की परीक्षा मे सफलता मिलने के बाद आपके समक्ष जीवन का संघर्ष कठोरतमरूप मे उपस्थित होने लगा; क्योंकि आप गृहस्थ जो थे और यह समझना उचित था कि योग्य होने पर अपनी आजीविका का निर्वाह स्वय ही करना चाहिये। उस अवस्था मे भी सर्वथा अभिभावकों के ऊपर निर्भर रहना अकर्मण्यता है। किन्तु मनस्वी जीव को जीवन-संग्राम में स्वाभिमान पूर्वक जीवन व्यतीत करना ही सार्थक है ऐसा आपका विश्वास था। अतएव आपने अपनी रुचि के अनुसार उपदेश द्वारा जनता को जाग्रत करने का कार्य श्रेष्ठ समझकर उपदेशक का कार्य पसन्द किया। आप बम्बई प्रान्तिक सभा के उपदेशक हो गए। इस कार्य के लिये आपको पारिश्रमिक भी मिलता था परन्तु विचार करने पर इस कार्य मे भी उदासीनता आने लगी। और आपने सभवत: दो महीने से पहले ही उपदेशकी से स्तीफा दे दिया। क्योकि आपकी विचार धारा स्वतंत्र जो थी उसमे परतत्रता का अंश भी नही था। एक स्वाभिमानी व्यक्ति के लिये अवैतनिक रूप मे कार्य करना उचित है। यह विचार भविष्य मे आपके जीवन के लिये सुखद हुआ। और आपने स्वतत्र व्यवसाय करने का विचार किया। परिणामस्वरूप मुख्तारकारी का प्रशिक्षण प्राप्तकर सन् १६०२ में मुख्तारकारी की परीक्षा पास की। और सहारनपुर मे ही प्रैक्टिस शुरु कर दी। सन् १६०५ मे आप देवबन्द चले गये और वहां अपना स्वतन्त्र कानूनी व्यवसाय करते हुए आप बराबर समाज-सेवा के कार्यों मे भाग लेते रहे।

(क्रमशः)

# साहित्य-समीक्षा

**१. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत**—लेखक डा० नेमिचन्द्र शास्त्री एम. ए. डी. लिट्। प्रकाशक, मत्री श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला १/१२८ डुमराव बाग, अस्सी-वाराणसी—५। आकार डिमाई साइज, पृ० संख्या ४३८. मूल्य बारह रुपया।

ग्रन्थ का विषय उसके नाम से स्पष्ट है। आचार्य जिनसेन का आदिपुराण जैन सस्कृति के बहुमूल्य उपादानों का आकार है। इसमें नौवीं शताब्दीके भारतकी सांस्कृतिक स्थितिका अच्छा निदर्शन है। यदि उसे जैनोका महाभारत कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने अपने गम्भीर अध्ययन और प्रौढ लेखनी द्वारा आदिपुराण मे प्रतिपादित रत्न सम्पदा का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन किया है। ग्रन्थ सात अध्यायो में विभक्त है। प्रथम अध्याय में आदिपुराण और उसके कर्ता जिनसेन के जीवन तथा उनके कर्तृत्व पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्याय में आदिपुराण में प्रतिपादित भूगोल का

वैदिक पुराणों मे प्रतिपादित भूगोल के साथ तुलनात्मक समीक्षा करते हुए, जनपद, गाव-नगर, राजधानी, नदियाँ, पर्वत, वनप्रदेश, वृक्ष सम्पत्ति, जीवजतु और पशु जगत् का चित्रण किया है। तृतीय अध्याय मे समाजगठन, कुल-कुर, समवसरण, चतुर्विधसघ साधु, गृहस्थ और वर्ण जाति आदि सामाजिक सस्थाओ और रीति-रिवाजों का विवेचन है। चतुर्थ अध्याय मे अन्न, भोजन, पक्वान, फल, पेयपदार्थ, वस्त्र, आभूषण प्रसाधन सामग्री, वाहन, विनोद क्रीडा और कलागोष्ठी आदि सास्कृतिक विषयो का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। यह अध्याय महत्वपूर्ण है। क्योकि इसमे तत्कालीन समाज के रहन-सहन, गोष्ठी विनोद आदि का सजीव चित्रण है। पचम अध्याय मे शिक्षा का स्वरूप और शिक्षा से सम्बद्ध विषयो का—ललित कला, चित्र कला, वाद्य, नृत्य गीत आदि का विचार है। छठवे अध्याय मे कृषि आदि आजीविका के साधन, असिमसि कृषि, आदि राजनैतिक विचार, अस्त्र-शस्त्र नामावली और युद्धादि का कथन दिया है। सातवे अध्याय मे धर्म और दर्शन का विवेचन है।

आदिपुराण का सभी दृष्टियो से विवेचनात्मक अध्ययन उपस्थित करने वाला यह प्रथम ग्रथ है। इस ग्रथ का भारतीय विद्वत्समाज मे अवश्य ही समादर प्राप्त होगा। और जैन पुराणो के अध्ययन की ओर विद्वानो की अभिरुचि बढेगी। ग्रथ का प्रकाशन सुरुचिपूर्ण है। इसके लिए लेखक और प्रकाशक दोनो ही धन्यवाद के पात्र है।

२. **जंबूस्वामि चरिउ** (मूल हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावना सहित)—सम्पादक डा० विमलप्रकाश जैन एम. ए. पी. एच.डी. रीडर सस्कृत पालि प्राकृत विभाग जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर। प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी पृष्ठ सख्या ५०२ मूल्य सजिल्द प्रति का १५) रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थ का विषय उसके नाम से स्पष्ट है। ग्रन्थ मे जम्बू स्वामी का जीवन-परिचय दिया गया है। जम्बू स्वामी ऐतिहासिक महापुरुष है, जो भगवान महावीर के साक्षात्शिष्य सुधर्म स्वामी द्वारा दीक्षित अन्तिम केवली थे। जिनका परिनिर्वाण सन् ४६३ ईस्वी पूर्व मे हुआ था। इस चरित ग्रथ की रचना महाकवि वीर ने वि० सं० १०७६ मे माघ शुक्ला दशमी के दिन पूर्ण की थी। ग्रन्थ अपभ्रश भाषा की १० सन्धियो मे पूर्ण हुआ है। जम्बू स्वामी की लोकप्रियता का सबसे बड़ा उदाहरण विविध भाषाओ मे विविध विद्वानों और कवियो द्वारा रची गई शताधिक रचनाएं है। जो उनके जीवनकी महत्ता पर प्रकाश डालती है। जम्बू स्वामी कथा की दीर्घ परम्परा, कथा का मूल स्रोत और उसका तुलनात्मक अध्ययन कवि वीर के जम्बू स्वामा चरित्र की विशेषता के निदर्शक है।

डा० विमलप्रकाश जैन ने अपभ्र श भाषा के मूल ग्रन्थ का ललित हिन्दी मे अनुवाद किया है। साथ ही ग्रथ की १४८ पेज की महत्वपूर्ण प्रस्तावना मे ग्रन्थ और ग्रथकार के सम्बन्ध मे विस्तृत समीक्षात्मक अध्ययन उपस्थित किया है जिसमें ग्रथ के महाकाव्यात्मक लक्षणो, विषय से सम्बद्ध विभिन्न चरित्रो, विपय के अभ्यन्तरवर्ती उपाख्यानो काव्यरसो, अलकारो. काव्यगुणों, छन्दो रीति, भाषा, सुभाषित लोकोक्तियो और कथा-कहानियो आदि का सुन्दर चित्रण किया है। साथ ही सामाजिक अवस्था भौगोलिक स्थिति, नागरिक जीवन और वैवाहिक पद्धति का भी दिग्दर्शन कराया है। मूलानुगामी अनुवाद के साथ सस्कृत टिप्पण और शब्दकोष के कारण ग्रन्थ पठनीय एव सग्रहणीय हो गया है। सम्पादक को वीर कवि के 'जम्बूसामीचरिउ' के आधार से जम्बू स्वामी के आलोचनात्मक निबध पर जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर से पी. एच. डी. की डिगरी की प्राप्त हुई है, जिसके लिए संपादक धन्यवाद के पात्र है। भारतीय ज्ञानपीठ का यह प्रकाशन उसके अनुरूप हुआ है। ग्रन्थ की छपाई सफाई गेटप सभी सुन्दर है। पाठको को इसे मगा कर अवश्य पढना चाहिए।

३. **लेश्या-कोश**—सम्पादक श्री मोहनलालजी वाठिया और श्रीचन्द जी जैन चोरडिया। प्रकाशक मोहनलाल वाठिया १६ सी डोवार लेन, कलकत्ता-२६। आकार डिमाई, पृष्ठ सख्या ३००, मूल्य दस रुपया।

वाठिया जी ने जैन विषय कोश ग्रन्थमाला स्थापित की है। उसका यह प्रथम पुष्प है जिसे आपने दशमलव

प्रणाली से जैन विषयों का वर्गीकरण करके इस लेश्या कोश की रचना की है। आगमों मे लेश्या के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा गया है, उसको विषय वार सकलित किया गया है। लेश्या सम्बन्धि विषयों की सख्या १०० के लगभग है। उनमे मुख्य विषय निम्न प्रकार है :— द्रव्यलेश्या (प्रायोगिक) द्रव्यलेश्या (विस्रसा) भावलेश्या, लेश्याजीव, सलेशीजीव, लेश्या और विविध विषय और लेश्या सम्बन्धी फुटकर पाठ। इनके अन्तर्गत अनेक अवान्तर विषय हैं, जिनका विवेचन ग्रन्थ मे किया गया है—प्रकृत विषयों पर आगमिक वचनों का शाब्दिक अर्थ भी दे दिया है, और जहां आवश्यकता समझी वहां विवेचनात्मक अर्थ भी दे दिया है। जहा तक मुझे मालूम है किसी जैन विषय पर इस तरह का यह कोश प्रथम बार ही प्रकाशित हुआ है। सम्पादको का विचार है कि इस तरह से सभी जैन विषयो पर कोश तय्यार कर प्रकाशित किये जाय। इस कोष मे ३२ श्वेताम्बरीय आगमों, तत्त्वार्थसूत्र और उसके टीका ग्रन्थो का उपयोग किया गया है जिनमें दिगम्बरीय सर्वार्थ सिद्धि तत्त्वार्थ राजवार्तिक और तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक गोम्मटसार जीवकाण्ड शामिल है।

कोश के प्रारभ मे हीरा कुमारी बोथरा का आमुख है उन्होंने जिन बातो पर प्रकाश डाला है सम्पादको को उससे लाभ उठाना चाहिये। वे आचार्य नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती की द्रव्य लेश्या की परिभाषा को ठीक नही मानती उन्होंने उसकी आलोचना की है। किन्तु दिगम्बर परम्परा द्रव्य लेश्याके साथ भावलेश्या का सम्बन्ध नियामिक नही बतलाता। कुमारी जी ने द्रव्यलेश्या और भावलेश्या दोनों को एक समझ लिया है जो ठीक नही है। इस तरह के कोश निर्माण हो जाने पर जैन दर्शन के अध्ययन मे विशेष सुविधा हो जायगी। सम्पादक द्वय का यह प्रयत्न अभिनन्दनीय है। यहां यह उल्लेखनीय विशेषता है कि ग्रथ का मूल्य १०) रुपया रक्खा गया है किन्तु विशिष्ट विद्वानों विश्वविद्यालयों और विदेशों मे निःशुल्क वितरित किया जायगा। ग्रन्थ मे प्रूफ संशोधन-सम्बन्धि अशुद्धियां खटकती है। —परमानन्द शास्त्री

**४. जिनेद्र पञ्च कल्याणक स्मारिका**—सम्पादक—श्री पं पन्नालाल जी साहित्याचार्य आदि, प्रकाशक—श्री सागरचन्द जी दिवाकर एम० ए० प्रधान मंत्री जि० पच कल्याणक समिति सागर।

गत वैशाख मास में सागर में सम्पन्न हुई पंच कल्याणक प्रतिष्ठा की स्मृति स्वरूप यह स्मारिका उक्त प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्य-कलाप के प्रचारार्थ की गई है। स्व० पूज्य प० गणेशप्रसाद जी वर्णीका-निवास सागर में विशेष रहा है। उनकी स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए वहां लगभग एक लाख रुपयो के व्यय से वर्णी स्मृति भवन और उसके ऊपर बाहुबली जिनालय का निर्माण कराया गया है। जिनालय मे अतिशय मनोज्ञ बाहुबली की विशाल मूर्ति विराजमान की गई है। उपर्युक्त प्रतिष्ठा इसी मूर्ति की हुई है।

यह प्रतिष्ठा महत्त्वपूर्ण रही है। इसमे सम्पन्न प्रत्येक कार्यक्रम आकर्षक था। सिघई प्रकाशचन्द जी ने प्रस्तुत स्मारिका मे प्रतिष्ठा सम्बन्धी सभी कार्यो का विवरण 'आखो देखा' शीर्षक मे बहुत विस्तार से दे दिया है। भविष्य मे होनेवाली प्रतिष्ठाओं के लिए यहां का कार्यक्रम आदर्श स्वरूप हो सकता है।

कार्यक्रम के विवरण के अतिरिक्त प्रकृत स्मारिका मे अन्य कितने ही महत्त्वपूर्ण लेख व भाषण आदि भी है तथा प्रतिष्ठा के समय लिये गये बहुत से चित्र भी दे दिये गये है। साथ ही आय-व्यय का हिसाब भी दे दिया गया है।

प्रतिष्ठा के समय सागर मे सम्पन्न हुए भा० दि० जैन विद्वत्परिषद् के अधिवेशन की कार्यवाही का भी उसमे सक्षिप्त विवरण है। साथ ही दूर-दूर से आकर इस अधिवेशन में संमिलित हुए ११६ विद्वानो की नामतली भी प्रगट की गई है।

इस प्रकार यह स्मारिका अतिशय उपयोगी प्रमाणित होगी। छपाई व सजावट भी उत्तम है। इस सुन्दर स्मारिका के सम्पादन व प्रकाशन में जिन्होंने पर्याप्त परिश्रम किया है वे श्री प० पन्नालाल जी साहित्याचार्य और श्री सागरचन्द जो दिवाकर एम० ए० आदि अतिशय धन्यवाद के पात्र है। —बालचन्द्र सिद्धान्त-शास्त्री

श्री परमानन्द जी बरया
देवगढ़ के पुरातत्त्व का यात्रियों
को परिचय कराते हुए
दिखाई दे रहे है।

## वीर-सेवा-मन्दिर और "अनेकान्त" के सहायक

१०००) श्री मिश्रीलाल जी धर्मचन्द जी जैन, कलकत्ता
१०००) श्री देवेन्द्रकुमार जैन, ट्रस्ट
श्री साहु शीतलप्रसाद जी, कलकत्ता
५००) श्री रामजीवन सरावगी एण्ड संस, कलकत्ता
५००) श्री गजराज जी सरावगी, कलकत्ता
५००) श्री नथमल जी सेठी, कलकत्ता
५००) श्री वैजनाथ जी धर्मचन्द जी, कलकत्ता
५००) श्री रतनलाल जी झांझरी, कलकत्ता
२५१) श्री रा० बा० हरखचन्द जी जैन, रांची
२५१) श्री अमरचन्द जी जैन (पहाड्या), कलकत्ता
२५१) श्री स० सि० धन्यकुमार जी जैन, कटनी
२५१) श्री सेठ सोहनलाल जी जैन,
मैसर्स मुन्नालाल द्वारकादास, कलकत्ता
२५१) श्री लाला जयप्रकाश जी जैन
स्वस्तिक मेटल वर्क्स, जगाधरी
२५०) श्री मोतीलाल हीराचन्द गांधी, उस्मानाबाद
२५०) श्री बन्शीधर जी जुगलकिशोर जी, कलकत्ता
२५०) श्री जुगमन्दिरदास जी जैन, कलकत्ता
२५०) श्री सिंघई कुन्दनलाल जी, कटनी
२५०) श्री महावीरप्रसाद जी अग्रवाल, कलकत्ता
२५०) श्री बी० आर० सी० जैन, कलकत्ता
२५०) श्री रामस्वरूप जी नेमिचन्द्र जी, कलकत्ता
१५०) श्री बजरंगलाल जी चन्द्रकुमार जी, कलकत्ता
१५०) श्री चम्पालाल जी सरावगी, कलकत्ता
१५०) श्री जगमोहन जी सरावगी, कलकत्ता
१५०) ,, कस्तूरचन्द जी आनन्दीलाल जी कलकत्ता
१५०) ,, कन्हैयालाल जी सीताराम, कलकत्ता
१५०) ,, प० बाबूलाल जी जैन, कलकत्ता
१५०) ,, मालीराम जी सरावगी, कलकत्ता
१५०) ,, प्रतापमल जी मदनलाल पांड्या, कलकत्ता
१५०) ,, भागचन्द जी पाटनी, कलकत्ता
१५०) ,, शिखरचन्द जी सरावगी, कलकत्ता
१५०) ,, सुरेन्द्रनाथ जी नरेन्द्रनाथ जी कलकत्ता
१० ) ,, मारवाड़ी दि० जैन समाज, व्यावर
१०१) ,, दिगम्बर जैन समाज, केकड़ी
१०१) , सेठ चन्दूलाल कस्तूरचन्दजी, बम्बई नं० २
१०१) ,, लाला शान्तिलाल कागजी, दरियागंज दिल्ली
१०१) ,, सेठ भंवरीलाल जी बाकलीवाल, इम्फाल
१०१) ,, शान्तिप्रसाद जी जैन, जैन बुक एजेन्सी,
१०१) ,, सेठ जगन्नाथजी पाण्ड्या झूमरीतलैया
१०१) ,, सेठ भगवानदास शोभाराम जी सागर
१०१) ,, बाबू नृपेन्द्रकुमार जी जैन, कलकत्ता
१००) ,, बद्रीप्रसाद जी आत्माराम जी, पटना
१००) ,, रूपचन्दजी जैन, कलकत्ता
१००) ,, जैन रत्न ठ गुलाबचन्द जी टोंग्या इन्दौर

# वीर-सेवा-मन्दिर के उपयोगी प्रकाशन

R. N. 10591/62

(१) पुरातन-जैनवाक्य-सूची—प्राकृत के प्राचीन ४६ मूल-ग्रन्थों की पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादिग्रन्थों मे उद्धृत दूसरे पद्यों की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। सपादक मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी की गवेषणापूर्ण महत्व की ७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलकृत, डा० कालीदास नाग, एम. ए. डी. लिट् के प्राक्कथन (Foreword) और डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट् की भूमिका (Introduction) से भूषित है, शोध-खोज के विद्वानोके लिए अतीव उपयोगी, बड़ा साइज, सजिल्द १५·००

(२) आप्त परीक्षा—श्री विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज्ञ सटीक अपूर्व कृति, आप्तों की परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयक सुन्दर, विवेचन को लिए हुए, न्यायाचार्य पं दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद से युक्त, सजिल्द। ८·००

(३) स्वयम्भूस्तोत्र—समन्तभद्रभारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोरजी के हिन्दी अनुवाद, तथा महत्व की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना से सुशोभित। ... ... २-००

(४) स्तुतिविद्या—स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापो के जीतने की कला, सटीक, सानुवाद और श्री जुगल किशोर मुख्तार की महत्व की प्रस्तावनादि से अलंकृत सुन्दर जिल्द-सहित। १-५०

(५) अध्यात्मकमलमार्तण्ड—पचाध्यायीकार कवि राजमल की सुन्दर आध्यात्मिकरचना, हिन्दी-अनुवाद-सहित १·५०

(६) युक्त्यनुशासन—तत्वज्ञान से परिपूर्ण समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नही हुआ था। मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादि से अलंकृत, सजिल्द। ... ·७५

(७) श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र—आचार्य विद्यानन्द रचित, महत्व की स्तुति, हिन्दी अनुवादादि सहित। ·७५

(८) शासनचतुस्त्रिंशिका—(तीर्थपरिचय) मुनि मदनकीर्ति की १३वी शताब्दी की रचना, हिन्दी-अनुवाद सहित ·७५

(९) समीचीन धर्मशास्त्र—स्वामी समन्तभद्र का गृहस्थाचार-विषयक अत्युतम प्राचीन ग्रन्थ, मुख्तार श्रीजुगलकिशोर जी के विवेचनात्मक हिन्दी भाष्य और गवेषणात्मक प्रस्तावना से युक्त, सजिल्द। ... ३-००

(१०) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति सग्रह भा० १ सस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का मगलाचरण सहित अपूर्व संग्रह उपयोगी ११ परिशिष्टो और पं० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य परिचयात्मक प्रस्तावना से अलंकृत, सजिल्द। ... ... ४-००

(११) समाधितन्त्र और इष्टोपदेश—अध्यात्मकृति परमानन्द शास्त्री की हिन्दी टीका सहित ४-००

(१२) अनित्यभावना—आ० पद्मनन्दीकी महत्वकी रचना, मुख्तार श्री के हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ सहित ·२५

(१३) तत्वार्थसूत्र—(प्रभाचन्द्रीय)—मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या से युक्त। ... ·२५

(१४) श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैनतीर्थ। १-२५

(१५) महावीर का सर्वोदय तीर्थ ·१६ पैसे, (१६) समन्तभद्र विचार-दीपिका ·१६ पैसे, (१७) महावीर पूजा ·२५

(१८) अध्यात्म रहस्य—पं० आशाधर की सुन्दर कृति मुख्तार जी के हिन्दी अनुवाद सहित। १-००

(१९) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति सग्रह भा० २ अपभ्रंश के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थोंकी प्रशस्तियो का महत्वपूर्ण संग्रह। ५५ ग्रन्थकारों के ऐतिहासिक ग्रंथ-परिचय और परिशिष्टो सहित। स. प० परमान्द शास्त्री। सजिल्द १२-००

(२०) न्याय-दीपिका—आ. अभिनव धर्मभूषण की कृति का प्रो० दरबारीलालजी न्यायाचार्य द्वारा सं० अनु० ७-००

(२१) जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ संख्या ७४० सजिल्द (वीर-शासन-सघ प्रकाशन ५-००

(२२) कसायपाहुड सुत्त—मूलग्रन्थ की रचना आज से दो हजार वर्ष पूर्व श्री गुणधराचार्य ने की, जिस पर श्री यतिवृषभाचार्य ने पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र लिखे। सम्पादक प हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री, उपयोगी परिशिष्टों और हिन्दी अनुवाद के साथ बड़े साइज के १००० से भी अधिक पृष्ठों में। पुष्ट कागज और कपड़े की पक्की जिल्द। ... ... २०-००

(२३, Reality आ० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अंग्रेजी में अनुवाद बड़े आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६-००

---

प्रकाशक—प्रेमचन्द जैन, वीरसेवा मन्दिर के लिए, रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली से मुद्रित।

द्वै मासिक

दिसम्बर १९६८, फरवरी १९६९

# अनेकान्त

## श्री 'युगवीर' स्मृति-अंक

आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

जन्म सं० १९३४, मृत्यु २२ दिसम्बर सं० २०२५

समन्तभद्राश्रम (वीर-सेवा-मन्दिर) का मुख पत्र

# विषय-सूची



★


**अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपया**

**एक किरण का मूल्य १ रुपया २५ पैसा**

भा० दि० जैन विद्वद् परिषद् द्वारा अभिनन्दन के अनन्तर—मुख्तार साहब

ओम् अर्हम्

# अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष २१ किरण ५-६ | वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६ वीर निर्वाण संवत् २४६५, वि० स० २०२५ | दिसम्बर १९६८ फर्वरी १९६९

## वीरजिन-स्तवन

मोहादि-जन्य-दोषान् यः सर्वान् जित्वा जिनेश्वरः ।
वीतरागश्च सर्वज्ञो जातः शास्ता नमामि तम् ॥
शुद्धि-शक्त्योः परां काष्ठां योऽवाप्य शान्तिमुत्तमाम् ।
देशयामास सद्धर्मं तं वीरं प्रणमाम्यहम् ॥

(मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय नाम के चार घातिया कर्मों के निमित्त से उत्पन्न होने वाले जो दोष है—राग-द्वेष, मोह, काम-क्रोध-मान-माया-लोभ, हास्य-रति-अरति-शोक-भय ग्लानि, अज्ञान, अदर्शन और अशक्ति आदि के रूप मे आत्मा के विकार भाव अथवा वैभाविक परिणमन है—उन सबको जीतकर जो जिनेश्वर, वीतराग, सर्वज्ञ और शास्ता हुए है । उन वीरजिन को मैं नमस्कार करता हूँ ।।)

(जो मोहनीय कर्म का क्षय कर शुद्धि को, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों का अभाव कर ज्ञानशक्ति और दर्शनशक्ति तथा वीर्य शक्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त हुए है । साथही उत्तम—अनुपमसुखरूप परिणत हुए हैं और इन सब गुणों से सम्पन्न होकर जिन्होने समीचीन धर्म की देशना की है उन श्री वीर प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ।।)

—जुगलकिशोर मुख्तार

# कतिपय श्रद्धांजलियाँ

**[पाठकों को यह तो विदित हो ही गया है कि जैनसमाज के प्रसिद्ध साहित्य तपस्वी, कर्मठ समाज सेवी, प्रसिद्ध इतिहासज्ञ, 'जैन हितैषी' और अनेकान्तादि पत्रों के सम्पादक, प्रथित अनुवादक और भाष्यकार, एवं समीक्षक 'मेरी भावना' जैसे राष्ट्रीय नित्यपाठ के अमर स्रष्टा, वीरसेवामन्दिर के संस्थापक आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार का २२ दिसम्बर १९६८ को स्वर्गवास हो गया है। उनकी स्मृति में जैन समाज के प्रसिद्ध साहित्यकारों, विद्वानों, उद्योगपतियों, पत्र सम्पादकों, समाचार पत्रों और संस्थाओं आदि ने उनके सम्बन्ध में जो श्रद्धांजलियां भेजी हैं, और जो एटा में डा० श्रीचन्द जी 'संगल' के पास पहुँची हैं, उनमें से कुछ को यहाँ दिया जा रहा है।]**

**साहू शान्तिप्रसाद जी जैन :**

श्रद्धेय पण्डित जुगलकिशोर जी मुख्तार के निधन से समस्त समाज और साहित्यवर्ग शोकान्वित है। जैन साहित्य में शोध की परम्परा स्थापित कर उन्होंने स्वयं अपना चिरस्थायी स्मारक बना दिया। उन्होंने तो अपना तन-मन-धन सभी इस दिशा मे अर्पित कर दिया। ऐसा दूसरा विद्वान समाज मे नही है। इष्टदेव से प्रार्थना है कि इनकी आत्मा को शान्ति हो।

**पं० शोभाचन्द्र जी भारिल्ल :**

वास्तव में मुख्तार सा० का निधन जैन समाज की विशेपत: दि० जैन समाज की ऐसी क्षति है, जिसकी पूर्ति निकट भविष्य मे होती नही दिखती। वे महान् साहित्य सृष्टा, साहित्य तपस्वी, कर्मठयोगी एव तत्त्ववेत्ता थे। उनकी दीर्घकालिक साधना हमारे लिए स्पृहणीय और अनुकरणीय है। उनकी लेखनी वज्रमय थी। उन्होने जो कुछ लिखा, गम्भीर अध्ययन, चिन्तन और मन्थन के पश्चात् लिखा और अत्यन्त सुविचारित तथा नपे-तुले शब्दो में। कि वह अकाट्य बना रहा।

उनका समग्र लेखन सत्य की अभिव्यक्ति के लिए और स्वान्त: सुखाय था। यही कारण है कि उन्होंने किसी के रुष्ट-तुष्ट होने की परवाह नही की। ऐसे निर्भीक लेखको मे उनका स्थान सर्वोपरि है। सभी दृष्टियों से उनका व्यक्तित्व महान् और गौरवशाली। उनकी विद्वत्ता, सत्यनिष्ठा, संयमशीलता—सभी कुछ आदर्श था।

अनेकों बार आवाज उठने पर भी समाज उनके व्यक्तित्व के अनुरूप समुचित सम्मान न कर सका, यह सोचकर हमारा मस्तक लज्जा से झुक जाता है। मगर उस निस्पृह निष्काम महापुरुष ने इसकी कभी कामना नही की। ऐसा असाधारण व्यक्तित्व क्वचित् कदाचित् ही किसी समाज को प्राप्त होता है। हार्दिक कामना है कि स्वर्गस्थ इस महान् धार्मिक आत्मा को अखण्ड और अक्षयशान्ति प्राप्त हो।

**बाबू यशपाल जी सम्पादक 'जीवन साहित्य'**

श्रद्धेय मुख्तार सा० के देहावसान का जब दुखित समाचार मिला, तो मुझे गहरी वेदना अनुभव हुई। इससे कुछ समय पूर्व जब मुख्तार सा० दिल्ली आये थे और उन्होंने मेरे घर पर आने की कृपा की थी तब उनके शारीरिक स्वास्थ्य को देखकर इतना तो लगा था कि वार्धक्य ने उन्हे आक्रान्त कर रक्खा है लेकिन उनसे इतनी जल्दी विछोह हो जायगा, इसकी मैने कल्पना नहीं की थी।

मुख्तार सा० जैन समाज के एक विशिष्ट व्यक्ति थे। धर्म, दर्शन और साहित्य के क्षेत्र मे उन्होंने जो योगदान दिया वह चिरस्मरणीय रहेगा।

मुझे याद नहीं आता कि मुख्तार सा० से पहली बार कब मिलना हुआ। लेकिन उनकी 'मेरी भावना' के द्वारा उनसे परोक्ष परिचय बचपन में ही हो गया था। उसका पाठ मैंने न जाने कितनी बार किया है। आज भी प्रति-दिन करता हूँ। मेरी प्रतीति थी कि इस प्रकार की उदात्त भावनाएँ वही व्यक्ति कर सकता है जिसका अन्त:करण

निर्मल हो और जो समष्टि के हितों में व्यष्टि का हित मानता हो।

मुख्तार सा० के जीवन के अधिकांश वर्ष सरसावा और देववन्द में व्यतीत हुए, लेकिन उनकी प्रतिभा और साधना संकुचित क्षेत्र तक सीमित नही रही। अपनी एकान्त साधना के द्वारा उन्होंने जैन समाज को वह दिया, जो बहुत कम विद्वान और साधक दे पाए है। उन्होंने अपने अन्वेषण द्वारा बहुत सी उन मान्यताओं का खडन किया जो समाज को विभ्रम में डाले हुए थी। इतना ही नही, उन्होंने शास्त्रीय विषयों पर अपनी लेखनी चलाकर जैन जीवन को शुद्ध और प्रबुद्ध बनाने का प्रयत्न किया।

मुख्तार सा० अत्यन्त परिश्रमशील व्यक्ति थे। जब दिल्ली आकर वे स्थायीरूप से रहने लगे तो उनसे प्रायः भेंट हो जाया करती थी। मै देखता था कि सादा और सात्विक जीवन व्यतीत करते हुए वे निरन्तर धर्म और साहित्य की उपासना मे लीन रहते थे। यद्यपि उनका विषय मुख्यतः जैनदर्शन और जैन साहित्य था, तथापि उनकी रूचि और भी बहुत से विषयो मे थी। मुझे स्मरण है कि उन्होने मेरे प्रवास-सम्बन्धित लेखमालाओ को पढ कर अनेक बार मुझसे उनके सम्बन्ध मे चर्चा की थी। और एक बार बड़े ही आग्रह के साथ मुझमे अनेकान्त के लिये एक कहानी लिखवाई थी।

दिल्ली आने पर मै उनका हेतु वीरसेवामन्दिर की प्रवृत्तियो को कुछ सघन और व्यापक बनाना था। उसी दृष्टि से यहाँ पर वीरसेवामन्दिर के भवन का निर्माण हुआ लेकिन बड़े स्थानों की और बड़े कार्यों की कुछ मर्यादाएँ भी होती है, वे कुछ ऐसे तत्त्वो को जन्म देती है। जो कार्य में सहायक नहीं होते। वीरसेवामन्दिर का विशाल भवन मुख्तार सा० के स्वप्नों को चरितार्थ करने मे असमर्थ रहा। पर मुख्तार सा० की लगन और कर्मठता विरोधी तत्त्वो के सामने निरन्तर मन्द पड़ती गई। और अन्तिम दिनों में तो मैने देखा कि वह बहुत ही निराश हो गये थे।

अपने जीवन के सीमित वर्षों में एक व्यक्ति जितना कर सकता है। उससे कही अधिक काम मुख्तार सा० ने कर दिखाया। वस्तुतः वह व्यक्ति नहीं बल्कि एक संस्था थे। लेकिन उनका यह स्वप्न कि वीरसेवामन्दिर और उसका मुखपत्र 'अनेकान्त' लोकोपयोगी बने, अभी तक अधूरा पड़ा है। उसे पूरा करने की आवश्यकता है। यह भी जरूरी है कि मुख्तार सा० का जो साहित्य पुस्तक रूप में प्रकाशित नही हुआ वह विधिवत रूप से पाटको को सुलभ हो। इसके साथ ही मुख्तार सा० की एक विस्तृत जीवनी भी होनी चाहिए। अनेकान्त को भी अधिक लोकोपयोगी बनाना होगा।

ये तथा ऐसे और भी अनेक कार्य है जो मुख्तार सा० के हितैषियों तथा प्रशंसकों को तत्काल हाथ मे ले लेना चाहिए। यही उनके प्रति सर्वोत्तम श्रद्धाजलि है।

मैं मुख्तार सा० को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और कामना करता हूँ कि उनकी सेवाएँ और प्रेरणा चिरकाल तक जैन समाज को मार्गदर्शन करती रहे।

**प० कैलाशचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री :**

जिन्होने आचार्य समन्तभद्र, यतिवृषभ, पूज्यपाद, अकलंक, पात्रकेसरी, विद्यानन्द जैसे महान् आचार्यो के समयादि सम्बन्ध मे विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला। पुरानी बातो की खोज द्वारा अनेक अनुपलब्ध और विस्तृत ग्रन्थरत्नो को प्रकाश मे लाया। ग्रन्थपरीक्षा के द्वारा आचार्यों के नाम पर रचित जाली कृतियो का पर्दा फाश करके साहित्य के विकार को प्रस्फुटित किया, उन विस्तीर्ण साहित्यसेवी प्राक्तन विमर्शविचक्षण मुख्तार सा० के प्रति मे अपनी विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

**प्रो० प्रेमसुमन जी जैन :**

आदरणीय श्री मुख्तार जी के निधन से निश्चितरूप जैन विद्या के अध्ययन और अनुसन्धान के क्षेत्र मे एक सशक्त आलोचक एवं साहित्य-सृष्टा की कमी हुई है। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में श्री मुख्तार जी जैन साहित्य की सेवा में रत रहे यह उनकी कार्य क्षमता एवं सच्ची लगन का प्रमाण है। श्री मुख्तार जी ने यद्यपि विविध प्रकार के विपुल साहित्य की रचना की है, किन्तु पत्रकारिता के क्षेत्र मे उन्हें अद्वितीय कहा जा सकता है। उनकी समस्त रचनाओं से परिचित कराने के लिए प्रति-

निधि रचनाओं का एक संग्रह अवश्य प्रकाशित किया जाना चाहिए। वही उनके प्रति हमारी हार्दिक श्रद्धांजलि होगी।

**डा० प्रद्युम्न कुमार जी जैन :**

जैन जगत का अद्भुत रत्न विलुप्त हो गया—यह जानकर हृदय को करारा धक्का लगा। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि मुख्तार प्रणीत 'मेरी भावना' दोलायमान हो उठी हो। और जीवन की सारहीनता के सम्पूर्ण स्व का अनावरण हो गया हो। प्रातः स्मरणीय प० जुगल किशोर मुख्तार जी जैन वाङ्मय के गौरव प्रतीक थे। पुरातन की खोज एवं भावी के सृजन के अद्भुत सामजस्य थे वह। मेरा प्रत्यक्ष परिचय न होते हुए भी मुझे मुख्तार जी का व्यक्तित्व सदैव परिचित सा लगता रहा। वाणी के इस धनजय से समाज को काफी बड़ी आशाए थीं। बा० कामताप्रसाद जी के निधन के बाद जैन जगत को यह दूसरी बडी क्षति इतने अल्प समय मे ही भोगनी पड़ेगी—यह कोई नही जानता था। इन रिक्त स्थानो की पूर्ति हेतु जनमानस को कठिन प्रतीक्षा ही करनी होगी।

मै अपनी सहज समवेदना उस सम्पूर्ण शोक सतप्त परिवार के साथ एकाकार करता हूँ जो दिवगत भव्यात्मा के प्रत्यक्ष विछोह की वेदना सहन कर रहा है। पडित जी तो निकटभव्य थे ही और उनका क्षयोपशम भी तीव्र था। मुझे पूर्ण आशा है कि उनकी आत्मा को सद्गति प्राप्त हुई होगी।

**जैनेन्द्रकुमार जी जैन**

स्वर्गीय श्री मुख्तार जुगलकिशोर जी मानों इस शताब्दी के जैन संस्कृति और जागृति के मूर्तिमान इतिहास थे। उनकी लगन और अध्यवसाय अनुपम, जैन वाङ्मय और पुरातत्त्व की दिशा मे उनकी सेवाए बेजोड़ रही। उनके स्थान को किसी तरह भी भरा नही जा सकता, जैन समाज उनका सदा ऋणी रहेगा। उनकी 'मेरी भावना जैन घरों मे ही नही जैनेतर परिवारो मे भी प्रचारित हुई। और लगभग उनका नित्य पाठ बन गई। उनके द्वारा स्थापित अनेकान्त और वीर सेवामन्दिर उनकी ऐसी यादगार है जो आशा है समाज के सहयोग से उत्तरोत्तर उन्नत होते जायंगे। मैं हस्तिनापुर ब्रह्मचर्याश्रम की चोथी श्रेणी का विद्यार्थी रहा हूगा, कि तभी से मुख्तार सा० का लाभ मेरे चित्त में श्रद्धेय स्थान बना बैठा और वह अन्त तक मेरे लिए उसी प्रकार सम्माननीय बने रहे।

यह मेरा सौभाग्य था जैसे छुटपन मे मुझे उनका आशीर्वाद प्राप्त हुआ वैसे ही आगे जा कर भी मैं उनका स्नेह भाजन बना रहा। मैं अपनी विनम्र श्रद्धाजलि आप के द्वारा उनकी स्मृति के प्रति अर्पित करता हू।

**परमानन्द शास्त्री**

मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी इस युग के महान विद्वान, साहित्य सर्जक, मार्मिक टीकाकार, मान्यसम्पादक, प्राक्तन विद्याविमर्शविचक्षण और इतिहासज्ञ थे। वे प्रबल सुधारक, अच्छे लेखक एव उग्र समीक्षक थे। पहले मै उन्हें 'मेरी भावना के सर्जक के रूप मे परोक्ष रूप से जानता था। किन्तु सन् १९३६ से अब तक मै उनके सानिध्य मे रहा। उनके साथ कार्य किया। और उनके कार्यो मे यथासाध्य सहयोग भी देता रहा. उनके अनुभव एव निर्देशों से लाभ भी उठाया। उनका जीवन एक साहित्यिक जीवन था, उनमे साहित्य के प्रति अदम्य उत्साह और लगन थी। इसी कारण वे साहित्य तपस्वी के रूप मे उल्लेखित किये जाते है। उनकी रचनाएँ प्रौढ़ और प्रामाणिक है। उनकी स्मृति और याददाश्त (धारणा) प्रबल थी। वे लिखने से पूर्व उस पर गहरा विचार करते थे, तब कही उस पर लेखनी चलाते थे। उनके अनुवाद करने की पद्धति निराली थी। वे बहुत धीरे-धीरे लिखते, किन्तु उसे बार-बार पढ़ते थे। और शब्दों का जोड़ इस तरह से बैठाने का प्रयत्न करते जिससे उसमें विरोध और असम्बद्धता उद्भावित न हो सके।

उनके समीक्षा ग्रन्थ जैन संस्कृति के अमूल्य रत्न है। और विद्वानों के मार्गदर्शक, उनके गवेषणात्मक लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक तथ्यो के उद्भावक तथा भ्रान्ति के उन्मूलक है। उनकी व्याख्याएं कठिन विषय को भी सरल एव सुबोध बनाती हैं। दार्शनिक ग्रन्थों की टीकाएँ भी उनके तलस्पर्शी पाण्डित्य की द्योतक है। वे वीरसेवामन्दिर जैसी संस्था के सस्थापक थे। उनकी

भावना संस्था द्वारा इतिहास और प्राचीन साहित्य के अनुपलब्ध ग्रंथों का अन्वेषण कर उन्हें प्रकाश में लाना था, जिससे जैन संस्कृति की महत्ता ख्यापित हो।

वे अनेकान्त के संस्थापक और सम्पादक थे। उसमें प्रकाशित लेखों द्वारा जैन साहित्य और इतिहास की अनेक गुत्थियां सुलझाई गई, अनेक अनुपलब्ध ग्रन्थों का अन्वेषण कर प्रकाश मे लाया गया, और अनेक आचार्यों, विद्वानो भट्टारको और कवियो का परिचय भी प्रकाशित किया गया।

मुख्तार साहब स्वय एक साहित्य सस्था थे। निर्भीक लेखक और शोधक थे। वे साहित्य सृजन मे इतने सलग्न एव तन्मय हो जाते थे कि उन्हे उस समय बाह्य बातो का कुछ भी ध्यान नही रहता था। वे सच्चे अर्थों मे युगवीर थे। मैं उन्हे अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

**श्री पं० बालचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री**

साहित्यतपस्वी श्रद्धेय मुख्तार सा० बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे अन्तिम समय तक साहित्य साधना मे निरत रहे है। यद्यपि मुख्तार सा० आज हमारे बीच मे नही है, पर उन्होने जो ऐतिहासिक क्षेत्र मे अभूतपूर्व काम किया है वह इतिहास मे अमिट रहने वाला है। उससे सशोधको का मार्ग प्रशस्त व निरापद हो गया। प्रख्यात इतिहासकार होने पर भी उनकी तर्कणाशक्ति व वैदुष्य कुछ कम नही था। इसी के बल पर उन्होने युक्त्यनुशासन व देवागमस्तोत्र जैसे तार्किक ग्रन्थो के साथ तत्त्वानुशासन और योगसार-प्राभृत जैसे अध्यात्मप्रधान सैद्धान्तिक ग्रन्थों पर भी उच्चकोटि की व्याख्याओं की रचना की है। वे जो सुधारक माने जाते थे सो यथार्थ में ही सुधारक थे। उनका त्यागमय जीवन अतिशय धार्मिक रहा है। ऐसे स्थितिप्रज्ञ के प्रति स्वभावतः नतमस्तक हो जाना पड़ता है।

**रा० ब० सेठ हरखचन्द जी पाण्ड्या रांची**

मुख्तार सा० सचमुच में युगवीर, साहित्यमनीषी, समाजसेवक एवं आदर्श विद्वान थे। उनका जीवन इतर विद्वानों के लिये प्रेरणा प्रद था। वयोवृद्ध अवस्था में भी निरंतर साहित्य-सेवा में जुटे रहते थे। पूर्वाचार्यों की अनुपम कृतियो को नूतन विद्वत्तापूर्ण एवं नई खोजों के साथ समाज के सामने रखना आप का ही कार्य था। मै समझता हू निकट भविष्य में श्री मुख्तार साहब के स्थान की पूर्ति होना संभव नहीं है।

**डा० ज्योतिप्रसाद जी लखनऊ :**

प्राक्तन विद्या विचक्षण, वाङ्मयाचार्य, सिद्धान्ताचार्य आदि उपाधि विभूषित स्वर्गीय आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' स्वामी समन्तभद्र के अनन्य भक्त, समन्तभद्र भारती के अद्वितीय उद्योतक, महान् आराधक, सुकवि, टीकाकार, समालोचक, सम्पादक साहित्यकार, समाजसुधारक, स्थितिप्रज्ञ साधक और नि.स्वार्थ सस्कृति-सेवी थे। ९१ वर्ष की दीर्घ आयु मे उनका निधन न आकस्मिक ही था और न असामयिक ही। तथापि उसके फलस्वरूप भारतीय विद्या के क्षेत्र को और विशेष कर जैन जगत को जो क्षति पहुँची है वह अपूरणीय है। उनका सफल जीवन एवं कृतित्व वर्तमान तथा भावी पीढियो के लिये एक सबल प्रेरणास्रोत एव आलोक पुञ्ज बना रहेगा, इसमे कोई सन्देह नही है। इस महामनीषी चिरसाधक की पुनीत स्मृति मे अपनी विनम्र श्रद्धाजलि समर्पित करने का अवसर प्राप्त करना भी परम सौभाग्य है—वैसा करते हुये मै अपने आपको धन्य मानता हूँ।

**प० विजयकुमारजी चौधरी एम.ए.**
**शान्तिवीर जैन गुरुकुल, जोबनेर :**

वीर वाङ्मय की साधना मे निरन्तर लीन रहने वाले इस महान् साहित्य तपस्वी आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार के वियोग से जैन साहित्य ससार पर अनभ्र वज्र-पात हुआ है। श्री मुख्तार साहब ऐसे दधीचि थे जिन्होने साहित्य देवता की आराधना मे अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। जैन साहित्य के तो वे महारथी थे। उन्होंने दि० जैन आचार्य परम्परा के विलुप्त एव अनुपलब्ध इतिहास को जिस गहराई के साथ खोजकर उसे सकलित किया उससे जैन सस्कृति का महान् उपकार हुआ है। इस महान् साहित्य तपस्वी की साधनाओं का पूरा उल्लेख लेखनी से हो नही सकता। अब हमारे पास इसके सिवाय क्या चारा है कि हम उनके पुण्य-स्मरण से प्रेरणा प्राप्त करें। स्वर्ग

में विराजमान उन्हें वीर-वाणी के प्रचार-प्रसार की चिन्ता अवश्य होगी, जिस काम को उन्होने अधूरा छोड़ा उसे हम सब अनुयायियों को आगे बढ़ाना प्रथम कर्तव्य है। उस साहित्य-तपस्वी के प्रति हम भाव भरी श्रद्धांजलि अर्पित करते है।

## श्रद्धा के फूल

**बा० सूरजभान जी जैन 'प्रेमी' आगरा :**

संसार की परिवर्तन शीलता के वशीभूत होकर अनेक मानव इस ससार में आते है। और चले जाते है। ऐसे ही मानवों मे कुछ ऐसी विभूतियों का प्रादुर्भाव होता है। जिनकी ससार को बड़ी जरूरत होती है। वे ससार मे अपनी जीवन यात्रा करते हुये, शुभ कार्यो का उपार्जन कर अपनी यश पताका ससार मे फहरा जाते है। इसी कारण से उनका नाम चिरस्मरणीय हो जाता है। उनका लक्ष्य मानव प्रगति की ओर रहता है और स्वार्थमयी भावनाये उन पर अपना प्रभाव नही जमा पाती। उनकी उदारता, सच्चरित्रता एव कल्याणकारिणी धार्मिक प्रवृत्तियों से व्यथित मानव समाज को सुख शान्ति प्राप्त होती है। उनके व्यक्तित्व के आकर्षण से मनुष्य ऐसी विभूतियो के सन्निकट पहुँच कर आत्मिक शान्ति का अनुभव करता है।

पूर्व जन्म की कठोर तपस्या और शुभ सस्कारों से ही किसी विशेष व्यक्ति को ये गुण ससार की भलाई के लिये प्रेरित करते है। वस्तुतः सफल जीवन ही मार्ग-दर्शक है। ऐसे सत्पुरुषों की जीवन गाथा मानवता के उदात्त गुणों का प्रकाश कर मानव को मानवोचित शील संयम, सत्य और अहिसा का पाठ पढ़ाती है। ऐसी दिव्य आत्माओं मे वाङ्मय विद्वान राष्ट्र के महान् साहित्यिक इतिहास वेत्ता, आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' का नाम भी आता है। जिन्हे ससार के अमूल्य और दुर्लभ पदार्थ विद्या, धन और यश प्राप्त था। उनका जीवन आज के युग के लिए शान्ति का सोपान निश्चित करता है।

आचार्य जी का जन्म मिती मार्गसिर शुक्ला ११ संवत १९३४ में सरसावा (सहारनपुर) में एक सम्पन्न अग्रवाल कुल में हुआ। आप ने २० वर्ष की अवस्था में बा० सूरज भान वकील के समीप रह कर मुख्तार गिरी प्रारम्भ कर दी। दस वर्ष तक उसमें पर्याप्त प्रगति की। और आपका अध्ययन निरन्तर चलता रहा। फिर उस कार्य से दोनों को घृणा हो गई। फलतः चलती हुई प्रॅक्टिस को दोनों ने यकायक छोड दिया। फिर सत्योदय, जैन प्रदीप आदि पत्रों का प्रकाशन किया। आप में दान शीलता, उदारता, विनय, सौजन्य सादगी और सच्चरित्रता आदि सभी गुण विद्यमान थे। उनमें वात्सल्य का भाव भरा हुआ था। अपरिचित व्यक्ति मे उनसे मिलने पर आत्मीयता के भाव जगृत हो जाते थे। और यह अनुभव करने लगता था कि न जाने आचार्य जी के साथ कितना प्राचीन और घनिष्ट परिचय है।

इसके पश्चात् आपने अपनी जन्मभूमि सरसावा मे अपनी जायदाद पर ही वीरसेवामन्दिर की स्थापना की। फिर इक्यावन हजार का ट्रस्ट बना कर शोध कार्य प्रारम्भ किया। भारत स्वतन्त्र होने पर आपने वीरसेवामन्दिर का विशाल भवन बाबू छोटेलालजी कलकत्ताके सौजन्य से दरियागज दिल्ली में निर्माण कराया। जो आज तक शोध और साहित्य का कार्य कर रहा है। इसकी व्यवस्था प० परमानन्द जी शास्त्री के हाथ मे है। इससे आचार्य जी का नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

आपने अपनी अधिकांश सम्पत्ति का सदुपयोग सम्यग्-ज्ञान के प्रचार और प्रसार के लिए किया, और वीर सेवा मन्दिर के द्वारा उच्च कोटि के ग्रंथों का प्रकाशन किया था। और वही से अनेकांत पत्र लगभग २० वर्ष से प्रकाशित हो रहा है।

यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मुख्तार स.हब ने लगभग ७० वर्ष तक जैन समाज और साहित्य की सेवा की है। आप ने आज तक ३०-४० छोटे बडे सार्थ ग्रंथ तैयार करके प्रगट किए है। साराश यह है कि आप का सारा जीवन ही जैन साहित्य के सृजन में व्यतीत हुआ है।

आप प्राच्य विद्या के महा पडित, शोध और खोज के दुरूह कार्यों में सलग्न लेखनी के धनी, आलोचक, श्रद्धा से युक्त थे। आप की साहित्य-सेवा तथा दान के लिए जितना भी लिखा जाय कम है।

आप की आदरणीय कृति 'मेरी भावना' जन-मानस

में सार्वजनिक रूप से कविता के भाव को आलोकित करती रहती है। मेरी भावना के पढ़ने से हृदय के तार झन-झना उठते हैं। इसे मेरी भावना की कविता को राष्ट्रीय गीत के रूप मे अनेक प्रान्तीय सरकारों ने मान्यता दी है और जेलों तक की दैनिक प्रार्थनाओं में इसे शामिल किया है। यह अनेक भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में लाखों की तादात में प्रसारित हो चुकी है। इसे जेलों मे प्रसार कराने का सौभाग्य इस लेखक को भी प्राप्त हुआ है।

आप २-३ वर्ष से एटा मे अपने भतीजे डा० श्रीचन्द जी सगल के निवास स्थान पर चले गए थे डा० साहब भी उनकी परिचर्या में सलग्न रहे। अन्त में ६२ वर्ष की लंबी आयु मे ता० २२ दिसम्बर १९६८ को अपनी जीवन लीला समाप्त कर ससार से चले गए।

अन्त मे मैं ऐसी दिव्य आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करना उनकी मानवोचित मेरी भावना के एक छद को लिख कर लेख को समाप्त करता हूँ—

रहे भावना ऐसी मेरी सरल सत्य व्यवहार करूँ,
बने जहाँ तक इस जीवन मे औरों का उपकार करूँ।

**पं० गोपीलाल जी 'अमर' एम. ए.**

आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार का अध्ययन-मनन इतना मौलिक था कि उसके आगे निराधार परम्परायें टिकती न थी, और इतना सूक्ष्म था कि उसके आगे थोथे तर्क नाकाम हो जाते थे।

दलित वर्ग, दस्सा, बिनेकया, स्त्रियों आदि की शास्त्र-सम्मत वकालत करके उन्होने जैन समाज को सभ्य समाज की श्रेणी मे लाने की पुरजोर कोशिश की।

'ग्रन्थपरीक्षा' के जरिए मुख्तार जी ने भट्टारकों के साहित्यिक षड्यन्त्र और स्वेच्छाचार का भंडाभोड़ किया और जैन साहित्य में सदियों से घर बनाते आ रहे जैनेतर तत्त्वों को निर्मम होकर निकाल फेका।

काली कमाई को धर्म के नाम पर सफेद बनाने वाले यजमानों को और हां में हां मिलाकर झोली भरने वाले पुरोहितों को उन्होंने कठोर चेतावनी दी कि वे किराए की पूजन के लिए मंदिर-मूर्तियों का निर्माण न करायें।

अध्यात्मवाद के नाम पर विज्ञानसिद्ध सचाइयों को भी झुठलाने वालों को उन्होंने 'चैतन्यगुणविशिष्ट सूक्ष्माति-सूक्ष्म अखण्ड पुद्गलपिण्ड (काय)' को जीव की संज्ञा देकर जो चुनौती दी (अनेकान्त, जून'४२ पृ० २०५) उसका जवाब सत्ताइस वरस बाद भी किसी को नहीं सूझ पड़ा।

हिन्दी को सर्व सम्मत और सर्वगुणसम्पन्न बनाने के लिए उसमे उच्च कोटि के विपुल साहित्य का निर्माण ही एकमात्र उपाय जो मुख्तार जी ने, स्वतन्त्रता से काफी पहले सुझाया था, उसके बिना आज भी कल्याण नही।

इस तरह सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक क्षेत्र मे दी गई चुनौतियो का माकूल जवाब देकर ही हम स्व० मुख्तार जी के कर्ज से बरी हो सकते है। हमारी श्रद्धाजलि तभी सार्थक होगी :

**डा० प्रेमसागर जी जैन**

पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार, जीवन की अन्तिम सांस तक जैन साहित्य के अनुसधान और सम्पादन में लगे रहे। इतना ही नही, उन्होने उस साहित्य को हिन्दी मे अनूदित कर जनसाधारण के लिए सुलभ बनाया। शोधपूर्ण प्रस्तावनायें लिखी—ऐसी कि एक-एक पर पी० एच० डी० सहज ही प्राप्त हो सकती है। इस सब में उन्हें आनन्द मिला और उनका मन केन्द्रित रहा। वे एक साधक थे। उनकी साधना का दीप सूनी कुटिया के कोने मे रजनी-भर जलता रहा।

वे शोध-खोज की सूखी राह के राही थे और इस सन्दर्भ मे लोग उन्हे नितात शुष्क समझते है, किन्तु ऐसा था नही, उनका हृदय रस-स्रोत था। मै कहता हूँ कि यदि उन्होने यह सब कुछ बिलकुल न किया होता तो केवल 'मेरी भावना' ही उनकी व्यापक ख्याति का एक मात्र आधार थी। आज भी जन-जन मे वही व्याप्त है। वही उसकी यश-निर्झरणी है। मै ऐसे एक साधक को जिसने अपनी साधना से हृदय और बुद्धि को समरूप मे साधा था, श्रद्धांजलि अर्पित करता हू।

**डा० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल, और पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ } जयपुर**

श्रद्धेय श्री जुगलकिशोर जी सा० मुख्तार के स्वर्ग-वास का समाचार पढ़ कर अत्यधिक दुःख हुआ। स्व०

मुख्तार सा० इस युग के मार्गदृष्टा थे, उन्होने अपने जीवन के ५० से भी अधिक वर्ष साहित्य लेखन में समर्पित किये और जैन साहित्य, दर्शन एवं इतिहास में अन्वेषण कर एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। यद्यपि वे आजकल के समान डाक्टर नही थे लेकिन सैंकडों डाक्टरों की सेवाएं उनकी साहित्यक सेवाओं पर न्योछावर की जा सकती हैं। उनकी अकेली मेरी भावना ही ऐसी कृति है जो सैंकडों वर्षों तक उनकी कीर्ति को चिरस्थायी रखेगी। आ० समन्तभद्र पर उनकी खोज अपने ढंग की अद्भुत खोज है। सचमुच आज की युवा पीढ़ी के विद्वानो मे जैन साहित्य के अन्वेषण एव खोज की ओर जो झुकाव हुआ है उसमें आदरणीय मुख्तार सा० का प्रमुख योग है।

उनके निधन से जैन समाज ने ही नहीं किन्तु भारतीय समाज ने अपनी एक ऐसी निधि खो दी है जिसकी निकट भविष्य मे पूर्ति होना सभव नहीं है।

**रतनचन्द जी जैन एम० ए० एम० एड लामटा**

परम श्रद्धेय श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार की आकस्मिक पार्थिव मृत्यु का समाचार सुनकर हृदय दुःख से परिपूर्ण हो गया। जैन सिद्धान्त एव जैन साहित्य के इस प्रणेता का पार्थिव शरीर अब इस असार ससार मे नहीं रहा, परन्तु उनकी कीर्ति, उनके अविस्मरणीय कार्य सदैव अमर रहेगे। जैन साहित्य को सार्वजनिक रूप मे प्रस्तुत करने, उसके उद्धार, सम्पादन, भाष्य, टीका, एवं प्रकाशन के निमित्त स्वर्गीय मुख्तार जी ने जो किया वह कभी भुलाया नही जा सकेगा।

तन-मन-धन सभी का इस प्रकार का पवित्र अर्पण अद्वितीय है। समन्तभद्राश्रम (वीर सेवामन्दिर) इसका महान् उदाहरण है।

समाज सुधार के रूप में मुख्तार जी की सेवाएँ अपूर्व हैं। उन्होंने उस समय समाज सुधार का बीड़ा उठाया जब कि समाज का एक वर्ग कट्टरतावादी था। आलोचक के रूप में वे हमारे आदर के पात्र है। उनकी आलोचना सुधारात्मक है। सम्पादक के रूप मे वे हमारे गुरू हैं और एक महान् मानव के रूप में वे हमारे सच्चे पथप्रदर्शक है। एक साथ इतने महान् गुणों का समावेश दुर्लभ है। जैन समाज उनका जितना ऋणी है—वह उस ऋण को चुकाने में शायद ही कभी समर्थ हो सकेगा।

एक साहित्यकार के रूप में वे हमारे श्रेष्ठ निर्देशक थे। उनका सम्पूर्ण साहित्य, हिन्दी साहित्य की एक अपूर्व निधि है।

**बालचन्द जी जैन नवापारा राजिम :**

इस महान् तपस्वी साहित्यसेवी महापुरुष को इस जीवन में रहकर अभी बहुत कुछ करना शेष था, पर जो भी-जितना भी किया वह सब उस 'युगवीर' ने सर्वोपरि किया। आपकी साहित्य-सेवा से सारी जैन समाज महान् ऋणी है। इस महामना ने मरते क्षण तक साहित्य-सेवा से विराम नही लिया और उन अन्तिम क्षणो मे भी जैन सस्कृति के सरक्षण-सवर्धन की चिन्ता रखी।

वास्तव मे आपके साहित्यसेवी जीवन की बात ही निराली रही, और इस साहित्य क्षेत्र मे आप जैसा ओजस्वी-प्रखर खोजी व्यक्ति होना असभव-सा है।

**पं० के० भुजबली शास्त्री धारवार :**

श्री जुगलकिशोर जी 'युगवीर' के स्वर्गवास के समाचार से मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। उनसे मेरा लगभग ४५ वर्षो का सम्बन्ध रहा। वे मुझे बहुत मानते थे। धवलादि ग्रन्थो के परिशीलन के लिये वे जब आरा आये थे तब कई मास तक हम लोग साथ ही रहे। वे जब आरे से चलने लगे तब उनके नेत्र सजल हो गये थे। साथ ही साथ वे कहने लगे कि वस्तुतः आप वहाँ नहीं होते तो मैं इतने दिन तक वहाँ नही ठहरता। जुगलकिशोरजी एक सूक्ष्म तलस्पर्शी विमर्शक, प्रौढ लेखक और सुबोध सम्पादक थे। जैन पुरातत्त्व एवं इतिहास पर उनकी विशेष मति रही। उनके वियोग से खासकर दि० जैन समाज को आशातीत भारी क्षति हुई। खेद की बात है कि दि० जैन समाज विद्वानों की कदर नहीं जानता। समाज ने उनका समुचित आदर नहीं किया। ५० वर्षों से धर्म, साहित्य तथा समाज के लिये सर्वस्व समर्पित करने वाले विद्वानो की भी समाज कदर नहीं करता।

**डा० नेमिचन्द शास्त्री एम. ए. डी. लिट् आरा (विहार)**

आदरणीय सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ सिद्धान्ताचार्य पं०

श्री जुगकिशोर जी मुख्तार के स्वर्गवास का समाचार अवगत कर हार्दिक दुःख हुआ। मुख्तार सा० द्वारा की गई साहित्य-सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। उनका यशः शरीर इस जगत में कल्पान्त काल तक स्थित रहेगा। मै दिवंगत आत्मा की शान्ति और सद्गति प्राप्ति की शुभ कामना करता हूँ।

**बाबू प्रेमचन्द जी जैन मंत्री-वीर-सेवा।मन्दिर**

मुझे यह जानकर अत्यधिक दुःख हुआ कि जैन समाज के साहित्य सेवी वयोवृद्ध विद्वान प० जुगलकिशोर जी मुख्तार का २२ दिसम्बर रविवार को देहावसान हो गया। वे कर्मठ साहित्य-सेवी, जैन साहित्य और इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान थे, उनके द्वारा लिखित पुस्तके और लेखादि सप्रमाण होते थे, उन्होंने जो साहित्य-समीक्षाए लिखी है वे बेजोड है। वेप्रबल सुधारक तथा वीरसेवामन्दिर जैसी सस्था के सस्थापक थे। और रात दिन साहित्य सेवा मे व्यतीत करते थे। उनकी जीवन चर्या निराली थी। जैन धर्म के सुदृढ श्रद्धानी और समन्तभद्राचार्य के अनन्य भक्त थे, और उनकी भारती के सम्पादक, अनुवादक थे। आपने स्वामी समन्तभद्र का इतिहास इतना अच्छा और प्रामाणिक लिखा है : साथ ही अनेक आचार्यों के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। उनकी लोह लेखनी से जो कुछ साहित्य सर्जित हुआ वह उच्च कोटि का और नपे-तुले शब्दो मे लिखा गया है। वे जीवन के अन्तिम क्षणो तक साहित्य सेवा मे सलग्न रहे। यद्यपि अस्वस्थता के कारण उनका शरीर इतना काम नही दे रहा था पर उनका दिल और दिमाग बराबर कार्य कर रहे थे। उन जैसा निश्वार्थ समाजसेवी समाज मे दूसरा विद्वान नही है। उनके रिक्त स्थान की पूर्ति होना असभव है। मैं उन्हें अपनी और सस्था की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

**डा० विमलप्रकाश जी जैन, जबलपुर**

स्व० श्रद्धेय मुख्तार साहब से मेरा जीवन में कभी साक्षात् परिचय नहीं हुआ। उनकी साहित्य-सेवा से सारा जैन विद्वत् समाज परिचित है। स्वामी समन्तभद्र रचित साहित्य को श्रेष्ठ रीति से प्रकाशित करने का उनका कार्य अनुपम अद्वितीय है। जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश' भी उनकी अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक है। जैन साहित्य के क्षेत्र में ऐतिहासिक शोध की दृष्टि से उन्होंने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण दिशा दान किया।··· हम लोग निज जीवन मे स्व० मुख्तार साहब से प्रेरणा ग्रहण करते रहकर निरन्तर साहित्य एवं समाज-सेवा मे निरत रहे यही भावना है।

**पं० जयन्ती प्रसाद जी शास्त्री**

प्राच्य-विद्या-महार्णव, अनविकी लेखनी के धनी, अथक परिश्रमी पूज्य आचार्य प० जुगलकिशोर मुख्तार, जैनधर्म के गौरव के रूप मे सदा स्मरण किये जाते रहेगे। समय समय पर उनका अभाव सदा खटकता रहेगा। उनकी सूक्ष्म दृष्टि कभी भुलाई नही जा सकेगी।

मुझे उनके सानिध्य मे रहने का अवसर मिला था मैने उन्हे निकट से देखा था समझा था और उनका आशीर्वाद पाकर आगे बढ़ने का प्रोत्साहन पाता रहा था। वह प्रातः स्मरणीय आचार्य समन्तभद्र के अनन्य उपासक थे उन्होने उनके ग्रन्थो का गम्भीर अध्ययन और मनन किया था उनके शब्दो की आत्मा को समझा था।

मुख्तार सा० ने जो कुछ लिखा वह सब प्रामाणिक एव युक्तिपूर्ण ढंग से लिखा। धर्म के अनेक विवादों को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से सुलझाया, उनके शोध-खोज पूर्ण लेखों का लोहा जैन समाज मर्मज्ञों ने ही नहीं माना; बल्कि जैनेतर विद्वान् भी मानते थे। उनके लेखो का आधार लेकर ही अनेक विद्वानों ने पी. एच. डी. पाने में परोक्ष रूप से श्रद्धा प्राप्त की, उनके अनेक भक्त बन गये।

उनका विचार था कि दिल्ली मे वीर सेवा मन्दिर की स्थापना हो जाने से वे अपनी भावना को साकार बनाये। जैन समाज के गण्यमान विद्वानों के साथ अनेक गुत्थियों को सुलझाये परन्तु यह सब न हो सका, फिर भी मै अब यह आवश्यक समझता हूँ कि उनके द्वारा संस्थापित वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट को वीर सेवा मन्दिर-सस्था के साथ सम्बद्ध कर उस संस्था को एक शोध संस्थान का रूप दे दिया जाय। जिससे पूज्य मुख्तार सा० की आन्तरिक भावना पूर्ण हो और इस संस्था के उद्देश्य की भी पूर्ति हो।

मुझे विश्वास है कि वीर सेवा मन्दिर के कार्यकर्ता उनकी भावना के अनुसार उस अमर ज्योति के कार्यों को पूरा कर दिवंगत आत्मा को शक्ति प्रदान करेंगे।

अन्तमें मै उस महान् योगी के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ कि उनका गुण प्राप्त कर सकू।

मुझे विश्वास है कि वर्तमान वीर सेवा मन्दिर-ट्रस्ट के संचालक गण इस विषय की ओर अवश्य ध्यान देगे। इस प्रकार उनके प्रति समाज की हार्दिक श्रद्धांजलि हो सकेगी और मुख्तार सा० के अधूरे कार्य भी पूरे हो सकेंगे।

**डा० विद्याधर जोहरापुरकर :**

आदरणीय प० जुगलकिशोर जी मुख्तार जैन इतिहास के निर्माताओं मे अग्रणी है। उन्होंने तथा स्व० प० नाथूराम जी प्रेमी ने जैन हितैषी और अनेकान्त द्वारा जैन साहित्य की जो सेवा की वह वास्तव मे अमूल्य है। जैन विद्वत्समाज मे उनका वही महत्त्व है जो सस्कृत पण्डितों मे स्व० डा० भण्डारकर का था। उन्ही के भगीरथ प्रयत्नों का यह फल है कि आज जैन साहित्य का हमारा ज्ञान दन्तकथाओं के स्तर से ऊपर उठ कर इतिहास के दर्जे तक पहुँच सका है। इन दोनो महापण्डितों के प्रत्यक्ष दर्शन का अवसर हमे एक एक बार ही मिला किन्तु उनके साहित्यिक कार्य से हमारा सपर्क प्राय: प्रतिदिन ही आता है। मुख्तार जी ने जैन शासन के प्रेरणादायी सन्देशो को 'मेरी भावना' मे जिस प्रभावशाली ढग से शब्दबद्ध किया है वह भी बेमिशाल है। यह रचना नि:सन्देह रूप से बीसवी शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय जैन कृति कही जायेगी।

**पं० बलभद्र जी जैन—आगरा**

मुख्तार साहब एक युग पुरुष थे। उन्होंने जो साहित्य सेवा की, प्राचीन जैन आचार्यों की जो प्रामाणिक शोध-खोज की, सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में जो बहुमुखी क्रान्ति की, उन सबने नये-नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। उन्होंने समाज की रूढ़ परम्पराओं को अपने साहस और व्यक्तित्व से आमूल झकझोर कर जैन समाज को प्रबुद्ध दिशा प्रदान की। निश्चय ही यह युग 'युगवीर' युग के नाम से इतिहास में सदा स्मरण किया जाता रहेगा। उनकी मेरी भावना आज लाखों व्यक्तियों का कण्ठहार बनी हुई है और वह उन्हें नित नई प्रेरणा देती रहेगी।

मुख्तार सा० ने जो कुछ भी लिखा वह, साहित्य अमर है, उनके निष्कर्ष अकाट्य हैं। उनकी गौरव गरिमा अक्षुण्ण एव अमलान है। वे किसी एक जमीन, एक सम्प्रदाय के नही थे, वे राष्ट्र के साहित्य-जगत के एक ऐसे देदीप्यमान नक्षत्र थे, जिन पर युग को, इतिहास को, सदा गर्व रहेगा।

**श्री माणिकचन्द जी चवरे कारंजा**

सन्मानीय विद्वदवर्ग विचक्षण पडित श्री जुगलकिशोर जी 'युगवीर' का २२ दिसम्बर रविवार को स्वर्गवास पढ़कर अत्यन्त दुःख हुआ।

श्रीमान् पडित जी ने आयु के अन्तिम क्षण तक जैन साहित्य, तत्वज्ञान तथा इतिहास आदि के विषयक बहुमूल्य अभ्यासपूर्ण शास्त्रो की निर्मिती की। विशेषत: आचार्य शिरोमणि श्री समत भद्राचार्य जी के समस्त ग्रन्थो का वर्षो धीर गम्भीरता से आलोडन करके जो ग्रन्थों का वैशिष्ट्य पूर्ण सम्पादन किया वह अपने रूप मे बेजोड़ है। इसी प्रकार अनेकान्त का सम्पादन भी सुरुचिपूर्ण अपने ढग का वैशिष्ट्यपूर्ण ही रहा। इतिहास तथा सस्कृति के विषय मे भी अनेक शोध-प्रबन्ध अपूर्व रूप ही प्रतीत हुए।

श्रीमान् पडित जी की 'मेरी भावना' एक अमर कृति ही है अपने रूप मे स्वय पूर्ण है। साहित्यिक सर्जनमात्र के लिए ही पडित जी का जीवन सीमित नही रहा। स्वसम्पादित सारा धन पवित्र कार्य के लिए निष्ठापूर्वक अर्पित करके आपने एक दान और त्याग का आदर्श समाज के लिए प्रस्तुत किया है। श्रीमान पडित जी का स्वर्गवास यह वैयक्तिक हानि नही है। यह एक सामाजिक अपूर्णीय क्षति है।

**श्री प्रेमचन्द जी जैनावाच—देहली**

मुख्तार सा० एक अद्वितीय विभूति व सरस्वती के महान उपासक रहे, उनका सारा जीवन साहित्यिक खोज में ही व्यतीत हुआ। उनकी साहित्य-साधना अपूर्व और अमर है। मैं उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

**श्री नीरज जी जैन—सतना**

श्रद्धेय मुख्तार सा० ने अपने जीवन में जिनका जो,

कर लिया वह हम लोग ३-४ जन्म लेकर भी शायद न कर सकें। वे कर्मण्यता की प्रतिमूर्ति थे। उनकी पावन स्मृति में मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

**श्री हीरालाल जी कौशल—देहली**

स्व० मुख्तार सा० जैन साहित्य और इतिहास के महान विद्वान थे। प्रथित इतिहासज्ञ थे। वे अपनी महत्वपूर्ण कृतियों के कारण अमर है, उनकी सेवाएँ भुलाई नहीं जा सकती।

**सुबोधचन्द जी जैन साहित्य विकास मण्डल बम्बई**

श्रीमान् युगवीर जुगुलकिशोर जी के निधन का समाचार पढ़कर अतिशय खेद हुआ। उनके चले जाने से जैन समाज ने एक महा विद्वान खो दिया है।

भगवान जिनेन्द्र के प्रति उनकी भक्ति उनके ससार को अल्प करके शाश्वत सुख के स्वामी बनायेगी यह निश्चित है।

**सुकमाल चन्द्र जी जैन :**

पूज्य बाबूजी मृत्यु को महोत्सव कहा करते थे और समाधिमरण की भावना व्यक्त किया करते थे। उनका निधन सामयिक भी था। मेरे जीवन मे तथा समाज के जीवन मे उनके निधन से एक अभाव समुपस्थित हो जाने पर भी हमारे लिए दुख करने का जैन धर्म द्वारा निषेध है क्योकि दुख, शोक, ताप, आक्रन्दन आदि क्रियाओं से असातावेदनीय कर्म का आस्रव और बध होता है।

यह समाज की अज्ञानता और अदूरदर्शिता है कि उसने उनके इतने लम्बे जीवन मे उनके साथ समुचित सहयोग नही किया और उनसे यथोचित लाभ नही उठाया। अबभी यदि समाज उनके शेष रह गये कार्यो को पूरा करने में जुट जाय तो उसका भी कल्याण हो जाय।

बाबूजी की भव्य आत्मा को पूर्ण शान्ति थी; क्योंकि वे तो अदम्य उत्साह के साथ अपने लक्ष्य मे अनवरत परिश्रम करते रहते थे। मुझे भी उस शान्ति का लाभ पहुँचता रहता था किन्तु यह सुविधा गत तीन वर्ष से मुझसे दूर हो गई थी। वह शान्ति उनके साथ अवश्य गई होगी। किन्तु पूज्य बाबूजी स्वर्ग में नही गये होंगे क्योंकि वे निठल्ले बैठकर भोग भोगने की भावना नहीं रखते थे। स्वर्ग में शान्ति होती भी नहीं है—यह तो केवल संसारी भोगाभिलाषी जीवों की कल्पनामात्र है। बाबूजी ने तो अवश्य किसी विद्वान के परिवार में (यहीं पर या विदेह क्षेत्र में) मानवपर्याय ही धारण की होगी।

जिन वाणी माता के मन्दिर को उन्होंने यहां साफ किया और सजाया। वीतराग विज्ञान के विद्यार्थी और हमारे लिए प्राध्यापक—उनका जीवन हमारे लिए पूजनीय और आदर्श था।

**नेमचन्द धन्नुसा जैन :**

मुख्तारसा० के चले जाने से हमारे समाज की बडी हानि हुई है। वे एक खवीर नेता थे। तथा 'मेरी भावना' के रचयिता के नाते आबाल वृद्धो के मुख मे थे। समन्तभद्र भारती के सब प्रकाशन उनकी देन है। आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी के जीवन पर आपने पूरा प्रकाश डाला है, इतना ही नही उनके पूरे लिखान मे वे समरस हो गये थे। गधहस्तीमहाभाष्य कही अवश्य मिल जायगा ऐसा उनका मनोदय था। इस आशा से उन्होंने दक्षिण में सुदूर तक भाषा की अडचन होते हुए भी प्रवास किया था। इस अवसर पर उन्होंने बहुत परिश्रम से जिनवाणी माता की सेवा की और अनेक अलभ्य और अप्रकाशित ग्रथों को प्रकाश में लाया। स्व. मुख्तयारजी उनके कृति के रूप में अभी भी अमर रहेगे। मैं उन्हें अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

**कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर :**

पूज्य मुख्तार साहब का स्वर्गवास उनके लिए शान्ति-धाम की यात्रा है और हम सबके लिए एक गहरी हानि। उनका जीवन शोक का नही, गौरव का हकदार है। हमें उनपर गर्व हैं। वे बहुत कुछ कर गये। उनका आदर्श हमे बहुत कुछ करने की प्रेरणा देता है।

**पं० बंशीधरजी एम० ए० कलकत्ता :**

समाज की प्रसिद्ध साहित्यिक विभूति श्रद्धेय मुख्तार जी के देहावसान का समाचार विदित कर बहुत दुख हुआ। समाज का यह भारी दुर्भाग्य है कि वह एक कर्मठ ठोस सेवाभावी, साहित्यिक, लेखक व अन्वेषक विद्वान की महान सेवाओं से सदा के लिए वंचित हो गया। उनके

निधन से हुई क्षति की पूर्ति असंभव है। मेरे प्रति उनका पुत्र के समान स्नेह रहा। उनके अभाव में सारा समाज ही अनाथ हो गया। यों ही दि० जैन समाज विद्वानों के अभाव से ग्रस्त थी, उनके निधन ने उस अभाव को और बढ़ा दिया। मैं दिगवंत आत्मा के शान्ति लाभ की श्री वीरप्रभु से प्रार्थना करता हूँ। मेरी भावना का जब-जब पाठ करता हूँ उनका स्मरण तो सहज आ ही जाता है, वे अविस्मरणीय है।

**ब्र० सोहनलालजी जैन ईसरी**

श्रद्धेय मुख्तार सा० जैसे दिग्गज विद्वान व ज्ञानरूपी सूर्य आज दिवगत हो गया, इतिहास के पुरातत्त्व की शोधक आत्मा इस युग मे अपना चमत्कारिक ट्रस्ट स्थापित कर युग-युगान्तर के लिए अपना अस्तित्व छोड़ गये, जो हमे उनकी अनुपम देन है और उनके इस पथ पर चलकर हम उनको हृदयाङ्गम कर सके और प्रसार मे ला सके यही मेरी अन्तिम कामना है। उनके आयोजनों को हम आगे बढ़ावे, इसी में हमारी शोभा है।

**डा० हीरालालजी जैन जबलपुर :**

स्व० मुख्तार साहब अपने आपमे एक महान् जैन संस्थान ही थे। तथा उन्होंने अपना समस्त जीवन जैन-साहित्य की सेवा मे ही व्यतीत किया। उनके स्वर्गवास से सामाजिक वा साहित्यिक क्षेत्र मे जो कमी हुई है, उसकी पूर्ति होना कठिन है।

**पं० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य—फिरोजाबाद**

श्री मुख्तार जैसे महान् पुरुष का वियोग हो जाना जैन समाज का महान दुर्भाग्य है। इन सौ वर्षों मे ऐसा पुरुषार्थी, दि० जैन धर्म-प्रभावनारत, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी सज्जन एक जुगलकिशोरजी ही मिले थे। अब उनके स्थान की पूर्ति होना अशक्य है। अनेक आचार्यों की गवेषणा का उन्होंने पुरातत्त्व-सामग्री से विलोड़न कर ठोस धर्म 'रहस्य अमृत' का उद्धार किया। उन्होने, जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, निःस्वार्थ-सेवी बनकर जिनागम-रहस्योद्घाटन की घनघोर तपस्या की। उन्होंने अल्पवय में पुष्कल धनोपार्जन कर अनेक विद्वानों की ऐतिहासिक शोधें प्रकाशित कीं। वे सतत समन्तभद्र-भारती के प्रचार में दिन-रात संलग्न रहे। उनकी सैकड़ों कृतियां आदरणीय है। शास्त्रीयज्ञान भी उनका मजा हुआ था।

**पं० जगनमोहनलालजी जैन प्राचार्य—कटनी**

मुख्तार साहब हम सबके पिता थे। उनकी धर्म, समाज व साहित्य सेवा अपनी उपमा नहीं रखती। उनका दिवंगत होना सारे दिगम्बर जैन समाज की अपूरणीय क्षति है।

**सर सेठ भागचन्द्रजी सोनी—अजमेर :**

श्री प० जुगलकिशोरजी मुख्तार 'युगवीर' के निधन के दुःखद समाचार जानकर दुःख हुआ, वैसे तो वे वयोवृद्ध ही थे, जिनवाणी की सेवा के प्रसार से उन्होने अच्छी आयु प्राप्त की और अन्त समय तक वे इसी सेवा मे रत रहे - यह सौभाग्य इस काल मे विरले ही पुण्यशाली को प्राप्त होता है। जैन ससार से एक महान विद्वान जिनवाणी का सेवक उठ गया। यह जैन समाज की महान क्षति है। उनकी जैन साहित्यिक कृतियाँ ही उनके नाम को सदैव अजम-अमर रखेगी।

**पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य-बीना (सागर)**

समाज से एक ऐसा साहित्य-सेवी उठ गया है जिसने समाज के विद्वानों को सकृति और साहित्य के विषय मे सोचने की नवीन दिशा प्रदान की और जिसने न केवल नि.स्वार्थ भाव से अपितु अपने ही सम्पूर्ण द्रव्य को साहित्य के विकासमें लगाकर जीवनभर केवल साहित्य की ही सेवा की। जीवन का अन्तिम क्षण भी उनका साहित्य सेवा में लगा रहा। यद्यपि वे आर्थिक मामले में अत्यन्त कंजूसी से कार्य करते थे, उनका अन्य लोगों के साथ आर्थिक मामले मे व्यवहार भी बहुत कड़ा था पर यह साहित्य के विकास के लिए वरदान रूप ही था।

**साहू श्रेयांसप्रसादजी—बम्बई :**

आदर्श महापुरुष मुख्तार सा० के स्वर्गीय हो जाने से जैन समाज में से एक नर-रत्न का अभाव हो गया है। आप में धार्मिक-लगन, समाज के प्रति गाढ़ स्नेह, कर्त्तव्य-

निष्ठा, उत्तरदायित्व का ध्यान, गुणज्ञाता, निरभिमानता, सरल परिणाम वृत्ति, वाणी-माधुर्य बहुत से ऐसे गुण थे जिससे कि विरोधी विचारधारा वाला भी बरवस आपके प्रति झुक जाता था। आपकी सामाजिक सगठन की उत्कट भावना, कार्यक्षमता, उत्तरदायित्व की सम्हाल, गुरुभक्ति, सच्चरित्र-निष्ठा, शास्त्रपठन, तथा भाषण कुशलता की छाप समाज पर सदैव रहेगी।

**पं० पन्नालाल जी जैन साहित्याचार्य**
**मंत्री श्री भा० दि० जैन विद्वत्परिषद् सागर,**

विद्वद्वरेण्य श्री पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार जैन वाङ्मय के स्वयबुद्ध विद्वान थे। उन्होने अतरङ्ग की प्रेरणा से जैन शास्त्रो का गहन अध्ययन कर अपने ज्ञान को विकसित किया था। धर्म, न्याय, साहित्य और इतिहास आदि सभी विषयो मे उनकी अप्रतिम गति थी। उनके द्वारा रचित विशाल साहित्य उनके अभीक्ष्णज्ञानोपयोग को सूचित सरता है। समन्तभद्राचार्य के प्रति आप की विशेष आस्था थी। आप साहित्य महारथी थे। आपने अपनी सम्पत्ति का बहु भाग समर्पित कर वीरसेवा-मन्दिर की स्थापना की तथा उसके माध्यम से 'अनेकान्त' पत्र का प्रकाशन कर विद्वानो के लिए विचारणीय सामग्री प्रस्तुत की थी। आपने ९१ वर्ष की वृद्धावस्था मे भी विस्तर पर पड़े-पडे 'योगसारप्राभृत' नामक ग्रथ को तैयार कर समाज को दिया है जो ज्ञानपीठ से प्रकाशित है। आपके उठ जाने से जैन समाज की एक अपूरणीय क्षति हुई।

**बाबू नेमिचन्द्र जी वकील—सहारनपुर**

श्रद्धेय मुख्तार सा० की मृत्यु से समाज को बडी क्षति पहुची है जिसकी पूर्ति असम्भव है। उनका जीवन बडा सात्विक एव पवित्र रहा है। वह बडे कर्मठ कार्यकर्त्ता थे तथा अनथक थे। उन्होने सर्वदा श्री जिनवाणी की सेवा की है और अन्तिम समय तक बराबर करते रहे। इस आयु मे भी वह जितना सात्विक कार्य करते थे, उतना आज का नवयुवक भी नहीं कर सकता। अन्त तक उनका दिल व दिमाग सही कार्य करता रहा, और उनकी लेखनी से बराबर मार्मिक एवं प्रामाणिक साहित्य का ही सृजन होता रहा है। ऐसी महान आत्माओं का ही मनुष्य जीवन सफल तथा सार्थक है। वह धन्य हैं।

**श्री पं० अमोलकचन्द्र जी**
**पं० जीवंधर जी शास्त्री—इन्दौर**

श्री वीर सेवामन्दिर ट्रस्ट के संस्थापक श्री मुख्तार सा० के स्वर्गवास से जैन समाज को बड़ी क्षति पहुची है। उनकी धार्मिक, सामाजिक, और जिनवाणी की अपूर्ण सेवाए कभी भुलाई नही जा सकेगी।

**प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला—वाराणसी**

'आज एक युग समाप्त हो गया, क्योंकि जैन वाङ्मय का सेवक 'युगवीर' उठ गया।'' अब 'वीर-युग' को लाने के लिए कौन सतत लेखनी लिए सन्नद्ध रहेगा।

**बाबू नन्दलाल जी सरावगी—कलकत्ता**

पडित जी ने तो सारा जीवन जैन साहित्य की खोज तथा छपवाने मे ही लगाया। मेरी समझ मे अब उनकी सी लगन का दूसरा पडित समाज मे नजर नही आता। उन्होंने तन-मन-धन तीनो को ही शास्त्रोद्धार मे लगाया, ऐसे उत्तम कार्यकर्त्ता का स्थान पूर्ण नही हो सकेगा।

**डा० भागचन्द्र जी जैन—नागपुर**

स्व० मुख्तार सा० की अमूल्य सेवाओ से जैन समाज कभी उऋण नही हो सकता। समाज मे चतुर्मुखी जाग्रति पैदा करने मे उनका बहुत बडा हाथ है।

**बाबू जुगमन्दिर दास जी जैन—कलकत्ता**

पडित जी की लेखनी मे जादू का असर था। उनकी सेवाए समाज को चिरस्मरणीय रहेगी। उनके निधन से जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन है।

**पं० परमेष्ठीदास जी—ललितपुर**

माननीय मुख्तार साहब ने पहले जैन वाङ्मय की जो सेवा की है उतनी सेवा बीसवी शताब्दी में शायद किसी अन्य ने नही की है। जैन समाज और जैन साहित्य प्रिय लोग मुख्तार सा० के सदा ऋणी रहेगे।

**लाला पारसदास जी जैन मोटर वाले**

मुख्तार सा० के निधन से जैन समाज की जो क्षति हुई। वह पूर्ण होना असम्भव है।

**श्री उग्रसेन जी मन्त्री जैन समाज—लखनऊ**

समाज सुधार के बारे में जब कोई जबान ही नहीं

खोल सकता था तब ऐसे समय मुख्तार सा० ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने निडरता के साथ जैन शास्त्रों पर कुछ ऐसे ट्रैक्ट लिखें जिनको आज भी कोई नही लिखता जितनी बारीकी के साथ मुख्तार सा० ने जैनधर्म के सिद्धान्तों को समझा था, शायद ही आज तक किसी विद्वान ने समझा हो, वह जो कुछ लिखते थे निडरता और खोजपूर्ण लिखते थे।

मुख्तार साहब ने केवल ६०-७० वर्ष बराबर जैन साहित्य की बहुमूल्य सेवा ही नही की बल्कि अपनी तमाम सम्पत्ति जैन साहित्य के उद्धार और प्रचार के लिए भी अर्पण कर दी है। मुख्तार सा० की सेवाये जैन समाज के इतिहास में अमर रहेगी और स्वर्ण अक्षरों मे अंकित की जायेगी। उनकी क्षति पूर्ति होना असम्भव है।

### लाला राजकृष्ण जी जैन

साहित्याचार्य पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार के स्वर्गवास का समाचार समस्त जैन समाज और साहित्य प्रेमी संसार मे शोक से सुना गया है। उन्होने अपनी लोह लेखनी के द्वारा जैनधर्म, जैन साहित्य, जैन पुरातत्व और पत्रकारिता आदि की सेवा सत्तर वर्ष से भी अधिक समय तक की। वे ९२ वर्ष की अवस्था मे भी साहित्य सेवा मे लगे हुए थे। उन्होने बहुत से अप्राप्त जैन शास्त्रो की खोज करके उनका उद्धार किया। जैन आचार्यों के समय तथा उनकी रचनाओं के बारे मे उनके निष्कर्ष और निर्णय इतने सप्रमाण है कि भावी विद्वानों के लिए वे बड़े उपयोग की सामग्री होंगे। कई ग्रन्थों की युक्तियुक्त तथा सप्रमाण परीक्षा लिखकर उन्होंने साहित्यिक भ्रष्टाचार और धार्मिक अन्धविश्वासको दूर किया। अपने अध्यवसाय और लगन पूर्वक अध्ययन से वे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश भाषाओं के महाविद्वान और जैन साहित्य के प्रकाण्ड आचार्य बन गये। वे जैन गजट, जैन हितैषी के सम्पादक तथा अनेकान्त के संस्थापक और सम्पादक थे। वीर सेवामन्दिर की स्थापना करके उन्होने जैन साहित्य की दीर्घकालीन सेवा का मार्ग खोल दिया। वे सादा रहन-सहन, मितव्यता, परिश्रम, विरोधों का डटकर सामना करने और सच्ची लगन आदि गुणों के स्वामी थे। उनका आचरण एक सच्चे जैन का आचरण था। और अब तो वे सातवी ब्रह्मचर्य प्रतिमा का पालन कर रहे थे। उनका आचार और ज्ञान उच्च कोटि के थे। उनकी सेवायें जैन इतिहास में अमर स्थान पायेंगी।

मेरा उनसे साठ वर्ष से अधिक समय से परिचय था और वीरसेवामन्दिर की दिल्ली में स्थापना के पश्चात् उनसे गहरा सम्बन्ध हो गया था। आशा है जैन समाज और वीरसेवामन्दिर उनका यथोचित स्मारक स्थापित करेंगे और उनकी अधूरी और अप्रकाशित सामग्री की सुरक्षा तथा प्रकाशन का प्रबन्ध करेंगे, मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

### बाबू माईदयाल जैन बी. ए. ऑनर्स

साहित्याचार्य पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार से मेरा परिचय दिल्ली मे सन् १९२१-२२ मे उस समय हुआ था जब वे आचार्य समन्तभद्र की जीवनी लिखने मे व्यस्त थे। पैंतालीस वर्ष की लम्बी अवधि में हजारो बार उनसे मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। मेरा उनका बडा निकट का सम्बन्ध था। मै उनकी साहित्यसेवा, ग्रन्थ परीक्षा, पुरातत्व सम्बन्धी खोजों और पत्रकारिता से इतना प्रभावित था कि उनके दर्शन और वीर सेवामन्दिर सरसावा तथा दिल्ली की यात्रा को तीर्थयात्रा तुल्य समझता था और हर बार उनसे कुछ न कुछ प्रेरणा पाता था। मेरे हृदय पर उनके शास्त्र ज्ञान, उच्चाचरण, साहित्यसेवा, लगन, जैन धर्म में आस्था और अथक कार्य शक्ति की गहरी छाप पड़ी थी। मैं उनका भक्त था और उनसे अत्यन्त आदर तथा श्रद्धा से मिलता था और हर एक भेट को अपना सौभाग्य समझता था। उनकी सेवाये अमर रहेंगी। समाज और वीरसेवामन्दिर को उनके प्रति अपने कर्त्तव्यों को पूरा करना चाहिए और उनकी अधूरी या अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाश मे लाना चाहिए। मुख्तार साहब की जीवनी तैयार कराये जाने की भी बड़ी आवश्यकता है। उनके स्वर्गवास से जो क्षति समाज को हुई है, उसे पूरा करना अत्यन्त कठिन है। मै उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

**बाबू दीपचन्द्रजी—कैराना**

जैन समाज को मुख्तार सा० के निधन से बड़ी भारी क्षति पहुँची है। वास्तव में वह सदा साहित्य सेवा में संलग्न रहते थे। और इतनी वृद्धावस्था मे भी काम करते रहे। आशा है कि उनकी अन्तिम इच्छानुसार कार्य होता रहेगा और जिस वीर सेवा-मन्दिर सस्था की वह सस्थापना कर गये है वह चलती रहेगी।

**पं० बाबूलालजी जमादार - बड़ौत :**

उस महान आत्मा ने जीवनभर ज्ञान दीप जलाकर जैन समाज को अधेरे से बचाया। आचार्य समन्तभद्र स्वामी की तरह वादियों के मुह मोडे और दिगम्बर धर्म की रक्षा की। मिथ्या अहंकारियों को उन्होंने सदैव ललकारा और उन्हे धर्म विरोध से रोका। आज उनके निधन से जो क्षति समाज को उठानी पड़ी है वह पूर्ण होना असम्भव है।

**पं० मिलापचन्द रतनलाल जी कटारिया—केकड़ी**

मुख्तार सा० जैसे साहित्यक महारथी, अब दुर्लभ है। उनके उपकार और उनकी महान उच्च साहित्य-सेवा सदा सब को याद आती रहेगी। चाहते हुए भी विद्वज्जगत उन दुर्लभ विभूति का यथोचित अभिनन्दन नही कर सका। यह सदा पश्चाताप की चीज रहेगी। विद्वज्जगत उनकी वरद छत्र-छाया मे सब तरह से सम्पन्न और प्रसन्न था। अब तो उनकी स्थिति मे विशाल स्मृति ग्रथ निकालकर कुछ उऋण हुआ जा सकता है।

**पं० नाथूलाल जी शास्त्री—इन्दौर**

वीर सेवामन्दिर के सस्थापक श्रीमान् पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' का स्वर्गवास जानकर अपार दुःख हुआ। मुख्तार सा० ने ५० वर्ष से अनवरत जैन संस्कृति की सेवा में अपने जीवन को समर्पित कर जैन साहित्य इतिहास और समन्तभद्रभारती का जो महान कार्य किया है उससे उनकी कीर्ति ऊपर रहेगी। ग्रन्थ परीक्षा और मेरी भावना तथा अनेकान्त पत्र उनके अपूर्व कार्य है। विद्वानों के लिये वे अनुपम आदर्श थे। मै उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

# संस्मरण और श्रद्धांजलि

**हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री—ब्यावर**

आचार्य श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार सा० के पास मुझे लगभग १० वर्ष रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैने उनकी सभी प्रकार की प्रवृत्तियो को अत्यन्त नजदीक से गहराई के साथ देखा है। मैने सदा ही यह अनुभव किया है कि वे अपनी धुन के पक्के थे। जिस कार्य को हाथ मे लेते थे उसमे तन्मय हो जाते थे। चार-चार घटे एक साथ एक आसन से बैठकर काम करना तो उनके लिए एक साधारण सी बात थी। काम मे सलग्न हो जाने पर उन्हे समय का बिल्कुल ध्यान नही रहता था। यहाँ तक कि कई बार वे भोजन और सामायिक जैसे जरूरी कार्यो का करना भी भूल जाते थे। जिस कार्य को हाथ मे लेने—रात-दिन उसी के चिन्तन-मनन और लिखने मे सलग्न रहते। मैने उन्हें युक्त्यनुशासनादि कई गभीर ग्रन्थों की प्रस्तावनाए लिखते समय देखा है कि वे लगातार कई दिन तक मौन धारण करके अपने लेखन-कार्य मे जुटे रहते थे। उनकी इस एकान्त साधना का ही यह परिणाम है कि जो कुछ भी उन्होने लिखा है, उसका एक अक्षर भी इधर से उधर करने का साहस आज तक किसी ने नही किया।

मुख्तार सा० अपने नियमों को बडी दृढता से पालन करते थे। जब से उन्होने सप्तम प्रतिमा धारण की थी। तब से वे त्रिकाल सामायिक नियम से यथा समय ही करते थे। एक बार जब वे एक गभीर बीमारी से अच्छे हुए—तो स्वास्थ्य-लाभ के लिए मैने उन्हें प्रातःकाल घूमने की सलाह दी। वही समय उनकी सामायिक का था—अतः यह स्थिर हुआ कि वे ५ बजे वीर सेवामन्दिर मे घूमने निकलेगे और गाधी समाधि के १-२ चक्कर लगाने के बाद वही सामायिक करेंगे। वर्षा ऋतु थी, एक दिन वे छतरी ले जाना भूल गये और घूम करके जैसे ही सामायिक को बैठे कि पानी बरसना प्रारम्भ हो गया। मै उस दिन उनके साथ नहीं जा सका था—अतः पानी बरसने पर मेरा ध्यान उनकी ओर गया और देखा कि वे

छतरी नहीं ले गए हैं, अतः मैं अपनी छतरी लेकर गांधी समाधि पर पहुँचा—देखता हूँ कि खूब जोर की बारिश होने पर भी ये अडोल आसन से बैठे हुए सामायिक कर रहे हैं, उनकी यह दृढ़ता देख कर मैं दग रह गया और तब तक उनके ऊपर छतरी लगाये पीछे की ओर खड़ा रहा—जब तक कि उनकी सामायिक पूरी नही हो गई। जब उठे और मुझे छतरी लगाये देखा, तो बोले—कब से तुम यहा पर हो ? मैने ऐसे अवसरों पर अनेक पहुँचे हुए त्यागियों को सामायिक छोड कर और आसन उठाकर भागते हुये देखा है। तथा मध्याह्न सामायिक के समय ऊंघते हुए और गिरते हुए भी देखा है मगर मुख्तार साहब को कभी ऐसी दशा मे देखने का मौका नही मिला।

भर जवानी मे पत्नी-वियोग हो जाने के बाद से वे अखण्ड ब्रह्मचर्य का तो पालन कर ही रहे थे—साथ ही उनका रसनेन्द्रिय पर भी गजब का कट्रोल था, प्रातः साय गोदुग्ध, फल और मध्यान्ह मे एक बार सात्विक भोजन के अतिरिक्त कभी भी उन्हे मीठी या चटपटी चीजे खाते नही देखा। प्रातःकाल ४ बजे उठकर रात के १० बजे सोने तक वे त्रिकाल सामायिक करने एव भोजन के समय को छोडकर निरन्तर अपने कार्य में जुटे रहते थे। प्रतिदिन १०-१२ घण्टे काम करना उनका नियमित दैनिक कार्य था।

वे दिल्ली मे रहते समय तक अपने कपड़े भी अपने ही हाथ से साबुन लगाकर धोया करते थे। एक बार जब वे कपड़े धो रहे थे—तो मै उनके ही सामने बैठकर उनकी यह चर्या लिखने लगा। बोले—क्या लिख रहे हो ? मैने कहा—यह लिखता हूँ कि मुख्तार सा० कपड़े धोने जैसे छोटे कामों मे अपने अमूल्य समय का दुरुपयोग करते है। यह सुनकर वे तुरन्त बोले—भाई—यह समयका दुरुपयोग नही है बल्कि स्वावलम्बीपन के पाठ का अभ्यास है। मैं नही चाहता कि कोई मेरे कपड़े धोवे ? अपने हाथ से धोते रहने से हाथों मे उतनी शक्ति बनी हुई है। यदि मैं ऐसा न करता, तो पराधीन तो होना ही पड़ता—मेरे हाथों में वह शक्ति भी नही होती—जो कि आज है। यह घटना उनके ८० वर्ष होने के बाद की है।

कुछ लोग उनके रूखे स्वभाव की बात कहते हैं। मगर मैंने यह अनुभव किया है कि वे मितव्ययी होने पर भी स्वभाव के बडे भद्र थे। जो भी व्यक्ति उनके साथ थोड़ा सा भी भद्र व्यवहार करता—वह प्रतिफल मे उनसे कई गुणा भद्र व्यवहार पाता था। उनका हृदय-दर्पण के समान स्वच्छ था जो व्यक्ति जिस भावना के साथ उनसे बात करता, उसे वे तुरन्त जान लेते थे। पर गंभीर स्वभाव के कारण वे उसे अपने चेहरे पर नहीं आने देते थे। और वे स्वभाव के तो इतने भोले थे कि गूढ मायावी व्यक्तियो के जाल मे सहज ही फस जाते थे। यही कारण था कि स्व० बा० छोटेलाल जी के साथ अंतिम वर्षों मे उनका मनोमालिन्य हो गया था—पर यह सन्तोष की बात है कि अन्त मे उन दोनो का पारस्परिक मनोमालिन्य दूर हो गया था।

दिवंगत हो जाने के बाद उनकी कमियों की चर्चा करना अपनी ही क्षुद्रता का परिचय देना है। और फिर कौन ऐसा व्यक्ति है—जो कि पूर्णरूप से निर्दोष हो—या उसमे सासारिक सहज कमिया न हो। पर उनकी जीवन भर की गई समाज सेवाओं को देखते हुए एक बात सदा ही खटकती रहेगी—कि समाज ने उनकी सेवाओं का समुचित समादर नही किया—बल्कि प्रारम्भ मे तो उनके सत्कार्यों का भी घोर विरोध किया—जिसे वे अपने दृढ अध्यवसाय से सहन करते रहे—और अपने कर्त्तव्य से रञ्च मात्र भी नही डिगे। उन्होंने हमारे सामने "न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पद न धीराः" का उच्चादर्श रखा है।

श्री मुख्तार सा० के चले जाने के बाद उनके ट्रस्ट के उत्तराधिकारियों का और समाज के प्रमुख व्यक्तियों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे उनके द्वारा छोड़े हुए कार्यो को पूरा कराने के लिए अविलम्ब कदम उठावें। वीर सेवामन्दिर में उनके नाम पर एक शोध संस्थान कायम करें और उनकी स्मृति मे एक विशाल स्मृति-ग्रन्थ निकाल करके अपनी कृतज्ञता प्रगट करें।

दिवंगत होने के कुछ समय पूर्व तक उनके पत्र मेरे पास आते रहे हैं। जिनमें सदा ही खोज-शोध प्रेरणा रही है। मुझे अत्यन्त दुःख है कि अन्तिम समय में उनके समीप नहीं रह सका—ऐसे जीवन पर्यन्त साहित्य सेवा करने वाले महारथी आचार्य श्री मुख्तार सा० को मेरी कोटि : कोटि श्रद्धाञ्जलि समर्पित है।

# अमर साहित्य-सेवी

**श्री पं० कैलाशचन्द सि० शास्त्री**

स्व० पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार एक आदर्श समाजसेवी और साहित्य सेवी थे। मैने जब से होस सम्हाला उनका नाम सुना। ऐसा प्रतीत होता है मानों उनका निर्माण सेवा के लिये ही हुआ था और वह भी जैन समाज और जैन साहित्य की।

जब समाज मे प्रचारक नही थे उन्होंने महासभा में उपदेशकी का भी कार्य किया। उसके पश्चात् कुछ समय तक महासभा के मुखपत्र जैन गजट की सम्पादकी भी की। यह उस समय की बात है जब समस्त दिगम्बर जैनो की एक मात्र सभा महासभा थी और बाबू पण्डित का भेद प्रगट नहीं हुआ था। महासभा के निर्माण मे और उसे प्रगति देने मे बाबू और पण्डित दोनो का समान योग रहा है दोनो ने ही कन्धे से कन्धा मिलाकर काम किया है। फलतः मुख्तार साहब ने भी प्रारम्भ में महासभा के द्वारा ही समाज सेवा में योगदान किया प्रतीत होता है।

सन् १९१० के लगभग खतौली मे जो दस्सों और बीसों के बीच मे ऐतिहासिक मुकदमा चला और उसमे स्व० पं० गोपालदास जी बरैया और मुख्तार साहब ने दस्सों के पक्ष में गवाही दी तथा बीसो की ओर से स्व० पं० न्याय दिवाकर पन्नालाल जी उपस्थित हुए। इस काण्ड ने उत्तर भारत के जैन समाज को उद्वेलित कर दिया, उसी प्रसंग से मुख्तार साहब ने जिन पूजाधिकार मीमासा नामक ट्रैक्ट लिखा। इस ट्रैक्ट से ही मुख्तार साहव की लोह लेखनी का आभास होता है तथा उनकी अध्ययन शीलता प्रकट होती है। इसके पश्चात् उनकी ग्रन्थ परीक्षा शीर्षक लेखमाला जैन हितैषी में क्रमश: प्रकट हुई। उनकी इन समीक्षाओं का या जिन पूजाधिकार मीमांसा का कोई उत्तर मेरे देखने में नहीं आया इसी से प्रकट है कि मुख्तार

---

**स्वतंत्र जैन :**

जैन जगत ने यह समाचार महान् खेद के साथ सुना कि जैन विद्वत् समाज के उदीयमान नक्षत्र, साहित्य महारथी, सुधारक, मीमांसक, विचारक, आलोचक, लेखक, पत्रकार, दार्शनिक विद्वान् पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार का ९२ वर्ष की आयु मे स्वर्गवास हो गया है।

आज उनका नश्वर देह हमारे समक्ष नही है, पर "यशः काय" के रूप मे आप सतत विद्यमान है। श्रद्धेय मुख्तार जी आज जैसे उच्च डिग्री होल्डर नही थे। पर उनका ज्ञान, उनका आलोडन, मन्थन, उनका अनुभव इतना विशाल था कि वे अनेक न्यायाचार्य, दर्शनाचार्य साहित्याचार्यो के जनक एव सृजक थे।

पूर्व जन्म के कुछ ऐसे सस्कार लेकर जन्मे थे कि आपके ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम इस रूप मे सुखद फलित हुआ कि आपने समाज मे एव देश मे साहित्य सेवा, साहित्य प्रचार, अनुसधान, गभीर विवेचना आदि कार्यो के द्वारा अमर हो गये। पूज्य मुख्तार जी निष्पक्ष एव प्रसग वश कटु समालोचक भी थे। अतएव शास्त्राधार से खरी कहने मे वे नही चूकते थे। उन जैसे मीमासक एवं समालोचक विद्वान् का अभाव सा हो गया।

पकड़ की कोई बात उनकी सूक्ष्म और पैनी दृष्टि से बच नहीं पाती थी। निर्भीकता एवं सत्यता के वे प्रतीक थे, पुरातत्त्व सम्बन्धी खोज में आपका सर्वप्रथम अग्रगामी द्रुतगति कदम है। जब आप किसी भी तथ्य को सामने लाते थे तब उसका अकाट्य एवं युक्ति सगत प्रमाणों के द्वारा खन्डन का मन्डन करते थे। तब विरोधी पक्ष का भी व्यक्ति आपका हो जाता था, फिर उसका यह साहस नही होता था कि मै दुबारा लिखू।

किसी भी विषय पर शोध निबंध लिखने वाला स्नातक पहिले मुख्तार जी से सम्मति और आशीर्वाद लेता था तब वह अपनी लेखनी चलाता था।

सच तो यह है कि श्रद्धेय मुख्तार जी स्वय एक जीती जागती सस्था थे, वे स्वयं वीर-सेवा-मन्दिर थे। उनकी लोह लेखनी द्वारा लिखित साहित्य उनकी प्रतिभा सम्पन्न विद्वत्ता का परिचायक है। 'मेरी भावना' आपकी अमर सार्वजनिक रचना है।

आपके द्वारा लिखित प्रकाशित साहित्य मैने पढ़ा है, इतनी उच्चकोटि के विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ मुझे कम ही देखने को मिले है।

आपके चरणोंमें लेखकको हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित है।

साहब की लेखनी उनका लेखन कितना प्रौढ़ और सप्रमाण होता था।

उत्तर तो कोई दे नहीं सका किन्तु मुख्तार साहब सुधारक शिरोमणि मान लिये गये और स्थिति पालक समाज से एक तरह से उनका सम्बन्ध विच्छेद जैसा हो गया। उसने उनको कभी नहीं सराहा।

सन् १६२३ में देहली पञ्चकल्याणक महोत्सव के अवसर पर बाबूदल महासभा से अलग हो गया और उसने दि० जैन परिषद् की स्थापना की। परिषद् सुधारकों की संस्था थी; किन्तु मुख्तार साहब का उसके साथ भी कोई सम्बन्ध नहीं था। एक तरह से मुख्तार साहब सामाजिक से अधिक साहित्यिक ही थे और उसी ओर उनकी रुचि तथाप्रवृत्ति बढती गई। किन्तु उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति भी सुधारक प्रवृत्ति से अछूती नहीं थी। उसमें भी वह ऐसे बिषयों पर लेखनी चलाते थे जो समाज के स्थिति पालक पक्ष के लिये ग्राह्य नही होता था जैसे 'गोत्र कर्माश्रित उच्चनीचता।' इसका फल यह हुआ कि मुख्तार साहब एक तरह से समाज से विलग जैसे हो गये। चूँकि उनका जीवन स्वावलम्बी था, समाजाश्रित नहीं था तथा उन्हे अपने लेखन और अध्ययन से भी अवकाश नही था अतः मुख्तार सा० ने भी उस विलगाव की उपेक्षा सी की।

१६३० में प्रथमवार मुख्तार साहब ने देहली में एक संस्था समन्तभद्राश्रम की स्थापना की और उससे 'अनेकान्त' नामक मासिक पत्र प्रकाशित किया उसी समय प्रथमवार मैं पत्र द्वारा मुख्तार सा० के परिचय में आया। उनकी योजना अद्भुत थी, उसे पढ़ कर मेरे जैसे साहित्याभिरुचि युवक का आकृष्ट होना स्वाभाविक था। ग्रीष्मावकाश में मैं बनारस से देहली गया और समन्तभद्राश्रम में ठहरा। तब भी वह अकेले ही काम में जुटे रहते थे। गर्मी के दिन थे। किन्तु उनके लिये गर्मी सर्दी और दिन रात सब बराबर थे। उस समय वहाँ डा० ए. एन. उपाध्ये भी आये थे। वह भी तभी कार्य क्षेत्रमें उतरे थे।

अनेकान्त के प्रारम्भिक वर्षों के अंक बहुमूल्य नवीन सामग्री से परिपूर्ण होते थे। मुख्तार साहब का श्रम उसके कण-कण में समाया रहता था। किन्तु समाज से सहयोग न मिलने के कारण समन्तभद्राश्रम देहली से उठा कर सरसावा चला गया और मुख्तार साहब ने सरसावा में ही स्वद्रव्य से वीर सेवा-मन्दिर के भवन का निर्माण कराया। वहाँ भी मै एक दो बार गया। मुख्तार साहब को मैने कभी हताश या निराश नहीं पाया। मेरे विचार से मुख्तार साहब का एक-मात्र कर्म में विश्वास था। वह किसी भी स्थिति में कर्मविरत नहीं हुए उन्होंने कभी भी इस ओर दृष्टि नहीं दी कि उनकी सेवा का मूल्यांकन समाज करता है या नहीं? क्योंकि उनकी सेवा मूल्यांकन के लिए नही थी, वह तो सेवा के लिए, आत्मसन्तोष के लिए थी। यदि ऐसा न हो तो क्या अपनी संस्थापित संस्था वीर सेवा मन्दिर से हट कर और अपने भतीजे के के घर में रह कर भी उसी तरह साहित्य के सर्जन मे तल्लीन रह सकते थे? उन्हें हमने कभी किसी से शिकवा करते नहीं सुना। कभी उन्होने यह नही कहा कि मैंने इतनी सेवा की किन्तु किसी ने कद्र नही की।

वह तो सबसे यही चाहते थे कि मेरी ही तरह सब लोग सेवा में जुटे रहें इसी से उनके पास कोई ठहरता नहीं था। विचारों में उदार होते हुए भी व्यवहार मे अनुदार थे। यह भी कह सकते हैं कि वह व्यवहार चतुर नहीं थे। यदि वह वीर सेवा मन्दिर के व्यवस्थापन कार्य से निरपेक्ष रह कर साहित्य सेवा में सलग्न रहते तो वीर सेवा मन्दिर की तथा स्वय उनकी ऐसी स्थिति न होती। उनका एक साहित्यिक परिवार होता जो उनके कार्य को प्रगति देता। उन्होंने जिस भावना से वीरसेवा मन्दिर की स्थापना की थी उनकी वह भावना भावना ही रही। उस भावना को चरितार्थ करने का प्रयास तो करना चाहिए। देहली में वीरसेवा मन्दिर बहुत अच्छे स्थान पर स्थित है उसे साहित्यिक प्रगति का केन्द्र बनाया जा सकता है। उसके भवन में मुख्तार साहब का एक तैल चित्र रहना चाहिये। अनेकान्त के मुख्य पृष्ठ पर उनका एक छोटा सा ब्लाक बराबर छपना चाहिए। मुख्तार सा० के जीवन में जो नहीं हो सका यदि वह उनके बाद भी हो सके तो उत्तम है। जो कुछ मालिन्य थे वह तो उनके साथ चले गये। उन सब को भुलाकर मुख्तार साहब ने जो कुछ किया अब उसे देखना चाहिए।

मुख्तार साहब मुख्तार साहब थे। उनके जैसा लेखनी का धनी और साहित्यसेवी होना दुर्लभ है।

# अनुसन्धान के आलोक-स्तम्भ

प्रो० प्रेमसुमन जैन, बीकानेर

श्रद्धेय पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार जैन समाज के उन कीर्ति-स्तम्भो में से है, जो समाज व देश को जगाने के लिये ही जन्मते है। मुख्तार जी का सम्पूर्ण जीवन जैन-साहित्य के अध्ययन-अनुसधान में ही व्यतीत हुआ। समाज के अधिकांश विद्वानों के वे प्रेरणास्रोत थे। पत्र-कारिता के क्षेत्र में उन्होने महत्वपूर्ण योगदान किया है। मेरा दुर्भाग्य है, मुझे उनके दर्शन प्राप्त करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। यद्यपि उनके गवेषणापूर्ण लेखों एवं ग्रन्थों का अवलोकन मैं मनन पूर्वक करता रहा हूँ। उनकी गवेषणात्मक निष्पक्ष दृष्टि ने मुझे अधिक प्रभावित किया है।

श्री मुख्तार जी में अनुसन्धान की प्रवृत्ति १९०७ में जैन गजट के सम्पादक होने के बाद प्रारम्भ हुई। इसी वर्ष में १ सितम्बर के अंक में प्रकाशित आपके लेख 'हर्ष समाचार' से अनुसन्धान के प्रति आप की बढती हुई अभिरुचि का पता चलता है। तथा ८ सितम्बर १९०७ के अक में सम्मेद शिखर तीर्थ के सम्बन्ध में लिखा गया आपका अग्रलेख इस प्रवृत्ति की पुष्टि करता है। 'जैनगजट' के सम्पादन-कार्य से जो समय वचता था, मुख्तार जी उसे जैन-साहित्य के गम्भीर अध्ययन मे लगाते थे। इस अध्ययन से यह फल हुआ कि भट्टारकों द्वारा जैनशास्त्रों में जो जैनधर्म के विरुद्ध बातें लिख दी गयी थी, उनका निराकरण करना मुख्तार जी ने प्रारम्भ कर दिया। केवल इतना ही नहीं, उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर एक मौलिक खोज यह भी की, कि जैन-शास्त्रों के प्रक्षिप्त अंशो के मूलस्रोत भी खोज निकाले। बाद में यही खोज 'ग्रन्थ-परीक्षा' नामक पुस्तक के चार भागों में प्रकाशित हुई।

मुख्तार जी ने जैन-साहित्य के अध्ययन और अनु-सन्धान के लिए मुख्तारगिरी को भी छोड़ दिया। एकचित्त होकर वे जैन-साहित्य की सेवा मे लग गये। १९१६ के लगभग आपने अपने गंभीर अध्मयन के आधार पर 'जैनाचार्यों तथा जैन तीर्थङ्करों में शासनभेद' के नाम से एक लेखमाला का प्रारम्भ किया, जिसमें आप ने यह प्रमाणित किया कि वीरशासन (जैनधर्म) का प्राप्त रूप एकान्त मौलिक नहीं है। उसमें बहुत कुछ मिश्रण हुआ है और संशोधन की आवश्यकता है। यद्यपि इसके विरुद्ध भी आवाजें उठायी गयी। लेकिन श्री मुख्तार जी अपनी स्थापनाओ पर अटल रहे और शान्तभाव से अध्ययन करते रहे। आप अपनी स्थापना के प्रति विश्वस्त रहते थे, क्योंकि कोई बात विना प्रमाण के नही लिखते थे। श्री नाथूराम जी प्रेमी ने आपकी प्रामाणिकता के विषय में लिखा है—'आप बड़े ही विचारशील लेखक है। आप की कलम से कोई कच्ची बात नहीं निकलती। जो लिखते है वह सप्रमाण और सुनिश्चित।'

'ग्रन्थपरीक्षा' का तीसरा भाग जब १९२८ में प्रका-शित हुआ तो मुख्तार जी के गहन अध्ययन एवं प्रमा-णिकता से अधिकाधिक लोग परिचित हुए। जो लोग जैन धर्म को प्रक्षेपो से दूषित कर रहे थे, सत्यता प्रगट होते ही शान्त हो गये। श्रीमान् प्रेमी जी ने उक्त ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है—'मै नही जानता हूँ कि पिछले कई सौ वर्षों से किसी भी जैन विद्वान ने कोई इस प्रकार का समा-लोचक ग्रन्थ इतने परिश्रम से लिखा होगा··· ·····इस प्रकार के परीक्षा लेख जैन साहित्य मे सब से पहिले है·········जाच करने का यह ढंग विल्कुल नया है और इसने जैन धर्म का तुलनात्मक पद्धति से अध्ययन करने वालो के लिए एक नया मार्ग खोल दिया है।'

श्री मुख्तार जी की इस सूक्ष्म और मौलिक दृष्टि से मै अभी परिचित हुआ जब किसी वसुनन्दि नाम के आचार्य द्वारा लिखित प्राकृत रचना 'तत्व-विचार' का परीक्षण कर रहा था। यह ग्रन्थ ३०० गाथाओ का है। आचार सम्बन्धी जैन धर्म के प्रमुख तत्त्वों का इसमें सुन्दर

वर्णन है। श्री मुख्तार जी ने बम्बई प्रवास में इसकी पाण्डुलिपि देखी थी। वहां से आकर आप ने अनेकान्त में एक लेख लिखा, जिसमें यह सम्भावना व्यक्त की कि 'तत्त्व विचार' मौलिक ग्रन्थ प्रतीत नही होता। इसे संग्रह ग्रन्थ होना चाहिए[1]।' मुख्तार जी की इस सूचना ने मुझे सतर्क कर दिया। और जब मैंने सूक्ष्म दृष्टि से ग्रन्थ का परीक्षण किया तो सचमुच 'तत्त्वविचार' की लगभग २५० गाथायें अन्यान्य २०-२२ प्राकृत के ग्रन्थों से सगृहीत की गयी हैं, जिनमें कुछ श्वेताम्बर ग्रन्थ भी हैं[2]। श्री मुख्तार सा० के 'पुरातन जैन वाक्य सूची' ग्रन्थ से इस सम्बन्ध मे मुझे पर्याप्त सहायता मिली। श्री मुख्तार सा० का यह प्रयत्न अपने ढग का अकेला है। वे कितने परिश्रमी थे यह जानने के लिए अकेला यही एक ग्रन्थ पर्याप्त है।

अनुसन्धान के क्षेत्र मे श्री मुख्तार सा० का दूसरा प्रशासनीय कार्य जैनाचार्यों के विषय में खोजबीन करने का है। पात्र केसरी और विद्यानन्द की पृथकता आप के प्रयत्न से ही मान्य हो सकी। पंचाध्यायी के कर्त्ता की आपने खोज की। तथा महान् आचार्य स्वामी समन्तभद्र के इतिहास एव साहित्य के विषय में तो आपने अपना जीवन ही लगा दिया है। श्री मुख्तार सा० की जैनशासन के प्रति इस सेवा को देखते हुए पं० राजेन्द्रकुमार जी का कथन यथार्थ है—'मुख्तार साहिब यह काम न करते तो दिगम्बर-परम्परा ही अस्त-व्यस्त हो जाती। इस इस कार्य के कारण मैं उन्हें दिगम्बर परम्परा का संरक्षक मानता हूँ।' इसी तरह महावीर भगवान् के समय आदि के सम्बन्ध मे जो मतभेद एव उलझने उपस्थित थीं उनका अत्यन्त गम्भीर अध्ययन करके आपने सर्वमान्य समन्वय किया और वीर शासन-जयन्ती की खोज तो आपके जीवन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है।

श्री मुख्तार साहब ने एक और महत्वपूर्ण कार्य का सूत्रपात किया वह है, विलुप्त प्राय: ग्रन्थों का सन्दर्भों के आधार पर पुनराकलन। आपने विशाल जैन-साहित्य मे लिखे उल्लेखों के आधार पर ऐसे बहुत से अप्राप्य ग्रन्थो की एक सूची तैयार की थी। कुछ ग्रन्थों की प्राप्ति भी उन्हें हुई थी। किन्तु अधिकांश कार्य यह अधूरा ही पड़ा है। इसके लिए गहन अध्ययन एव अथक परिश्रम की आवश्यकता है। फिर भी मुख्तार साहब के इस कार्य को पूरा करने से मैं समझता हूँ उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि ही अर्पित नही होगी, अपितु जैन-साहित्य की बहुत बडी सेवा भी।

श्री मुख्तार साहब की अनुसन्धान प्रवृत्ति के विकास का फल 'अनेकान्त' है। अनेकान्त के प्रकाशन से केवल जैन-साहित्य ही प्रकाश मे नही आया, बल्कि जैन विद्वानो की एक लम्बी परम्परा प्रारम्भ हुई है। मुख्तार सा० के सम्पादकीय टिप्पणों से कोई अच्छा से अच्छा लेखक भी नही छूट सका। उन्होने हमेशा लेख को देखा है, लेखको को नही। शायद इसी का यह परिणाम है, लेखन मे दिनोंदिन प्रमाणिकता की वृद्धि होती गयी। और कई लेखक मुख्तार सा० की इस कृपा से पाठको मे उनसे भी ऊँचा स्थान प्राप्त कर सके[3]।

इस तरह स्वर्गीय श्री मुख्तार सा० की जैन-साहित्य के अनुसन्धान के क्षेत्र मे अपूर्व देन है। जीवन के अन्तिम दिनों में भी वे उसी उत्साह और लगन के साथ साहित्य-साधना मे रत रहे। वे अनुसन्धान के एक ऐसे आलोचक-स्तम्भ थे, जिससे निरन्तर अनेक दीपक प्रज्वलित होते रहे है। मुख्तार सा० ने हमेशा सब को गति प्रदान की है। ऐसा लगता है, अपने अन्तिम दिनों मे भी वे इस स्वभाव को नहीं भूले। जब अपनी अन्तिम सांसों के कारण गतिरोध हो रहा था तो मुख्तार सा० ने अपनी सासें उन्हें प्रदान कर दी। समय भी उनसे उपकृत हो गया। ऐसे महान तपस्वी के चरणों में मुझ अकिंचन के अनन्त प्रणाम।

---

१. अनेकान्त, वर्ष प्रथम, किरण ५, पृ० २७५

२. इस विषयक लेखक का एक लेख अनेकान्त की अगलीकिरण में प्रकाशित हो रहा है।

३. जैन जागरण के अग्रदूत' में प्रकाशित परिचय के आधार पर।

# जैन समाज के भीष्मपितामह

**डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री एम. ए. पी-एच. डी.**

उन्नीसवी शताब्दी का वह अरुण युग जिसमें सभ्यता और संस्कृत ही नही शिक्षा और संस्कार पश्चिमोदय के प्रभात मे इस देश के जन-मानस पर अकित हो रहे थे उसी युग मे भारतीय श्रमण सस्कृति से आप्यायित, पूर्व जन्म के सुसंस्कारों से समन्वित बालक 'किशोर' ने जैन कुल मे जन्म लिया। बचपन से ही उसकी प्रतिभा तथा सुसंस्कारों का विकास हो चला था, यह उनके जीवन की विविध घटनाओ से प्रमाणित होता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का वास्तविक उन्मेष सघर्षो के बीच होता है। जिसके जीवन मे और जिस समाज मे सघर्ष न हो उसे मृतप्राय समझना चाहिए। जुगलकिशोर मुख्तार के रूप मे जैन समाज को एक ऐसा ही व्यक्तित्व मिला था जो जन-जीवन को झकझोर कर उसे वास्तविक रूप मे ला देना चाहता था। बाबू सूरजभानु वकील, अर्जुनलाल जी सेठी और जुगलकिशोर जी ऐसे ही परम्परा के प्रवर्तक थे, जिसे आज की भाषा मे समाजसुधारक कहते है। वास्तव में इस परम्परा का प्रवर्तक जैन समाज के अनुपम विद्वान् गुरुवर्य्य पं० गोपालदास जी वरैया ने किया था। समय-समय पर इन विद्वानो के लेखों ने तथा वक्तृताओ ने जैन समाज में जागृति का शंखनाद फूका, इसमे कोई सन्देह नहीं है। पं० मुख्तार जी इसी पीढ़ी के विद्वानों मे से थे। किन्तु अपनी पीढ़ी में उन्होंने सबसे अधिक कार्य किया। क्या इतिहास, क्या दर्शन, क्या साहित्य और क्या धर्म-सस्कृति तथा राष्ट्रीयता सभी क्षेत्रों में मुख्तार जी की प्रवृत्तियां सलग्न रही हैं। उन समस्त प्रवृत्तियों के कार्य-कलापों के मध्य 'युगवीर' का प्रबल व्यक्तित्व सलक्षित होता है।

असाधारण व्यक्तित्व की भांति पं० मुख्तार जी का कृतित्व भी असाधारण रहा है। इसलिए वे जैन समाज में भीष्मपितामह के तुल्य थे, जिसने समाज की झंझावातों को सदा अकेले ही झेल कर राष्ट्र का पथ प्रशस्त किया। वे सघर्षो से अकेले जूझते रहे। और सदा समाज को कुछ न कुछ नही अपितु बहुत ही अमूल्य देते रहे। उनके जीवन मे अवरोधक बहुत रहे, किन्तु उनकी उन्होने कभी चिन्ता नही की। उनकी जीवनव्यापिनी चिन्ता एक ही रही और वह थी साहित्य की गवेषणा तथा जैनसिद्धान्त की प्रतिष्ठा। उनका जीवन ऐसे ही पार्थ धनुर्धरो के लिए समर्पित था। वे आसन्न काल तक कभी इस भीष्म व्रत से विचलित नही हुए, सदा अटल ही रहे। उनकी जीवन-साधना जितनी सरल और निश्छल थी उतना महान् उनका व्यक्तित्व भी। युग-युगों के अनुभवो तथा कर्म-निरत साधना मे सपृक्त हो उन्होने समाज को जो दिया वह अपरिमेय तथा अमूल्य है। उन्होंने साहित्य सम्बन्धी जितना कार्य अकेले किया उतना एक सस्था भी सम्भवतः न कर पाती। वीरसेवा मन्दिर के प्रकाशनो से स्पष्ट है कि उस महान् साहित्यकार ने कितना अधिक कार्य किया। कठिन से कठिन तथा अप्रकाशित ग्रन्थो को सरल भाषा मे प्रकाशित कर जनसुलभ बनाने मे आपकी कर्मठ साधना तथा कठोर श्रम एव विद्वत्ता श्लाघनीय है। इतना ही नही, मौलिक साहित्य का सर्जन कर आपने समाज को एक चेतना तथा जागृति प्रदान की। 'मेरी भावना' तो एक राष्ट्रीय गौरव की कृति बन गई है। अकेली इस रचना ने ही आपको पर्याप्त यश तथा लोकाश्रय प्रदान किया। इसी प्रकार साहित्य के अनाघ्रात क्षेत्र मे 'जैनग्रन्थ परीक्षा' और चिन्तन-मनन के साथ प्रकाशित 'जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश' जैसे ग्रन्थ लिख कर आपने अनुसन्धान जगत् मे महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

**सम्पादन तथा अनुवाद—**

'जैन गजट', 'जैन हितैषी' तथा 'अनेकान्त' जैसे

समाज के मुख्यपत्रों के सम्यक् सम्पादन के अतिरिक्त आप ने कई ग्रन्थों का सम्पादन तथा हिन्दी अनुवाद भी किया है। ये सभी ग्रन्थ सस्कृत से हिन्दी में अनूदित किए गए है। इनके नाम इस प्रकार है :—

(१) आचार्य प्रभाचन्द्र का तत्त्वार्थसूत्र, (२) युक्त्यनुशासन, (३) स्वयम्भूस्तोत्र, (४) योगसार प्राभृत (५) समीचीन धर्मशास्त्र, (६) अध्यात्म-रहस्य, (७) (७) अनित्यभावना, (८) तत्वानुशासन, (९) देवागम (आप्त-मीमासा), (१०) सिद्धिसोपान (आ० पूज्यपाद विरचित सिद्धभक्ति का भावात्मक हिन्दी पद्यानुवाद), (११) सत्साधुस्मरणमंगलपाठ (संकलन तथा हिन्दी अनुवाद)।

सम्पादन तथा अनुवाद में लेखक ने मूल भाव को बनाये रखने का पूरा यत्न किया है और यही उनकी मुख्य विशेषता है। मूल लेखक के भावों को हृदयगम कर उसके भावों को सरल भाषा में प्रकट करना मुख्तारजी का ही कार्य है। 'युक्त्यनुशासन' जैसे जटिल, दार्शनिक तथा महान् ग्रन्थ का प्रामाणिकता के साथ हिन्दी अनुवाद कर यथार्थ मर्म को प्रकाशित करना मुख्तारश्री की प्रतिभा का ही कार्य है। इसी प्रकार 'देवागम' तथा अध्यात्म-रहस्य' जैसे कठिन ग्रन्थों की गुत्थिया सुलझा कर हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने की सामर्थ्य आप मे ही लक्षित हुई है। विस्तार से यहां पर सम्पादन तथा हिन्दी अनुवाद की विवेचना न करना इतना कहना ही पर्याप्त समझता हू कि सम्पादन तथा अनुवाद-कार्य के क्षेत्र मे आप जैन समाज के विरले ही विद्वान् हैं। दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् पं० महेन्द्र कुमार जी न्यायाचार्य के शब्दो मे— 'युक्त्यनुशासन जैसे जटिल और सारगर्भ महान् ग्रन्थ का सुन्दरतम अनुवाद समन्तभद्र के अनन्यनिष्ठ भक्त साहित्य-तपस्वी प० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने जिस अकल्पनीय सरलता से प्रस्तुत किया है वह न्याय-विद्या के अभ्यासियों के लिए आलोक देगा। सामान्य-विशेष, युतसिद्धि-अयुत-सिद्धी, क्षणभंगवाद, सतान आदि पारिभाषिक दर्शन शब्दों का प्रामाणिकता से भावार्थ दिया है। आचार्य जुगल-किशोरजी मुख्तार की यह एकान्त साहित्य-साधना आज के मोल-तोल वाले युग को ही महंगी नहीं मालूम होगी, जब वह थोडा-सा भी अन्तर्मुख होकर इस तपस्वी की निष्ठा का अनुवाद की पंक्ति-पंक्ति पर दर्शन करेगा। स्पष्ट ही लेखक की साहित्य-साधना महान् है। इस साहित्य-देवता की सभी विशेषताओं पर प्रकाश डालना सभव भी नहीं है। इस छोटे से निबन्ध में कितना लिखा जा सकता है? किन्तु साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आपका जितना साहित्य-सृजन का कार्य है वह अत्यन्त श्रमसाध्य, निष्ठा तथा लगन से परिपूर्ण है। सम्पादन तथा अनुवाद-जगत में ऐसी रचनाए अत्यन्त अल्प है। इनके महत्व को वही समझ सकता है जो ऐसे दुरुह ग्रन्थो का अनुवाद करने बैठा हो और अपनी सच्चाई तथा ईमानदारी के कारण सफल न हो सका हो। इससे अधिक इस सबंध में और क्या कहा जा सकता है? वास्तविकता यही है कि विद्वानों के वास्तविक महत्व का मूल्याकन उस विषय के विशेषज्ञ विद्वान् ही कर सकते है।

मुख्तारश्री बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कविता, लेख, निबन्ध तथा समाजसुधारक से सबंधित सामयिक साहित्य पर सफल तथा सरल रचनाएं प्रस्तुत कर उन्होंने जैन समाज में अमिट स्थान बना लिया है। मैं समझता हूं कि अभी तक उनके लगभग पाच सौ से भी अधिक निबन्ध प्रकाशित हो चुके है और लगभग दो दर्जन पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं। उन सबका विवेचन यहां अपेक्षित नही है।

वस्तुत: जैन समाज का एक महान् व्यक्तित्व मुख्तारश्री जी की छाया के साथ उठ गया, इसमें कोई संदेह नही। आश्चर्य तो यह है कि उन्होंने जीवन की अन्तिम सास तक लेखन-पठन कार्यों में व्यवधान नही आने दिया। बाहर से कोई न कोई महत्वपूर्ण ग्रन्थ मगवाकर उसका श्रवण-मनन-चिन्तन करना उनके जीवन का सहज व्यापर हो गया था। समाज ऐसे धनी-मानी, तप:पूत साहित्यसेवी और बिद्वद्वर तथा जैनसमाज के भीष्मपितामह के निधन पर अपनी भावभीनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ। ●

# मुख्तार साहब का व्यक्तित्व और कृतित्व

पं० परमानन्द शास्त्री

आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार इस युग के साहित्य तपस्वी और जैन साहित्य और इतिहास के वयोवृद्ध विद्वान लेखक थे। पक्के सुधारक, स्वाभिमानी, अपनी बात पर अडिग, प्रतिभा के धनी और समीक्षक थे। उनकी प्रतिभा तर्क की कसौटी पर कस कर ही किसी बात को स्वीकार करती थी। वह जो कुछ लिखते निडर होकर लिखते, दूसरे के लेखों मे कमी या विरुद्धता पाते तो उसका निराकरण करते, उनकी भाषा कुछ कठोर होती, तो भी वे उसे सरल नही करते। हा, वे जो कुछ लिखते थे उसे बराबर सोच समझ कर लिखते उसमे विलम्ब भले ही हो जाता, पर वह सम्बद्ध विचारधारा से प्रतिकूल नही होता था। मुझे उनके साथ सरसावा और दिल्ली वीरसेवामन्दिर में काम करने का वर्षों अवसर मिला है। जो लेख वे लिखना चाहते थे उस पर वे पहले चर्चा कर लेते थे और फिर लिखने बैठते। लेख पूरा होने पर या कभी-कभी तो अधूरा लेख ही सुनने व पढ़ने को दे देते। उसके सम्बन्ध मे वे जो कुछ पूँछते व प्रमाण माँगते तो यथा सभव मै उन्हे तलाश कर देता था कभी-कभी वे रात को दो बजे लिखने बैठ जाते, तब मुझे आवाज देकर बुलाते, और मैं आकर उन्हे यथेष्ट ग्रन्थ या प्रमाण निकाल कर दे देता। वे लिखना प्रारम्म करते और उसे ही पूरा करने मे ही लगे रहते। उठते बैठते सदा उसी का विचार करते रहते थे। उसके पूरा होने पर ही वे विराम लेते। फिर मुझे उसकी कापी करने को देते। कापी होने पर उसे छपवाते। मै जब कोई लेख लिखता तो उन्हें जरूर सुनाता और वे जो कुछ निर्देश करते उसके अनुसार ही उसे पूरा कर उन्हे दे देता था। यह क्रम सरसावा में चलता रहा, दिल्ली आने पर कुछ वर्ष यहाँ भी चला। इससे लेखकी प्रमाणिकता हो जाती है और लेख में रही सही अशुद्धियां भी नहीं रहती। यद्यपि मुख्तार सा० की प्रकृति मे नीरसता थी, और वह कभी कभी कठोरता मे भी परिणत हो जाती थी। कषाय का आवेश भी उनमे झुझलाहट उत्पन्न करता, पर वे उसे बाहर प्रकट नही करते थे। अवसर पर उसका प्रभाव अवश्य कार्य करता था। वे इतिहास की दृष्टि मे असम्प्रदायिक थे। उन्हें सम्प्रदाय से इतना व्यामोह नही था, वे सत्यता को पसन्द करते थे। प्रमाण व युक्ति से जो बात सिद्ध होती थी उसे वे कभी भी बदलने को तैयार नही होते थे। अनेक अवसरों पर वे इस बात मे खरे थे। प्रमाण विरुद्ध बात को कभी स्वीकार नही करते थे और न सुनी सुनाई बातो पर आस्था ही करते थे। जैसे कोई दार्शनिक वा वकील अनेक तरह की दलीले देकर मुकदमा या विवाद मे जीतने या जिताने का प्रयत्न करता है वैसे ही मुख्तार साहब भी प्रमाणो के आधार पर अपना अभिमत व्यक्त करते, अथवा लेख का निष्कर्ष निकालते थे। इसीलिये उनके लेख विद्वत् जगत मे ग्राह्य और प्रमाण रूप में माने जाते है। वे अपनी सूक्ष्म विचारधारा एव आलोचना और समीक्षात्मक दृष्टि से पदार्थ पर गहरा चिन्तन तथा मनन करते थे। उनके समीक्षा ग्रन्थ भी इसी बात के द्योतक हैं। भट्टारकों की अधार्मिक प्रवृत्तियो और आम्नाय विरुद्ध ग्रन्थ चर्चाओं पर उन्होंने जो समीक्षाएं लिखी है वे जैन समाज मे प्रमाण रूप से मानी जाती हैं, और अभी समाज में उनकी आवश्यकता बनी हुई है। यद्यपि वे अप्राप्य हैं, किन्तु भविष्य की पीढ़ी के लिये वे अधिक प्रमाण भूत होंगी। भविष्य के विचारकों को वे पथ प्रदर्शन का काम अवश्य करेगी। समीक्षा ग्रन्थ लिखकर उन्होंने विद्वानों के लिये आलोचना का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। अब कोई भी विद्वान निर्भय होकर आर्ष मार्ग से विरुद्ध ग्रन्थों की समीक्षा कर सकता है।

आपने कभी कोई लेख झट-पट नही लिखा। सम्मति तर्क के कर्ता सिद्धसेन दिवाकर पर जो 'सम्मतिसूत्र और सिद्धसेन' नामका निबन्ध मुख्तार सा० नेलिखा है और जो अनेकान्त वर्ष ९ की ११वीं १२वी किरण में प्रकाशित हुआ है। वह कितना युक्ति पुरस्सर है इसे बतलाने की आवश्यकता नही, पाठक उसे पढकर स्वय अनुभव कर सकते है। उसमे जो युक्तिया दी गई है, उनका उत्तर आज तक भी नही हुआ। खींचा तानी की जा सकती है, पर निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने पर मुख्तार साहब का लिखना युक्ति संगत और प्रमाण भूत है। यह स्वय अनुभव में आ जाता है, उसमे तथ्यों को तोड़ा मरोड़ा नही गया है प्रत्युत वास्तविक तथ्यों को देने का उपक्रम किया गया है। उनकी समीक्षात्मक दृष्टि बडी पैनी और तर्कशालिनी है। समीक्षा लेखो के अतिरिक्त शोध-खोज के लेख भी उनके महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिये 'स्वामी पात्र केसरी और विद्यानन्द' वाला लेख कितना विचार पूर्ण और नवीन तथ्यों को प्रकाश में लाने वाला है, उसमें उन दोनों को एक समझने वाली भ्रान्ति का उन्मूलन कर वस्तु स्थिति को स्पष्ट किया गया है। इसी तरह 'भगवान महावीर और उनका समय' वाला लेख भी सम्बद्ध और प्रामाणिक है, यद्यपि उनके लेख कुछ विस्तृत है, पर वे रोचक और वस्तुस्थिति के यथार्थ निदर्शक है। इसी तरह श्वेताम्बर तत्त्वार्थसूत्र और उसके भाष्य की जाच, तत्त्वार्थाधिगम सूत्र की एक सटिप्पण प्रति, समन्तभद्र का मुनि जीवन और आपत्काल समन्तभद्र का समय और डा० के० बी० पाठक, सर्वार्थसिद्धि पर समन्तभद्र का प्रभाव, जैन तीर्थकरो और जैनाचार्यो का शासन-भेद, रत्नकरण्ड के कर्तृत्व विषय मे मेरा विचार और निर्णय आदि लेख भी वस्तुतत्त्व के निदर्शक है। और भी अनेक लेख है, जो उनकी शोध और समीक्षात्मक दृष्टि के जनक है। लेखों की भाषा भी प्रौढ़ सम्बद्ध और स्पष्ट है।

उपासना सम्बन्धी लेख भी उनके कम महत्वपूर्ण नही है, वे भक्ति योग पर अच्छा प्रकाश डालते हैं, और निष्काम भक्ति की महत्ता के हार्द को प्रस्फुटित करते है। भक्तिपरक निबन्धों में 'उपासनातत्त्व, उपासना का ढग भक्तियोग रहस्य, वीतराग की पूजा क्यों ? और वीतराग से प्रार्थना क्यो ? है, जिनमें भक्ति के स्वरूप का सुन्दर विवेचन किया गया है। और निष्काम भक्ति से होने वाले सुखद परिणाम का अच्छा चित्रण किया है। उन्होने सिद्धि को प्राप्त शुद्धात्माओं की भक्ति द्वारा आत्मोत्कर्ष साधने का नाम 'भक्तियोग' अथवा 'भक्तिमार्ग, बतलाया है। वह यथार्थ है, पूजा, भक्ति, उपासना, आराधना, स्तुति, प्रार्थना, वन्दना और श्रद्धा सब उसी के नामान्तर है। अन्तर्दृष्टि पुरुषो के द्वारा आत्म-गुणो के विकास को लक्ष्य में रखकर जो गुणानुराग रूप भक्ति की जाती है वही आत्मोत्कर्ष की साधक होती है। लौकिक लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा, यश, भय और रूढि आदि के वश होकर जो भक्ति की जाती है उसे प्रशस्त अध्यवसाय की साधक नही कहा जा सकता, और न उससे संचित पापों का नाश, या आत्म-गुणों का विकास ही हो सकता है। स्वामी समन्तभद्र जैसे महान् दार्शनिक आद्य स्तुतिकार ने भी परमात्मा की स्तुति रूप भक्ति को कुशल परिणाम की हेतु बतलाकर उसके द्वारा श्रेयोमार्ग को सुलभ और स्वाधीन बतलाया है। इससे स्पष्ट है कि वीतराग परमात्मा की यथार्थ भक्ति केवल परिणामों की कुशलता की ही सूचक नही प्रत्युत आत्म-सिद्धि की सोपान है—घातिकर्म का विनाश कर निरंजन भाव की साधिका है। मुख्तार सा० ने जो कुछ लिखा वह आचार्यों द्वारा प्रतिपादित परम्परा से लेकर ही लिखा है। उन्होंने उसमे अपनी तरफ से कुछ भी मिलाने का प्रयत्न नही किया; किन्तु उसके भाव को अपने शब्दो एवं भावों को भाषा सौष्ठव के साथ प्रकट किया है।

आप के सामाजिक लेख क्रान्ति के जनक है। आप के उन लेखों से जैन समाज मे क्रान्ति की धारा बह चली। उनसे समाज मे क्रान्ति तो जरूर हुई किन्तु वह अस्थायी रही। सामाजिक लेखो में 'जैनियो मे दया का अभाव', 'जैनियों का अत्याचार', नौकरो से पूजा कराना, 'जैनी कौन हो सकता है' जाति पचायतो का दण्ड विधान जाति आचार्य भेद पर अमित गति, विवाह समुद्देश आदि लेख समाज में जागृति लाने वाले हैं। इन लेखों में उस समय की कुत्सित प्रवृत्तियो की आलोचना करते हुए समाज में नवजीवन लाने के लिए आडम्बर युक्त प्रवृत्तियों को अनु-

चित बतलाया, तथा यह भी लिखा कि हृदय की शुद्धि के बिना बाह्य प्रवृत्तियाँ मिथ्या है, निस्सार है, उनका जीवन में कुछ भी उपयोग नही।

**पत्र सम्पादक**

मुख्तार सा० सन् १९०७ मे 'जैन गजट' के सम्पादक बनाये गए। उस समय के आप के सम्पादकीय लेख देखने से पता चलता है कि उस समय आप में लेखन कला और सम्पादन कला का विकास हो रहा था। उसके बाद वे जैन हितैषी के सम्पादक बनाये गये। उस समय आप की विचारधारा प्रौढ़ और लेखो की भाषा भी परिमार्जित तथा विचारों मे गहनता और ऐतिहासिकता आ गई थी। उस समय आप ने 'पुरानी बातों की खोज' शीर्षक के नाम से अनेक लेख लिखे। और सन् १९२९ मे आप ने दिल्ली के करौलबाग मे 'समन्तभद्राश्रम' की स्थापना की और अनेकान्त पत्र को जन्म देकर उसका सम्पादन प्रकाशन किया। आप की सम्पादन कला निराली है, वह अपनी बहुत कुछ विशेषता रखती है। अनेकान्त के प्रथम वर्ष में प्रकाशित आपके लेख ऐतिहासिक दृष्टि से वस्तुतत्त्व के विवेचक और भूल-भ्रान्तियो के उन्मूलक थे। उस समय आपकी ऐतिहासिक विचारधारा प्रौढ बन गई थी। अनेकान्त मैं आपके अनेक शोधपूर्ण लेख प्रकाशित हुए, कितने ही लेख समीक्षात्मक उत्तरात्मक दार्शनिक और विचारात्मक लिखे गये। आपके यह सब लेख पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके है। पाठको को उनका अध्ययन कर अपने ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिए।

**इतिहास लेखक**

मुख्तार साहब ने आचार्य समन्तभद्र का इतिहास लिखा, जो पं० नाथूराम जी प्रेमी बम्बई को समर्पित किया गया था और जिसका प्रकाशन सन् १९२५ मे हुआ था। सन् १९२५ से पहले किसी भी जैन विद्वान ने किसी आचार्यके सम्बन्धमे ऐसा खोजपूर्ण इतिहास ग्रन्थ लिखा हो, यह मुझे ज्ञात नही जैसा कि मुख्तार सा० ने स्वामी समन्तभद्र का इतिहास ग्रन्थ लिखा। मुख्तार सा० को रत्न करण्डश्रावकाचार की प्रस्तावना और समन्तभद्र के इतिहास को लिखने मे पूरे दो वर्ष का समय लगा। प्रस्तावना और इतिहास दोनों शोधपूर्ण है। उसके लिये मुख्तार सा० ने अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया। दिल्लीकी आर्किलाजिकल डिपार्टमेन्ट की लायब्रेरी से एपिग्राफिया इडिका और कर्णाटिका, अनेक जनरल और कनिघम की रिपोर्ट आदि पुरातत्त्व-विषयक ग्रन्थों का आलोडन कर अनेक उपयोगी नोट्स लिये और सरसावा में बैठकर बडे भारी परिश्रम से समन्तभद्र का इतिहास लिखा। इसमे लेखक ने आचार्य समन्तभद्र के मुनि जीवन पर अच्छा प्रकाश डाला। भस्मक् व्याधि के समय आपत्काल मे उन्होंने अपनी साधु चर्या का किस कठोरता और दृढता से पालन किया। और रोगोपशान्ति के बाद जैन शासन की सर्वोदयी धारा को कैसे प्रवाहित किया? और भगवान महावीर के शासन की हजार गुणी वृद्धि की, आदि का सविस्तृत वर्णन है। साथ में उनकी महत्वपूर्ण कृतियों का भी परिचय कराते हुए उनके समयादि पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। आचार्य समन्तभद्र का समय विक्रम की तीसरी-चौथी शताब्दी है। इस इतिहास के प्रकाशित होने के बाद भी वे उनके सम्बन्ध मे अन्वेषण करते हुए लिखते रहे है। समन्तभद्र पर उनकी बडी आस्था जो थी। समन्तभद्र का यह इतिहास ग्रंथ अप्राप्य है। अतः इसका पुनः प्रकाशन होना चाहिये, और परिशिष्ट मे समन्तभद्र के संबन्ध मे जो सामग्री प्रकाश मे आई है उसे भी यथा स्थान देना चाहिये।

**व्यक्तित्व**

मुख्तार सा० का व्यक्तित्व महान है, उनमे सहिष्णुता और कार्य क्षमता अधिक है। वे श्रम करने मे जितने दक्ष और उत्साही थे, विरोधियो के विरोध सहने या पचाने मे भी उतने ही सक्षम थे। सन् १९१० मे खतौली के दस्सो और बीसों के पूजाधिकार-विषयक ऐतिहासिक मुकदमे मे आपने और गुरुवर्य्य गोपालदास जी वरैया ने दस्सों की ओर से गवाही दी थी, तब आप स्थिति पालको के रोष के भाजन बनें, तथा धर्म विरोधी घोषित किये गये और जाति वहिष्कार की धमकी के पात्र हुए। उस समय आपने जिन पूजाधिकार मीमांसा नाम की एक पुस्तक लिखी थी, जिसमे जिन पूजा, पूजक और उसका अधिकार और फल पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। जहाँ वे प्रबल सुधारक थे, वहाँ कर्मठ अध्यव-

सायी भी थे। और अपने विचारों में चट्टान की तरह अडिग रहने वाले थे। सन् १९१७ में जब ग्रन्थ परीक्षा के दो भाग प्रकाशित हुए, इनमे से प्रथम भाग में उमास्वामी श्रावकाचार, कुन्द-कुन्द श्रावकाचार, और जिनसेन त्रिवर्णाचार इन तीन ग्रन्थों की परीक्षा की गई है। और दूसरे भाग में भद्रबाहुसहिता की परीक्षा की गई है, इसमें ग्रन्थ के अन्तरंग परीक्षण के साथ, प्रत्येक अध्याय का वर्ण्य विषय, तुलनात्मक अध्ययन और ग्रन्थ में असम्बद्ध, अव्यवस्थित तथा विरोधी तथ्यों का स्पष्टीकरण किया गया है। इसमे लेखक की तटस्थ वृत्ति और विषय का प्रतिपादन श्लाघनीय है। •

ग्रन्थ परीक्षा तृतीय भाग में जो सन् १९२१ में प्रकाशित हुआ है। इसमें भट्टारक सोमसेन के त्रिवर्णाचार, धर्म परीक्षा, अकलक प्रतिष्ठा पाठ और पूज्यपाद उपासकाचार की परीक्षा अंकित है। सोमसेन द्वारा इस त्रिवर्णाचार में वैदिक संस्कृति के हारीत पाराशर और मनु आदि विद्वानों के ग्रन्थों के अनेक पद्य ज्यों के त्यो उठाकर रक्खे गये है। मुख्तार सा० के गम्भीर अध्ययन ने ग्रन्थ की अप्रामाणिकता पर यथेष्ट प्रकाश डाला है। भट्टारक सोमसेन ने जैन संस्कृति के आचार मार्ग को कलंकित किया था। मुख्तार सा० ने ग्रन्थ-परीक्षा द्वारा उस कलक को धोकर जैन संस्कृति को पुनः समुज्वल किया। उनकी ग्रन्थ परीक्षण की यह स्वतन्त्र विचारधारा विद्वानों के द्वारा अनुकरणीय है। ग्रन्थ परीक्षा का चतुर्थ भाग सन् १९३४ में प्रकाशित हुआ है। इसमें सूर्य प्रकाश ग्रन्थ का परीक्षण किया गया है। जिसमें आर्षविरुद्ध एवं असंबद्ध बातों का दिग्दर्शन कराते हुए तथा अनुवाद सम्बन्धी त्रुटियों का उद्घाटन करते हुए उसे अप्रामाणिक ठहराया है। इस तरह मुख्तार साहब के ये चारों परीक्षा ग्रन्थ महत्वपूर्ण कृति है।

इन परीक्षा ग्रन्थों के प्रकाशन के समय जैन समाज में जो बवडर उठा, उसमें मुख्तार सा० को धर्म-विघातक बतलाया गया, अनेक धमकी भरे पत्र मिले पर मुख्तार सा० घबडाये नहीं, बिना सोचे समझे ही समाज मे क्षोभ की लहर फैली, अनेक स्थिति पालकों ने विविध प्रकार दोषारोपण किये। उस समय भी आपने साहस और धैर्य से काम लिया। उनकी सहनशीलता ने उन्हें जो शक्ति प्रदान की, उससे विरोधियों को मुह की खानी पड़ी और धीरे-धीरे वे विरोधी जन भी उनके प्रशंसक बन गए।

सन् १९२२ में जब 'विवाह समुद्देश' नाम का ट्रैक्ट प्रकाशित हुआ, तब उसके उत्तर मे शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण' नामक लेख लिखा गया, जिसके उत्तरमें मुख्तार सा० ने सन् १९२५ में 'विवाह-क्षेत्र प्रकाश' नाम की पुस्तक लिखी, जिसमें शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण का जोरदार खण्डन करते हुए अनेक प्रमाणों द्वारा अपनी पूर्व मान्यता को पुष्ट किया। सन् १९२२ मे जैनाचार्यों और जैन तीर्थकरों का शासन भेद नाम की पुस्तक लिखी जिसमें जैनाचार्यो और जैन तीर्थकरों के शासन भेद का स्पष्ट निवेचन किया। पर किसी विद्वान को मुख्तार सा० के खिलाफ लिखने का साहस नही हुआ। क्योंकि मुख्तार सा० ने अपनी लोह लेखनी से जो भी लिखा वह सब सप्रमाण और सयुक्तिक लिखा था इस कारण विरोधी जनों को अप्रिय एवं अरुचिकर होते हुए भी वे उसका प्रतिवाद करने मे सर्वथा असमर्थ रहे। उनके युक्ति पुरस्सर लेख को देखकर विरोधियो को विरोध करने का साहस भी नही होता था। इससे पाठक मुख्तार साहब की लेखनी की महत्ता को सहज ही समझ सकते है।

मुख्तार सा० की महत्ता जैनधर्म पर उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा और संयमाराधन की उत्कट भावना से है। वे ज्ञान के साथ चारित्र को भी महत्व देते थे और जितना उनसे हो सकता था उसे वे जीवन मे करते रहे। वे स्वामि समन्तभद्रोदित सप्तम प्रतिमा का अनुष्ठान करते थे। और त्रिकाल सामयिक करना अपना कर्तव्य मानते थे। वे रात दिन साहित्य साधना में सलग्न रहते थे। इसी से सामाजिक और व्यक्तिगत बुराइयों से बचे रहते थे। मैंने उन्हें कभी दूसरों की निन्दा करते हुए नही देखा। वे कर्मठ अध्यवसायी और साहित्य तपस्वी थे। साहित्यसृजन के प्रति उनकी लगन अद्भुत थी। यद्यपि उनके जीवन मे रुक्षता और कृपणता दोनो का सामजस्य था। वे एक पैसा भी फिजूल खर्च नहीं करते थे। यद्वा तद्वा खर्च करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था, वे उपयोगिता को

देख कर ही खर्च करते थे। मितव्ययी थे और जो खर्च करते थे उसका पाई-पाई का पूरा हिसाब लिखते थे। राष्ट्र एवं देश के नेताओं के प्रति उनकी महती आस्था थी म्हात्मा गाँधी के निधन पर 'गाधी स्मारक निधि' के लिए आपने स्वयं एक सौ एक रुपया दिया और पांच-पांच दिन का वेतन अपने विद्वानों से भी दिलवाया था। कांग्रेस के प्रति भी उनकी अच्छी निष्ठा थी। वे सूत कात कर 'चर्खासंघ' को देते और बदले में खादी लेकर कपड़े बनवाते थे।

**मुख्तार सा० का कृतित्व**

उनका रहन-सहन सादा था। अधिकतर वह गाढे का उपयोग करते थे। राष्ट्र की सुरक्षा मे भी उन्होंने राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद जी के पास एक सौ एक रुपया भेजा था। वे साहित्य रसिक थे, और उसमे ही रचे-पचे रहते थे।

उन्होंने सन् १९१६ में 'मेरी भावना' नाम की एक कविता लिखी, जो राष्ट्रीयगीत के रूप में पढी जाती है, यह कविता बड़ी लोकप्रिय हुई। इसके विविध भाषाओं मे अनुवादित अनेक सस्करण निकले। लाखों प्रतियां छपीं। उसके कारण लाखों व्यक्ति मुख्तार सा० के परिचय मे आये और वे सदा के लिये अमर बन गये। पाठको की जानकारी के लिए मेरी भावना के तीन पद्य नीचे दिये जाते है—

**मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे,**
**दीन-दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा-स्रोत बहे।**
**दुर्जन क्रूर-कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,**
**साम्यभाव रक्खू मै उन पर ऐसी परिणति हो जावे॥**

+ + + +

**कोई बुरा कहो या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे,**
**लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।**
**अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे,**
**तो भी न्यायमार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे॥**

+ + + +

**सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावे।**
**बैर-पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे।**
**घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे,**
**ज्ञान चरित उन्नति कर अपना मनुज जन्म फल सब पावे॥**

मुख्तार साहब ने मेरी भावना के पद्यों में अनेक आर्षग्रन्थों का सार भर दिया है। पद्यों में जहाँ शब्द योजना उत्तम है वहाँ भाव भी उच्च और रमणीय है।

मुख्तार साहब केवल गद्य लेखक ही नही थे किन्तु कवि भी थे। आपकी कविता हिन्दी और सस्कृत दोनो भाषाओं मे मिलती है। कवि भावुक होते हैं और वे कविता की उडान में अपने को भूल जाते है। पर मुख्तार सा० की गणना उन कवियो मे नही आती; क्योंकि उनकी कविता केवल कल्पना पर आधारित नही है। मुख्तार साहब की कविताओं का आधार सस्कृत के वे पद्य हैं जो विभिन्न आचार्यों द्वारा रचे गए है। घटनाक्रम की कविता 'अज सम्बोधन' है जिसमें वध्य भूमि को जाते हुए बकरे का चित्रण किया गया है। उसमे उसका सजीव भाव समाया हुआ है। आप की हिन्दी की कविताओ में मानव धर्म वाली 'कविता मे' अछूतोद्धार की भावना का सजीव चित्रण है—उसमें बतलाया गया है कि मल के स्पर्श से कोई अछूत नही होता। मल-मूत्र साफ करने का कार्य तो मानव अपने जीवन काल में कभी न कभी करता ही है फिर वेचारे इन अछूतों को ही मल-मूत्र उठाने के कारण अपवित्र क्यों माना जाता है—

**गर्भवास और जन्म समय में कौन नहीं अस्पृश्य हुआ ?**
**कौन मलों से भरा नहीं किसने मल मूत्र न साफ किया ?**
**किसे अछूत जन्म से तब फिर कहना उचित बताते हो ?**
**तिरस्कार भंगी-चमार का करते क्यों न लजाते हो ?॥४॥**

संस्कृति की कविता, 'मदीया द्रव्य पूजा', वीरस्तोत्र, और समन्तभद्रस्तोत्र आदि है। समन्तभद्रस्तोत्र की कविता का एक पद्य नीचे दिया जाता है—

**दैवज्ञ-मान्त्रिक-भिषग्वर-तान्त्रिको यः**
**सारस्वतं सकलसिद्धि गतं च यस्य।**
**मान्यः कविर्गमक-वाग्मि-शिरोमणिः स**
**वादीश्वरो जयति धीर समन्तभद्रः॥**

अनित्य भावना आचार्य पद्मनन्दी की कृति है जिसका आपने सन् १९१४ में पद्यानुवाद किया था, उसके एक

श्लोक का पद्यानुवाद नीचे दिया जाता है—

**एक दिवस भोजन न मिले या, नींद न निशिको आवे,**
**अग्नि समीपी अम्बुज दल सम, यह शरीर मुरझावे।**
**शास्त्र व्याधि जल आदिक से भी, यह शरीर मुरझावे,**
**चेतन क्या थिर बुद्धि देह में ? विनशत अचरज को है।**

इसी तरह आचार्य देवनन्दी की 'सिद्ध भक्ति का पद्यानुवाद भी सुन्दर हुआ है, जो 'सिद्ध-सोपान' के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है। वह सुन्दर और कण्ठ करने योग्य है—यथा

**स्वात्मभाव की लब्धि 'सिद्धि' है, होती वह उन दोषों के**
**उच्छेदन से, अच्छादक जो ज्ञानादिक-गुण वृन्दों के।**
**योग्य साधनों की सुयुक्ति से; अग्नि प्रयोगादिक द्वारा**
**हेम-शिला से जग में जैसे हेम किया जाता न्यारा॥**

इस तरह मुख्तार सा० की गद्य पद्य रचना सभी सुन्दर और भावपूर्ण है।

**व्याख्याकार या भाष्यकार**

आप की समस्त कृतियों की सख्या ३०-३५ है जिनमे कुछ छोटे छोटे ट्रैक्ट भी है। उनमे आपने जिनका अनुवाद तथा सम्पादन किया है। उनके नाम इस प्रकार है—पुरातन जैनवाक्य-सूची, वृहत्स्वयंभूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, अध्यात्मरहस्य, समीचीनधर्मशास्त्र, सत्साधुस्मरण मंगल पाठ, प्रभाचन्द्र का तत्त्वार्थसूत्र कल्याण-कल्पद्रुम, तत्त्वानुशासन, देवागम (आप्तमीमांसा) योगसार प्राभृत और जैन ग्रन्थ प्रशस्ति सगह (प्रथम भाग) समाधितत्र।

आपकी इन कृतियों का अध्ययन करने से स्पष्ट पता चलता है कि मुख्तार सा० ने इन ग्रन्थों के अनुवाद, सम्पादन प्रस्तावनादि लिखने में पर्याप्त श्रम किया है। मूलानुगामी अनुवाद के साथ व्याख्या या भाष्य द्वारा ग्रन्थ के मर्म को स्पष्ट किया गया है। भाष्यकार को मूल लेखक की अपेक्षा उसके हार्द को स्पष्ट करने के लिए विशेष परिश्रम और प्रतिभा का उपयोग करना पड़ता है। मूल ग्रन्थकार के भावों को अक्षुण्य रखते हुए उनकी सरल और स्पष्ट व्याख्या करनी होती है, मूल ग्रन्थ की तह में (गहराई में) छिपे हुए तथ्यों को प्रकाश में लाने के लिये भाष्यकार को तलस्पर्शी पाण्डित्य के साथ तथ्यों का विश्लेषण करना अनिवार्य होता है। मूल ग्रन्थकार के द्वारा प्रयुक्त एक ही शब्द किन किन किन स्थालों में और किस किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है इसके लिये मूल ग्रन्थ का गहराई से पारायण करना पड़ता है। भाष्य लिखते समय मूल ग्रंथ के शब्द को सामने रखते हुए उसके अन्दर निहित अर्थ या भाव को सरल भाषा में रखते हुए वाच्य वाचक सम्बन्ध, अभिधेय, संवेदन और वाक्यार्थ की अभिव्यजना का परिज्ञान आवश्यक होता है। तभी भाष्यकार मूल ग्रथ के गभीर अर्थ का प्रतिपादन करने मे समर्थ हो सकता है।

मुख्तार सा० ने अनुवाद करने से पूर्व स्वामी समन्तभद्र भारती के ग्रन्थो का एक शब्दकोष प० दीपचन्द जी पाण्ड्या केकडी से तय्यार कराया था। मूलग्रंथ के पाठ सशोधन के पश्चात् अनुवाद प्रारभ किया। अनुवाद हो जाने के बाद भाष्य लिखने के लिये ग्रन्थ और अनुवाद का पारायण तथा संशोधन किया, और भाष्य लिखने से पूर्व मूलग्रंथकार की दृष्टि को स्पष्ट करने के लिये विविध ग्रन्थो का परिशीलन किया, तथा लिखते समय उन्हें सामने रक्खा। मुख्तार सा० का दृष्टिकोण मूल के हार्द को स्पष्ट करना था अतएव उन्होंने मूलग्रथ के पद्यो के अन्दर अन्तर्निहित अर्थ को उसकी गहराई मे जाकर तलदृष्टा बन मूल को स्पष्ट करने वाली व्याख्या या भाष्य लिखा। अनुवाद और भाष्य लिखने में मुख्तार सा० ने अथक श्रम किया तभी वह मूल ग्रन्थ के अनुकूल और उपयोगी हो सका है। उसमें उन्होंने अपनी ओर से कुछ भी मिलाने का प्रयत्न नही किया। अतएव वह भाष्य लिखने में कितने सफल हुए इसका निर्णय विद्वान पाठक ही कर सकते है। स्वामी समन्तभद्र के ग्रन्थो का जो अनुवाद और भाष्य लिखा वह कितना परिमार्जित और मूलग्रथकार की दृष्टि का अभिव्यंजक है। मैने उसे लिखते समय पढ़ा और बाद मे प्रेस कापी करते हुए भी पढ़ा है मुझे तो उसमें कोई स्खलन प्रतीत नही हुआ। कारण कि मुख्तार सा० लिखने मे बहुत सावधानी रखते थे। साथ ही शब्दों को जाँच तोल कर रखते। उनकी लेखनी झटपट और चलता

हुआ नहीं लिखती थी। लिखते समय उनकी एकाग्रता और संलग्नता अनुकरणीय है।

तत्त्वानुशासन का भाष्य लिखते समय आचार्य रामसेन के मूल्य पद्यों का मूलानुगामी अनुवाद किया और बाद मे भाष्य लिखा। भाष्य लिखते समय मूल ग्रन्थकार की दृष्टि को अक्षुण्ण रखते हुए पद्यो मे आये हुए विशेषणों का स्पष्टीकरण किया। पाठको की जानकारी के लिये उसके दो पद्यो का अनुवाद और व्याख्या नीचे दी जाती है—

**संगत्याग: कषायानां निग्रहो व्रत धारणम्**
**मनोऽक्षाणां जयश्चेति सामग्री ध्यान जन्मनि ।।**

परिग्रहो का त्याग, कृषायों का निग्रह-नियत्रण, व्रतो का धारण और मन तथा इन्द्रियो का जीतना यह सब ध्यान की उत्पत्ति-निष्पत्ति में सहायभूत- सामग्री है। व्याख्या—यहाँ सग त्याग मे बाह्य परिग्रहों का त्याग अभिप्रेत है; क्योंकि अन्तरग परिग्रह में क्रोधादि कषाये तथा हास्यादि नो कषाये आती है जिन सबका कषायो के निग्रह मे समावेश है। कुसगति का त्याग भी सगत्याग मे आ जाता है—वह भी सद्ध्यान मे बाधक होती है। व्रतो में अहिंसादि महाव्रतों तथा अणुव्रतों आदि का ग्रहण है। अनशन ऊनोदर आदि के रूप मे अनेक प्रतिज्ञाए भी व्रतो में शामिल है। इन्द्रियों के जय मे स्पर्शन-रसन घ्राण-चक्षु-श्रोत्र ऐसी पाचो इन्द्रियों की विजय विविक्षित है। ध्यान की और भी सामग्री है, परन्तु यहाँ सर्वतो मुख्य सामग्री का उल्लेख है। शेष सामग्री का 'च' शब्द मे समुच्चय किया गया है। उसे अन्य ग्रन्थों के सहारे से जुटाना चाहिये। इस ग्रन्थ में भी परिकर्म आदि के रूप में जो कुछ अन्यत्र कहा गया है उसे भी ध्यान की सामग्री समझना चाहिये।

**इन्द्रियाणां प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च मनः प्रभु ।**
**मन एव जयेत्तस्माज्जिते तस्मिन जितेन्द्रियः ।।**

इन्द्रियो की प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों में मन प्रभु-सामर्थ्यवान है, इसलिये (मुख्यतः) मन को ही जीतना चाहिये मन को जीतने पर मनुष्य (वास्तव) मे जितेन्द्रिय होता है—इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करता है।

व्याख्या—यहाँ इन्द्रियों से भी पहले मन को जीतने का सहेतुक निर्देश किया गया है। और यह बतलाया है कि मन को जीतने पर मनुष्य सहज ही जितेन्द्रिय हो जाता है। जिसने अपने मन को नहीं जीता वह इन्द्रियो को क्या जीतेगा ? मन के सकल्प-विकल्प रूप व्यापार को रोकना अथवा मन की चचलता को दूर कर उसे स्थिर करना, मन को जीतना कहलाता है। मन का व्यापार रुकने अथवा उसकी चचलता मिटने पर इन्द्रियो का व्यापार स्वतः रुक जाता है—वे अपने विषयो मे प्रवृत्त नही होती उसी प्रकार जिस प्रकार कि वृक्ष का मूल छिन्न-भिन्न हो जाने पर उसमे पत्र-पुष्पादिक की उत्पत्ति नही हो पाती।

तत्त्वानुशासन की प्रस्तावना बहुत विचार-विमर्श के बाद लिखी गई है। उसके लिखने मे मुख्तार सा० ने अच्छा श्रम किया है। इस सम्बन्ध में मैने उन्हे पर्याप्त सामग्री दी थी। उन्होने मेरा उल्लेख भी किया है। रामसेन के समय का निर्णय उन्होने कितने ही सुन्दर और सरल ढग से किया यह देखते ही बनता है।

आप के ग्रन्थों की प्रस्तावनाए बडी मार्मिक और शोधपूर्ण है। अध्यात्म-कमलमार्तण्ड की प्रस्तावना मे १७वी शताब्दी के विद्वान तथा प्रथित ग्रन्थकार पांडे राजमल्ल का परिचय और उनकी कृतियो के सम्बन्ध मे अच्छा प्रकाश डाला गया है।

पुरातन जैन वाक्य-सूची की प्रस्तावना और उसका सम्पादन अपने सहयोगी विद्वानो के साथ किया। ग्रन्थ अन्वेषण करने वाले विद्वानो के लिये उपयोगी है मुख्तार सा० ने उसकी प्रस्तावना मे प्रत्येक ग्रन्थ और ग्रन्थकार के सम्बन्ध मे अच्छा विचार किया है। खासकर सन्मति सूत्र और सिद्धसेन के सम्बन्ध मे जो विचार अथवा निष्कर्ष दिया गया है वह मौलिक है। गोम्मटसार की त्रुटि-पूर्ति पर भी प्रकाश डाला है। और भी अनेक विद्वानो के सम्बध में अच्छा प्रकाश डाला गया है। जो शोधक विद्वानो के लिये उपयोगी है।

'समन्तभद्र भारती' के ग्रन्थों का अनुवाद और व्याख्या बहुत ही परिश्रम के साथ सम्पन्न की है। खासकर युक्त्यनुशासन का हिन्दी अनुवाद उन्होंने कितनी सरल भाषा मे प्रस्तुत किया है। यह उनकी महत्वपूर्ण देन है। जो दार्शनिक विषय पर भी इतना अच्छा प्रकाश डालती

है। देवागम का अनुवाद भी उन्होंने सरल ढंग से प्रस्तुत किया है, जो पठनीय है।

इसी तरह समीचीन धर्मशास्त्र (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) का अनुवाद, भाष्य और प्रस्तावना बड़ी महत्वपूर्ण है, वह मूल ग्रंथ पर अच्छा प्रकाश डालती है, और टीकाकार प्रभाचन्द्र के सम्बन्ध मे भी ऐतिहासिक दृष्टि से यथेष्ट प्रकाश डालती है।

आपका अन्तिम भाष्य अमितगति प्रथम का योगसार प्राभृत है। जिसका उन्होंने बीसों बार अध्ययन किया है। और बहुत कुछ चिन्तन के बाद उसका मूलानुगामी अनुवाद और भाष्य प्रस्तुत किया है। यह उनकी अन्तिम कृति है। इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ से हुआ है। आशा है समाज उससे विशेष लाभ उठाने का प्रयत्न करेगी।

मुख्तार साहब का जीवन सादा रहा है। वे सदा सिपाही की भाँति कार्य करने के लिये तत्पर रहते थे। परावलम्बी होना उन्हे तनिक भी पसन्द नही था। वे अपना सब कार्य स्वयं करके प्रसन्न रहते थे। उनके इस सेवा कार्य को देखते हुए यह स्वाभाविक लगता है कि ऐसे निस्वार्थ सेवाभावी विद्वान का समाज ने कोई सार्वजनिक सम्मान नही किया, इसका हमें खेद है। पर कुछ व्यक्ति की अपनी कमजोरियाँ भी होती है जो उसे आगे बढ़ने नहीं देतीं। मुख्तार सा० का जीवन एकागी था, वे जितना साहित्यिक विषयों पर विचार करते थे, उतना उन्होंने समाज के बारे में कभी चिन्तन ही नहीं किया, समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण प्राय: अनुदार-सा ही रहा प्रतीत होता है। इस कारण उनके कितने ही कार्य अधूरे पडे रहे, जिन्हें वे स्वय सम्पन्न करना चाहते थे। वे वीरसेवा-मन्दिर जैसी उच्चकोटि की संस्था के सस्थापक थे, उन्हे अच्छे कार्यकर्त्ता विद्वानों का सहयोग भी मिला था। उनकी प्रौढ लेखनी से प्रभावित हो बाबू छोटेलाल जी कलकत्ता ने उन्हें आर्थिक सहयोग स्वय दिया और अपने दूसरे मित्रों से दिलाया। मुख्तार सा० के व्यक्तित्व को उभारने का भी प्रयत्न किया। वीर शासन-जयन्ती के अवसर पर सरसावा में अध्यक्ष पद से जो भाषण दिया था उसमे उन्होंने स्पष्ट रूप से यह कहा था कि 'मैं मुख्तार सा० को वर्तमान के मुनियो से भी कही अच्छा मानता हूँ जो सामाजिक झगड़ों से दूर रह कर ठोस साहित्य के निर्माण द्वारा जिन शासन और समाज की सेवा कर रहे हैं।' बा० छोटेलाल जी की उदारता, उत्साह और परिश्रम से तथा पूज्य प० गणेशप्रसाद जी वर्णी की प्रेरणा से वीर सेवामन्दिर का भवन दिल्ली में बन गया। मुख्तार सा० का बाबू छोटेलाल जी के साथ पिता-पुत्र जैसा सुदृढ प्रेम सम्बन्ध बहुत वर्षों तक रहा। पर कुछ कारणों से परस्पर में मतभेद उत्पन्न हो गया था बाद में उसमें पत्र व्यवहारादि द्वारा सुधार हो गया था और उनका परस्पर पत्र-व्यवहार भी चालू हो गया था, किन्तु दुर्भाग्य है कि सन् सन् १९६२ के बाद उनका दोनो का परस्पर मिलन नहीं हो सका।

मुख्तार सा० का अन्तिम जीवन भी सानन्द व्यतीत हुआ, वे वीरसेवा मन्दिर दिल्ली से अपने भतीजे डा० श्रीचन्द्र जी सगल के पास एटा चले गए थे। संगल जी ने अपने ताऊ जी की सेवा प्रसन्नता से की। डा० साहब का सारा परिवार उनकी सेवा मे संलग्न रहता था। वे उनकी सेवा से प्रसन्न भी थे। डा० सा० ने लिखा है कि उनका अन्त समय बड़ी शान्ति के साथ व्यतीत हुआ। मैं रातभर उनके पास बैठा रहा, णमोकार मन्त्र और समन्तभद्रस्तोत्र का पाठ करते हुए उन्होंने अपने शरीर का परित्याग किया। उनका देहावसान २२ दिसम्बर को ९१ वर्ष २२ दिन की आयु में प्रातःकाल हुआ। उनके रिक्त स्थान की पूर्ति होना असभव है। मै उन्हे अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ उनकी आत्मा को परलोक मे सुख-शान्ति की कामना करता हूँ।

# उस मृत्युञ्जय का महाप्रयाण

डा० ज्योतिप्रसाद जैन एम. ए. पी-एच. डी.

जन्म और मृत्यु जीवन के दो छोर है। ससार तो अनादि-अनन्त है, किन्तु ससार के प्रत्येक प्राणी का जीवन सादि-सान्त ही होता है। जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है—वह टल नही सकती। यह देखते और जानते हुए भी कौन ऐसा है जो मरना चाहेगा? मृत्यु तो सभी को अनिष्ट और अप्रिय होती है। ऐसे व्यक्ति भी विरले ही होते है जो मृत्यु से भयभीत नहीं होते, अथवा जो उस भय पर विजय पा लेते हैं। यदि कोई पर्याप्त दीर्घजीवी होता है तो बहुधा कह दिया जाता है कि उसने मृत्यु को जीत लिया है। किन्तु केवल दीर्घ-जीवि होना ही मृत्युजयी होने का प्रमाण नही होता। मृत्युजयी कहलाने का अधिकारी तो वह व्यक्ति है जो मरना न चाहते हुए भी मरने से डरता नही है। जो जीवन के प्रत्येक क्षण का यथाशक्य सदुपयोग करता है, किन्तु मृत्यु के लिए भी सदैव तैयार रहता है। मृत्यु को वह कोई संकट या विपत्ति नही समझता, वरन् उसे जीवन का अनिवार्य्य विराम स्वीकार करके जब भी वह आये, समभाव से उसके लिए प्रस्तुत रहता है। ऐसी मनःस्थिति स्वयमेव, अथवा क्षणमात्र मे नही बनती। उसके लिए पर्याप्तकालीन मनोनुशासन एवं मानसिक तैयारी करते रहना अपेक्षित होता है।

प्राक्तन-विद्या-विचक्षण श्रद्धेय आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' ने साधिक इक्यानवे वर्ष का दीर्घ जीवन पाया। मन और तन का स्वास्थ्य भी सामान्यतया उत्तम प्राप्त किया। अत्यन्त सरल एव सादा खान-पान और रहन-सहन, नियमित-संयमित जीवनचर्या और मुख्यतया बौद्धिक वृत्ति मे सलग्नता इस दीर्घजीवन और मानसिक स्वास्थ्य की विशेषताएँ थी, और सभवतया उनके मूलाधार भी थे। इस दीर्घजीवन का बहुभाग, लगभग सत्तर वर्ष, उन्होने साहित्य, संस्कृति और समाज की सेवा में अर्पित किया। जीवन के अन्तिम पचास वर्षों मे तो यह समर्पण एक निष्ठ रहा। उनकी सामाजिक और सास्कृतिक सेवाओं का तथा उनकी साहित्यक उपलब्धियो का मूल्याङ्कन कुछ हुआ है, शेष वर्तमान तथा आने वाली पीढियाँ करेगी। उनके जीवन मे जैसी प्रतिष्ठा, सन्मान और प्रभावना उन्हे प्राप्त होनी चाहिए थी वैसी नही हुई। कुछ लोग कहते रहे है कि इसका कारण मुख्तार साहब का व्यक्तित्व, स्वभाव और व्यवहार रहे है। हो सकता है कि उसका अशतः यह कारण भी रहा हो। किन्तु क्या इसका साथ ही यह कारण भी नही हो सकता कि जिस समाज मे वह जन्मे, जिये और जिसकी सेवा मे उन्होने अपना सम्पूर्ण तन, मन और धन समर्पित कर दिया वह समाज कृतघ्न था, अथवा उसमे समुचित गुणग्राहकता या कद्रदानी का अभाव था? इस प्रश्न का समाधान भी समय करेगा।

ऐसे निष्काम कर्मयोगी एव दीर्घकालीन एकनिष्ठ साधक से, जिसने श्रमण तीर्थङ्करों के उस धर्म को अपनाया और अपना इष्ट अध्ययनीय एव मननीय विषय बनाया जिसमे मरण को 'मृत्युमहोत्सव' सज्ञा दी गई है, यह तो अपेक्षित था ही कि वह मृत्यु पर विजय पा लेता। स्वामि समन्तभद्र का अनन्य भक्त और समन्तभद्रभारती का अप्रतिम तलस्पर्शी अध्येता एव प्रख्याता भी यदि मृत्युभय पर विजय न पा सका होता तो उसके उस दीर्घ-जीवन, चिरकालीन साधना, धर्मज्ञता और जितना कुछ भी धर्माचरण था उस सबकी क्या सार्थकता रहती। मृत्यु से लगभग साठ वर्ष पूर्व रचित अपनी सर्वाधिक लोकप्रिय 'मेरी भावना' मे उसने उद्घोष किया था—

**कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।**
**लाखों वर्षों तक जीऊँ, या मृत्यु आज ही आजावे॥**
**अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे।**
**तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे॥**

**होकर सुख में मग्न न फूलूं, दुख में कभी न घबराऊं।**
**पर्वत नदी श्मशान भयानक, अटवी से नहीं भय लाऊं॥**
**रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।**
**इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावे॥**

उसकी इस 'मेरी भावना' ने लाखों व्यक्तियों को मनोबल प्रदान किया। क्या वह स्वयं उसके जीवन पर कोई प्रभाव न रखती? इस महाभाग के अवसान से प्रसून दुःख मे यह हर्ष मिश्रित है कि अपने अध्यवसाय और लगन से उसने अपना जीवन तो सार्थक सिद्ध किया ही, मृत्यु का आलिङ्गन करने के लिए उसने स्वयं को जिस प्रकार तैयार रक्खा उससे उसने अपना अन्त भी सार्थक सिद्ध कर दिया।

स्व० मुख्तार साहब की जीवनेच्छा बड़ी प्रबल थी। मरना तो शायद कोई भी नही चाहता, किन्तु वह तो मृत्यु का नाम भी नही लेते थे। अब से दस-पाँच वर्ष पहिले तक भी वह अपनी मृत्यु के बारे में कभी सोचना भी नहीं चाहते थे। प्रसंग चलता तो उसे टालने का प्रयत्न करते। मृत्यु का नाम लेना या लिया जाना वह अपशकुन या अपशब्द जैसा समझते थे। अपने स्वस्थ और नीरोग रहने की चिन्ता अथवा सावधानी वह एक अत्यन्त स्वार्थी व्यक्ति की भाँति रखते थे। अपनी भावी साहित्यिक योजनाओं को सदैव ठोस और विस्तृत बनाये रखते और यही कहते रहते कि अभी अमुक-अमुक कार्य पूरे करने है—इन कार्यक्रमों को पूरा करने मे जीवनावधि भी आगे ही आगे बढती जाती थी। एक सौ वर्ष से कम जीने का तो उनका इरादा ही नही था। किन्तु इधर दो-तीन वर्षों से उन्हे ऐसा लगने लगा था कि जीवन अब अधिक नही चलना है, तदनुसार अपने साहित्यिक कार्यक्रमों को भी वह सीमित करने लगे थे। अपने अन्तिम वर्षों में समन्तभद्र स्मारक और समन्तभद्र पत्रिका आदि की जो योजनाएँ उन्होने बनाई थी और जिन्हे कार्यान्वित हुआ देखने की उनकी उत्कट लालसा थी, उनके विषय मे भी यह कहने लगे थे कि अब मेरा कुछ भरोसा नही है, मैं शायद इन्हें कार्यान्वित हुआ देखने के लिए नही रह पाऊंगा। जब कभी अस्वस्थ हो जाते तो इस प्रकार की बाते विशेषरूप से करने लगते। ऐसे ही एक प्रसंग मे मैने उनसे कहा था कि 'आपतो भीष्मपितामह है, क्यों घबराते है, आपकी तो इच्छा मृत्यु होगी—जब तक नहीं चाहेंगे मृत्यु आपके पास नही फटकेगी।' इससे उन्हें कुछ बल मिला और बोले, 'ठीक है। उत्तरायण-दक्षिणायण का ही अन्तर है। अब अधिक दिन तो चलना नही है, जो चार-पाँच कार्य हाथ मे ले रक्खे है उन्हे पूरा कर लू, फिर भले ही मृत्यु आ जाय।' और ऐसा ही हुआ।

दिसम्बर १९६६ मे एटा मे उनकी ८९वी जन्म-जयन्ति मनी थी। उक्त अवसर पर उत्सव की अध्यक्षता करने के लिए मुझे बुलाया गया था। उसके दो-डेढ़ वर्ष पूर्व से समन्तभद्र स्मारक योजना और वीर सेवामन्दिर ट्रस्ट की पुनर्व्यवस्था के सम्बन्ध मे पत्रों द्वारा विचार विमर्श चल रहा था। इन दोनों की ही उन्हे विशेष चिन्ता बनी हुई थी। उस अवसर पर इस सम्बन्ध में साक्षात् बातचीत भी हुई। अपने हाथ मे लिए हुए साहित्यिक कार्यों के विषय में भी बातचीत करते रहे। उस समय स्वस्थ और प्रसन्न थे। किन्तु मार्च ६७ के प्रारम्भ से ही अस्वस्थ रहने लगे। बन्धुवर डा० श्रीचन्द्र जी संगल के १८ मार्च के पत्र से ज्ञात हुआ कि 'ता० ४ मार्च से मुख्तार श्री अस्वस्थ चल रहे है। उन्हे ज्वर गुर्दो में सूजन (नेफ्राइटिस), रक्तचाप अधिक और चेहरे पर वरम तथा कमजोरी अधिक है। बीच मे हालत चिन्ताजनक हो गई थी। परन्तु अब तीन-चार दिन से तबियत सुधार पर है। आशा है शनैः शनैः स्वास्थ्य लाभ हो जायगा। चिकित्सा पूर्णरूप से ठीक हो रही है। चिन्ता की कोई बात अभी नहीं मालूम पडती है। उन्ही के २९ मार्च के पत्र से ज्ञात हुआ कि तबियत फिर कुछ गड़बड हो गई थी, तब तक ठीक नही हुई। और ४ मई के पत्र मे डा० संगल ने लिखा था कि "ताऊ जी की तबियत अभी ठीक नही है। दुबारा दुबारा रिलेप्स हो जाता है। ब्लड प्रेशर और गुरदो की बीमारी ऐसी ही है, अच्छी तो होती ही नही, फिर भी उपचार से और वैयावृत्य से ठीक रहती है। परन्तु उनका यह हाल है जरा तबियत ठीक होती है तो अपना धन्दा लिखने पढने का लेकर बैठ जाते है और रोकने से मानते नही। दुनिया भर की फिकरें मोल ले रक्खी है। अब कौन उनसे कहे, और कह कर

भी देख लिया। अपने आगे किसी की सुनते ही नही, जो जो मन में आता करते है……वे आपको एक लम्बा पत्र लिखना चाहते हैं, परन्तु स्वास्थ्य ठीक नही हो पाता, इसलिए नहीं लिख सके, ऐसा कह रहे थे।'

अगस्त-सितम्बर तक मुख्तार सा० की तबियत बहुत कुछ ठीक हो गई और वह अपने साहित्यिक कार्यों मे फिर से जुट गए, किन्तु अधिक दिन तक जीवित रहने की उनकी आशा अब क्षीण हो चली थी। अपने ३ नवम्बर के पत्र में उन्होने मुझे लिखा था कि—'ता० ३-१० का पत्र मिला, धन्यवाद। द्रव्यसंग्रह सम्बन्धी जो लेख मैं लिख रहा था वह समाप्त हो गया है। मेरे १६ पेजों पर आया है और एक फार्म से कम का है। आपने उसे शोधाङ्क मे प्रकाशित कनने के लिए अपने पास भेजने को लिखा परन्तु अगला शोधाङ्क २६ तो अब तीन महीने बाद प्रकाशित होगा। उस समय तक जीवन की न मालूम क्या स्थिति रहती है, इसलिए मै उसे पं० कैलाशचन्द्र जी के पास भेजना चाहता हूँ। जैन सन्देश और शोधाङ्क के ग्राहक तो एक ही है, अतः उसमे कोई अन्तर नही पड़ेगा।' अपने १३ दिस० ६७ के पत्र में उन्होंने लिखा—'ता० ६-१२ का पत्र मिला। आपने मेरे ६० वर्ष पूर्ण करके ६१वें वर्ष मे प्रवेश पर अपनी शुभकामना, बधाई तथा श्रद्धांजलि प्रेषित की, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। ……मैं तो अपने ३ नवम्बर के पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था……कोई सवा महीना हुआ रविवार के दिन मैने योगसार प्राभृत की प्रस्तावना लिखने का निश्चय किया था कि रविवार के सुबह से ही ज्वर आ गया और मेरा विचार धरा रह गया……' तदनन्तर ५ जनवरी ६८ के पत्र में उन्होंने लिखा था कि—'ता० २४ दिसम्बर का पत्र मिला……मेरा स्वास्थ्य अभी तक गड़बड़ में ही चला जाता है, गुर्दों की खराबी के कारण पैरों पर और पैरों के ऊपर टागो पर घुटनों के नीचे तक वरम कुछ ठहर सा गया है, जिससे पैर कुछ कच्चे पड़ रहे हैं। और टांगों में कमज़ोरी है जिसके कारण बैठकर उठने में दिक्कत मालूम होती है और बिना किसी वस्तु के सहारे के उठा नहीं जाता। पैरों की कचाई और टांगों की कमज़ोरी के कारण दो एक बार मेरे गिरने की नौबत आई है। **अस्तु, नियोगशक्ति के अनुसार चिकित्सा हो रही है। जो कुछ होना होगा वह होगा। अलंघ्यशक्ति भवितव्यता के आगे किसी का चारा नहीं है, ऐसा स्वामी समन्तभद्र ने सूचित किया है। मेरे लिए चिन्ता की कोई बात नहीं है। मैं तो मृत्यु महोत्सव मनाने को तैयार हूँ। मेरा मरण अच्छा समाधिपूर्वक हो यही आन्तरिक कामना एवं भावना है। इसीलिए मैं अपने पड़े हुए कार्यों को निपटा रहा हूँ।** शेष सब कुशल मंगल है, योग्य सेवा लिखे, बच्चों को शुभाशीर्वाद।'

महाप्रयाण से लगभग एक वर्ष पूर्व लिखे गये इस पत्र के (बड़े टाइप में मुद्रित) उपरोक्त शब्द स्वर्णाक्षरों में अंकित किये जाने योग्य है। वे एक सच्चे जिनानुयायी एवं समन्तभद्र भक्त के ही अनुरूप हैं। यह शब्द यह भी सिद्ध करते है कि अपने निधन से कम-से-कम एक वर्ष पूर्व तो उन्हें अपनी आसन्न मृत्यु का आभास हो ही गया था और वह उसके लिए तैयार भी हो गए थे। मृत्युभय को जीतकर वह मृत्युञ्जय हो गए थे।

इस पत्र मे तथा इसके पूर्व के एवं पश्चात् के पत्रों मे अन्य अनेक ऐसी बातें और चर्चाएँ भी हैं जिनसे स्पष्ट है कि इतने वार्धक्य, रुग्णावस्था और जीवन के अन्तिम मासों मे भी उनका मस्तिष्क पूर्ववत सजग, सप्राण और क्रियाशील था। शोध-खोज, चिन्तन-मनन, पठन-अध्ययन और लेखन-सृजन भी चलते रहे। इस काल के उनके लेखादिकों में उनका वही ओज और स्तर बना रहा जिसके लिए वह प्रसिद्ध रहे है। उनकी लेखनी वैसी ही सधी हुई और निष्कम्प बनी रही।

लगभग चालीस वर्ष मेरा उनके साथ सम्पर्क रहा और गत तीस वर्षों में कई बार अल्पाधिक समय के लिए उसका सत्संग प्राप्त हुआ और सैकडों पत्र प्राप्त हुए, जिनमें से अनेक ऐतिहासिक, साहित्यिक अथवा सामाजिक महत्त्व के हैं। वह मेरे पितृव्यों की आयु के थे और मैं उन्हें पितृव्य तुल्य ही मानता रहा। वह भी मुझे भ्रातृज-तुल्य मान कर वैसा ही वात्सल्य प्रदान करते रहे।

उनके २३ जनवरी ६८ के पत्र का उत्तर ३० जनवरी को दे दिया था, किन्तु उसके बाद अस्वास्थ्यादि के कारण

पत्र देने मे कुछ प्रमाद हुआ तो अपने ६ मार्च के पत्र मे उन्होंने लिखा कि—'कितनेही दिन से आपका कोई पत्र नहीं आया है······नही मालूम क्या कारण है। आशा है आप का स्वास्थ्य तो ठीक है और कुटुम्ब के सब व्यक्ति सानन्द हैं।' इस पत्र का उत्तर मैंने १५ मार्च को दिया, किन्तु इसके पहुँचने के पहिले वह १६ मार्च को एक पत्र दे चुके जिसमें लिखा था—'कितने ही दिन से आपका कोई पत्र नही है······न ६ मार्च को दिये गये पत्र का ही कोई उत्तर है। नहीं जाने इस असाधारण विलम्ब का क्या कारण है। इससे चिन्ता हो रही है। आशा है आपका स्वास्थ्य तो ठीक होगा। अपने स्वास्थ्य सम्बन्धादि के विषय में शीघ्र ही सूचित करने की कृपा करें और पत्रो का उत्तर अवश्य ही देने-दिलाने का कष्ट करे।' २६ जून के पत्र में उन्होंने लिखा था कि 'प्रतीक्षा के बाद २३ जून का पत्र मिला। यह जानकर कि आप व्यस्तता के साथ कुछ अस्वस्थ भी रहे हैं, अफसोस हुआ। मैं कुछ ज्यादा अस्वस्थ हो गया था। प० दरबारी लाल जी आये थे, बहन जयवन्ती भी आई थी। इसी अवसर पर ट्रस्ट मीटिंग भी बुलाई गई थी······अब मुझे नये सिरे से अपने ट्रस्ट की व्यवस्था करनी है, इस सम्बन्धमे आपके जो भी सुझाव हों उनसे शीघ्र सूचित करने की कृपा करे······मेरा विचार अब समन्तभद्र पत्र को मासिक रूप मे निकालने का प्रबल होता जाता है······मैं अपने जीवन मे उसे प्रकाशित देखना चाहता हूँ।''—खेद है कि ऐसा न हो सका। इसके बाद १२ जुलाई के पत्र मे उन्होने लिखा कि—''ता० ८ जुलाई का पत्र मिला, धन्यवाद······समय बीतता जा रहा है, कार्य शीघ्रता से होना चाहिये। जीवन का कोई भरोसा नहीं। मैं चाहता हूं कि मेरे जीवन में ही संस्था और पत्र की कोई योग्य व्यवस्था बन जाय··· मेरे गुर्दों का मूल रोग ज्यों का त्यों है। ज्वर न होने पर कुछ काम कर लेता हूं। बच्चों को आशीर्वाद।''—यही उनका मुझे प्राप्त अन्तिम पत्र है।

डा० श्रीचन्द्र जी के पत्र से ज्ञात हुआ कि मुख्तार सा० पुन: अतिरुग्ण हो गये है। २६ जुलाई को मैं अपने अनुज अजितप्रसाद जैन के साथ उन्हे देखने के लिए एटा गया। वह खाट से लग गये थे, बोल भी थक गया था, शक्तिया क्षीण होती जा रही थी। तथापि देखकर गद्गद् हो गये और लेटे ही लेटे प्रसन्न मन से बात चीत की। यही मेरे लिये उनका अन्तिम दर्शन था।

५ नवम्बर को विद्वत्परिषद द्वारा एटा मे ही मुख्तार साहब के अभिनन्दन की रस्म अदा की जानी थी उसमे सम्मिलित होने के लिये बन्धुवर कोठिया जी का पत्र मिला। पत्र २ ता० को लिखा गया था, किन्तु सम्भवतया डाक की गडबड़ से, मुझे ५ को ही मिला। जाने का प्रश्न ही नहीं था, और उनके अंतिम दर्शन का यह अवसर चूक गया। २६ दिस० को प्राप्त डा० श्री चन्द्र जी आदि के पत्र से ज्ञात हुआ कि २१ दिसम्बर ६८ को—६१ वर्ष और २२ दिनकी आयु मे वर्तमान युग के इस मृतुञ्जय का महाप्रयाण हो गया! ●

## गुणों की इज्जत

एक आदमी हलवाई की दुकान पर गया, और दोने में गुलाब जामुन लेकर चला। दोना रेशमी रूमाल से ढक दिया। दोना प्रसन्न हो मन में सोचने लगा—इस दुनिया में मेरे जैसा भाग्यशाली कोई नहीं है, मुझे रेशमी वस्त्र से ढका गया है। वह आदमी दोना लेकर अपनी हवेली में पहुँचा। और चौथी मंजिल पर उसे एक सुन्दर टबिल पर रखा। दोना फूल गया अभिमान में। अहो मेरी कैसी इज्जत हो रही है। मुझे बैठने के लिए कैसा सुन्दर आसन मिला है, राजा महाराजाओं की तरह मेरा स्वागत हो रहा है। सभी लोग मुझे उच्च दृष्टि से देख रहे हैं।

किन्तु उस अभिमानी दोने को यह खबर नहीं थी कि यह इज्जत, प्रतिष्ठा, और स्वागत मेरा हो रहा है या गुलाबजामुन का। गुलाबजामुन के बिना दोने की क्या कीमत? कुछ ही देर बाद दोना से गुलाबजामुन तश्तरी में रख दिये, और उस बेकार दोना को नीचे फेंक दिया गया।

अब दोने को भान हुआ, आंखें खुलीं, और अहंकार का नशा उतरा। इसी तरह शरीर की कोई इज्जत नहीं है। यदि शरीर रूपी दोने में सद्गुण रूपी गुलाबजामुन होंगे तो उसकी पूछ होगी, प्रतिष्ठा बढ़ेगी। उसका सत्कार होगा। सद्गुणों के अभाव में उसका कोई मूल्य नहीं। (जैन भारती)

# मुख्तार सा० की बहुमुखी प्रतिभा

**बालचन्द्र सिद्धान्त-शास्त्री**

साहित्य के अनन्य उपासक स्व० पं० जुगुलकिशोर जी मुख्तार एक ख्यातिप्राप्त इतिहासकार थे। उनका लौकिक शिक्षण हाईस्कूल तक ही हो सका था। धार्मिक शिक्षण भी एक स्थानीय (सरसावा) छोटी सी पाठशाला में साधारण ही हुआ था। परन्तु वे बाल्यावस्था से ही अतिशय प्रतिभाशाली रहे हैं, तर्कणाशक्ति भी उनकी अद्भुत थी। इसीलिये वे सुरुचिपूर्ण सतत अध्यवसाय से एक आदर्श साहित्यस्रष्टा और समीक्षक हो सके। उन्होंने जीवन मे वह महान कार्य किया है जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्वानों से सम्भव नही हुआ।

जिस समय समाज मे रूढ़िवाद प्रबल था उस समय उन्होने घोर सामाजिक विरोध का दृढता से सामना करते हुए भट्टारकों के द्वारा भद्रबाहु, कुन्दकुन्द, पूज्यपाद और अकलक जैसे प्रतिष्ठाप्राप्त पुरातन आचार्यो के नाम पर जो भद्रबाहुसंहिता, कुन्दकुन्द-श्रावकाचार, पूज्यपाद श्रावकाचार और अकलकप्रतिष्ठा-पाठ आदि ग्रन्थ लिखे गये है उनका अन्तःपरीक्षण कर उन्हे जैनागम के विरुद्ध सिद्ध किया। समय-समय पर लिखे गये उनके इस प्रकार के निबन्ध 'ग्रन्थ-समीक्षा' के नाम से पुस्तक रूप मे ४ भागों मे प्रकाशित हुए है। उनके इस दृढ़तापूर्ण कार्य को देखकर यह कहना अनुचित न होगा कि उन्होंने आचार्य प्रभाचन्द्र की **'त्यजति न विदधानः कार्यमुद्विज्य धीमान् खलजनपरिवृत्तेः स्पर्धते किन्तु तेन।'** इस उक्ति को पूर्णतया चरितार्थ किया है। उन्होने जिस विरोधी वातावरण मे इस कार्य को सम्पन्न किया है उसमें अन्य किसी को यह साहस नही हो सकता था कि उपर्युक्त ग्रन्थों को इस प्रकार से अप्रामाणिक घोषित कर सके।

**भाष्यकार के रूप में—**

उन्होने संलग्नतापूर्वक निरन्तर चलने वाले अपने अध्ययन से जो उत्कृष्ट आध्यात्मिक और सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त किया वह आश्चर्यजनक था। इस प्रकार से जो उन्होंने प्रखर पाण्डित्य प्राप्त किया उसके बल पर ही स्वयभूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, रत्नकरण्डश्रावकाचार, तत्वानुशासन, देवागमस्तोत्र, कल्याण-कल्पद्रुम (एकीभाव-स्तोत्र) और योगसार-प्राभृत जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों पर भाष्य लिखे है। ग्रन्थ के अन्तर्गत रहस्य को प्रस्फुटित करने वाले उनके इन भाष्यों की भाषा भी तदनुरूप सरल और सुबोध है। इन भाष्यों के परिशीलन से ग्रन्थकार के अभिप्राय के समझने में किसी को कोई कठिनाई नही हो सकती। उनकी पद्धति यह रही है कि प्रथमत. ग्रन्थ के विवक्षित श्लोक आदि का नपे तुले शब्दों मे शब्दानुवाद करते हुए यदि उसमे कही कुछ विशेष शब्दार्थ की आवश्यकता दिखी तो उसे दो डैशो (—) के मध्य मे स्पष्ट कर देना और तत्पश्चात् वाक्यगत पदों की गम्भीरता को देखकर व्याख्या के रूप मे तद्गत ग्रन्थकार के आशय को उद्घाटित कर देना।

मु० सा० कुशाग्रबुद्धि तो थे ही, साथ ही वे अध्ययनशील भी थे। जब तक वे किसी ग्रन्थ का मननपूर्वक पूर्णतया अध्ययन नही कर लेते तब तक उसके अनुवादादि में प्रवृत्त नही होते थे। आवश्यकतानुसार वे एक-दो बार ही नहीं, बीसो बार ग्रन्थ को पढते थे[1]। साथ ही ग्रन्थ में जहाँ-तहाँ प्रयुक्त विभिन्न शब्दो के अभीष्ट आशय के ग्रहण करने का भी पूरा विचार करते थे। कारण कि इसके बिना ग्रन्थ के मर्म को उद्घाटित नही किया जा सकता।

उदाहरणार्थ समीचीन-धर्मशास्त्र—उनके रत्नकरण्डश्रावकाचार के भाष्य—को ही ले लीजिये। वहाँ श्लोक २४ में 'पाषण्डी' शब्द का प्रयोग हुआ है[2]। इसका प्राचीन

---

१. योगसार-प्राभृत की प्रस्तावना (पृ० २५) में उन्होंने स्वयं उस ग्रन्थ के सौ से भी अधिक बार पूरा पढ़ जाने की सूचना की है।

२. सग्रन्थारम्भ-हिंसानां संसाराऽऽवर्तवर्तिनाम्।
पाषण्डिना पुरस्कारो ज्ञेयं पाषण्डिमोहनम्॥
(स० ध० शा० २४, पृ० ५६)

अर्थ मूल में 'पाप का खण्डन करने वाला (साधु)' रहा है। पर बाद में वह 'धूर्त' या 'ढोंगी' अर्थ में रूढ़ हो गया। अब यदि उसके उपर्युक्त आशय को न लेकर वर्तमानमें प्रचलित धूर्त अर्थको ले लिया जाय तो प्रकृत श्लोकका अर्थ ही असंगत हो जाता है। कारण कि वहां पाखण्डियोंके आदर-सत्कारको पाखण्डिमूढता—जो पाखण्डी नही है उन्हे पाखण्डी समझ लेना—बतलाया है। अब यदि पाखण्डी का अर्थ धूर्त ग्रहण कर लिया जाता है तो उसका अभिप्राय यह होगा कि जो वास्तवमे धूर्त नही है उन्हें धूर्त मानकर उनका धूर्तों जैसा आदर-सत्कार करना, इसका नाम पाखण्डिमूढता है। यह अर्थ प्रकृतमे कितना असगत व विपरीत हो जाता है, यह ध्यान देनेके योग्य है। और जब उसका यथार्थ अर्थ 'पापका खण्डन करनेवाला समीचीन साधु' किया जाता है तब वह प्रकृतमे संगत होता है जो ग्रन्थकारको अभीष्ट भी रहा है। यथा—

जो परिग्रह, आरम्भ और हिंसामे निरत है तथा भवभ्रमण करानेवाले कुत्सित कार्यरूप आवर्त—जलकी चक्राकार घूमनेरूप भँवर—में फसे हुए है ऐसे वेषधारी साधुओंको यथार्थ साधु समझकर उनका यथार्थ साधुओके समान आदर-सत्कार करना, इसका नाम पाखण्डितमूढता—पापप्रध्वंसक यथार्थ साधुविषयक अज्ञान—है[१]।

इससे पाठक समझ सकते है कि श्रद्धेय मुख्तार साहब कितने तलस्पर्शी अध्येता थे। विवक्षित ग्रन्थकी व्याख्याके लिये उन्होंने उसके समकक्ष अन्य अनेक ग्रन्थोंका गम्भीरतापूर्ण अध्ययन किया है। इसीसे वे व्याख्येय ग्रन्थोमे जहां-तहा तुलनात्मकरूपसे अन्य कितने ही ग्रन्थोके उद्धरण दे सके हैं। साथ ही उन्होने महत्त्वपूर्ण प्रस्तावनाओमे भी इस मर्मको उद्घाटित किया है। पर्याप्त चिन्तनके साथ ही उन्होने विवक्षित श्लोक आदि की व्याख्या की है। ग्रन्थके मर्मको प्रस्फुटित करनेके लिये जहा जितना आवश्यक था उतना ही उन्होंने लिखा है—अनावश्यक या ग्रन्थके बाह्य उन्होंने कुछ भी नही लिखा।

मुख्तार सा० का यह कार्य इतना विस्तृत है कि उस सबका परिचय कराना अशक्य है। यहां मैं केवल उनके अन्तिम भाष्य—योगसार-प्राभृतकी व्याख्या—का संक्षेपमे परिचय करा देना चाहता हूँ। यह भाष्य उन्होने लगभग ८५-८६ वर्षकी अवस्थामे लिखा है। उसके पढ़नेसे अनुमान किया जा सकता है कि इस वृद्धावस्थामे भी—जब कि बहुतोंकी बुद्धि व इन्द्रियां काम नही करतीं—उनकी ग्रहण-धारणशक्ति कितनी प्रबल रही है।

इसकी प्रस्तावना (पृ० १७-१९) में उन्होने ग्रन्थके 'योगसार-प्राभृत' इस नामकी सार्थकताको प्रकट करते हुए बतलाया है कि यह नाम योग, सार और प्राभृत इन तीन शब्दोंके योगसे निष्पन्न हुआ है। इनमे योग शब्दके अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए नियमसार (गा० १३७-३९) के आधारसे बतलाया है कि आत्माको रागादिके परित्याग और समस्त सकल्प-विकल्पोके अभावमे जोड़ना—उससे सयुक्त करना, इसका नाम योग है। साथ ही विपरीत अभिप्रायको छोड़कर जिनोपदिष्ट तत्त्वोंमे आत्माको संयुक्त करना, यह भी योग कहलाता है। यह योग शब्दका अर्थ 'युनक्ति आत्मानमिति योग.' इस निरुक्तिके अनुसार किया गया है। इसका फलितार्थ यह हुआ कि रागादिके साथ समस्त संकल्प-विकल्पोंको छोड़कर तत्त्वविचारमें सलग्न होना, इस प्रकारकी प्रशस्त ध्यानरूप प्रवृत्तिका नाम योग है।

दूसरा जो सार शब्द है उसका अर्थ विपरीतताका परिहार—यथार्थता—है (नि० सा० ३)। इस प्रकार 'योगसार' का अर्थ हुआ—विपरीततासे रहित योगका यथार्थ स्वरूप। इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ, स्थिरांश, सत् और नवनीत; इन अर्थोंमे भी उक्त सार शब्दका प्रयोग देखा जाता है। तदनुसार 'योगसार' का अर्थ 'योगविषयक कथनका नवनीत' समझना चाहिये। जिस प्रकार दहीको बिलोकर उसके सारभूत अश नवनीतको निकाल लिया जाता है उसी प्रकार अनेक योगविषयक ग्रन्थोका मन्थन करके उनके सारांशरूप प्रकृत योगसार ग्रन्थ है।

तीसरा शब्द प्राभृत है, जिसका अर्थ 'भेंट' होता है। तदनुसार जिस प्रकार किसी राजा आदिके दर्शन लिये जानेवाला व्यक्ति उसे भेट करनेके लिये कुछ न कुछ सारभूत वस्तु ले जाता है उसी प्रकार परमात्मारूप राजाका दर्शन करनेके लिये भेंटरूप यह ग्रन्थकारका प्रकृत ग्रन्थ है।

---

१. देखिये समीचीन-धर्मशास्त्र मूल पृ० ५९ और प्रस्तावना पृ० ९-११।

निष्कर्ष यह हुआ कि यथार्थ योगस्वरूपका प्ररूपक यह योगसार-प्राभृत ग्रन्थ अध्येताके लिये परमात्माका साक्षात्कार करनेवाला है।

जयधवला (१, पृ० ३२५) के अनुसार प्राभृत (प्र+आभृत) वह होता है जो प्रकृष्ट अर्थात् सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर द्वारा प्रस्थापित हुआ है, अथवा प्रकृष्ट अर्थात् विद्यास्वरूप धनसे सम्पन्न ऐसे आरातीय आचार्योंके द्वारा धारण किया गया है—जिसका व्याख्यान किया गया है—या पूर्व परम्परासे जो लाया गया है।

यह है मुख्तार सा० की सूक्ष्म दृष्टि जो ग्रन्थकारके हार्दको स्पर्श कराती है। इस ग्रन्थ-नामकी यथार्थतामें ग्रन्थकारको योग शब्दसे उपर्युक्त प्रशस्त ध्यान ही अभीष्ट रहा है। यथा—

विविक्तात्मपरिज्ञानं योगात् सजायते यत।
स योगो योगिभिर्गीतो योगनिर्धूतपातकैः॥
यो० सा० प्रा० ६-१०

अर्थात् योगसे कर्म-कालिमाको धो डालनेवाले योगियो ने योग उसे ही कहा है जिसके आश्रयसे विविक्त—समस्त पर भावोंसे भिन्न शुद्ध—आत्मतत्त्वका बोध होता है। इस प्रकार चूंकि वह आत्मावबोध प्रशस्त ध्यानसे ही सम्भव है, अतः वही प्रकृत मे ग्राह्य रहा है।

इस प्रकार अपने उक्त सार्थक नामके अनुसार योगस्वरूपकी प्ररूपणा करनेवाला प्रस्तुत ग्रन्थ अतिशय मनोमोहक है; उसकी भाषा सरल व सुललित है, विषयके प्रतिपादनकी शैली भी उत्कृष्ट है। ग्रन्थकार श्री अमितगतिने भगवान् कुन्दकुन्दके समस्त आध्यात्मिक साहित्यका मनन कर तदनुसार ही इस ग्रन्थको रचा है। उसके बहुतसे श्लोकोंमें समयसारादि ग्रन्थोंकी छाया स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती है। इसे भाष्यकारने तुलनात्मकरूपसे कही अपनी व्याख्याके मध्यमें और कही टिप्पणीके रूपमें इतर ग्रन्थगत समान उद्धरणोंको देकर स्पष्ट भी कर दिया है।

ग्रन्थका प्रमुख विषय योग है। उसके विवेचनके लिये जिन प्रासंगिक विषयोंका—जीवाजीवादि तत्त्वोंका—विवेचन आवश्यक प्रतीत हुआ उनका भी वर्णन ग्रन्थमें कर दिया गया है। तदनुसार ग्रन्थ इन नौ अधिकारोंमे विभक्त है—(१) जीवाधिकार, (२) अजीवाधिकार, (३) आस्रवाधिकार, (४) बन्धाधिकार, (५) सवराधिकार, (६) निर्जराधिकार, (७) मोक्षाधिकार और (८) चारित्राधिकार। प्रतियों मे नौवें अधिकारका कोई विशेष नाम नहीं उपलब्ध हुआ—उसका उल्लेख प्रायः 'नवमाधिकार' के नामसे हुआ है। भाष्यकारने उसका निर्देश 'चूलिकाधिकार' नामसे किया है। इसका स्पष्टीकरण उन्होंने इस प्रकारसे किया है—

दूसरे अधिकारोकी तरह उसका कोई खास नाम नहीं दिया गया, जब कि ग्रन्थसन्दर्भकी दृष्टिसे उसका दिया जाना आवश्यक था। वह अधिकार सातो तत्त्वों तथा सम्यक्चारित्र जैसे आठ अधिकारोके अनन्तर 'चूलिका' रूपमें स्थित है—आठो अधिकारोके विषयको स्पर्श करता हुआ उनकी कुछ विशेषताओंका उल्लेख करता है—और इसलिये उसका नाम यहा 'चूलिकाधिकार' दिया गया है। जैसे किसी मन्दिर (भवन) की चूलिका—चोटी—उसके कलशादिके रूपमे स्थित होती है उसी प्रकार 'योगसार-प्राभृत' नामक इस ग्रन्थ-भवनकी चूलिका—चोटी—के रूपमे यह नवमा अधिकार स्थित है, अत इसे 'चूलिकाधिकार' कहना समुचित जान पड़ता है।

(प्रस्तावना पृ० २५)

ग्रन्थगत समस्त श्लोकसख्या ५४० है। विषयका विवेचन अधिकारोके नामानुसार यथास्थान रोचक आध्यात्मिक पद्धतिसे किया गया है। उसका परिचय भाष्यकारने प्रस्तावना पृ० २५-३१ मे श्लोकसख्याके निर्देशपूर्वक स्पष्टतासे करा दिया है।

प्रथम जीवाधिकारके अन्तर्गत आत्मा और ज्ञानके प्रमाण तथा ज्ञानकी व्यापकताको बतलानेवाला निम्न श्लोक प्राप्त होता है—

ज्ञानप्रमाणमात्मानं ज्ञान ज्ञेयप्रमं विदुः।
लोकालोकं यतो ज्ञेयं ज्ञानं सर्वगत ततः॥१६॥

यह श्लोक प्रवचनसार गा० १-२३ का प्रायः छायानुवाद है[१]। इस श्लोककी व्याख्या मुख्तार सा० ने सरलतापूर्वक विस्तारसे की है। आत्मा ज्ञानप्रमाण क्यों है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने यह बतलाया है कि

१. आदा णाणपमाण णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं।
णेय लोगालोगं तम्हा णाणं तु सव्वगयं॥

यदि आत्माको ज्ञानसे—क्षायिक अनन्त केवलज्ञानसे—बड़ा माना जाय तो उसका वह बढ़ा हुआ अंश ज्ञानविहीन होनेसे अचेतन (जड) ठहरेगा। तब वैसी अवस्थामे वह ज्ञानस्वरूप कैसे माना जा सकता है ? इसके विपरीत यदि उसे ज्ञानसे छोटा माना जाता है तो उस आत्मासे ज्ञानका जितना अंश बढ़ा हुआ होगा वह स्वाश्रयभूत आत्माके बिना निराश्रय ठहरता है। सो यह सम्भव नही है, क्योकि गुण कभी गुणी (द्रव्य) के विना नही रहता है। इससे सिद्ध है कि आत्मा ज्ञानके प्रमाण है—न उससे बड़ा है और न छोटा भी[1]।

आगे वह ज्ञान ज्ञेय—अपने विषयभूत लोक-अलोक—प्रमाण है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए व्याख्यामें लोक और अलोकके स्वरूपको दिखलाकर कहा गया है कि ज्ञेय तत्त्व लोक और अलोक है, कारण कि उनसे भिन्न अन्य किसी ज्ञेय पदार्थका अस्तित्व ही सम्भव नहीं है। इसका भी कारण यह कि जो ज्ञानका विषय है वही तो ज्ञेय कहा जाता है। इस प्रकार ज्ञानकी सीमाके बाहिर लोक और अलोक को छोड़कर अन्य किसी ज्ञेयका जब अस्तित्व सम्भव नही है तब यह स्वय सिद्ध है कि ज्ञान अपने विपयभूत लोक-अलोकके ही प्रमाण है।

इस प्रकार जब यह सिद्ध हो गया कि आत्मा ज्ञान प्रमाण और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है तब चूकि अलोक सर्वव्यापक है, अतएव उसको विषय करनेवाला ज्ञान भी सर्वगत सिद्ध होता है। इसका यह तात्पर्य निकला कि आत्मा अपने ज्ञान गुणके साथ सर्वव्यापक होकर लोकके साथ अलोकको भी जानता है। यह स्थिति सर्वज्ञताको प्राप्त सभी केवलज्ञानियोकी समझना चाहिये।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आगममे जब जहा-तहा आत्मा—संसारी आत्मा—को अपने प्राप्त शरीरके प्रमाण ही बतलाया गया है, तथा मुक्त जीवोंके आत्मप्रदेश अन्तिम शरीरके प्रमाणसे कुछ हीन ही रहते है, यह भी कहा गया है; तब उस आत्माको सर्वगत कहना कैसे संगत होगा ? इसके समाधानस्वरूप व्याख्यामे यह स्पष्ट किया गया है कि मुक्तात्मायें सभी वस्तुत: स्वात्मस्थित[2]—अपने अन्तिम शरीरके आकारमे विद्यमान आत्मप्रदेशोंमे ही स्थित—है, उनके बाहिर उनका अवस्थान नही है, फिर भी आत्माको जो सर्वगत कहा गया है वह औपचारिक है।

इस उपचारका कारण यह है कि ज्ञान उस दर्पणके समान है जिसमे पदार्थ प्रतिबिम्बित होते है[3]। अर्थात् दर्पण जैसे न तो पदार्थोंके पास जाता है और न उनमे प्रविष्ट ही होता है, तथा वे पदार्थ भी न तो दर्पणके पास आते है और न उसमे प्रविष्ट ही होते है; फिर भी वे पदार्थ उसमे प्रतिबिम्बित होकर तद्गतसे दिखते अवश्य है, इसी प्रकार सर्वज्ञका ज्ञान भी न तो पदार्थोके पास जाता है और न उनमे प्रविष्ट ही होता है, तथा पदार्थ भी न ज्ञानके पास आते है और न उसमे प्रविष्ट भी होते है; फिर भी वे उस ज्ञानके विषय अवश्य होते है—उसके द्वारा निश्चित ही जाने जाते है। यह वस्तुस्वभाव ही है—जिस प्रकार दर्पण और पदार्थोकी इच्छाके बिना ही उसमे उनका प्रतिबिम्ब पड़ता है उसी प्रकार ज्ञान और पदार्थोकी इच्छाके बिना ही उस केवलज्ञानके द्वारा अलोकके साथ लोकमे स्थित सभी पदार्थ जाने जाते है। इस प्रकार विषय की व्यापकता से विषयी ज्ञान को भी सर्वव्यापक कहा गया है[4]।

---

१. इस स्पष्टीकरणकी आधारभूत प्रवचनसार की अगली ये तीन गथाये रही है—

णाणप्पमाणमादा ण हवदि जस्सेह तस्स तो आदा।
हीणो वा अधिगो वा णाणादो हवदि धुवमेव ॥२४॥
हीणो जदि सो आदा तण्णाणमचेदण ण जाणादि।
अधिगो वा णाणादो णाणेण विणा कहं णादि ॥२५॥
सव्वगदो जिणवसहो सव्वे वि य तग्गया जगदि अट्ठा।
णाणमयादो य जिणो विसयादो तस्स ते भणिदा ॥२६॥

२. स्वात्मस्थित: सर्वगत: समस्तव्यापारवेदी विनिवृत्तसग.।
प्रवृद्धकालोऽप्यजरो वरेण्य: पायादपायात् पुरुष: पुराण: ॥
(विषापहार १)

३. नम: श्री-वर्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकाना त्रिलोकाना यद्विद्या दर्पणायते ॥
(र० क० श्रा० १)

तज्जयति परं ज्योति: समं समस्तैरनन्तपर्यायै:।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र ॥
(पु० सि० १)

४. इस व्याख्या का आधार आचार्य अमृतचन्द्र की वृत्ति

दूसरे अजीवाधिकार मे तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार धर्मादि द्रव्यों के उपकार को बतलाकर (१५-१७) आगे यह कहा गया है—

**पदार्थानां निमग्नानां स्वरूपं[-पे] परमार्थतः ।**
**करोति कोऽपि कस्यापि न किंचन कदाचन ॥**

यहा 'परमार्थत.' पद पर बल देते हुए व्याख्या मे उसका स्पष्टीकरण यह किया गया है कि यह जो उपकार का कथन है वह व्यवहार नय के आश्रित है । निश्चयनय की अपेक्षा सभी द्रव्य अपने-अपने स्वरूप मे निमग्न होकर स्वभाव परिणमन ही करते है—उनमें से कोई भी द्रव्य किसी अन्य द्रव्य का उपकार-अपकार नही करता । इन द्रव्यों मे धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार द्रव्य तो सदा ही अपने स्वभाव में परिणत रहते हैं, इसलिए वे वस्तुतः किसी का भी उपकार नही करते । जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य वैभाविकी शक्ति से सहित होने के कारण स्वभाव और विभाव दोनों प्रकार का परिणमन करते है । जीवो मे जो विभाव परिणमन होता है वह कर्म तथा शरीरादि के सम्बन्ध से ससारी जीवों में ही होता है—मुक्त जीवो मे कर्म और शरीर का अभाव हो जाने के कारण वह नही होता, उनमे केवल स्वभाव परिणमन ही होता है । पुद्गलों मे से परमाणुओ मे स्वभाव परिणमन और स्कन्धो मे विभाव परिणमन होता है ।

पचास्तिकाय (७४-७५)आदि ग्रन्थो मे जो पुद्गल के स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु इस प्रकार चार भेद निर्दिष्ट किये गये है तथा उनका स्वरूप भी कहा गया है वह उसी प्रकार प्रकृत ग्रन्थ में भी (२-१६) सक्षेप से कहा गया है । इसकी व्याख्या मे भाष्यकार ने उसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि सख्यात, असख्यात, अनन्त अथवा अनन्तानन्त परमाणुओ के पिण्डरूप वस्तु को स्कन्ध कहा जाता है । स्कन्ध का एक-एक परमाणु करके खण्ड होते-होते जब वह आधा रह जाता है तब वह देश स्कन्ध कहलाता है । इसी क्रम से जब यह देश स्कन्ध आधा रह जाता है तब वह प्रदेश स्कन्ध कहलाता है । प्रदेश स्कन्ध के खण्ड होते-होते जब उसका खण्ड होना सम्भव नही रहता तब वह परमाणु कहलाता है । इस प्रकार मूल स्कन्ध के उत्तरवर्ती और देश स्कन्ध के पूर्ववर्ती जितने भी खण्ड होंगे उन सबको स्कन्ध ही कहा जाता है । इसी प्रकार देश स्कन्ध आदि नामो का क्रम भी जानना चाहिये[1] ।

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि मुख्तार सा० ने जितने ग्रन्थों का भाष्य लिखा है वह उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचायक है—वे इस महत्त्वपूर्ण कार्य में सर्वथा सफल रहे है । उनके इन भाष्यों से ग्रन्थों का महत्त्व और भी बढ गया है । इन भाष्यो के आधार से सर्वसाधारण उन ग्रन्थो के मर्म को भली भाति समझ सकते है ।

---

रही है—ज्ञान हि त्रिसमयावच्छिन्नसर्वद्रव्य-पर्याय-रूपव्यवस्थितविश्वज्ञेयाकारानाक्रामत् सर्वगतमुक्तम्, तथाभूतज्ञानमयीभूय व्यवस्थितत्वाद् भगवानपि सर्वगत एव । एव सर्वगतज्ञानविषयत्वात् सर्वेऽर्था अपि सर्वगतज्ञानाव्यतिरिक्तस्य भगवतस्तस्य ते विषया इति भणितत्वात् तद्गता एव भवन्ति । तत्र निश्चय-नयेनानाकुलत्वलक्षणसौख्यसंवेदनत्वाधिष्ठानत्वावच्छि-न्नात्मप्रमाणज्ञानस्वतत्त्वापरित्यागेन विश्वज्ञेयाकारा-ननुपगम्यावबुध्यमानोऽपि व्यवहारनयेन भगवान् सर्व-गत इति व्यपदिश्यते । तथा नैमित्तिकभूतज्ञेयाकारा-नात्मस्थानवलोक्य सर्वेऽर्थास्तद्गता इत्युपचर्यन्ते, न च तेषा परमार्थतोऽन्योन्यगमनमस्ति, सर्वद्रव्याणां स्व-रूपनिष्ठत्वात् । अयं क्रमो ज्ञानेऽपि निश्चेयः । (प्रवचनसार १-२६) ।

१. इस व्याख्या का आधार पचास्तिकाय की यह जयसेन वृत्ति रही है—समस्तोऽपि विवक्षितघट-पटाद्यखण्ड-रूपः सकल इत्युच्यते, तस्यानन्तपरमाणुपिण्डस्य स्कन्दसज्ञा भवति । तत्र दृष्टान्तमाह—षोडशपरमाणु-पिण्डस्य स्कन्दकल्पना कृता तावत् एकैकपरमाणोर-पनयेन नवपरमाणुपिण्डे स्थिते ये पूर्वविकल्पा गतास्ते-ऽपि सर्वे स्कन्दा भण्यन्ते । अष्टपरमाणुपिण्डे जाते देशो भवति, तत्राप्येकैकापनयेन पञ्चपरमाणुपर्यन्तं ये विकल्पा गतास्तेषामपि देशसज्ञा भवति । परमाणु-चतुष्टयपिण्डे स्थिते प्रदेशसज्ञा भण्यते, पुनरप्येकैका-पनयेन द्वयणुकस्कन्दे स्थिते ये विकल्पा गतास्तेषामपि प्रदेशसंज्ञा भवति ।·········परमाणुश्चैवाविभागीति । (पंचास्तिकाय ७५)

# वह युग-सृष्टा सन्त ?

मनु ज्ञानार्थी

वह सरसावा का सन्त !
तप: पूत व्यक्तित्व !
तिल-तिल कर आत्माहुत मनीषि !
जब-जब समाज की स्मृति के
जर्जर-कुरूप-वातायन में आया है
मैं उदास हो गया हूँ ।
जिस ऊर्जस्ति मेधा ने
विस्मृति के गर्भ में खोया हुआ
आचार्य समन्तभद्र जैसा नर-शार्दूल,
दीमकों का आहार बनने से बचाया
और संस्कृति का दर्पण साहित्य
इतना दमकाया, इतना उद्भासित किया
कि अनुदार-चेता वाग्मियों को भी स्वीकारना पड़ा —
"श्रमण-संस्कृति भारत की अक्षय-निधि है";
एक दिन हाय ! जब वह
भास्कर-सा भास्वर
जगमगा रहा था साहित्य के गगन-में
चिर-कुटला दिल्ली,
भोगभूमि दिल्ली,
वही दिल्ली जिसने गाँधी को भी नहीं जीने दिया,
वैभव के प्रकोष्ठ में घेर कर बैठ गयी उसे
और नागिन-सी कुण्डली मार कर
लपेट लिया उस साहित्य-देवता को !

और, चिर-सामाजिक-व्यक्तित्व के मुखौटे,
जो न कभी सामाजिक थे और न आज हैं,
दंश मार-मार कर चूसने लगे
चिर-संचित अशेष तपोबल-अमृत उसका ।
वैभव के पुजारियों की कारा में,
छली गयी सरस्वती, बन्दिनी बना ली गयी !
अफसोस ! एक व्यवस्था ने उसे
सामान्य आदमी की तरह भी नहीं जीने दिया !
हे युगवीर !
जब-जब तुम्हें सामाजिक-व्यक्तित्व के मुखौटों में छिपे
भेड़ियों ने स्मरण किया है
मेरी अशेष चेतना तिलमिला उठी है
और मैं उस व्यवस्था के प्रति
विद्रोह करने को पागल हो उठा हूँ
जो आदमी को आदमी की तरह नहीं जीने देती ।
लेकिन कितनी विवशता है—
जो निष्ठुर हाथ युग-चेतना को निष्प्राण बना देते हैं
वही श्रद्धा-सुमन अर्पित करने वालों में
मगरमच्छ के आँसू लिये प्रथम पंक्ति में खड़े होते हैं ?
इतिहास अपने आप को दुहराता है,
शायद, कभी कोई नयी पीढ़ी आयेगी
और तुम्हें भी आचार्य समन्तभद्र की तरह
दीमकों का आहार बनने से बचायेगी ।

★

एटा मे विद्वद् परिषद् के अध्यक्ष डा० नेमचन्दजी शास्त्री अभिनन्दन पत्र समर्पित करत हुए

वीरसेवा मन्दिर में कान जी स्वामी के अभिनन्दन के समय मुख्तार सा० कान जी स्वामी के साथ बैठे दिखाई दे रहे है। और प्रेमचन्द जैनावाच अपना भाषण दे रहे है।

अभिनन्दन के समय एटा में मुख्तार सा० और विद्वद् परिषद् के मंत्री पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य बैठे हुए दिखाई दे रहे है।

सूर्य प्रकाश ग्रन्थ की समीक्षा-लेखक जुगलकिशोर मुख्तार का सन् १६३४ में लिया गया चित्र से पूर्व
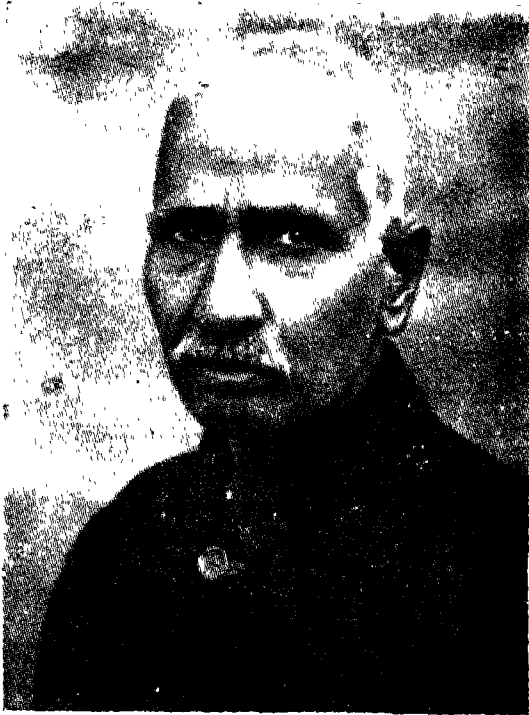
आ० जुगलकिशोर मुख्तार
५ दिसम्बर सन् १६६३ में
सहारनपुर में सम्मान समारोह
के समय लिया गया चित्र

# "युगवीर" का राष्ट्रीय दृष्टिकोण

**जीवनलाल जैन बी. ए. बी. एड.**

"भारत की कीर्तिलता दसों दिशाओं मे व्याप्त थी। उसका विज्ञान कला-कौशल और आत्म-ज्ञान अन्य समस्त देशों के लिए अनुकरणीय था······पर खेद है कि आज भारत वह भारत नहीं। आज भारत का मुख समुज्जवल होने के स्थान मे मलिन तथा नीचा है।"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि राष्ट्रभक्त जब अपने अतीत के स्वर्णिम प्रभात पर दृष्टिपात कर वर्तमान की धूल धूसरित सध्या-बेला की दीन हीन दयनीय दशा पर विचार करता है तब उसका हृदय पटल विदीर्ण होना स्वाभाविक है। सामान्यतः प्रत्येक नागरिक अपने राष्ट्र हित का चिन्तन करने मे गौरव का अनुभव करता है। युगवीर जी ने राष्ट्रीय चेतना जागृति हेतु तलवार की अपेक्षा कलम को अधिक पसन्द किया है। अतएव उन्होंने साहित्य सृजन मे सलग्न रह समाज तथा राष्ट्र सेवा का दृढ सकल्प कर वैचारिक क्रान्ति द्वारा हृदय परिवर्तन कर मानव कल्याण ही नही अपितु राष्ट्रोद्धार का सामयिक साहसिक एवं प्रशसनीय कदम आगे बढ़ाया है। आपने साहित्य के माध्यम से बाह्याडम्बर तथा सिर्फ परम्परा निर्वाह करने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित करते हुए सरल निर्मल, निःस्वार्थ दया, करुणा ममता, सहानुभूति, सहयोग आदि मानवीय वृत्तियो से परिपूर्ण विशाल हृदयशाली जन मानस निर्मित करने की प्रेरणा प्रवाहित की है।

व्यक्ति से समाज तत्पश्चात राष्ट्र निर्माण होता है, अतएव राष्ट्रीय आधारशिला व्यक्ति के व्यक्तित्व को उभारने की चेष्टा युगवीर जी ने की है। व्यक्ति की हार्दिक निर्मलता शुद्धविचार एव आचार से ही समाज मे न्याय-सदाचार एवं सद्व्यवस्था के प्रति निष्ठा उत्पन्न होगी, तब समाज न केवल स्वच्छ एवं स्वस्थ रहेगा अपितु विशुद्ध राष्ट्रीयता का पोषक भी बनेगा इसी लिये मानवीय गुणों को तिलांजली देने वाले लोगो को जहाँ कहीं कवि ने अच्छी फटकार लगाई है वहीं उनका दृढ़ता पूर्वक सामना करने के लिए अपने आत्मबल पर विश्वास रखते हुए आत्म-बलिदान तक करने के लिए तैयार रहने की सलाह दी है।

**"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"**

जो क्रिया कलाप मुझे पसन्द नही उनका प्रयोग दूसरे के प्रति न करना मानवीय प्रेम की प्रथम सीढी है। स्वतः के कृत्यों द्वारा सयम एव साहस का परिचय देते हुए समाज के अन्य विभिन्न प्रकार के घटको हृदय-कपट खोल कर प्रेम रस संचारित करते हुए एकाकार होने का प्रयत्न करना राष्ट्रीय एकता एव सगठन के लिए परमावश्यक है। आत्मबल का अवलम्बन प्राप्त कर आत्म बलिदान का दुधार हाथ मे लेकर समाज एव राष्ट्र को वैचारिक क्रान्ति द्वारा उसमे समाहित विकृतियो का परिहार करने प्रत्येक राष्ट्रीय नागरिक को सदैव तैयार रहना चाहिए।

युगवीर जी की कथनी एव करनी में भेद नहीं किया जा सकता है। वे न केवल अपने विचारों से ही समाज में परिवर्तन लाना चाहते थे अपितु उसे स्वतः के जीवन मे क्रियात्मक रूप देकर समाज के समक्ष आदर्श प्रस्तुत किया करते थे। वे तत्कालीन राजनैतिक एव राष्ट्रीयता से ओत प्रोत-वातावरण के प्रभाव से मुक्त न रह सके। आपके हृदय मे देश भक्ति कूट कूट कर भरी हुई थी आप स्वय विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार कर स्वय चरखे पर सूत कात कर स्वावलम्बन व्रत पालन करते हुए नियमित शुद्ध खादी धारण कर न केवल राष्ट्रीयता का ही परिचय देते थे अपितु स्वतत्रता-सग्राम के सैनिकों तथा उनके परिवार जनों को समयानुसार तन मन से पूर्ण सहयोग निःस्वार्थ भाव से दिया करते थे। आप अपने लेखों से लोगों का न केवल उत्साहवर्धन ही किया करते थे बल्कि साम-यिक सूझ बूझ द्वारा अनेक समस्याओं का हल भी निकाल कर दिया करते थे।

"यह शरीर नश्वर है ······हमारी इच्छा से यह प्राप्त नहीं हुआ और न हमारे रक्खे यह रह सकेगा······अब भारत को पूर्ण स्वाधीन बनाकर छोड़ेगे। इसी मे सब कुछ श्रेय और इसी में देश कल्याण है।" इस प्रकार स्फूर्ति दायक उद्‌बोधन प्राप्त कर ऐसा कौन होगा जिसका हृदय स्वातंत्र्य समर मे कूदने के लिए न मचल उठता हो। साथ ही राष्ट्र हित की भावना से सम्पूर्ण देश में शान्ति एवं व्यवस्था बनी रहे भय आतक, एव अराजकता न फैले इसके लिए समस्त लोगों को समय समय पर चेतावनी देते रहे। विदेशी सरकार के दमन चक्र का साहसपूर्वक सामना करने के लिए आप कहा करते थे—

"सरकारी दमन के प्रति हमारी नीति 'शठ' प्रति शाठ्य' न होकर रमे पशुबल का उत्तर आत्मबल से देना है इसी में हमारी विजय निहित है। हमे क्रोध को क्षमा से अन्याय को न्याय से अशान्ति को शान्ति से और द्वेष को प्रेम से जीतना चाहिए तभी स्वराज्य रसायन सिद्ध हो सकेगी।"

गाँधी जी के अछूतोद्धार कार्यक्रम के प्रति आपके हृदय में पूर्ण श्रद्धा थी। आपके विचारानुसार अछूत जन्म से नही कर्म से होता है। मलमूत्र स्पर्श से अस्पर्श्य नहीं हो सकता है इसके सम्बन्ध मे आपने अत्यन्त सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

**'गर्भवास 'औ' जन्म समय में कौन नहीं अस्पृश्य हुआ।**
**कौन मलों से भरा नहीं ? किसने मलमूत्र न साफ किया"**
**किसे अछूत जन्म से तब फिर कहना उचित बताते हो।**
**तिरस्कार भंगी चमार का करते क्यों न लजाते हो।।**

राष्ट्रोन्नति हेतु स्वास्थ एवं बलिष्ठ नवयुवकों की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए आपने गौ संवर्धन की सिफारिश जोरदार शब्दों में की है। आपके कथनानुसार कमजोर नवयुवक पीढ़ी का कारण गोवध तथा घी दुग्ध की अशुद्धि तथा उनकी मंहगाई है। अतएव इन सब के निराकरण हेतु प्रत्येक सद्‌गृहस्थ नागरिक से गौ संवर्धन में पूर्ण सहयोग देने का निवेदन युगवीर जी यदा कदा करते रहे हैं जिससे राष्ट्र को पुनः भीम अर्जुन सदृश्य राष्ट्रीय पुरुष प्राप्त हो सकें।

देश के आर्थिक विकास एवं औद्योगिक प्रगति हेतु धनिक वर्ग के सहयोग के लिए उनका ध्यान उनके कर्त्तव्यों के प्रति बड़ी चतुराई से आकर्षित किया है।

**"भारतवर्ष तुम्हारा, तुम हो भारत के सत्पुत्र उदार।**
**फिर क्यों देश विपत्ति न हरते, करते इसका बेड़ा पार।।**

\+ + + +

**चक्कर में विलास प्रियता के मत भूलो अपना देश।**

\+ + + +

**कल कारखाने खुलवाकर मेटो भारत के क्लेश।**

स्वतंत्रता को प्राणों से प्रिय मान कर उसकी रक्षा करना किसी भी समाज तथा व्यक्ति का सर्व प्रथम कर्त्तव्य माना गया है। जो जाति समाज अथवा व्यक्ति अपनी राष्ट्रीयता का सम्मान करते हुए प्राण निछावर करने मे गौरव की अनुभूति करता है वह सम्माननीय है। स्वतन्त्रता अमूल्य निधि है। उसकी सुरक्षा हमारा परम कर्त्तव्य है। उसकी अमरता राष्ट्रीय एकता में निहित है जिसका आधार "भाषा" है। श्री मुख्तार जी हिन्दी को राष्ट्र भाषा मानकर उसके प्रचार एवं प्रसार मे जीवन पर्यंत लगे रहे। इस कार्य हेतु उन्होंने प्रत्येक देशवासी से अपील की है—"राष्ट्र भाषा के प्रचार के लिए हिन्दी में लिखें, हिन्दी मे बोले पत्र व्यवहार हिन्दी में हो, अधिक से अधिक हिन्दी पुस्तकों तथा समाचार पत्रों का प्रकाशन पठन तथा मनन हो।" इस प्रकार वर्तमान भाषा समस्या का सरल हल निकाल कर राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त कर युगवीर जी सचमुच युग निर्माता के पद पर आसीन हुए हैं।

आगे चल कर उनका दृष्टि कोण केवल समाज अथवा राष्ट्र के सकुचित क्षेत्र तक सीमित नही रह सका उनका उदार हृदय विश्व कल्याण की भावना से भर उठा तभी तो उनकी भावना रही—

**इति भीति व्यापे नहीं, जग में वृष्टि समय पर हुआ करे**
**धर्म निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।**
**रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।**
**परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे।।**

●

# साहित्य तपस्वी स्व० मुख्तार सा०

**अगरचन्द नाहटा**

मनुष्य जन्म के समय तो प्रायः एक समान बालक होता है। यद्यपि पूर्व जन्म के संस्कार और अपने समय के वातावरण द्वारा उसका विकास भिन्नता लिये होता है, पर छोटी उम्र तक इतना अधिक अन्तर नही दिखाई देता। ज्यों-ज्यों वह बडा होता चला जाता है, स्वतन्त्र गुणों का विकास अधिक स्पष्ट हो जाता है। फिर भी कई बालक बाल्यावस्था में तो साधारण से लगते हैं। पर आगे चलकर तेज निकल आते है। अपनी प्रतिभा, परिश्रम, सयोग और परिस्थितिया अपना रंग दिखाती है। कभी-कभी तो किसी आकस्मिक सयोग से जीवन धारा पूर्णतः बदल जाती है; एक विलासी व्यक्ति परित्यागी बन जाता एक मूर्ख व्यक्ति पंडित बन जाता है। शारीरिक विकास भी इतना अधिक अन्तर वाला होता है कि एक ही व्यक्ति के समय-समय पर लिये हुए चित्रो से उसे पहचानना कठिन हो जाता है। बाल्यावस्था मे जो दुबला-पतला होता है, वह बड़े होने पर काफी स्थूल याने मोटा-ताजा हो जाता है। नेहरू जी आदि अनेक व्यक्तियों के बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था के अनेक चित्रो को देखते है तो यह कल्पना में भी नही आता कि ये सभी एक ही व्यक्ति के चित्र है। कुछ इसी तरह का आन्तरिक-चित्र स्वर्गीय श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार का भी मुझे दिखाई देता है। साधारणतया मुख्तारगिरी या याने मुख्तारपने का काम या पेशा करने वाले व्यक्ति भिन्न प्रकार के होते है। मुख्तार साहब इस दृष्टि से एक निराले ही व्यक्ति थे। जिन्होंने अपने जीवन के करीब ४० वर्ष साहित्य सेवा में लगा दिये। मुख्तार साहब की संक्षिप्त जीवनी अभी डा० नेमिचन्द्र शास्त्री के द्वारा लिखी हुई, जैन विद्वत्परिषद से प्रकाशित हुई है। उससे अभी तक जो बातें ज्ञात नहीं थी, वे प्रकाश में आई हैं। उनके निकट सम्पर्क मे रहने वाले व्यक्ति और भी बहुत-से अज्ञात तथ्य बतला सकते है। मुख्तार साहब की बहुमुखी प्रतिभा, सतत् अध्ययनशीलता और विशिष्ट लेखन अवश्य ही हमारे लिये एक स्पृहणीय व्यक्तित्वका भव्य चित्र उपस्थित करता है।

मुख्तार साहब का परिचय तो मुझे बहुत पीछे मिला। पर जब मैं जैन पाठशाला में पढता था तभी उनकी 'मेरी भावना' नामक कविता देखने को मिली, और वह बहुत ही अच्छी लगी। ऐसी सुन्दर भावना वाले व्यक्ति 'युग-वीर' सज्ञक कौन है? इसका उस समय कुछ भी पता नही था। जब साहित्य-शोध की रुचि पनपी, तथा अनेक नये नये ग्रन्थो का अध्ययन चालू हुआ और तभी मुख्तार साहब की 'ग्रन्थ परीक्षादि' पुस्तकें पढने में आई। कहाँ 'मेरी भावना' के लेखक मुख्तार साहब और कहाँ 'ग्रन्थ परीक्षा' के लेखक मुख्तार साहब,। कुछ भी ताल-मेल नही बैठ सका। 'ग्रन्थ परीक्षा' मे गहरी छानबीन करके सत्य को बडे नग्न रूप मे उपस्थित किया गया है जो श्रद्धाशील व्यक्तियो के लिए मर्मान्तिक प्रहार और कटु सत्य-सा कहा जा सकता है क्योंकि जिन ग्रन्थो को, जिन आचार्यो की रचना मानते रहे उनको उन्होंने बहुत परवर्ती रचना सिद्ध किया, और जिन विधि-विधान वाले ग्रन्थों को श्रद्धा एव आदर की दृष्टि से देखा जाता था उनमें से रोमांचक बातों को प्रकट मे लाना जिससे उन ग्रन्थो के प्रति धारणा ही बदल जाय, इस प्रकार का क्रान्तिकारी कदम बहुत विरले व्यक्ति ही उठा पाते है। कई व्यक्ति सही बात को जानते भी हैं पर समाज के विद्रोह एवं निंदा के भय से साहस पूर्वक उन्हें प्रकट नहीं कर पाते। जबकि मुख्तार साहब ने 'ग्रन्थ परीक्षा' में बडा निर्भीक और साहसिक कदम उठाया और परीक्षा का एक आदर्श उपस्थित किया। वास्तव में परीक्षक पक्षपात से काम नहीं ले सकता। उसे तो तथ्य पर ही पूर्ण निर्भर रहना पड़ता है।

मुख्तार सा० का वास्तविक परिचय तो मुझे जबसे उनका 'अनेकान्त' पत्र प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ, तभी मिला। 'अनेकान्त' अपने ढंग का निराला मासिक पत्र देखने मे आया। उसमें सम्पादक की सत्य सशोधक वृत्ति विशाल अध्ययन, गम्भीर चिन्तन, जैन साहित्य और शासन की सेवा भावना आदि कई बाते एक साथ देखने को मिली, जिससे मै बहुत प्रभावित हुआ। उनके सूचित अलभ्य ग्रन्थो की खोज का काम भी मुझे बहुत आवश्यक लगा। मुख्तार साहब ने ऐसे कई ग्रन्थों की सूची 'अनेकान्त' मे प्रकाशित की थी जिनका उल्लेख तो मिलता है पर प्रतियों के अस्तित्व का पता नही चलता। इसी तरह मुख्तार साहब के कई लेख तो बहुत ही पठनीय लगे।

उनसे मिलने का प्रसग तो दिल्ली में वीर सेवा मदिर की स्थापना के समय ही मिला। अपने व्यापारिक केन्द्र कलकत्ता व आसाम जाते-आते समय मै दिल्ली मे प्राय. ठहर जाता और 'वीर सेवा मन्दिर' मे जाकर मुख्तार सा० से मिलने की उत्सुकता रहती। इतने बड़े विद्वान् होने की छाप तो मुझ पर पहले से ही अनेकान्त और उनके ग्रन्थों से पड़ चुकी थी, पर वे इतने सरल और प्रेम मूर्ति होंगे, इसकी कल्पना नही थी। मेरे लेख 'अनेकान्त' मे छपने लगे। इससे वे मेरी शोध प्रवृत्ति और रुचि से भलीभाँति परिचित हो चुके थे। अतः प्रथम मिलन मे ही उन्होने बहुत हर्ष व्यक्त किया और इससे मुझे भी बड़ा आनन्द हुआ। फिर तो वीर सेवा मन्दिर उनसे मिलने के लिये जाना एक जरूरी कार्य हो गया और प्रायः जब तक वे दिल्ली मे रहे, मै उनसे मिलने पहुँचता ही रहा।

नये-नये ग्रन्थो की खोज और उन पर प्रकाश डालने के लिए वे सदा तत्पर रहते थे। एक बार मैं जब वीर सेवा मन्दिर गया तो मुझे अजमेर के भट्टारकीय भण्डार से लाई हुई कुछ प्रतियां दिखाई। छोटी या बड़ी कोई भी रचना उन्हे अच्छी लगती तो उसके सम्पादन, अनुवाद एवं प्रकाशन में वे जुट जाते। प्रारम्भ में वे मुझे कुछ सम्प्रदायनिष्ठ लगे, पर मेरे साथ उनका व्यवहार सच्चे स्वधर्मी-वात्सल्य के रूप मे ही रहा।

बीच में मैं एक बार मिलने गया तो कलकत्ते के बाबू छोटेलाल जी जैन भी वही थे। कलकत्ता में छोटेलाल जी से मिलना होता ही रहता था। मुख्तार सा० के वे बड़े भक्त थे। और उन्होने मुख्तार साहब को काफी सहयोग भी दिया। पर आगे चलकर कुछ बातो मे मतभेद हो जाने से उन दोनों को मै दुःखी-सा अनुभव किया। अन्तिम बार जब मुख्तार साहब से मिला तो उन्हें काफी परेशान-सा पाया। उनके इच्छा के अनुरूप कार्य नहीं हो रहा था, इससे वे बडे व्यग्र थे और सस्था के प्रति उदासीन भी नजर आये। मुख्तार सा० बहुत कर्मठ व्यक्ति थे और वीर सेवा मन्दिर की स्थापना द्वारा उन्होने बहुत सुन्दर स्वप्न देखे थे अतः इच्छानुरूप कार्य न होते देख उन्हें दुःख होना स्वाभाविक भी है। यद्यपि वीर सेवा मन्दिर द्वारा अनेकान्त पत्र भी प्रकाशित होता है, दो विद्वान् भी वहाँ कार्यरत हैं। पर मुख्तार सा० के वहाँ रहते हुए जो आकर्षणप्रद बात वहाँ थी वह उनके बाद दिखाई न देना स्वाभाविक ही है। अनेकान्त को जो रूप उन्होंने दिया था उसमे भी परिवर्तन हुआ। और अन्य कार्य जितनी तेजी से हो रहे थे, उनकी गति भी मन्द पड़ गई। फिर भी उनके द्वारा स्थापित सस्था अच्छा कार्य कर रही है। मुख्तार सा० के प्रारम्भ किये हुए लक्षणावली' ग्रन्थ को तो अब शीघ्र ही प्रकाशित किया जाना आवश्यक है।

मुख्तार सा० वृद्धावस्था मे भी जिस तरह कार्यरत थे, दूसरे व्यक्ति विरले ही नजर आते है। ९२ वर्ष की उम्र मे भी उनका स्वाध्याय और लेखन बराबर चलता रहा, यह बहुत ही उल्लेखनीय है। अनेक ग्रन्थो पर उन्होंने गम्भीर विवेचन लिखा। इन वर्षो मे उनका झुकाव अध्यात्मिक ग्रन्थो की ओर अधिक नजर आया। 'पुरातन वाक्य-सूची' को तैयार करने और लेखको का विस्तृत परिचय देने मे उन्हें बहुत अधिक अध्ययन और श्रम करना पड़ा है। विविध विषयों पर उन्होने काफी लिखा है। उनकी सत्यनिष्ठा, अध्ययनशीलता, अटूट लगन और गम्भीर चिन्तन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दान को उन्होंने परिग्रह का प्रायश्चित बतलाया। इस तरह के अनेक नये विचार उनके द्वारा हमें मिले। शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा था अतः विचार भी उच्च थे उन्होंने अपनी सम्पत्ति का बहुत अच्छा सदुपयोग किया। समाज और साहित्य के लिये उनका सर्वस्व दान प्रशंसनीय ही नहीं, अनुकरणीय

# सत्यान्वेषी श्री युगवीर

**कस्तूर चन्द्र जैन, एम. ए. बी. एड.**

जब सुबह होगी है तभी यह निश्चय हो जाता है कि संध्या भी होगी और सुबह दिवंगत होकर अस्त हो जावेगा। परन्तु—जैसा कि देखने मे आता है, कुछ सुबह अस्त हो जाने के उपरान्त भी अपनी विशेषताओ के कारण जन-समूह के लिए सदैव स्मरणीय बना रहता है बहुत कुछ वैसी ही महान आत्माएँ होती है। उनका के सुबह के समान जन्म होता है। और वे एक निश्चित अवधि मे अपनी ज्ञान ज्योति से ससार को प्रकाशित कर अस्त हो जाती है। परन्तु उस विशिष्ट सुबह के समान अपने जीवन-काल मे की गई समाज एव साहित्यिक सेवाओ से ऐसी महान् मान्यताएँ अजर-अमर होकर जन समूह के लिये सदैव स्मरणीय बनी रहती है।

ऐसी स्वर्गीय महान् आत्माओ मे दो जैन महान् आत्माएं इस बीसवी शती मे हुई है, जिन्होने जैनधर्म एव जैन साहित्य के विकास एव सवर्द्धन के लिए ही अपने आपको समर्पित कर दिया था। वे महान् आत्माएँ थीं: स्व० युगवीर जी और स्व० प्रेमी जी।

ये दोनों ही आत्माएँ महान् विद्वान् साहित्यकार और चिन्तनशील थीं। दोनों का जैनधर्म और जैन साहित्य के लिए अनूठा योगदान रहा है, जिसके लिए जैन समाज उनका चिर ऋणी रहेगा। दोनो विद्वान् अपने-अपने ढग के अनूठे विचारक थे। दोनो का अलग-अलग व्यक्तित्व था। प्रेमी जी की जहां जैनधर्म की आस्था मे शिथिलता दिखाई देती है, वहा युगवीर अपार श्रद्धालु। प्रेमी जी ने जहाँ जैनधर्म के दोपो को देखा है, युगवीर जी ने वहाँ दोप निर्देपक उन तथ्यो को न केवल तर्कपूर्ण दृष्टि से बल्कि एक सत्यान्वेषी की दृष्टि से देखा है और अपनी विवेकपूर्वक बुद्धि से उचित समाधान निकालने का प्रयत्न किया है, जिसमे उन्हे पूर्ण सफलता मिली ज्ञात होती है।

युगवीर जी सन्तुलित दृष्टि के धनी थे—जिस सन्तुलित दृष्टि के सम्बन्ध मे साहित्यकारो का कथन है कि "सन्तुलित दृष्टि वह नही है जो अतिवादिताओ के बीच एक मध्यम मार्ग खोजती है, बल्कि वह है जो अतिवादिताओ का आवेग तरल विचारधारा का शिकार नहीं हो जाती और किसी पक्ष के उस मूल सत्य को पकड़ सकती है जिस पर बहुत बल देने और अन्य पक्षो की उपेक्षा करने के कारण उक्त अतिवादी दृष्टि का प्रभाव बढ़ा है। इस सन्तुलित दृष्टि को आगे साहित्यान्वेषी की दृष्टि बताया गया है"[1]। इस उक्ति के अनुसार युगवीर जी साहित्यान्वेषी सिद्ध होते है। उनकी साहित्यान्वेषी दृष्टि की एक झाँकी के दर्शन हमे उनके द्वारा लिखित एक प्रस्तावना मे होते है, जिसका यहाँ सक्षिप्त उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ।

---

१. विचार और वितर्कः पृ० २५३।

---

भी है। जैसा कि मैने अभी अपने 'जैन सन्देश' वाले लेख मे लिखा है, उनकी अन्तिम भावनाओ को हमे शीघ्र ही मूर्त रूप देना चाहिए। अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित नही हो सका तो 'स्मृति ग्रन्थ' ही निकले। वीर सेवा मन्दिर को एक शोध केन्द्र का रूप दिया जाय। दिल्ली मे ऐसी सस्था उचित व्यवस्था करने पर बहुत उपयोगी हो सकती है। उसके ग्रंथालय को समृद्ध बनाया जाय और लोग अधिकाधिक लाभ उठा सके ऐसी सुव्यवस्था की जाय। अन्त मे मै माननीय मुख्तार सा० को सादर श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए मेरे प्रति उनका जो वात्सल्य भाव था उसे स्मरण कर गद्-गद् होता हूँ। वास्तव मे मुख्तार सा० ने अपने जीवन मे इतना काम किया वे व्यक्ति ही नही सस्था बन गये। पुण्य प्रभाव से मुख्तार सा० ने मृत्यु भी अच्छी पाई और स्वास्थ भी ठीक रहा, लगन थी ही अतः वे काफी कार्य कर सके। ★

स्व० प्रेमी जी ने अपने लेख संग्रह में जैन कथाओं के सम्बन्ध में, जैनेतर ग्रन्थों का सहारा लेकर कतिपय ऐसे उद्गार व्यक्त किये हैं, जिन्हें अश्रद्धा मूलक बताया है[१]। प्रेमी जी का कथन है कि ये जैन कथाएँ बहुत पुरानी हैं और उन लोगों द्वारा गढ़ी गई हैं जो ऐसे चमत्कारों से ही आचार्यों और भट्टारकों की प्रतिष्ठा का माप किया करते थे। बेड़ियों को तोडकर कैद मे से बाहर निकल आना साँप काटे हुए पुत्र का जीवित हो जाना आदि ऐसी चमत्कारपूर्ण कथाएँ पिछले भट्टारकों द्वारा गढी हुई प्रचलित हैं जिन्हे प्रेमी जी ने असम्भव और अप्राकृतिक बताया है तथा यह भी स्वीकार किया है कि ऐसी कथाएँ जैन मुनियों के चरित्र को और उनके वास्तविक महत्व को नीचे गिराती हैं[३]। प्रेमी जी ने अपने कथन से सम्बन्धित कतिपय तर्क भी प्रस्तुत किये है जिनमे उन्होने 'एकीभावस्तोत्र' को 'सूर्यशतकस्तवन' की कथा का अनुकरण बताकर,—जिन—भगवान को 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु' असमर्थ बताता है, साथ ही मुनिजी के मिथ्याभाषण न करने से—ऐसी कथाओं का जैनधर्म के विश्वासो के साथ कोई सामञ्जस्य नही बैठता यह भी कहा है[४]।

परन्तु सत्यान्वेषी युगवीर जी का विश्वास है कि जो कुछ भी ऐसे चमत्कारपूर्वक कार्य हुए है वे सब भक्तियोग के बल पर हुए है। उन्होने प्रेमी जी के इन उद्गारो को अश्रद्धामूलक निरूपित करते हुए उनके द्वारा निर्देशित "सूर्यशतकस्तोत्र' को स्वयं देखा है तथा जिसका अध्ययन एवं मनन करने के उपरान्त अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि 'सूर्यशतक का असर या प्रभाव एकीभाव स्तोत्र पर कहीं भी लक्षित नहीं होता है। कथानक में असम्भव या अप्राकृतिक जैसी कोई बात नही हैं। ऐसा भी कोई उल्लेख नहीं है जिससे यह कहा जा सके कि जिनेन्द्रदेव ने वादिराज की स्तुति से प्रसन्न होकर उनका रोग दूर कर दिया। युगवीर जी का कथन है कि जब स्तोत्र के प्रथम पद्य मे ही स्तोत्रको 'भवभवगत घोर-दु:ख-प्रद एव दुर्निवार कर्मबन्धन' को भी दूर करने मे समर्थ बताया गया है। फिर ऐसे योगबल की प्रादुर्भूति के आगे शरीर मे रोग कैसे ठहर सकता है जो कि एक कर्म के उदय का फलमात्र है[५]। आगे अन्य युक्तियुक्त प्रमाण प्रस्तुत करते हुए युगवीर जी ने लिखा है कि लोकोपकारी भावना से मुनि जी ने रोगमुक्त होने के लिए भक्तियोग का आश्रय लिया था जिसका उल्लेख स्तोत्र के १०वे पद्य में "तस्याशक्य. क इह भुवने देवलोकोपकार:' इस वाक्य द्वारा किया गया है[६]।

इस भाँति 'युगवीर' जी न केवल श्रद्धामूलक-भावनाओं से ओतप्रोत ज्ञात होते है बल्कि वे महान् विवेकी भी सिद्ध होते है। वे एक कुशल जौहरी भी थे। सम्भवत: जब तक वे किसी कथन की ऊहापोह पूर्वक जौहरी के समान परख न कर लेते, उसे स्वीकार नही करते थे। ऐसे बानवे वर्षीय साहित्यसेवी, साहित्यान्वेषी उद्भट विद्वान् का दिवगत होना किस साहित्य-प्रेमी के हृदय को क्षुब्ध न करेगा। युगवीर जी ने अपने जीवन में जो जैनधर्म की सेवाएँ की है वे चिरस्मरणीय रहेंगी, तथा उनका नाम उनके साहित्य के साथ सदा अमर रहेगा। ऐसे जैन रत्न को हार्दिक श्रद्धाजलि समर्पित करते हुए हम आशा करते है कि उनकी मनोभिलाषाओ को समाज पूर्ण कर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करेगी। ●

---

२. श्रीमद्वादिराजसूरि; कल्याणकल्पद्रुम: भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम सस्करण, १९६७ प्रस्तावना, पृ० १५।

३. जैन साहित्य और इतिहास : सशोधित साहित्यमाला, ठाकुरद्वार, बम्बई-२, द्वितीय संस्करण, १९५६ ई० पृ० २९५।

४. वही : पृ० २९५-२९७।

५. कल्याण कल्पद्रुम: वही; पृ० १३।

६. वही : पृ० १५।

# सरस्वती-पुत्र मुख्तार सा०

मिलापचन्द रतनलाल कटारिया

वीरसेवा मदिर और "अनेकान्त" के जन्मदाता एव "मेरी भावना" के अमर रचयिता परमादरणीय प. वर्य्य जुगुल किशोरजी मुख्तार "युगवीर" का ६२ वर्षकी आयु मे एटा में स्वर्गवास होने के समाचार ज्ञात कर अत्यन्त हार्दिक दुखः हुआ। आपका हमारे ऊपर अतीव स्नेह था। आपकी याद कर दिल भर आता है आपके बीसों विस्तृत साहित्यिक पत्र हमारे पास सुरक्षित है उनसे पाठक मुख्तार सा० की श्रुत सेवा की अद्भुत लगन को हृदयगम कर सकते है। आप सन् १९५५ में केकडी पधारे थे तब आपको १७ दिसबर को अभिनन्दन-पत्र के साथ १०५ रुपयों की थैली स्थानीय दि० जैन समाज ने भेंट की थी और यहाँ की प्राचीन व विशाल दि० जैन सस्था का आपको अधिष्ठाता मनोनीत किया था।

आपके स्वर्गवास से साहित्याकाश का एक जाज्वल्य-मान महान् नक्षत्र अस्त हो गया। तन धन मन सर्वस्व समर्पण कर जीवन भर जैनवाङ्मय के लिये अलख जगाने वाला अब उन जैसा परम साहित्य तपस्वी होना महान दुर्लभ है।

विद्वान और ज्ञानी अनेक देखे पर उनकी प्रज्ञा ही निराली थी। उनकी दृष्टि बड़ी पैनी, बुद्धि बड़ी प्राजल और प्रतिभा बड़ी अद्भुत थी। उनका लेखन प्रामाणिक और प्रमेय बहुल होने के साथ ही रोचक एव अनुसधा-नात्मक होता था। साधारण सूत्रों का जो रहस्य वे उद्घाटित करते थे वह असाधारण होता था। उनके निष्कर्ष अनेक नई दिशाओं और अटल स्थापनाओं को लिये हुए होते थे। उनकी लेखनी वास्तव मे ही चमत्कार पूर्ण थी—उससे अनेकों में स्वाध्याय और निबध-लेखन की रुचि जाग्रत हुई थी हमने स्वयं—उससे काफी प्रेरणा प्राप्त की थी। इस तरह मुख्तार सा० सहस्त्रों विद्वानों के परोक्ष रूप से आदर्श गुरु थे। गुरूणागुरू पं० वर्य्य गोपालदास जी वरैया तक ने उनकी लेखनी का लोहा माना था। मुख्तार सा० के परीक्षा लेखों से प्रभावित होकर वरैया जी ने आपत्तिजनक ग्रन्थों को पाठ्यक्रमों में से निकाल दिया था इस तरह मुख्तार सा० की लेखनी का जादू सर्वत्र व्याप्त था।

२४ अप्रेल सन् १९४२ मे मुख्तार सा० ने अपनी ५१ हजार की मिल्कियत का एक वसीयतनामा वीरसेवा मदिर ट्रस्ट योजना के साथ सहारनपुर में रजिस्टर्ड करवाया था जो अनेकान्त वर्ष ५ पृष्ठ २७ से ३० पर सक्षिप्त रूप से छपा है। इसी को अपने जीवन काल मे ही पब्लिक ट्रस्ट का रूप देते हुए २६ अप्रेल १९५१ को एक ट्रस्ट नामा नकुड मे रजिस्टर्ड कराके आपने सब सम्पत्ति ट्रस्टियो के सुपुर्द कर दी थी। यह ट्रस्टनामा अविकल रूप से अनेकात वर्ष ११ पृष्ठ ६५ से ७३ पर छपा है। इससे जाना जा सकता है कि—मुख्तार सा० मुख्तार गिरि की कला मे भी कितने कुशल थे। इस ट्रस्टनामे का ड्राफ्ट इतना सुन्दर बना है कि अनेक सस्थाओ के सचालको ने अपनी संस्थाओं का ट्रस्ट कराते वक्त इसको आदर्श रूप से ग्रहण किया है। हमारे पास से भी एक रामद्वारा के व्यवस्थापक और १-२ अन्य सज्जन इस ट्रस्टनामे की "अनेकान्त" की कॉपी मागकर लेगये थे इससे इसकी महत्ता आकी जा सकती है।

मुख्तार श्री ने अनेक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का मुलानु-गामी सुन्दर हिन्दी अनुवाद और भाष्य किया है। उनके अनुवाद की भी अपनी एक निराली शैली है—अनेक जगह अनुवाद वाक्य को और विशद करने के लिए उसी के आगे स्पष्टतर वाक्यों का सयोजन किया गया है फिर भी कोई प्रवाह भंग नहीं हो पाया है यह एक खूबी है। अनुवाद के साथ प्रत्येक ग्रन्थ की विस्तृत प्रस्तावना और परिशिष्टादि से भी समलकृत किया गया है शुद्ध एव कलात्मक छपाई का भी पूरा ध्यान रखा गया है। इस

तरह उनके द्वारा प्रकाशित सभी ग्रंथ मौलिक और आदर्श रूप है।

काव्यरचना पर भी उनका पर्याप्त अधिकार था। "मेरी भावना" की रचना ने तो उन्हें विश्वविख्यात कर दिया था यह रचना सर्वप्रथम 'जैन हितैषी' के अप्रेल-मई १६१६ के संयुक्तांक मे प्रकाशित हुई थी। अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में इसके अनुवाद हुए थे फोनोग्राफ के रेकार्डों तक मे यह भरी गई थी इससे इसकी विशिष्ट लोकप्रियता का परिज्ञान हो जाता है।

सन् १६०० मे आपने 'अनित्यपंचाशत्' का सुन्दर हिन्दी में पद्यानुवाद किया था और भी आपने अनेक सुन्दर उद्बोधक कवितायें लिखी थी इनका एक भव्य सग्रह 'युगवीर-भारती' के नाम से अहिंसा मन्दिर, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। महावीर-जिनपूजा और बाहुबलि जिनपूजा भी आपके नई शैली के श्रद्धा-सुमन है।

आपकी समीक्षाएं भी बडी लाजवाब होती थी। ग्रथ परीक्षा के चार भाग, विवाह क्षेत्र प्रकाश, जिन पूजाधिकार मीमासा आदि इनमे प्रमुख है ये अत्यन्त सावधानी से अकाट्ययुक्तियो और प्रमाणो के साथ अतीव परिश्रम पूर्वक लिखी गई है और इसीलिए आजतक उनका जवाब त्यागियो और विद्वानो से नही लग पाया है। दस्सा पूजाधिकार पर आपने कोर्ट मे गवाही तक दी थी।

इसी तरह 'सन्मति सूत्र और सिद्धसेन' नाम का आपका विस्तृत निबध है जिसका अग्रेजी अनुवाद भी अलग से प्रकाशित हुआ है उसका भी आज तलक प्रज्ञा चक्षु प० सुखलाल जी से जवाब तक नही बन पाया है।

आप संपादन कला के भी आचार्य थे। १ जुलाई १६०० मे आप महासभा के मुखपत्र साप्ताहिक मुखपत्र जैन गजट (देव बन्द) के सम्पादक बनाये गये। ३१ दिसम्बर १६०६ तक के आप के सम्पादन काल में जैन गजट की ग्राहक सख्या ३०० से १५०० तक हो गई थी इससे जाना जा सकता है कि आपकी सपादन कला कितनी उच्च कोटि की थी। फिर आप अक्टूबर १६१६ मे 'जैन हितैषी' के संपादक बने और २ वर्ष तक रहकर उसे काफी चमका दिया। फिर नवम्बर १६२६ मे मासिक 'अनेकांत' का सपादन प्रकाशन किया। यह पत्र अनेक विषयों के ज्ञान का अगाध भंडार है इसने आपको सदा के लिए अमर कर दिया है।

आप समन्वयी सुधारक और राष्ट्रीय विचार धारा के महा मानव थे। सन् १६२० से बराबर खादी पहनते रहे थे। आपने ही सर्वप्रथम वीर शासन जयती (श्रावणकृष्णा प्रतिपदा) की खोज कर उसका प्रचार किया था।

जैन इतिहास के क्षेत्र मे आपने अभूतपूर्व कार्य किया था। अनेक प्राचीन समन्तभद्र सिद्धसेन पात्रकेसरी विद्यानन्द अमृत चन्द्र आदि दि० जैनाचार्यों का इतिहास अधकार मे छिपा पड़ा था आपने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से उसे प्रकाश मे लाकर दि० परम्परा के गौरव को स्थापित किया था इस दृष्टि से आप दि० परपरा के अनन्य सरक्षक सिद्ध हुए यह मानना ही होगा कि अगर मुख्तार सा० न होते तो दि० परम्परा का इतिहास ही अस्त व्यस्त हो जाता। जब भी कोई व्यामोह छल से प्राचीन दि० आचार्यो को अर्वाचीन सिद्ध करने की कोशिश करता तो आप उसकी पूरी खबर लेकर उसे निरुत्तर करने मे कोई कसर नही रखते थे। आपके इतिहास विषयक निबधो का एक विशाल सग्रह 'जैनसाहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश' (प्रथम खड) के रूप मे प्रकाशित हो चुके है। इसके सिवा 'पुरातन जैन वाक्य सूची' की १७० पृष्ठ की विस्तृत प्रस्तावना मे भी अनेक जैन आचार्यो और उनके और उनके ग्रन्थो का इतिहास सग्रहीत है।

आचार्य प्रवर समन्तभद्र के तो आप महान् भक्त ही थे उनका सांगो-पाग इतिहास तैयार कर आपने उन्हे १-२ शताब्दी का तो सिद्ध किया ही उनकी समस्त उपलब्ध कृतियो का मौलिक हिन्दी अनुवाद कर अपार श्रद्धा-भक्ति का भी परिचय दिया और इस तरह अपने आराध्य को जन-जन के हृदय का हार बना दिया। जिस तरह तुलसी दास जी ने 'रामचरित मानस' की रचना कर अपने आराध्य रामचन्द जी को लोक मानस में उतार कर प्रख्यात कर दिया, एव जिस तरह सत्पुरुष कानजी स्वामी ने समयसारादि के माध्यम से अध्यात्म की गगा प्रवाहित कर अपने श्रद्धेय भगवत्कुन्द कुन्द को जन-जन का प्रिय बना दिया।

इससे हम यह फलितार्थ निकाल सकते है कि— जहाँ

महान् आराध्य के आश्रय से आराधक ऊँचे उठ जाते हैं वहाँ योग्य आराधक के माध्यम से अराध्य भी लोक-विश्रुत हो जाते हैं।

'यो यच्छ्रद्धः स एव सः' (अर्थात्—जो जिसकी श्रद्धा करता है वह वैसा ही हो जाता है) इस न्याय के अनुसार हम मुख्तार सा० को 'आधुनिक समन्तभद्र' भी कहे तो कोई अत्युक्ति नही।

मुख्तार सा०—उद्भट विचारक प्रवर तार्किक, निर्भय-समीक्षक, सुदृढ समालोचक, प्रामाणिक लेखक कुशल संपादक, महान् संशोधक, निर्दोष अनुवादक, सूक्ष्म अन्वेषक मार्मिक तत्वज्ञ, इतिहास मर्मज्ञ, ओजस्वी वक्ता, प्रबुद्ध कवि, असाधारण भाष्यकार, प्रकाड पडित, आदर्श विद्वान, प्रवीण व्याख्याता, धुरंधर नेता, समन्वयी सुधारक, विचक्षण अनुसधाता, महान् श्रुतसेवक, विद्वद्—सम्राट, अनेक ग्रन्थ-निर्माता, सन्मार्गप्रणेता, सद्धर्म प्रचारक, वास्तविक ब्रह्मचारी, समीचीन त्यागी, अनुपम समाज-सेवक, साहित्य तपस्वी, मनस्वी, कार्यार्थी आदि अनेक रूपो के धारक महान् गुणों के सागर साक्षात् सरस्वती-पुत्र ही थे।

आपके पिता श्री का नाम चौधरी लाला नत्थूमल जी और पितामह का चौधरी लाला धर्मदास जी तथा माता का नाम भोई देवी था। जाति—जैन अग्रवाल, गोत्र—सिंहल निवास स्थान सरसावा, तहसील—नकुड, जिला—सहारनपुर था। धर्मपत्नी राजकली देवी थी (जिसकी मृत्यु १६ मार्च १९१८ मे हुई थी)। आपका जन्म मगसर सुदी ११ वि० स० १८३४ में हुआ था। ४ दिसम्बर १९२७ को ब्रह्मचर्य व्रत लिया। १२ फरवरी १९१४ को मुख्तारकारी छोडकर श्रुतसेवा का महाव्रत अगीकार किया। पौष शुक्ला ३ स० २०२५ दीतवार ता० २२ दिसम्बर ६८ को आपका देहावसान एटा मे आपके भतीजे श्री डॉक्टर श्री चन्द्रजी जैन सगल के यहाँ हुआ था। आपने मैट्रिक तक पढाई की थी। सन् १९०२ मे मुख्तारकारी की परीक्षा पास की थी। आपका पहला लेख ८ मई १८९६ के जैन-गजट (देवबन्द) मे जैन कालेज के समर्थन में छपा था। १९००-९ ई० मे आप जैन गजट के सम्पादक बने तब अश्लील विज्ञापनों के विरोध मे आपने लेख लिखे इस विषय में आवाज उठाने वाले सर्वप्रथम सम्पादक आप ही थे। आपके सन्मति और विद्यावती दो पुत्रियां हुई थीं जो अल्पावस्था में ही गुजर गई।

सहारनपुर में दिसम्बर १९४३ को भारत बैंक के मैनेजिंग डाइरेक्टर प्रसिद्ध व्यापार-शास्त्री श्री राजेन्द्र-कुमार जी के सभापतित्व में आपकी ६७वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में विशाल सम्मान समारोह हुआ था जिसमें आपको अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया था। इस पर अनेकांत वर्ष ६ किरण ५-६ के रूप में मुख्तारश्री सम्मान समारोह विशेषांक प्रकाशित हुआ था।

अभी मई १९६८ मे विद्वद् परिषद् ने भी एटा में अभिनन्दन-पत्र समर्पित कर तथा 'मुख्तारश्री का व्यक्तित्व और कृतित्व' पुस्तिका प्रकाशित कर उनका हार्दिक सम्मान किया था।

मुख्तार सा० ने अपने देहावसान से कुछ दिनों पहिले अपने ट्रस्ट का नवीन गठन किया था। मान्य ट्रस्टियो से प्रार्थना है कि—वे मुख्तारश्री के प्रामाणिक जीवनचरित को लिये हुए एक विशाल स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन करावे तथा उनकी याद मे यह ग्रन्थमाला प्रारम्भ करें तथा उनके छोडे हुए अधूरे कार्यों को पूरा करावे यथा—जैन लक्षणावली और जीतसार समुच्चय लोक विजय यन्त्र आदि ग्रन्थो का प्रकाशन तथा अवशिष्ट साहित्यिक, ऐतिहासिक और परीक्षात्मक निबन्धो का पुस्तकाकार प्रकाशन एवं अप्रकाशित रचनाओ का प्रकाशन करावे।

मुख्तार सा० की अद्यावधि प्रकाशित रचनाओं की सूची निम्न प्रकार है :

१. ग्रन्थ परीक्षा प्रथम भाग (उमास्वामी श्रावकाचार, कुन्दकुन्द श्रावकाचार, जिनसेन त्रिवर्णाचार की परीक्षा—इनमे से उमास्वामी श्रावकाचार की परीक्षा अलग से भी छपी है)।

२. ग्रन्थ परीक्षा द्वितीय भाग (भद्रबाहु सहिता)।

३. ग्रन्थ परीक्षा तृतीय भाग (सोमसेन त्रिवर्णाचार, धर्म परीक्षा (श्वे०) अकलक प्रतिष्ठा पाठ पूज्यपाद श्रावकाचार)।

४. ग्रन्थ परीक्षा चतुर्थ भाग (सूर्यप्रकाश)।

(इन चारों भागों को दक्षिण प्रान्त के प्रसिद्ध विद्वान्

सेठ हीराचन्द जी, नेमीचन्द जी शोलापुर ने मराठी में प्रकाशित कराया था)।

५. महावीर जिन पूजा, ६. बाहुबली जिन पूजा, ७. अनित्य भावना हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ सहित, ८. सिद्धिसोपान हिन्दी अनुवाद सहित, ९-१०. वीर पुष्पांजलि और युगवीर भारती ('मेरी भावना', 'मेरी द्रव्य पूजा' आदि अनेक काव्य कृतियो का संग्रह)।

११. युगवीर निबन्धावली प्रथम भाग (इसमें कुल ४१ निबन्ध हैं जिनमें 'जिन पूजाधिकार मीमासा', विवाह समुद्देश सेवाधर्म, हम दुःखी क्यों है? उपासना तत्व, अनेकांत रसलहरी, सुधार का मूलमन्त्र, परिग्रह का प्रायश्चित्त आदि अलग से प्रकाशित ट्रेक्ट भी सग्रहीत हैं)।

१२. युगवीर निबन्धावली द्वितीय भाग (इसमें कुल ६५ निबन्ध है जिनमे 'विवाह क्षेत्र प्रकाश' आदि अलग प्रकाशित ट्रेक्ट भी सग्रहीत है)।

१३. समन्तभद्र विचार दीपिका, १४. जैन-साहित्य और इतिहास पर विशद् प्रकाश (इसमे कुल ३२ लेख है जिनमें—'भगवान् महावीर और उनका समय', 'स्वामी समन्तभद्र' आदि अलग से प्रकाशित ट्रेक्ट भी सम्मिलित हैं)।

१५. सन्मति सूत्र और सिद्धसेन (अग्रेजी अनुवाद), १६. पुरातन जैन वाक्य सूची (इसमें १७० पृष्ठ की विशाल प्रस्तावना भी है), १७. भवाभिनन्दी मुनि और मुनि निन्दा।

१८. नये मुनि विद्यानन्द जी की सूझबूझ, १९. बाबू छोटेलाल जी की आपत्तियों का निरसन, २०. जैनाचार्यों का शासन भेद।

२१. स्वयंभू स्तोत्र (हिन्दी अनुवाद प्रस्तावनादि), २२. युक्त्यनुशासन (हिन्दी अनुवाद प्रस्तावनादि), २३. देवागम (हिन्दी अनुवाद प्रस्तावनादि), २४ समीचीन धर्मशास्त्र (हिन्दी भाष्य प्रस्तावनादि), २५. समाधितन्त्र (प्रस्तावनादि), २६. सत्साधुस्मरण मंगलपाठ (हिन्दी अनुवाद), २७. अध्यात्मकमल मार्त्तण्ड (प्रस्तावनादि). २८. प्रभाचन्द्र का तत्त्वार्थ सूत्र (सानुवाद व्याख्या और प्रस्तावनादि), २९. कल्याण कल्पद्रुम (भाष्य और प्रस्तावनादि), ३०. तत्वानुशासन (भाष्य और प्रस्तावनादि), ३१. अध्यात्म रहस्य (हिन्दी व्याख्या प्रस्तावनादि), ३२. समाधि मरणोत्साह दीपक (हिन्दी व्याख्या प्रस्तावनादि), ३३. योगसार प्राभृत (हिन्दी भाष्य प्रस्तावनादि), ३४. रत्नकरण्ड श्रावकाचार (विशाल प्रस्तावना प्रभाचन्द्र टीका युक्त), ३५. स्तुति विद्या (विस्तृत प्रस्तावना)। ३६. 'अनेकात' का अनेक वर्ष तक सम्पादन और उसमे अनेक निबन्धों का प्रणयन। अन्य पत्रों मे प्रकाशित निबन्ध आदि।

इस तरह यह महाभारत और अष्टादश पुराणो के रचयिता व्यास की तरह ही आपकी विशाल साहित्य सेवा है जो आपको सिद्ध सारस्वत और श्रुतयोगी निर्दिष्ट करती है।

आपका साहित्य वास्तव में ही सद्सद् विवेक को जागृत करनेवाला, युगानुसारी, समीचीन दिशा निर्देशक, मौलिक, कलात्मक और वैज्ञानिक है।

अन्त मे हम पाण्डित्य विभूति प्रतिभामूर्ति श्री मुख्तार सा० की पुनीत स्मृति को दिल में सजोये हुए उनके प्रति सादर श्रद्धाजलि समर्पित करते हैं। ●

**अलप थकी फल दे घना, उत्तम पुरुष सुभाय।**
**दूध भरं तृण को चरं, ज्यों गोकुल की गाय॥**
**जेता का तेता करे, मध्यम नर सम्मान।**
**घटं बढ़ं नहि रंचहू, धरघो कोठरे धान॥**
**दीजे जेता ना मिले, जघन पुरुष की बान।**
**जैसे फूटे घट धरघो, मिलं अलप पयथान॥**

**—बुधजन**

# "युगवीर" के जीवन का भव्य अन्त

**डा० श्रीचन्द जैन 'संगल'**

मुख्तार सा० का जन्म हमारे कानूनगोयान वंश में मगसिर सुदी एकादशी सं० १८३४ में कस्बा सरसावा जिला सहारनपुर में मातृभूदेवी के उदर से हुआ था पिता का नाम चौधरी नत्थूमल था और यह वश बहुत पुराना चला आ रहा है और इसका शजरा अकबर बादशाह के समय तक तो मिला है उससे पहले का नहीं मिला। बाकी और परिचय उनकी परिचय पुस्तक जो डा० नेमिचन्द जी जोतिषाचार्य अध्यक्ष अ० भा० विद्वद परिषद् ने अभी हाल ही मे, जो उन्होने ५ दिसम्बर सन् १९६८ में, जब वे एटा मे आचार्य जुगलकिशोर जी को अ० भा० विद्वद् परिषद की ओर से सम्मान पत्र भेट करने आये थे निकाली थी उसमे देख लीजियेगा। उसमे विशेषरूप से उनका परिचय व उनके सारे जीवन की झलक व उनकी कृतियो के लेख मिलेगे।

यो तो मुख्तारश्री मेरे पास करीब पाँच साल से रह रहे थे और उनका यहाँ पर जीवन कार्यक्रम ठीक प्रकार से उनकी रुचि के अनुसार चल रहा था और वे यहाँ पर प्रसन्न भी थे, परन्तु डेढ साल से इधर अस्वस्थ चल रहे थे। सबसे पहले उन्हें यकायक तकलीफ गुरदो की हुई, जिसके कारण उन्हे १७ जून १९६७ मे पेशाब मे खून आया, न कोई जलन, न पीड़ा, न पथरी आदि मालूम हुई, तीन दिन तक खून हर पेशाब के साथ आता रहा। चिन्ता काफी उत्पन्न हो गई दूसरे डाक्टरों को भी बुलाकर दिखाया, उपचार से खून तो बन्द हो गया; परन्तु उसके बाद ही उन्हे ज्वर हो गया वह भी चार-पाँच दिन मे शान्त हो गया उसके बाद सारे शरीर में सूजन एगजिमा और पेशाब मे खून के दौरे पड़ने रहते, ज्वर भी आता रहा और स्वास्थ्य गिरता चला गया। परन्तु उनमे मनोबल अधिक होने के कारण वे इस बीमारी के प्रकोप की अनुभूति कुछ साधारण रूप से ही सहने लगे थे और अधिक चिन्ता नहीं करते थे। डाक्टरों ने जब उनसे कहा कि आपका गुरदों का यह रोग है सो आसानी से नही जायगा और असाध्य भी हो सकता है। इस पर वे उस रोग की ओर से कुछ उदासीन से हो गये थे, किन्तु औषधि बराबर नियम पूर्वक लेते रहते थे और साथ ही उसका परहेज भी पूर्ण रूप से पालते थे। परन्तु चिन्ता कम करते और अपनी बंधी हुई खुराक नित्य नियम पूर्वक लेते रहते थे; क्योंकि उन्हे अपने शरीर का अधिक मोह था, इसको जरा भी कष्ट नही होने देते थे यह रोग मेरा स्वास्थ बिगाड़ रहा है इसका इलाज नही है मै सीधे रूप से उनसे कह देता कि अच्छे डाक्टर और वैद्य का इलाज हो रहा है आप औषधि सेवन करते रहे और चिन्ता न करें, सब ठीक हो जायगा। हरएक रोग की औषधि तो है पर हरएक रोगी औषधि नहीं है। जब अशुभ कर्म का विपाक शान्त हो जायगा तो रोग भी शान्त हो जायगा। इस पर हँसकर बोले कि मै तुम्हारे कहने का तात्पर्य समझ गया। इसकी चिकित्सा तो अवश्य होनी ही रहनी चाहिये। मै कह दिया करता इससे आप निश्चिन्त रहें बढ़िया से बढ़िया दवा आपको मिलती रहेगी। औषधि खाने के तो वे पहले से ही बहुत अभयस्त थे और अपनी खुराक, सयम और मनोबल के आधार पर ही ९२ वर्ष की आयु पाई जो हमारे किसी बुजर्ग की नही हुई। दवा नियम पूर्वक खाना और परहेज पूर्ण रूप से पालते थे और औषधि लाभ भी करती थी परन्तु यह बीमारी जाने वाली नही थी और इसी के कारण बढ़िया उपचार होते हुए भी शरीर में निर्बलता आती रही। दो-तीन दफा तो ऐसी स्थिति हो गई कि भाई दरबारीलाल जी कोठिया व बहन जैवंतीदेवी को शोचनीय दशा की सूचना देनी पडी, वे लोग आये और कुछ दिन ठहर कर चले गये। आयुकर्म बलवान था और ठीक हो जाते थे। यह क्रम चलता रहा परन्तु अपनी खुराक कभी नही छोड़ते थे और हमेशा यही कहते थे कि अभी मैं तो १०० वर्ष तक जीवित रहूँगा और तुमसे भी

कहता हूँ कि तुम मेरे साथ लगे रहो तो देखो मैं कितना कार्य कर सकता हूँ। कृपणता के कारण कहने पर भी कभी कोई सेवक व विद्वान को अपने पास वेतन पर नही रखा। मैं तो ग्रहस्थ में रहते हुए उन्हे सेवा में दो-चार घन्टे ही दिन भर मे दे पाता था। वह भी रात्रि के समय ८ से ११ बजे तक। इस प्रकार उनका जीवन इधर चलता रहा और मैं व मेरी स्त्री, पुत्र व पुत्रवधू व बच्चे सभी उनका आदर सत्कार तथा सेवा में दिन-रात लगे रहते थे। और जब कभी कोई लेख या शास्त्र आदि लिख कर तैयार कर लेते थे तो मुझसे ही उसकी प्रेस कापी करवाते थे, वैसे तो मुझे कोई असुविधा नही होती थी; परन्तु समय की कमी और संस्कृत भाषा से मुझे बिलकुल अनभिज्ञता है इसलिए नकल करने मे मुझे अधिक समय व कठिनाई होती थी; फिर भी उनकी आज्ञा का उलघन नही करता था। जैसे तैसे लिखकर समय पर दे देता फिर वे उसे ठीक कर देते थे और छपने के लिए भेज देते थे। सदा मुझे कहते रहते थे कि मै तुम्हे समाज में आगे लाना चाहता हूँ और जो भी समाज का कार्य, साहित्य का कार्य, संस्था का कार्य व लेखादि का कार्य करो बड़ी दृढ़ता और प्रमाणिकता के साथ, खोज के साथ और निर्भय होकर करो तुम्हारा कभी अनिष्ट नही होगा। अललटप्पू लिखने व प्रमाण रहित लिखना अथवा आगम के विरुद्ध चलने में हानि ही होगी। और प्रशसा के पात्र न हो सकोगे। यही मेरे जीवन का लक्ष्य व कसौटी रही है और इसी आधार पर उन्होंने बड़े-बड़े कठिन से कठिन शास्त्रों का अनुवाद, सर्जन तथा संशोधन कर डाला और समाज को दिखा दिया कि कार्य किस प्रकार होता और हर एक खंडन मंडन के उत्तर के लिए सदैव तत्पर रहते थे उन्हें पूर्ण विश्वास रहता था; क्योंकि उनके लेख अकाट्य और प्रामाणिक होते थे। स्वामी समन्तभद्र के सच्चे अगाढ परमभक्त थे उनके जितने भी कठिन से कठिन ग्रन्थ जिनका आजकल की साधारण योग्यता रखने वालों के लिए समझना मुश्किल था उनका बड़ी सरलता के साथ हिन्दी अनुवाद करके समाज के हित मे वितरण करते थे और उनकी सभी पुस्तकें व लेख लोकप्रिय होते थे। कभी किसी से यदि मनमुटाव हो भी जाता था तो मन में कभी नहीं रखते थे और जहाँ तक हो सकता था उनकी कलुषता दूर कर देते थे और फिर उनसे मिल जाते थे। अभी कुछ लेख व पुस्तकें उनकी अधूरी व अप्रकाशित रह गई है जो उन्होंने इधर लिखी थी उन्हे पूर्ण करना है तभी उनकी आत्मा को शान्ति मिलेगी। जैसे-जैसे मुझे समय मिलता जायगा और आप सब जनो का सहयोग मुझे मिलता रहेगा तो उनका यह अधूरा कार्य भी अवश्य पूरा हो जावेगा। क्या करूँ अशुभ कर्म के वश उनके निधन के बाद मैं भी बीमार पड गया और अभी तक बीमार ही चल रहा हूँ करीब अभी डेढ या दो माह लगेंगे तब पूर्ण स्वस्थ होऊँगा, ऐसा डाक्टरों का कहना है। ठीक होकर ही उनके अधूरे कार्यों की पूर्ति कर सकूगा अभी तो उनका सब कार्य जैसा वे छोड़ गये है वैसा ही पडा है।

हां तो मैं कह रहा था उनकी अन्तिम रात्रि के विषय में। वह यह कि मुझे ता० १३ दिसम्बर ६८ को फ्लू हुआ उसमें ज्वर खाँसी हुआ। इधर उनकी भी तबियत एक माह से अधिक खराब चल रही थी। सारे शरीर मे खुजली व वीपिग एगजिमा का प्रकोप तथा चौबीस घन्टे ज्वर और सारे बदन मे सूजन जिसके कारण वे बहुत बेचैन रहने लगे और दुर्बलता अधिक हो गई फिर भी बातचीत ठीक करते थे और सबको सात्वना देते रहते थे। बहुत सा उपचार व औषधि आदि देने पर भी उको जरा भी शान्ति न मिली, तो मैने उनसे कहा कि औषधादि के साथ-साथ अपनी भक्ति प्रयोग का निमित्त भी लगाइये। ऐसा करने से दो चार दिन बाद उन्हे रोग मे कुछ उपशमता मालूम दी। एगजिमा की हालत तो कुछ ठीक हो गई, ज्वर भी शान्त हो गया; परन्तु खुजली व सूजन चलती रही, जो पैरो पर अधिक थी। इस कारण चलने फिरने मे वे कठिनाई अनुभव करते थे; फिर भी शौच आदि को तो चलकर ही जाते थे, कभी गिर भी पड़ते थे परन्तु उठ कर फिर चलने लगते थे, सहारा देकर चलने के लिए मुझे मना कर देते थे कि मैं तो चला जाऊँगा मरने के आठ दिन पूर्व उन्होंने एक अजीव स्वप्न देखा जो रात्रि के अन्तिम पहर में देखा और मुझसे कहा कि आज मुझे आत्म-दर्शन हो गया है मैने कहा कि बहुत अच्छी बात है कि आपको आत्म-दर्शन हो गया है और आपके इतने दिनो

की तपस्या का फल आपको मिल गया। स्वप्न इस प्रकार है :—

"रात्रि को ३ बजे के करीब मुझे स्वप्न में पुरुषाकार दिव्य ज्योति का दर्शन हुआ। ज्योतिर्मय पुरुष के नाक कान मुखादि सब अंग पुष्ट थे। ज्योति के सिवाय कही किसी दूसरी वस्तु का दर्शन नही होता था, ऐसा मालूम पड़ता था कि एक ही अखण्ड ज्योति पुरुषाकार रूप परिणित हो रही है। यह ज्योति सरसावा स्थित उस चौबारे के दक्षिणी द्वार के मध्य मे खड़ी हो गई जिसमे मेरा, मेरे भाइयों का तथा पिता और पितामह का जन्म हुआ है। कोई क्रिया मेरे से ऐसी बनी, जिससे एकदम ज्योति का उद्गम हुआ और हृदय मे कुछ क्षण बाद यह खयाल भी उत्पन्न हुआ कि इस प्रकार की क्रिया करके तो मै नित्य ही आत्म-ज्योति का दर्शन कर सकूगा। परन्तु वह क्रिया क्या की गई इस बात का कोई स्मरण नही रहा। ऐसी दिव्य ज्योति का दर्शन मुझे जीवन भर मे पहले कभी नही हुआ। इस दिव्य ज्योति के दर्शन से मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और यह इच्छा बनी रही कि उसके दर्शन होते रहे। मै इसको आत्मदर्शन समझता हूँ।।" मैने तो इस स्वप्न का अर्थ यह लगाया कि वेदना के कारण आत्मा के प्रदेश अपनी नई योनि जिसमे उसे जन्म लेना है ढूढ़ने मे लगा हुआ है इसी कारण यह स्वप्न के रूप मे दिखाई पड़ा, ऐसा मेरा विश्वास है मै नही कह सकता कि मेरी धारणा गलत है या उनका विचार टीक है। मरण से चार रोज पहले रात के दस बजे शायद शौच के लिए लाठी लेकर चल पड़े तो कमरे से दो कदम बाहर चलकर न मालूम कैसे गिर पड़े और कराहने का शब्द मेरे कानों में पड़ा, मैं भागकर आया और पूछा कि कहाँ जा रहे थे। तो बोले—"अपने घर जा रहा हूँ" मैंने कहा घर तो यही है। फिर भी यही कहा—"देखो कि मैं अपने घर जा रहा हूँ। लेकिन मै गिर पडा मुझे टाँग में चोट लग गई है। मैने टाँग का निरीक्षण किया मुझे टूटी तो नही मालूम पड़ी, परन्तु उन्हे दर्द की वेदना बहुत थी और टाँग को हिलाने डुलाने में तकलीफ महसूस करते थे। खैर किसी तरह से मैने व मेरे पुत्र महेश ने उन्हें पलंग पर ले जाकर लिटा दिया और टाँग की सिकाई व मालिश करने लगे जिससे उनकी पीड़ा कुछ कम हुई और अगले दिन उनका Xray कराया जिसमें हड्डी ठीक थी कही से भी चटकी या टूटी नहीं थी दो-तीन दिन मे पीड़ा व सूजन कम हो गई और टाँग के उठाने रखने में आसानी हो गई परन्तु चल नही पाते थे इसलिए टट्टी पेशाब के लिए कमोड और पोट का प्रबन्ध कर दिया जिससे वह उसी मे टट्टी पेशाब को जाते थे। फिर मुझे इधर ज्वर आने लगा। पुत्र व स्त्री को भी फ्लू हो गया, जिससे कि सब घर परेशान हो गया; परन्तु उनकी परिचर्या मे किसी बात की कमी न आने दी, और इस हालत में भी उनकी सेवा तत्परता के साथ करते रहे। रात को मेरा ज्वर कुछ कम हो जाता तो दो चार घन्टे उनके पास बैठकर बातचीत करके आ जाता था।

ता० २१ दिसम्बर १९६८ को बाबू जुगमन्दिर दास जी कलकत्ता वाले दिन के २ बजे उनसे मिलने आये और बात-चीत करते रहे। मुख्तार सा० ने उनसे कहा कि आप मेरी "युगवीर निबन्धावली द्वितीय खड की कुछ प्रतिया मुझसे खरीदकर अपनी ओर से वितरण कर दे। इधर मै उसकी विज्ञप्ति भी विक्री के लिए कर रहा हूँ सो इस तरह करके यह सब पुस्तकें मेरी निकल जावेंगी। और संस्था के रुपयो का खर्च निकल आवेगा, जो इसके छपाने में खर्च हो गया है। उन्होने उन्हे आश्वासन दिया कि मैं अवश्य ही कुछ प्रतियाँ खरीद लूगा, आप चिन्ता न करें। मैं डाक्टर सा० व पं० दरबारीलाल जी से इस विषय में बात कर लूगा। अपने स्वास्थ्य की ओर इस वक्त आप अधिक ध्यान रक्खे, अभी आपकी हम लोगों को जरूरत है और आप से बहुत कार्य लेना है। उस वक्त तक कोई ऐसी खास बात नहीं मालूम होती थी कि कल ये इस संसार को छोड़कर प्रयाण कर जायेगे। २१ ता० की शाम को उन्होंने औषधि, दूध तथा बादाम की चटनी फलो का रस इत्यादि लेने से बिलकुल मना कर दिया। सिर्फ थोड़ा सा पानी पिया और कुल्ला करके कहा कि हटाओ बस अब खा चुका। मैने भी बहुत आग्रह किया परन्तु मेरा कहना भी नहीं माना। २१ दिसम्बर की शाम को जब मैं उनके पास जाकर बैठ गया तो उन्होंने मुझे गद्गद् कंठ से कहा कि तुम्हारा ज्वर उतर गया, मुझे

प्रसन्नता है, बैठो तुमने मेरी बहुत सेवा की और ऐसी सेवा की कि अपने सगे पेट का भी इतनी सेवा न करता मैं तुम सबसे बहुत प्रसन्न हूँ, और तुम्हारी सेवा फले। फिर बोले कि देखो अब मुझे अपना अन्त समीप मालूम होता है क्योंकि मेरे शरीर में अब किसी प्रकार का कोई कष्ट व पीडा व रोग नही है। देखो सूजन भी अपने आप बहुत कम हो गई है सो मैं अब यह चाहता हूँ कि मेरा अन्त समय समाधि पूर्वक बीते। तुम मेरे पास बैठ जाओ और मुझे सावधान रखते रहना, चेहरे पर उनके मुझे बड़ा तेज प्रतीत हुआ। उनका एक-एक शब्द अभी तक मेरे हृदय पटल पर अकित है। उन्होंने कहा देखो मैने तुमको समाज के आगे लाकर खडा कर दिया है और तुम अपने ज्ञान की वृद्धि करते रहना। और सबसे बड़ी और मर्म की बात यह है कि किसी के आगे कभी भी अपने स्वाभिमान को न गिराना। मुझे देखो मैने सब सकटो को झेलते हुए अपनी सस्था को अकेले चलाया और इतना ऊँचा पहुँचा दिया कि सब इसका लोहा मानते है। और अब भी इस रुग्न अवस्था मे ग्रन्थो का लिखना फिर भी उनका प्रकाशन का कार्य करता रहा हूं। इसी प्रकार तुम भी निर्भय होकर इस सस्था का भार अपने ऊपर लेकर इसको चलाते रहना। साहित्य का काम डा० दरबारीलाल जी करेंगे और बाकी तुम्हारी सब देख-भाल रहेगी। ट्रस्ट की व्यवस्था मैंने कर दी है। उसी व्यवस्था के अनुसार कार्य करना और सदा इस बात का ध्यान रखना कि संस्था को चाहे लोगबाग कितना ही तोडने मरोडने की कोशिश करे कभी भी इसको गिरने न देना बल्कि नित्य-प्रति इसको ऊंचा उठाने का प्रयास करते रहना, यह तुम्हारे ऊपर उत्तरदायित्व है। इसी से मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी। सस्था को चलाने के लिये मैंने काफी उचित प्रबन्ध कर दिया है, उतने ही मे यह सस्था अच्छे प्रकार से चलती रहेगी। और फिर अपनी समाज मे साहू शान्तिप्रसाद जी जैसे बहुत से उदार दानी विद्यमान है उनकी भी सहायता से तुम कार्य कर सकते हो, वे तुम्हे कभी किसी बात से मना नही करेगे। क्योकि वे मुझसे बहुत प्रभावित है। मुझे वे सन्मान की दृष्टि से देखते है और मैं भी उनको आदर और प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ और उन्होंने मेरी काफी सहायता की है। समाज भी मेरी साहित्य सेवाओं का लोहा मानती है। मुझे किसी अभिनन्दन या प्रशंसा की आवश्यकता नहीं, मैं तो ससार के कोने कोने में भगवान महावीर की वाणी व सन्देश पहुँचाना चाहता हूँ जिससे सब जैन धर्मानुलम्बी बनें और अपने धर्म का खूब प्रचार व प्रभावना हो। मैंने बड़े बड़े विद्वानों और धर्म के ठेकेदारो से टक्कर ली; परन्तु अन्त में मेरी विजय हुई कारण कि जो कुछ भी मै कहता या लिखता वह सब आगमानुसार प्रामाणिक और अकाट्य होता था, यही एक दृष्टि है जिसे मैंने अपने सारे जीवन मे अपनाया और सफलता प्राप्त की। निःस्वार्थ भाव से समाज की, अपने धर्म की सेवा की उसका फल मुझे जैसा मिला सो तुम देख ही रहे हो। जिस समय वे सब यह कहते जाते थे मेरे नेत्र सजल थे और मैं उन्हे सान्त्वना देता रहता कि आपके कहे अनुसार ही चलूगा, यह आप पूर्ण विश्वास रखे। फिर मैंने उनसे कहा कि अब आप इस चर्चा को छोडे और अपना मोह इधर से हटाकर अपने परिणामो की शान्ति की ओर लगाइये तो कहने लगे कि बिलकुल ठीक है मेरे परिणामो मे अब बिलकुल आकुलता नही है और अब तो बस शान्तिसे समाधिपूर्वक मेरा यह शेष जीवन जो अब बहुत कम है व्यतीत होवे। मेरे मन मे जो मोह की शल्य थी वह मैंने तुम पर अच्छी तरह प्रकट कर दी। सबसे पहले उन्होंने हृदय से उन सब लोगो से क्षमा मागी जो उनके प्रति कुछ कटु विचार रखते थे। और उसी क्षण उन्होने अपनी ओर से भी सब को क्षमा कर दिया। यहाँ तक कि स्व० बा० जयभगवान जी व बा० छोटेलाल जी सभी से क्षमा माँग ली और किसी से भी कोई शिकवा या गिला न रहा। मेरे परिणाम अब निर्मल तथा शुद्ध है। अब मेरे अन्तरग मे कोई कषाय नही है और किसी प्रकार का शरीर तथा पैसे का मोह नही है मैंने सब त्याग कर दिया। अब भगवान से यही प्रार्थना है कि मेरे परिणामों में विशुद्धता बनी रहे। मै जरा भी अपने समताभाव से विचलित न होने पाऊँ और हर समय अरहंत, सिद्ध ही सारी रात मुँह से धीरे-धीरे उच्चारण करते रहे जब कभी विचलित होते थे तो मैं उन्हे सावधान कर देता था और धार्मिक चर्चा

सुना कर उनको फिर परमात्मा की आराधना ही मे स्थित कर देता था। कोरी रात भगवान महावीर स्वामी की सामने टँगी हुई मूर्ति की ओर टकटकी लगा ध्यान पूर्वक दर्शन करते रहे, जरा देर को भी नीद नही आई। स्वामी समन्तभद्र-स्तोत्र जो उनकी खुद ही की कृति है उन्हीं की आग्रह से उसे मै सुनाता रहा।

फिर जब कभी बीच में मेरे द्वारा सकलित उर्दू के अध्यात्मिक शेर भी सुनते रहे। उनमें से कुछ इस प्रकार है :—

**हमें खुदा के सिवा कुछ नज़र नहीं आता।**
**निकल गये हैं बहुत दूर जुस्तजू से हम।।**
**चला जाता हूँ हँसता खेलता मौजे हवादस से।**
**अगर आसनियाँ हो जिन्दगी दुश्वार हो जाये।।**
**अगर मरते हुए लब पर न तेरा नाम आयेगा।**
**तो मरने से दर गुज़रा मेरे किस काम आयेगा।।**
**जहाँ तक बसर कर जिन्दगी आला ख्यालों में।**
**बना देता है कामिल बैठना साहब कमालों में।।**
**जिनके दिल में है दर्द दुनिया का।**
**वही दुनिया में ज़िन्दा रहते हैं।।**
**खुदाबन्दा मेरी गुमराहियों से दरगुज़र फरमा।**
**मै उस मोहाल में रहता हूँ जिसका नाम दुनिया है।।**
**वहदते खास इश्क में ग़ैरयत का जिक्र क्या।**
**अपने ही जलवे देखिये अपनी ही बज़्में नाज़ में।।**
**गुलों ने खारो के छेड़ने पर सिवा खामोशी के दम न मारा।**
**शरीफ उलझें अगर किसी से तो फिर शराफत कहाँ रहेगी।।**
**ज़िन्दगी ऐसी बना जिन्दा रहे दिलशाद तू।**
**जब न हो दुनिया में तो दुनिया को आये याद तू।।**
**दीदारे शशजहत है कोई दीदावर तो हो।**
**जल्वा कहाँ नहीं है कोई अहले नजर तो हो।।**
**इतना बुलन्द कर नज़रे जल्वा ख्वाह को।**
**जल्वे खुद आएँ ढूढ़ने तेरी निगाह को।**

सुबह के चार बजे कहने लगे कि अब तुम आराम करो मै भी लेटे-लेटे सामायिक करता रहूँगा और अपने पापों की आलोचना करूँगा। जिससे मुझे अधिक सान्त्वना मिले। मै उठकर चला आया और थोडा लेट गया फिर महेश तथा घर से बराबर पांच दस मिनट बाद चक्कर लगाते रहे। उस रोज बराबर तीन घन्टे तक सामायिक की। जब सामायिक से ध्यान हटा तो कहने लगे कि आज सामायिक मे बहुत मन लगा और बडी शान्ति मिली अब मेरा चित्त हलका है और मुझे कोई कष्ट नही है। फिर बोले कि कमोड लगा दो तो टट्टी पेशाव से निर्वृत्त हो ल । टट्टी पेशाब ठीक किया और कहा कि अब धुला दो मैंने खब धो दिया और उनकी धोती भी जो गीली हो गई थी बदल दी। अब थोडा सा आपको ऊपर को खसका दू तो तकिये के सहारे सिर आ जायगा। मैंने व महेश ने जैसे ही सहारा देकर ऊपर खसकाया उसी समय उनके सुबह के ७ बजकर १३ मिनट पर प्राण पखेरू उड गये उनमे कुछ भी न रहा। चेतना निकल गई और जड शरीर पडा रहा। हम सब कुटुम्बीजन बिलख बिलखकर रोने लगे। मरते समय या रात्रि मे कोई भी अमगलिक सूचक नही हुए और हम स्वप्न मे भी यह नही सोचते थे कि ये आज हमसे सदा के लिए बिछुड जायेगे। ऐसे पुण्य आत्मा का चोला एकदम छूट गया जैसे कोई बात चीत करता मनुष्य आँखे मीच कर गहरी नीद मे सो जाता है। यह सब उनकी धर्मज्ञ भावना का ही असर था जो उन्हे अन्त समय मे कोई पीडा का अनुभव नही हुआ और उनका मरण समाधिपूर्वक ही हुआ। अब और अधिक मै क्या लिखू, अब वे हममें नहीं रहे; परन्तु उनकी स्मृति तथा आशीर्वाद सदा हमारे साथ रहेगा। उनका नाम जैन जैनेतर समाज में सदा अमर रहेगा। कि "युग-वीर" जैसा भी कोई साहित्य तपस्वी हो गया है जिसने अपना सारा जीवन जिनवाणी प्रभावना और सरस्वती आराधना मे लगाये रखा। उनके फूल उनकी इच्छा के अनुकूल सरासावा आश्रम में भिजवा दिये गये है।

डा० श्रीचन्द जी ने मुख्तार साहब के अन्तिम समय के सम्बन्ध में जो कुछ लिखकर भेजा है, उसको उनकी इच्छानुसार ज्यो का त्यो दे दिया है।

# साहित्य जगत के कीर्तिमान नक्षत्र तुम्हें शतशः प्रणाम !

**अनूपचन्द न्यायतीर्थ**

( १ )

ओ महामना मानव पुनीत !
ओ गुण गौरव गरिमा विधान !
ओ देवि सरस्वति वरद पुत्र !
निःस्वार्थ मूक सेवक महान !!

( २ )

चारित्र निष्ठ दृढ़ श्रद्धानी !
आध्यत्मिक श्रेष्ठ विचारवान !
निर्भीक समालोचक सच्चे
ओ ठोस कार्यकर्त्ता महान !

( ३ )

ओ परम सुधारक राष्ट्रीय !
ओ सामाजिक गौरव अपार !
ओ परिश्रमी कर्मठ नेता !
ओ उच्चकोटि साहित्यकार !

( ४ )

सिद्धांत शिरोमणि ! विद्वद्वर !
ओ अधिकारी विद्वान् एक
ओ सफल समीक्षक, कवि, लेखक !
ओ पत्रकार जागृत - विवेक !

( ५ )

ओ भारतीय संस्कृति पोषक !
विद्वान् विचारक नीतिवान !
स्वाभाविक सहज विकास युक्त
अति सौम्य सरलता मूर्तिमान !!

( ६ )

नूतन प्राचीन विचारों का
था सम्मिश्रण तुम में अपार।
क्या वृद्ध तरुण, क्या बाल प्रौढ
थे सभी उपकृत हर प्रकार ।।

( ७ )

ओ पुरातत्त्व प्रेमी ! शोधक !
इतिहासकार, साहित्यकार !
रचयिता 'भावना-मेरी' के
'युगवीर' 'जुगल मुख्तारकार' !

( ८ )

तुमने समग्र निज जीवन को
साहित्य और सेवा-समाज—
हित, खपा दिया आचार्य श्रेष्ठ !
संदेह न इसमें लेश आज ।।

( ९ )

तुमने जन-मानस बदल दिया
नकली ग्रन्थों की पोल खोल
तथ्यों को खोज निकाला है
इतिहास कसौटी तोल तोल ।।

(१०)

असमय में निधन तुम्हारे से
हो गया अचानक वज्रपात।
जीवन - निर्माता, पथ दर्शक
खो गया हाथ से अकस्मात् ।।

इतिहास बदल डाला तुमने
विद्वज्जन बोधक सुगुण-धाम
साहित्य-जगत के कीर्तिमान
नक्षत्र तुम्हें शतशः प्रणाम ।।

# ऐसे थे हमारे बाबू जी

**विजयकुमार चौधरी एम. ए. साहित्याचार्य**

वीर वाङ्मय की शोध और खोज में अपने सुदीर्घ जीवन को प्रतिपल तन्मय रखने वाले भारती-पुत्र बाबू जुगलकिशोर मुख्तार सा० को अब जब हम 'स्वर्गीय' शब्द से अंकित पाते है, तब ऐसे लगता है मानों कराल काल ने वीर-भक्तों पर कहर ढा दिया हो। यद्यपि बात ऐसी नहीं है, हम सबके सौभाग्य से उसने काफी सुनी और मनुष्य के मरण धर्मा स्वभाव होते हुए भी 'जीवेमः शरदः शतम्' की भावना को अनुकूल उसने पूज्य मुख्तार सा० के दर्शन हमें शताब्दी के अन्तिम दशक तक कराये पर ऐसे सरस्वती पुत्रों की आयु तो 'ब्रह्म वर्षो' के अनुसार गिनी जानी चाहिए। अगर आगे आने वाली पीढिया पूछेगी कि आचार्य जुगलकिशोर कौन थे तो इसका उत्तर केवल यही दिया जा सकेगा कि जिनवाणी की सेवा मे अपने जीवन को तिल-तिल जलाकर निःशेष बनाने वाला एक महान् तपस्वी था जिसके हृदय मे करुणा की अजस्र धारा बहती थी। जिसके पढने और मनन करने से जीवन का आत्म परिष्कार होता है, भावनाएँ मानवीयता से ओत-प्रोत हो जाती है ऐसी मेरी भावना का एक भी 'पद' जब तक लोगों की जबान पर रहेगा तब तक स्वर्गीय मुख्तार सा० की कीर्ति-चन्द्रिका इस समाज की धरती पर छिटकती रहेगी वह क्षण कितना पवित्र होगा जिस क्षण मे 'बाबू जी' ने मेरी-भावना का 'उद्गार' किया होगा। बौद्ध साहित्य मे उसके अग रूप मे एक 'उदार' साहित्य जिसमे महात्मा बुद्ध के मंगल क्षणों के हर्षमय उद्गार संकलित है। यह उनके हृदय हिमालय से निकली हुई ऐसी गंगा की धारा है जिसमें नहाकर हम सब अपने जीवन कलंको को सदा काल धोने मे समर्थ हो जाते है।

वह मेरे जीवन के सौभाग्य क्षण थे जब वीर सेवा मन्दिर में सेवा के बहाने इस 'साहित्य-तपस्वी' के नजदीकी से दर्शन करने का अवसर मिला करता था। सन् उन्नीस सौ उनचास के दिसम्बर महीने की अन्तिम तारीखे थी जिन्होंने अचानक ही मुझे इस महान् पुरुष के दर्शन पाने में सहायता की। रुग्णावस्था मे मै छाणी (उदयपुर) अपने सेवा स्थान पर जा रहा था दिल्ली स्टेशन पर एक यात्री धोखा देकर मेरा सामान चुरा ले गया तीन दिन तक मैं कि कर्तव्य विमूढ दिल्ली जकशन पर ही पड़ा रहा चौथे दिन उपाय सोचा श्रीमान् पंडित दरबारीलाल जी 'कोठिया' न्यायाचार्य से मिलना चाहिए। श्री कोठिया जी कितने दयालु है यहां यह बताने की आवश्यकता नहीं है जो उनके सम्पर्क मे आता है वही बता सकता है। श्री पंडित जी की कृपा से दिल्ली में तीसरे दिन मैं इस महान् पुरुष के सामने बैठा था। गौरवर्ण दुहरी देह का वृद्धावस्था से झुर्रियों पडा कान्तिमय चेहरा जिसके शिर पर पके हुए बालों की सफेद चादर, गेरुए वस्त्र का एक कुर्ता, शायद वरत काज से बंधी हुई जेब में पडी घड़ी। जिसके सामने डेस्क पर लिखते थे कागज और तीनों ओर खुले पडे हुए ग्रन्थ जिनमें तन्मयता से आखे गडी हुई है। यह है हमारे पूज्य बाबू जी का कुछ परिचय। और मै उसी दिन वीर सेवा मन्दिर का एक कनिष्ठ सैनिक बन गया। पडित कोठिया जी ने मेरी स्थिति बतायी नही कि उसके पहले ही 'बाबू जी' का हृदय पिघल पड़ा ऐसा प्रेम था विद्वानों से उन्हे।

दूसरे दिन रात्रि के ढाई-तीन बजे होंगे कि बाबू जी के कमरे मे से प्रार्थना की ध्वनि आने लगी—'मुझे है स्वामी उस बल की दरकार'। यह पद शायद बाबू जी के मित्र स्वर्गीय नाथूराम जी प्रेमी का बनाया हुआ था। इसमे आपत्तियों के पहाड़ से टकरा कर भी अपने नैतिक जीवन को आगे बढ़ने की कामना है। मुख्तार सा० अपने ध्येय के प्रति कितने अडिग थे ऐसी ही प्रार्थनाओं का यह फल है।

एक दिन वह था जब श्री कोठिया जी में और श्री बा० जी में किसी सिद्धान्त पर से सम्भवतः वह आप्त

परीक्षा के समर्पण पर से था कुछ वाद-विवाद हो गया और श्री कोठिया जी ने त्याग-पत्र दे दिया उस दिन मुझे ख्याल है श्री बा० जी की आँखे छलछलाती हुई थीं। कितना गहरा वह प्रेम था! श्रीमान् पं० परमानन्द जी शास्त्री तो आज भी वीर सेवा मन्दिर में हैं, उन्हें जिस निष्ठा से 'बा० जी' की सेवा में रत पाते थे हम लोगों के लिए वह अनुकरणीय था।

जैन इतिहास विशेषकर जैन ग्रन्थकार आचार्यों के विषय मे अपने गहरे अध्ययन और चिन्तन से स्वर्गीय मुख्तार सा० ने जो शोध और खोज पूर्ण तथ्य निश्चित किये है वे इतने प्रामाणिक और निर्विवाद हैं कि बिना किसी ननु न च सबने स्वीकार किये है। 'जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।' स्वर्गीय मुख्तार सा० इस कहावत को पूर्णतः चरितार्थ करते थे।

स्वर्गीय बाबू जी के पास जो भी रहा है वह बा० जी की व्यवस्था से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। हिसाब-किताब के सम्बन्ध मे पूज्य बा० जी बड़े व्यवहारी थे अगर किसी के पास दो पैसे भी बाकी है तो चार माह बाद भी मांगने में सकोच नहीं करते थे और किसी का एक पैसा भी देना बाकी हैं तो उसे भी वे चार माह बाद अपने आप बुलाकर दे देते थे एक बार मेरे हिसाब के दो पैसे बा० जी ने ठीक चार माह बाद ऐसे ही दिये थे।

खोज-शोध की गुत्थियों एवं दार्शनिक गहराइयों मे डूबे हुए भी बा० जी को हम लोगों ने जोर के ठहाके लगाते हुए हास्य रस मे विभोर देखा है। उनमे दर्शन-शास्त्र की गम्भीर चिन्तन-शीलता, साहित्यकारों की सहज भाव-प्रवणता, मुक्त विनोद प्रियता एक साथ थी।

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' ऐसे थे हमारे स्वर्गीय बा० जी। अपने सिद्धान्त पर वे इतने अडिग और और अचल रहते थे कि ऐसा मालूम पड़ने लगता था कि बा० जी मे भावुकता बिल्कुल नही है। अपने प्रगाढ़ स्नेही स्वर्गीय बा० छोटेलाल जी कलकत्ता वालों के साथ भी वे वैसी ही दृढ़ता वर्तते पर उस दृढता मे भी अन्तः जयस्विनी की भाँति मृदुल भावुकता का स्रोत बा० जी के हृदय तक में बहा करता। वास्तव में स्वर्गीय मुख्तार सा० केवल साहित्यकार का हृदय नहीं, कवि का भावुक हृदय नहीं, शोधक आचार्यत्व का हृदय लिए रहते थे।

स्वर्गीय बा० जी एक महान् भाष्यकार थे। ग्रन्थ की जटिलता को खोलकर पाठकों में सरसता के साथ विषय का हृदयंगम कराना भाष्यकार का उद्देश्य होता हैं यही बात हमारे स्वर्गीय बाबू जी में थी। वे ग्रन्थ की व्याख्या उसके प्रत्येक शब्द के साधारण और विशेष अर्थ के साथ निर्देशक-चिन्हों के द्वारा स्पष्ट करते थे। हिन्दी के कारक चिन्हों के विषय में बा० जी संस्कृत व्याकरणानुसार समस्त शैली को ही ठीक मानते थे वे शब्द के साथ ही कारक बोधक को जोड़ते थे। पर सर्ग मानकर उसको अलग से नहीं लिखते थे। प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत शैली से वे अधिक प्रभावित थे। स्वर्गीय बा० जी के पास जिनको भी कुछ दिनों बैठकर कुछ लिखने का अवसर मिला है वे अच्छी तरह जानते है कि बा० जी साहित्यकार की अपेक्षा आचार्य अधिक थे।

वीर-वाणी और उनके महान् व्याख्याता महान् आचार्य वर्य पुन्य नाम स्वामी समन्तभद्राचार्य के प्रति बा० जी की इतनी प्रगाढ़ श्रद्धा थी कि उनका नाम स्मरण होते ही वे विभोर हो जाते। मानो समन्तभद्र स्वामी के आदेश को लेकर उनके अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए ही धरा-धाम पर अवतीर्ण हुए हो। उनके जीवनका ध्येय मानो वीर वाङ्मय की सेवा के अतिरिक्त और कुछ नही है। उसके प्रकार और प्रसार में उन्हें अपरिसीम आनन्द मिलता था महासन्त तुलसीदास जीने रामचरित मानस लिखने का जो उद्देश्य—स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा लिखा है। हमारे पूज्य बा० जी ने भी स्वान्तः सुखाय ही वीर वाङ्मय की सेवा में अपने जीवन-स्नेह को तिल-तिल जलाया है। यही कारण है कि महावीर की वाणी के महान् उद्धारक समन्तभद्र स्वामी के प्रति उनकी तन्मयता पूर्ण अनन्य श्रद्धा थी। यद्यपि शास्त्रीय आधार से ऐसा कहने में विवशता है कि हमारे पूज्य बा० जी समन्तभद्र स्वामी के ही अवतार थे, कारण समन्तभद्र स्वामी तो स्वर्ग में लम्बी आयु लेकर स्वर्ग सुखों का अनुभव कर रहे हैं पर उनका सन्देश बा० जी ने अवश्य सुना था।

हमारे स्वर्गीय बा० जी बहुमुखी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उनमें दार्शनिक चिन्तनशीलता, कवि की भावुकता, आचार्यत्व की गरिमा और गम्भीरता, समीक्षक की भेदक दृष्टि, पुरातत्व विद् की व्यापक पारदर्शिता, सम्पादक की काट-छांट सब कुछ थी। और थी इन सबके ऊपर विराट् मानवता और परोपकारार्थ अपने को तिल-तिल जलाने की महान् उदारता। उन्होंने अपने महान् व्यक्तित्व को एक संस्था में परिवर्तित कर दिया था। वे जैन ग्रन्थकारों में उस महान् आचार्य परम्परा की कड़ी थे यद्यपि वे गृहस्थ थे पर उनकी गृहस्थी जिनवाणी की सेवा के ही गहरे मोह से व्याप्त थी।

यद्यपि आज वह महामानव सांसारिक सत्य को साथ कर अपनी देह के पार्थिव परमाणुओं को बिखरा चुका है। पर उसकी साहित्य सेवा और महान् आत्मीय सन्देश हमारे लिये प्रेरणादायक हैं। यहाँ मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

●

# समीचीन धर्मशास्त्र

**चम्पालाल सिंघई, 'पुरन्दर', एम. ए. शोध स्नातक**

स्वतन्त्र भारत ने सारनाथ स्थित अशोक स्तम्भ के शीर्षस्थ सिंहों को राज्य चिन्ह के रूप में अपनाकर सम्राट् अशोक द्वारा धर्मविजय को युद्धविजय से श्रेष्ठ प्रदर्शित करने वाली नीति का महत्व प्रतिपादित किया है। इस देश में दिग्विजयी सम्राटो के स्वर्ण-मुकुट धर्मविजयी सतो के चरणों मे झुकते रहे है लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व ऐसी धर्मविजय फणिमण्डलातर्गत उरगपुर (पांड्य प्रदेश की राजधानी) के सन्यस्त राजपुत्र ने की थी। करहाटक की राजसभा मे उसने निम्नाकित श्लोक के रूप मे आत्मपरिचयादि दिया था जो श्रवण बेलगोल के शिलालेख मे उत्कीर्ण है। (शिला लेख क्र० ५४)।

**"पूर्व पाटलिपुत्रमध्य नगरे भेरी मया ताडिता,**
**पश्चान्मालव-सिंधु-ठक्क-विषये कांचीपुरे वैदिशे।**
**प्राप्तोऽपि हं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं सकटं,**
**वादार्थी विचराम्यह नरपते शार्दूलविक्रीडितं॥"**

इस गर्वोक्ति से प्रकट होता है कि न केवल दक्षिण भारत की कांची नगरी के वादर्थियो को स्वामी समन्तभद्र ने पराजित किया था, अपितु उत्तर भारत स्थित पाटलिपुत्र (पटना), मालवा, सिन्धु, ठक्क (पजाब का एक भाग), विदिशा (आजकल मध्यप्रदेश में है) आदि मे भी विजयपताका फहराई थी। उक्त श्लोक तो विख्यात है, मुख्तार सा० ने समीचीन धर्मशास्त्र की प्रस्तावना में श्री समन्तभद्र की दो अन्य गर्वोक्तियाँ भी अंकित की है जिनका अधिक प्रचार नही हो सका है—

**"कांच्यां नग्नाटकोऽहं, मलमलिनतनुर्लांबुशे पांडुपिंड:,**
**पुण्ड्रोड्रे शाकभक्षी, दशपुरनगरे मिष्टभोजीपरिव्राट्।**
**वाराणस्यामभूवं शशधरधवल:, पांडुरागस्तपस्वी,**
**राजन् यस्याऽस्तिशक्ति:, स वदति पुरतो जैननिर्ग्रंथवादी।"**

काची के इस नग्नाटक (दिगम्बर साधु) को आप्तमीमांसा की ताड़पत्रीय प्रति में राजकुमार प्रकट किया गया—

**'इतिश्री फणिमण्डलालंकारस्योरगपुराधिप सूनो:**
**श्री स्वामी समन्तभद्र मुनेः कृतौ आप्तमीमांसायाम्।'**

उन्हें धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र और साहित्यशास्त्र के साथ ज्योतिषशास्त्र, आयुर्वेद, मन्त्र, तन्त्रआदि विषयों में भी निपुणता प्राप्त थी, जैसा कि निम्नाकित आत्म-परिचय से प्रकट है:—

**"आचार्योहं, कविरहमहं, वादिराट्, पंडितोहं,**
**दैवज्ञोहं, भिषगहमहं, मान्त्रिकस्तांत्रिकोहं।**
**राजन्नस्यां जलधिवलयामेखलायामिलायाम,**
**आज्ञासिद्ध: किमिति बहुना सिद्ध सारस्वतोहम्॥"**

उक्त पद्य में आचार्य प्रवर के १० विशेषणों का

उल्लेख हुआ है :—

(१) आचार्य, (२) कवि, (३) वादिराट्, (४) पंडित, (५) दैवज्ञ (ज्योतिषी), (६) भिषक्, (७) यांत्रिक, (८) तांत्रिक, (९) आज्ञासिद्ध, (१०) सिद्ध सारस्वत।

स्वामी समन्तभद्र की तुलना में निर्भीक एवं प्रभावक अन्य आचार्य नही ठहरते। इसी से स्वर्गीय पडित जुगलकिशोर उन पर मुग्ध थे।

उन्होंने २१ अप्रेल १९२९ को दिल्ली मे समन्तभद्राश्रम की स्थापना की थी। आगे चलकर यही वीर सेवा मन्दिर कहलाया। उन्होंने आचार्यश्री के अनेक ग्रन्थों पर भाष्य लिखे और उन्हें सटीक प्रकाशित कराया। उनकी अन्तिम इच्छा एक मासिक पत्र और निकालने की थी। जिसका नाम भी 'समन्तभद्र' प्रस्तावित किया गया था। प्रस्तावित मासिक-पत्र तो अब क्या निकलेगा, वीर सेवा मन्दिर से अनेकान्त ही निकलता रहे तो बड़ी बात है।

श्री समन्तभद्र के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक लोकप्रियता उनके उपासकाचार को प्राप्त होने का कारण इस ग्रन्थ की सरल सस्कृत भाषा और अधिकतर अनुष्टुप छन्दों मे गृहस्थाचार का विशद् विवेचन है। 'गागर मे सागर' भर दिया है। विषयवस्तु और शैली दोनों ही उत्कृष्ट है।

सर्वप्रथम इसकी संस्कृत टीका श्री प्रभाचन्द्राचार्य ने लिखी। कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं में अनेक टीकाये लिखी गई। हिन्दी में सर्वप्रथम विस्तृत भाष्य पडित सदासुख कासलीवाल (जयपुर निवासी) ने लिखा जो ढुढारी गद्य में है। जयपुर के आसपास का क्षेत्र ढुढार कहलाता है। यह भाष्य वि० सं० १९२० मे लिखा गया। मुख्तार सा० ने श्रावकाचार की विस्तृत व्याख्या २०० पृष्ठो मे की है और ११९ पृष्ठों मे तो केवल प्रस्तावना ही लिखी, जिसे माघ सुदी ५ सं० २०११ वि० को पूर्ण किया। जीवन के बहुमुल्य १२ वर्ष इसमे लगाये। यह ग्रन्थ वीर सेवामन्दिर से अप्रेल १९५५ ई० में प्रकाशित हुआ है। कपड़े की पक्की जिल्द है। प्रचार की दृष्टि से मूल्य लागतमात्र केवल तीन रुपये रखा है। यदि भारतीय ज्ञानपीठ ने यह ग्रन्थ प्रकाशित किया होता तो मूल्य ७ रु० से कम न होता।

स्व० मुख्तार सा० ने ग्रन्थ का बहुप्रचलित नाम रत्नकरंड श्रावकाचार न रखकर 'समाचीन धर्मशास्त्र' रखा है। ग्रन्थकर्ता श्री समन्तभद्र ने ग्रन्थारम्भ मे संकल्प किया है कि :—

**देशयामि 'समीचीनं धर्मं' कर्म निवर्हणं।**
**ससार दुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥२॥**

मुख्तार सा० ने रत्नकरण्ड नाम ग्रन्थात के निम्नलिखित श्लोक से फलित किया है :—

**येन स्वयं वीत-कलंक-विद्या-दृष्टि-क्रिया-'रत्नकरंड'-भावं।**
**नीतस्तमायाति पतीच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषुविष्टपेषु ॥१४९**

ग्रन्थकर्ता ने अन्य ग्रन्थो के भी दो-दो नाम गिनाये है, जैसे—देवागम का अपरनाम आप्तमीमांसा। स्तुतिविद्या का अपर नाम जिनस्तुतिशतक या जिनशतक, स्वयंभू स्तोत्र का अपरनाम समन्तभद्र स्तोत्र और यह भी लिखा है कि ये सब प्रायः अपने अपने आदि या अन्त के पद्यो की दृष्टि मे रखे गये है।

ग्रन्थकर्ता के अन्यान्य ग्रन्थ कठिन भाषा में है और विषय भी दुरूह है। अतः कुछ विद्वानों को सन्देह हुआ कि देवागम, युक्त्यनुशासन जैसे ग्रन्थो के कर्ता उद्भट विद्वान प्रसिद्ध आचार्य समन्तभद्र ने यह ग्रन्थ नही लिखा। इसके कर्ता कोई दूसरे ही समन्तभद्र होगे। इस सन्देह का प्रधान कारण है इस ग्रन्थ मे उस तर्कपद्धति का अभाव जो अन्य ग्रन्थो मे प्राप्त है। स्व० मुख्तार सा० ने इसे सप्रमाण श्री समन्तभद्राचार्य प्रणीत सिद्ध किया है। इसी सम्बन्ध मे डा० हीरालाल जैन ने १९४४ ई० मे एक निबन्ध लिखा था—'जैन इतिहास का एक विलुप्त अध्याय।' इसका विस्तृत और सप्रमाण उत्तर मुख्तार सा० ने अनेकान्त द्वारा १९४८ मे दिया था, जिसे विस्तार पूर्वक इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में दिया है। प्रस्तावना मे ६ अन्य समन्तभद्रों का उल्लेख करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि यह ग्रन्थ उन्ही समन्तभद्र स्वामी की रचना है जिनकी कृतियाँ आप्तमीमासादि है।

वास्तव में आचार्य श्री ने यह ग्रन्थ लिखकर बालकों एवं बालबुद्धि गृहस्थो पर अत्यन्त अनुग्रह किया है। प्रत्येक

परीक्षालय ने इसे पाठ्यक्रमों मे स्थान दिया है, प्रत्येक पाठशाला में इसका पठनपाठन होता है, प्रत्येक जिनमन्दिर तथा सुशिक्षित गृहस्थ के गृह में यह प्राप्तव्य है।

इस ग्रन्थ की अनेक बालबोधटीका हिन्दी में हुई है। सोनगढ़ से भी हिन्दी टीका सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

'समीचीन धर्मशास्त्र' का प्राक्कथन डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एवं (Preface) डा० आ० ने० उपाध्ये महोदय से लिखा कर गौरववृद्धि की गई है। समर्पण पत्र श्री समन्तभद्र स्वामी के नाम है :—

**'त्वदीयं वस्तु भोः स्वामिन् ! तुभ्यमेव समर्पितम् ।'**

ग्रन्थ को ७ सात अध्यायों में विभक्त करना मुख्तार सा० की सूझबूझ है। यह विभाजन बड़े अच्छे ढग से किया गया है।

स्व० प० पन्नालाल वाकलीवाल ने १८९८ ई० मे ग्रन्थ के २१ पद्यो के क्षेपक होने का सन्देह व्यक्त किया था। मराठी भाषा के विद्वान प० नाना रामचन्द्र नाग ने तो केवल १०० श्लोक मान्य करके ५० कम कर दिये। मुख्तार सा० को जैन सिद्धान्त भवन, आरा मे ताडपत्रीय ऐसी प्रतियाँ भी प्राप्त हुई है जिनमे १६० श्लोक है परन्तु उन्होने सप्रमाण सिद्ध किया कि वास्तव मे १५० श्लोक होना चाहिए। उन्होंने श्री प्रभाचन्द्राचार्य एव प० सदासुख कासलीवाल के चरणचिन्हो पर चलकर समीचीन धर्मशास्त्र में १५० श्लोक ही रखे।

श्री समन्तभद्राचार्य का विस्तृत परिचय २५ पृष्ठो में दिया है जिसे मुख्तार सा० ने 'सक्षिप्त परिचय' कहा है। इसका कारण यह है कि उन्होने आचार्य प्रवर के सम्बन्ध मे बहुत शोध की थी इसलिए इतना लिखने पर भी लगता था कि बहुत कम लिखा है।

श्री आ० ने० उपाध्ये ने भूमिका में लिखा है कि—'हिन्दी व्याख्या केवल मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद नही है, बल्कि जैन न्याय सम्मत विषयों पर कुछ सदृश प्रकरणों को श्री समन्तभद्र तथा उनके पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों के ग्रन्थों से लेकर गुण-दोष-विवेचिका विचारणा को भी प्रस्तुत करती है।'

व्याख्या के क्रम में कुछ शब्दों की शोधपूर्ण विवेचना दृष्टव्य है। यथा—

श्लोक क्र० १३ मे 'पाषडि' का प्रचलित अर्थ धूर्त, दंभी या कपटी अमान्य करके पाप का खंडन करने वाला तपस्वी किया है। इसी अर्थ में श्री कुदकुदाचार्य प्रणीत समयसार की गाथा क्र० १०८ तथा अति प्राचीन साहित्य में प्रयुक्त होना बताया है।

श्लो० क्र० २८ मे 'मातंगदेहजम्' का अर्थ चांडाल का काम करने वाला ही नही, चाण्डाल के देह से उत्पन्न अर्थात् जन्म या जाति से चाण्डाल भी किया है।

श्लोक क्र० ५८ में 'विलोम' की व्याख्या—अल्प मूल्य में मिले हुए द्रव्यों को अन्य राज्य मे बहुमूल्य बनाने का प्रयत्न। इससे अपने राज्य की जनता उन द्रव्यों के उचित उपयोग से वचित रह जाती है। इसलिए यह एक प्रकार का अपहरण है। विलोप मे दूसरे प्रकार का अपहरण भी शामिल है जो किसी की सपत्ति को नष्ट करके प्रस्तुत किया जाना है है।

श्लोक क्र० ५९ मे परदार निवृत्ति' की व्याख्या—जो स्वदार नही, वह परदार है। कुछ लोग परदार का अर्थ पर की स्त्री करने है। एकमात्र उसी का त्याग करके कन्या तथा वेश्या सेवन की छूट रखना सगत प्रतीत नही होता।

श्लोक क्र० ७७ मे हिसादान की व्याख्या—हिसा के ये उपकरण यदि कोई गृहस्थ इसलिए माँगे देता है कि उसने भी आवश्यकता के समय उनसे वैसे उपकरणो को माँग कर लिया है और आगे भी उसके लेने की सम्भावना है तो ऐमी हालत मे उसका वह देना निरर्थक नही कहा जा सकता। उसमे भी यह कुछ वाधा नही डालता। जहाँ इन हिसोपकरणो को देने मे कोई प्रयोजन नही है, वही यह व्रत वाधा डालता है।

श्लोक क्र० ८५ मे वे ही कंदमूल त्याज्य है जो प्रासुक अथवा अचित्त नही है। प्रासुक कदमूलादि वे कहे जाते है जो सूखे होते है, आग्न्यादिक मे पके या खूब तपे होते है, खटाई तथा लवण से मिले होते है अथवा यत्रादि से छिन्न भिन्न किये होते है—जैसा कि निम्न प्राचीन प्रसिद्ध गाथा से प्रकट है :—

**"सुक्कं पक्कं तत्तं, अंविल लवणेण मिस्सिय दव्वं ।**

जं अंतेण य छिण्णं, तं सव्वं फासुयं भणियं ॥"

नवनीत में अपनी उत्पत्ति से अंतर्मुहूर्त के बाद ही सम्मूर्च्छन जीवों का उत्पाद होता है। अतः इस काल-मर्यादा के बाहर का नवनीत ही वहाँ त्याज्य कोटि मे है—इससे पूर्व का नहीं।

श्लोक ८६ में 'अनुपसेव्य' की व्याख्या—स्त्रियों को ऐसे अति महीन एवं झीने वस्त्र नहीं पहनना चाहिए जिनसे उनके गुह्य अंग स्पष्ट दिखाई पड़ते हों।

श्लोक क्र० ११९ में द्रव्यपूजा की व्याख्या—वचन तथा काय को अन्य व्यापारों से हटा कर पूज्य के प्रति प्रणामांजलि तथा स्तुति पाठादि के रूप में एकाग्र करना ही द्रव्यपूजा है। जल, चन्दन, अक्षतादि से पूजा न करते हुए भी पूजक माना है। श्री अमितगति आचार्य के उपासकाचार से भी द्रव्यपूजा के इसी अर्थ का समर्थन होता है।

"वचो-विग्रह-संकोचो, द्रव्यपूजा निगद्यते।
तत्र मानस सकोचो, भावपूजा पुरातनैः॥"

श्लोक क्र० १४७ मे 'भैक्ष्य' की व्याख्या—भैक्ष्य का अर्थ भिक्षासमूह है। उत्कृष्ट श्रावक अनेक घरो से भिक्षा लेकर अन्त के घर या एक स्थान पर बैठकर खाता है। जिसका समर्थन श्री कुदकुदाचार्य के सुत्तपाहुड में आए हुए 'भिक्खं भमेइ पत्तो' से होता है (पात्र हाथ में लेकर भिक्षा के लिए भ्रमण करना।) ग्यारहवीं प्रतिमा के क्षुल्लक और ऐलक भेद श्री समन्तभद्र स्वामी के समय में नहीं थे। श्री मुख्तार सा० क्षुल्लक पद को पुराना और ऐलक पद को पश्चाद्वर्ती मानते थे जैसा कि उनके गवेषणापूर्ण निबंध 'ऐलक पद-कल्पना' से स्पष्ट है जो अनेकान्त वर्ष १० की संयुक्त किरण ११-१२ में प्रकाशित हुआ था।

इसी श्लोक में 'गृहतो मुनिवनमित्वा' से सूचित किया है कि मुनिजन तब वनवासी थे, चैत्यवासी नहीं थे। श्री पं० नाथूराम प्रेमी ने 'वनवासी और चैत्यवासी' शीर्षक शोधपूर्ण लेख १९२० ई० मे जैनहितैषी में प्रकाशित कर इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

उक्त दृष्टांतों से प्रकट होता है कि स्व० पं० जुगलकिशोर का ज्ञान तलस्पर्शी था और उनकी मौलिक स्थापनाएँ बेजोड थी। वाङ्मयाचार्य की उपाधि से वे विभूषित किये गये थे। काश जैन समाज ने कोई विश्वविद्यालय स्थापित किया होता तो निश्चय रूपेण वे डॉक्टरेट की मानद उपाधि से विभूपित किये गये होते। उनके निधन से जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति असभव नही तो दुष्कर अवश्यमेव है।

—:o:—

# 'एक अपूरणीय क्षति'

**पन्नालाल साहित्याचार्य**

विद्वद्वरेण्य प० जुगलकिशोर जी मुख्तार जैन वाङ्मय के स्वयं बुद्ध विद्वान् थे। उन्होने अन्तरङ्ग की प्रेरणा से जैन शास्त्रों का गहन अध्ययन कर अपने ज्ञान को विकसित किया था। धर्म, न्याय, साहित्य इतिहास आदि सभी विषयों में उनकी अप्रतिहत गति थी। उनके द्वारा रचित विशाल साहित्य उनके अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग को सूचित करता है। आपने अपने ज्ञान का सदावर्त विना किसी स्पृहा के निःस्वार्थ भाव से चालू रक्खा है।

आपने अपनी स्वार्जित सम्पत्ति का बहुभाग समर्पित कर वीरसेवा मन्दिर की स्थापना की थी तथा उसके माध्यम से अनेकान्त पत्र का प्रकाशन कर विद्वानों के लिए विचारणीय सामग्री प्रस्तुत की है। अब तक आप समाज को—१. जैनाचार्यों का शासन भेद, २. ग्रन्थ परीक्षा चार भाग, ३. युगवीर निबन्धावली दो खंड, ४. स्वयंभू स्तोत्र, ५. युक्त्यनुशासन, ६. समीचीन धर्मशास्त्र, ७. देवागम स्तोत्र, ८. अध्यात्म रहस्य, ९. तत्त्वानुशासन, १०.

पुरातन जैन वाक्य सूची, ११. सत्साधु संस्मरण मंगलपाठ, १२. अनित्य पञ्चाशिका, १३. योगसार प्राभृत भाष्य, १४. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, स्तुति विद्या, समाधितन्त्र आदि के प्रस्तावना लेख, १५. मेरी भावना आदि कविताएँ, १६. उपासना तत्त्व तथा अनेक लेख संग्रह प्रदान कर चुके हैं। जैन लक्षणावली आपका महत्त्वपूर्ण कार्य है जो कि अभी तक अप्रकाशित पड़ा है। सुसंपादित होकर प्रकाश में आने पर एक बड़ी कमी की पूर्ति हो जायगी ऐसी आशा है।

बाल्यजीवन से ही आपकी अध्ययन प्रवृत्ति निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होती रही। तरुण अवस्था में धर्मपत्नी एवं दो कन्याओं का मरण होने पर भी आपने अपने जीवन में शून्यता का अनुभव नही किया किन्तु गृहस्थी की चिन्ता से निर्मुक्त हो धर्म और समाज की सेवा में पूरी शक्ति से जुट पड़े। बिना कुछ लिखे आपको चैन नही पड़ता था। कवि कल्पद्रुम और योगसार प्राभृत भाष्य तो आपने अभी ९१-९२ वर्ष की अवस्था मे विस्तर पर बैठे बैठे तैयार किये है। कितनी ज्ञानासक्ति है। एक बार संभवत: सन् १९४४ की बात है मैं सहारनपुर की रथ यात्रा से निवृत्त हो सरसावा गया था। शाम को भोजन के बाद मैं अपने सहपाठी मित्र परमानन्द जी शास्त्री के साथ घूमने को निकल गया और बड़ी रात निकल जाने पर वापिस आया। आते ही साथ मुख्तार जी बोले कि मै आपसे चर्चा करने की प्रतीक्षा मे शाम से बैठा हूं। चर्चा होनी थी रत्नकरण्ड श्रावकाचार के 'मूर्धरुहमुष्टिवासो—श्लोक पर। उस समय वे समीचीन धर्मशास्त्र (रत्न करण्ड श्रावकाचार भाष्य) की तैयारी मे थे। मुझें लगा कि एक वृद्ध विद्वान् कितना ज्ञानोपयोग रत है।

आपने मुझसे मरुदेवी स्वप्नावली, स्तुतिविद्या तथा अध्यात्म तरङ्गिणी का संपादन कराकर उन्हे प्रकाश में लाया है। संस्कृत मे यमकालंकार दुरूहता की दृष्टि से अपना खास स्थान रखता है शब्दों की तोड़फोड़ को मुख्तार जी एक बड़ा चमत्कार मानते थे। 'लक्ष्मीमहस्तुल्य सती सती सती—' इस पार्श्वनाथ स्तोत्र का भी आपने मुझसे हिन्दी अनुवाद कराया था पर वे उसे अभी प्रकाशित नही करा सके।

समन्तभद्राचार्य के प्रति आपकी अगाध श्रद्धा थी। वे कहा करते थे कि मुझे तो लगता है कि मैं उनके संपर्क मे रहा हूँ। परन्तु वे तो अपना कल्याण कर गये और मैं कर्मचक्र मे सड़ रहा हूँ। उनका कहना था कि समन्तभद्र स्वामी ने जैनधर्म की जितनी प्रभावना की है जैन समाज ने उसके उपलक्ष्य मे उनका कुछ भी सम्मान नही किया है। उनकी अन्तिम समय तक इच्छा रही है कि उनके नाम पर 'समन्तभद्राश्रम' नाम का एक आश्रम खोला जावे तथा उसके द्वारा उनके साहित्य का प्रचार हो। आज के युग मे लोग जैनधर्म सुनने के इच्छुक है पर कोई उन्हें सुनाने वाला नही। एक 'समन्तभद्र' पत्र के प्रकाशन की भी उनकी इच्छा थी।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ने अभी ५ नवम्बर १९६८ को एटा मे अभिनन्दन किया था। अभिनन्दन के उत्तर मे आपने आध घंटा तक रुग्णावस्था मे भी जो हृदय के उद्‌गार प्रकट किये थे वे बड़े ही मार्मिक थे। उनका सार मैंने समाचार पत्रों में दिया था।

श्री डा० श्रीचन्द जी सगल एटा एक सेवाभावी व्यक्ति हैं आपने तथा आपके परिवार के प्रत्येक सदस्य ने बड़ी तत्परता से श्री मुख्तार जी की सेवा की है।

इस साहित्य महारथी के उठ जाने से जैन समाज को एक अपूरणणीय क्षति उठानी पड़ी है। मै दिवगत मुख्तार जी के प्रति नम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हुआ डा० सगल जी व उनके परिवार के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता हूं।

**'नहि पराग नहि मधुर मधु नहीं विकास का काल।**
**अलि कली में बंध रह्यो आगे कौन हवाल॥**

\+ + + +

**निपट अबुध समुझत नहीं बुधजन वचन रसाल।**
**कबहुं भेक नहिं जानता अमल कमल-दल बास॥**

# महान साहित्य-सेवी

**मोतीलाल जैन 'विजय' एम. ए. बी. एड.**

सुप्रसिद्ध साहित्यकार, वीर सेवा मन्दिर एवं ट्रस्ट के संस्थापक आदरणीय पडित जुगलकिशोर जी मुख्तार "युगवीर" जैन समाज मे विश्रुत विद्वान, साहित्यकार, समालोचक, संशोधक, सम्पादक, पुरातत्त्ववेत्ता, समाज-सुधारक एव साहित्य प्रचारक थे। उन्होने जैन साहित्य के प्रचार-प्रसार, संशोधन, सम्पादन मे जो योगदान दिया है। यद्यपि श्री मुख्तार सा० ने किसी महाविद्यालय, विश्व-विद्यालय अथवा उच्च स्थान पर शिक्षा प्राप्त नही की थी तथापि उन्हें साहित्य, व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष का ज्ञान था। वे निरन्तर विद्या-व्यसनी रहे। निरतन्र स्वाध्याय, मनन एव चिन्तन ने उन्हे कुशल अन्वेषक-तत्त्वचितक बना दिया। फलस्वरूप आप अप्रकाशित, अनुपलब्ध एव आध्यात्मिक जैन साहित्य की ओर आकृष्ट हुए।

समन्तभद्र भक्त आचार्य जुगलकिशोर जी 'मुख्तार' ने उनके द्वारा रचित ग्रन्थो का सम्पादन-प्रकाशन ही जैन धर्म के प्रचार एव इसी सर्वोदय तीर्थ का प्रसार, आपना मूल लक्ष्य बनाया। आज से २८ वर्ष पूर्व स्थापित 'समन्त-भद्राश्रम, (अब वीरसेवा मन्दिर ट्रस्ट) उनकी लगन का जीवन्त स्मारक है। सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन, कुप्रथाओं का बहिष्कार एव कतिपय ऐसी बाते है जिनसे उनकी समाज-सेवा की लगन स्पष्ट दीख पडती है।

'मेरी भावना' उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है जो राष्ट्रीय कविता की उच्च श्रेणी में रखी जाती है। जैन व जैनेतरों ने 'मेरी भावना' को इतना स्नेह दिया कि सहज ही वह भारत की अनेक भाषाओं मे प्रकाशित हुई है। 'युगवीर' मे एक साथ साहित्यकार, सम्पादक, समाज-सुधारक, समालोचक, निबन्धकार एव पुरातत्त्ववेत्ता जैसे अनेक रूप देखने को मिलते हैं। यह उनकी पैनी दृष्टि, स्पष्टवादिता, चिन्तनशीलता, सहृदयता, सरलता एव समता की द्योतक है जो उन्हे सर्वोच्चता के शिखर पर ले जा सकी।

सरसावा के सन्त का अमरदीप अब "अनेकान्त" के रूप मे हमारे समक्ष है। आशा है सरस्वती के इस साहित्य महारथी की अक्षय कीर्ति को अक्षुण्य बनाने मे जैनसमाज, जैन साहित्य तथा साहित्यानुरागी वर्ग असीम उत्साह तथा साहस का प्रदर्शन करेगा।

अखिल भारतीय स्तर पर मान्यता प्राप्त दि० जैन परिषद्, विद्वत्परिषद्, दि० जैन परिषद्, दि० जैन महा सभा, भारतवर्षीय दि० जैन सघ एव वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रभृति सस्थाओ का प्राथमिक कर्तव्य है ऐसे साधु-पुरुष का स्मारक ग्रन्थ प्रकाशित करावे साथ ही उनकी स्मृति स्वरूप कोई स्थायी योजना बनाते जो महत्व-पूर्ण हो। ●

# आधुनिक जैन-युग के 'वीर'

**श्रीमती विमला जैन**

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक, आधुनिक जैन युग के वीर, जैन साहित्य के उन्नायक, कवि, भाष्यकार, समी-क्षक, सम्पादक, पत्रकार, इतिहासकार एव पुरातत्त्ववेत्ता विद्वद्वरेण्य पडित जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' का निधन न केवल जैनसमाज को क्षुब्ध करता है अपितु हिन्दी संसार को भी आघात पहुँचाता है। ९२ वर्ष की आयु में जो साहित्यकार साहित्य-प्रणयन मे लगा रहे ऐसे सरस्वती पुत्र के गुणों का बखान करना कहाँ तक सम्भव है। उन्होने 'मेरी भावना' के युगवीर के नाम से जैन जगत मे अक्षय नाम बना लिया है। डा० नेमिचन्द्र जी शास्त्री, आचार्य जी के सम्बन्ध में एकदम सत्य लिखते है "यदि आचार्य युगवीर की अन्य कविताओं को दृष्टि से ओझल कर दे तो केवल 'मेरी भावना' के कारण उसी प्रकार अमर रहेगे जिस प्रकार 'उसने कहा था' कहानी

लिखकर चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' अमर हो गये।"

'मेरी भावना' की लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि कई कारागारों में उसे निश्छल प्रेम प्राप्त है। यही कारण है कि यह अंग्रेजी, मराठी, कर्नाटक प्रभृति भाषाओं मे अनूदित हुई है। उन्होंने साहित्य के विविध क्षेत्रों मे अपनी लेखनी चलाई है। वे साहित्यकार, समाज-सुधारक तथा सत्साहित्य प्रणेता के रूप मे समानभाव से आदृत है।

पुरातन 'समन्तभद्राश्रम' व आधुनिक वीर सेवा मन्दिर ही उनका जीवन्त स्मारक है। ६०,०००) की राशि का उक्त ट्रस्ट है। इतिहास, पुरातत्त्व व शोध सामग्री युक्त 'अनेकान्त' पत्रिका के आप जन्मदाता थे जो नवम्बर १९२९ ई० मे प्रारम्भ किया गया। यह पत्रिका आज भी भारत की राजधानी दिल्ली से प्रकाशित होती है। भारत प्रसिद्ध 'जैनजगत' व 'जैन हितैषी' पत्रो के भी आप सम्पादक रह चुके हैं। इनके सम्पादकत्व में उभय-पत्रों की ग्राहक संख्या कई गुनी हो जाना सुयोग्य सम्पादकत्व का प्रतीक ही कहा जावेगा।

उनकी बहुमुखी प्रतिभा जैन साहित्य को गौरवमय बनाती रही है। यही कारण है डॉ० ज्योतिप्रसाद जी ने उन्हें साहित्य का भीष्मपितामह कहा है। लगभग ७० वर्षों तक साहित्य की अहर्निश सेवा करने वाला सरसावा (जिला सहारनपुर उ० प्र०) का सन्त तथा जैन साहित्य का सूर्य २२-१२-६८ को अस्तगत हो गया। उन्हें निस्सन्देह गुरुणां गुरु गोपालदास जी, पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी, ब्र० शीतलप्रसाद जी, बैरिस्टर चम्पतराय जी जैन साहित्यप्रचारक, पडित नाथूराम प्रेमी जैसे साधु पुरुषों की श्रेणी मे रखा जावेगा, जिनकी साहित्य सेवा, समाज सेवा, धर्म सेवा जैनसमाज को युगयुगो तक प्रभावित करेगा तथा जिनकी स्मृति अक्षुण्ण रहेगी। ●

## 'अनेकान्त' के स्वामित्व तथा अन्य व्योरे के विषय में


| | |
|---|---|
| प्रकाशक का स्थान | वीर सेवा मन्दिर भवन, २१ दरियागज दिल्ली |
| प्रकाशन की अवधि | द्विमासिक |
| मुद्रक का नाम | प्रेमचन्द |
| राष्ट्रीयता | भारतीय |
| पता | २१, दरियागज, दिल्ली |
| प्रकाशक का नाम | प्रेमचन्द, मन्त्री वीर सेवा मन्दिर |
| राष्ट्रीयता | भारतीय |
| पता | २१, दरियागज, दिली |
| सम्पादक का नाम | डा० आ. ने. उपाध्ये एम. ए. डी लिट्, कोल्हापुर |
| | डा० प्रेम सागर, बडौत |
| | यशपाल जैन, दिल्ली |
| | परमानन्द जैन शास्त्री, दिल्ली |
| राष्ट्रीयता | भारतीय |
| पता | मार्फत वीर सेवा मन्दिर २१, दरियागंज, दिल्ली |
| स्वामिनी संस्था | वीर सेवा मन्दिर २१, दरियागंज, दिल्ली |

मैं प्रेमचन्द घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

१७-२-६९ ह० प्रेमचन्द

(प्रेमचन्द)

# स्वर्गीय पं० जुगलकिशोर जी

**डॉ० ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट्**

अनुवादक : श्री रामकुमार जैन एम. ए.

पण्डित जुलकिशोर जी मुख्तार २२ दिसम्बर १९६८ को ९२ वर्ष की पूर्ण परिपक्व अवस्था में एटा नगर में दिवंगत हो गये। इस शोकपूर्ण घटना से मुझे वह दिवस स्मृत हो गया, जब मैं बी. ए. परीक्षा का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लिए बम्बई विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह मे सम्मिलित होने गया था और मैंने २८ अगस्त को श्री नाथूराम जी प्रेमी के निवासस्थान पर प्रथम बार पंडित जी के दर्शन किये थे। इससे बहुत पहले सन् १९२० मे ही, जैन ग्रन्थकारों एवं साहित्यकारों के विषय में लिखे गये, 'जैन हितैषी" मे प्रकाशित एव श्री ए० बी० लट्ठे द्वारा बेलगाम के पुस्तकालय की फाइलों में सुरक्षित, उनके खोजपूर्ण लेख मैं पढ़ चुका था। उनकी विद्वत्ता का तभी से मेरे हृदय पर प्रभाव पड़ चुका था। स्वर्गीय श्री नाथूराम जी प्रेमी भी मेरे बड़े आदरास्पद थे। उनके सुपुत्र ने हीराबाग मे मुझसे कहा कि प० जुगलकिशोर जी हमारे घर (मलुन्द-बम्बई) मे ठहरे हुए है—यदि आप चाहें तो इस अवसर पर मेरे पिता जी के और पडित जी के एक साथ ही दर्शन कर सकते हैं। यह प्रथम अवसर था, जब मै दोनों विद्वानों के एक साथ प्रत्यक्ष दर्शन कर सका था। उन दिनो मैं हिन्दी समझ लेता था, परन्तु बोल नही सकता था। परिणामतः श्री पडित जी के साथ मेरा तत्कालीन वार्तालाप कुछ विचित्र-सा ही रहा। प० जी साधारण अग्रेजी समझ लेते थे, परन्तु इतने मात्र से वार्तालाप का निर्वाह होना कठिन था। अग्रेजी के स्थान पर मैंने मराठी मे बोलना प्रारम्भ किया। श्री प्रेमी जी मराठी का हिन्दी अनुवाद करके मेरे भाव पडित जी को अवगत करा रहे थे। हम उस दिन शाम को लगभग तीन घण्टे वार्तालाप में सलग्न रहे। हमने इस प्रदेश मे जैन धर्म की पुरातन अवस्थिति, कुमार की कालानुक्रमतिथि तथा योगीन्द्र की कृतियों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया। निश्चय ही वार्तालाप ने उस सहयोग का शिलान्यास कर दिया, जो प्रेमी जी जैनधर्म के अध्ययन एवं तत्सम्बन्धी अनुसन्धान मे मुझसे आशा रखते थे।

पडित जुगलकिशोर जी से इस प्रथम साक्षात्कार के के पश्चात् प्रतिमास पत्र व्यवहार द्वारा मेरा उनका संपर्क बढ़ता ही गया। प्रेमी जी के आग्रह से मैंने एक कन्नड़ भाषा के कवि का जीवनचरित्र का मराठी में अनुवाद किया, जिसे प्रेमी जी ने स्वयं हिन्दी मे अनूदित किया, जो "अनेकान्त" के प्रथम, द्वितीय एवं अन्य अंकों में क्रमशः प्रकाशित हुआ। "अनेकान्त" उस समय करौलबाग, दिल्ली से प्रकाशित होता था।

मार्च, सन् १९३० मे मुझे लोक सेवा आयोग के समक्ष साक्षात्कार के निमित्त दिल्ली जाना पड़ा। प्रेमी जी के परामर्शानुसार मै उस समय समन्तभद्राश्रम करौलबाग मे तीन दिन पडित जी के सानिन्ध्य मे रहा। वहाँ श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय से भी मेरा सम्पर्क स्थापित हुआ, जो भविष्य मे घनिष्ठ मैत्री के रूप मे परिवर्तित एवं परिवर्द्धित हो गया। इसके कुछ काल पश्चात् पंडित जुगलकिशोर जी अपना कार्य स्थल परिवर्तित कर सरसावा चले गये। किन्तु हमारा सम्पर्क तो अधिक घनिष्ठ ही होता गया। हम दोनों मे विविध अनुसन्धान प्रसंगों को लेकर पत्र-व्यवहार चलता ही रहा। स्व० श्री राव जी सरवाराम दोशी की कृतज्ञता को विस्मृत नही कर सकता एवं भूरिशः साधुवाद उन्हें अर्पित है कि उनके सहयोग से मैंने शोलापुर एक सप्ताह पर्यन्त ठहरकर धवला, जयधवला टीकाओं का अध्ययन कर उपादेय सामग्री ग्रहण की। पंडित जुगलकिशोर जी उस सामग्री को देखना चाहते थे। मैंने वह सामग्री भेज दी। पंडित जी ने भी पर्याप्त समय आरा के जैन शास्त्र भण्डार में इन टीकाओं का अध्ययन कर कुछ सामग्री एकत्रित की थी, दोनों सामग्रियों का

तुलनात्मक निरीक्षण कर उन्होंने मुझे सत्परामर्श दिये।

सन् १९५० में जब मैं दर्शन-सम्मेलन (फिलो सोफीकल कांग्रेस) में भाग लेने कलकत्ता गया तो पंडित जी वहाँ पहले से ही श्री छोटेलाल जी के पास ठहरे हुए थे। श्री छोटेलाल जी वीर सेवा मन्दिर की स्थायी स्थिति के विषय में अति चिन्तातुर थे। सरसावा से उसका स्थान परिवर्तन दिल्ली हो या कलकत्ता आदि विषयों पर वे विचार कर रहे थे। एक विचार यह भी था कि बेलगछिया मन्दिर में इसके लिये एक भवन ले लिया जावे। पंडित जुगलकिशोर जी की हार्दिक इच्छा थी वीर सेवा मन्दिर की सेवा का भार मैं सेवक (ए. एन. उपाध्ये) ग्रहण करूँ, यदि तत्काल ही नही तो उनके अवकास ग्रहण करने पर तो यह अवश्य हो जाना चाहिए। कलकत्ता मे भी अवकाश के समय हम दोनों "सन्मति सूत्र" के उस अग्रेजी अनुवाद का पुनर्निरीक्षण करते रहे, जो मैंने पंडित जी की ही आग्रह पूर्ति के हेतु किया था। पडित जी श्री छोटेलाल जी से बहुत कुछ आशा रखते थे। परन्तु छोटेलाल जी कुछ कहने या करने मे बहुत सावधान थे। वे अपनी सामर्थ्य का उचित अनुमान कर लेते थे। उस समय हम तीनों एक साथ उदयगिरि एवं खण्डगिरि (उड़ीसा) गये, वहाँ से वापिस आकर दो-तीन दिन एक साथ ही कलकत्ता रहे।

मार्च १९५५ में वीर सेवा मन्दिर समिति की बैठक में भाग लेने के लिये मुझे विशेषरूप से दिल्ली आमन्त्रित किया गया। श्री पडित जी और छोटेलाल जी दोनों लाल मन्दिर में ठहरे हुए थे। वीर सेवा मन्दिर को दिल्ली लाना था। एक नया भवन निर्माण हो रहा था और उन दोनों की आँखें वीर सेवा मन्दिर के अभ्युदय का भव्य स्वप्न निहार रही थी। छोटेलाल जी इस सस्था की उन्नति के विषय में अति चिन्तनशील थे। वे मेरे विषय में चाहते थे कि मैं संस्था से शीघ्रातिशीघ्र सम्बद्ध हो जाऊँ। मैंने अपनी कठिनाइयाँ उनके समक्ष रखीं, परन्तु स्वभावतः वे उन्हें निर्व्याज रूप में न स्वीकार कर सके। इस अवसर पर हमने "लक्षणावली" के कई प्रकरणों को अन्तिम रूप दिया। मैंने अनुभव किया कि वीरसेवा मन्दिर समिति की इस बैठक में संस्था की आर्थिक कठिनाइयों की उपेक्षा कर केवल उसकी उपकृतियों की आशंसा की ओर ही ध्यान दिया गया, यह बात मुझे खटकी, परन्तु अधिक कुछ न कह सका।

दिसम्बर, १९५७ में ऑल इण्डिया ओरिएण्टल कॉन्फ्रैन्स दिल्ली में हुई, उसमें मैंने भी भाग लिया। कॉन्फ्रैन्स के पश्चात् पडित जी से मिलने गये। वे बड़े असन्तुष्ट-से प्रतीत हुए। अपने सहायकों के प्रति उनके पर्याप्त अभियोग थे। संस्था की अचल सम्पत्ति वृद्धि की तो उनके सहायकों को चिन्ता थी परन्तु अनुसंधान का मुख्य महत्वपूर्ण कार्य पीछे हटता-सा प्रतीत हो रहा था।

इसके अनन्तर प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी आदि की बैठकों में भाग लेने जब भी मैं दिल्ली गया, वीर सेवा मन्दिर में ठहर कर पंडित जी की सत्संगति का लाभ उठाने से वंचित न रहा। सन् १९६५ में जब मैं और डॉक्टर हीरालाल जी काश्मीर मे आयोजित अखिल भारतीत प्राच्य परिषद् में भाग लेकर दिल्ली लौटे तो पंडित जी के सानिन्ध्य का लाभ हम दोनों को प्राप्त हुआ। उस समय स्पष्टतः प्रतीत हो रहा था कि पंडित जी तथा छोटेलाल जी के सम्बन्ध कुछ कटुतर हो गये थे। पंडित जी ने हम दोनों से आग्रह किया कि समझौते का कोई मध्यमार्ग खोज निकालें। हमारे भगीरथ प्रयत्न के बाद भी उन दोनों के रिक्त स्थान न भर सके। समीपस्थ सभी एव सम्बन्धित व्यक्तियो से यह भी छिपा न था कि लिखित रूप मे भी पर्याप्त कलक-पक उत्क्षिप्त हो चुका था। अनुसन्धान एव साहित्य का साधन मासिक पत्र भी इस पङ्किलता से विमुक्त न था। इस वैषम्य का अन्त मे यह परिणाम हुआ कि पंडित जी ने अपना एक अलग ट्रस्ट बना लिया और उस वीर सेवा मन्दिर से अपना सम्बन्ध त्याग दिया जिसका निर्माण छोटेलाल जी ने पंडित जी के आदरार्थ ही किया था। मैंने अनुभव किया कि कभी-कभी पंडित जी के हितैषी व्यक्ति ही वातावरण को कटुतामय बना देते थे। श्री छोटेलाल जी पंडित जी को पिता के तुल्य आदर करते थे और प्रयत्न करते थे कि वीर सेवा मन्दिर पुरातत्व का वह व्यासपीठ बने कि इसका अन्तर्राष्ट्रीय आदरास्पद स्थान हो। उनके स्वप्न साकार न हो सके। उन्होंने अपने अन्तिम दिन व्याधि-पीड़ित अवस्था

में कलकत्ता में ही बिताये, उधर पंडित जी भी सेवा-निवृत्त होकर अपने भतीजे के पास एटा चले गये। अन्तिम वर्षों मे पंडित जी ने "अनेकान्त" से अपना नाता तोड़ लिया था। श्री छोटेलाल जी की प्रार्थना को मान देते हुए हम मे से कुछ लोगो ने जैनत्व की सेवा एव हित को दृष्टि मे रखते हुए इसके सम्दादन एव प्रकाशन सम्बन्धी उत्तर-दायित्व को स्वीकार कर लिया था।

पण्डित जुगलकिशोर जी उच्च विद्वान् थे एव उनका अध्ययन क्षेत्र व्यापक तथैव बहुमुखी था। उन्होने किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय मे प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया था। वे केवल योग्य वकील रहे थे, जो साक्षियों को ठीक जाँचने में एवं स्वीकृत वाद को सबल युक्तियों से सफल बनाने मे निष्णात थे। इस स्वाभाविक प्रतिभा से ही वे विपक्षी विद्वानों पर अपनी विद्वत्ता की धाक जमाने मे समर्थ होते थे। यही कारण था कि उनकी समीक्षाएं ठोस प्रमाणो पर आधारित हो सकीं। तत्कालीन रूढिग्रस्त (एकान्तवाद ग्रस्त) पण्डितो के मन्तव्य उनकी युक्तियो से धराशायी हो जाते थे। प्रत्युत्तर के अभाव मे वे अपने को विक्षिप्त सा अनुभव करने लगते थे।

जैन विद्वानों एवं साहित्यकारो की कृतियो एव तिथियों तथा कालानुक्रमता के विषय मे पीटर्सन, भाण्डार-कर, व्हूलर, नरसिहाचार्य आदि अनेक विद्वानों ने अनेक महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये है। पण्डित जी ने इस सभी सामग्री का एवं सब स्रोतो का अध्ययन किया था। अपनी पजिका एव विवरण पत्रिका में इन सबका सार उनके पास उपस्थित था एव अपने इस कार्य पर उनके हृदय मे एक स्वाभिमानपूर्ण सन्तुष्टि थी। बहुत से विद्वानों की शिकायत थी कि उस सामग्री का उपयोग करने की उन्हे आज्ञा नही देते थे। तथापि इसी अध्ययन के कारण उनके निबन्ध अन्य पण्डितों की अपेक्षा प्रामाणिक एवं ग्राह्य होते थे।

जैन साहित्यकारों, उनकी कृतियो तथा तिथियों के विषय में उन्होंने अनेक लेख लिखे थे उनमें से अनेक स्थायी महत्त्व के है। इस विषय मे मेरा और उनका पत्र व्यवहार होता रहता था और उनकी सग्रह-पंजिकाएँ मेरे उपयोग के लिए सर्वदा उपलब्ध थीं।

वे मुझे प्रामाणिक सूचनाएं देने के लिए विस्तृत पत्र लिखा करते थे। मै निश्चितरूप से यह कह सकता हूँ कि उन्होंने मुझसे कभी किसी तथ्य की गोपनीयता नहीं रखी एवं मेरी भी ज्ञापनाएँ उनके समक्ष विनम्र भाव से उप-स्थित रहती थी। उन्हें जब भी मेरे ग्रन्थों की आवश्य-कता होती थी, वे मुझे निस्संकोच लिख देते थे। उनकी वाञ्छनीय सामग्री को एकत्रित करने के लिए कम-से-कम दो बार तो मुझे पूना जाना पड़ा था। अन्तिम वर्षों मे कतिपय स्पष्ट कारणों से उन्होंने इस विनिमयात्मक-अनुसन्धान पद्धति का न्यूनाधिक मात्रा में परित्याग कर दिया था। वयोवृद्धता के कारण अन्तिम वर्षों मे उनके लिए यह सम्भव नहीं था कि वे अन्य पत्रिकाओं में प्रका-शित अनुसन्धानात्मक लेखो का गहन अध्ययन कर समीक्षा कर सकें, अतः मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि वे भविष्य में विचारात्मक लेख लिखा करे। हुआ भी यही, अन्तिम वर्षों में या तो उन्होंने अनुवादात्मक कार्य को प्रश्रय दिया या विचारात्मक लेखो में अवधानयुक्त होकर समन्तभद्र, रामसेन, अमितगति आदि के सम्बन्ध में लेख लिखे। मेरा सौभाग्य था कि मैं पण्डित जी और प्रेमी जी उभय का वात्सल्य भाजन बना रहा। इस सहज जात वात्सल्य का कारण अनुमान या वर्णन से परे है, तथापि उभय का यह स्नेह मुझ पर अन्त तक बना रहा है। जब कभी भी मैंने उन दोनों को लिखा, उनसे तथ्यों की जानकारी तथा पुस्तकादि की प्राप्ति मुझे होती रही। अपनी कृतियों में मैंने सदा उनके प्रति कृतज्ञता भी प्रदर्शित की है। उन दोनों की कृपा के ऋण से मैं कभी भी उऋण न हो सकूंगा। एकाश मे उऋणता के प्रयत्न स्वरूप मैंने अपना सम्पादित ग्रन्थ "कार्तिकेयानुप्रेक्षा" उन दोनों मूर्धन्य विद्वानो को समर्पित किया है। आज अनेक युवक रिसर्च स्कॉलर इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते है कि मै उनकी अति उदारता पूर्वक सहायता करता हूँ, परन्तु यह सब कुछ इसी कारण से है कि मैंने ऐसी ही उदार सहायता अपने बड़ों से प्राप्त की है।

पण्डित जुगलकिशोर जी चाहते रहे कि मैं वीरसेवा मन्दिर का ट्रस्टी बन जाऊँ और अन्त मे स्वयं स्थापित ट्रस्ट का ट्रस्टी भी बनाना चाहा। परन्तु उचित था या

अनुचित, उनसे क्षमाप्रार्थी होता हुआ मै इस उत्तरदायित्व को ग्रहण न कर सका। मेरा विश्वास है कि ट्रस्टी का पद आर्थिक—उत्तदायित्व का है और किसी सम्पन्न व्यक्ति को ही इस पद पर आसीन होना चाहिए। मेरे जैसे सीमित आय के व्यक्ति को प्रति क्षण आर्थिक प्रश्नों से सम्बन्धित सस्था का ट्रस्टी नहीं होना चाहिए। पडितजी मेरे इस स्पष्टीकरण से कभी सहमत नही हुये, अन्त मे वार्तालाप के मध्य यह प्रश्न उपस्थित न हो जाये, इसके प्रति वे सावधान रहते रहे। उनकी एक दूसरी भी इच्छा थी कि मै उनकी सभी रचनाओ का अंग्रेजी मे अनुवाद कर दूँ। वास्तव मे मेरी भी ऐसी हार्दिक इच्छा थी, परन्तु महाविद्यालय सम्बन्धी कर्तव्य तथा निजी अनुसन्धान कार्य की—व्यस्तता इस आकाक्षापूर्ति के लिये समय प्रदान नही करती थी। मै अपनी असमर्थता के प्रति खेद व्यक्त करता था और वे भी मेरी कठिनाई से अवगत थे। सन् १६३२ मे "समन्तभद्र का समय एव डाक्टर पाठक" नामक उनके निबन्ध का मैंने अंग्रेजी मे अनुवाद किया, जो भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट की वार्षिक पत्रिका (अक १२) मे प्रकाशित हुआ। तदनन्तर पण्डित जी के आग्रह को मान देकर मैंने उनके 'सन्प्रति सूत्र" का अंग्रेजी रूपान्तर किया, जो एक पृथक् पुस्तकाकार मे प्रकाशित हुआ। छोटेलाल जी की हार्दिक इच्छा थी कि यह निबन्ध बड़े सुन्दर रूप मे प्रकाशित हो।

"पुरातन जैन वाक्यसूची (सरसावा १६५०) समीचीन धर्मशास्त्र (दिल्ली १६५७) तथा योगसार प्राभृत (१६६८) आदि का अंग्रेजी अनुवाद करने के लिये श्री छोटेलाल जी और पण्डित जी दोनो ने ही मुझसे अनेक बार आग्रह किया था। अन्तिम वर्षों मे पण्डित जी की स्मरण शक्ति कुछ अधिक साथ नही दे रही थी। "सन्मति सूत्र" का अनुवाद प्रकाशित होने पर उन्होंने कुछ वैमत्य सा व्यक्त किया, मेरे द्वारा विरोध होने पर प्रस्तावना के उस अनुच्छेद पर चिट चिपका कर उन्होने उसे सशोधित कर दिया था। इसी तरह मैंने उन्हे एक बार लिखा था कि "काव्य कल्पद्रुम" वादिराज कृत स्तोत्र नही माना जा सकता। समय-समय पर अनुसन्धान सम्बन्धी तथ्यो पर हमारा मतवैभिन्य हो जाता था परन्तु इससे हमारा स्नेह-सम्बन्धों में कभी अन्तर नहीं आया। मै उनकी विद्वत्ता के प्रति आदर भाव रखता था और वे मुझे अपने परिवार का एक वात्सल्यभाजन सदस्य मानते थे।

जब मैं गत पचास वर्षों की ओर दृष्टिपात करता हूँ तो मै आश्चर्यान्वित होता हूँ कि पण्डित जी ने जैन साहित्य के क्षेत्र में कितना प्रशसनीय कार्य किया है? अनेक जैन ग्रन्थकारों—साहित्यिकों के कृति सम्बन्धी, तिथि सम्बन्धी कार्यों का उन्होने सुयोग्य रीत्या विश्लेषण किया है। कभी-कभी उनकी पाद-टिप्पणिया मुझे रुचिकर प्रतीत न होती थी; परन्तु ऐसी टिप्पणिया लिखना उनका स्वभाव बन गया था, जिससे वे जीवनभर विमुक्त न हो सके। जब तक "अनेकान्त" उनके सम्पादकत्व में प्रकाशित होता रहा उन्होंने जैन-इतिहास के अनेक अमूल्य तथ्य मनीषियो के समक्ष उपस्थित किये। उन्होने अनेक विद्वानों को लिखने के लिये प्रोत्साहित किया। परन्तु यत्रतत्र उनके प्रति यह अभियोग स्थापित रहा कि वे उन्ही विद्वानों के प्रति अधिक उदार रहते थे जो उनकी शर्तों को निभाते हुये उनके सहयोग मे कार्य कर सकते थे। यदि वे अपने ट्रस्ट की निधि को प्रकाशन कार्य मे लगा देते तो उनकी कृतिया ससार के समक्ष अपेक्षाकृत जल्दी आ सकती थी।

अपने अन्तिम वर्षो में अपनी कृतियो के प्रकाशनार्थ वे यदा कदा भारतीय ज्ञानपीठ के अधिकारियो को लिखते रहे। श्रीमान् साहू शान्तिप्रसाद जी तथा श्रीमती रमा जी के प्रति बडा आदर भाव प्रदर्शित करते रहे हैं। पण्डित जी के प्रकाशन—प्रस्तावो को उन्होने सर्वदा स्वीकार किया। उनके ग्रन्थो का प्रकाशन ज्ञानपीठ से न हो सका तो इसका मात्र यही कारण रहा कि पुस्तकों की प्रेस कॉपी कभी भी समय पर प्राप्त न हो सकी। उनके एक ग्रन्थ "योगसार" का प्रकाशन मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला से श्लाघनीय शीघ्रता से हुआ। मैने इसकी प्रस्तावना लिखी हम सबको इस बात का सन्तोष रहा कि इसकी प्रकाशित प्रति पण्डित जी को मृत्यु से कुछ पूर्व हम दे सके थे। यदि उनका स्वास्थ्य आज्ञा देता तो वे अवश्य मेरे द्वारा लिखित प्रस्तावना को पढ़कर अपनी भावात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते।

इस सब वर्णन के अतिरिक्त पण्डित जी के व्यक्तित्व की कुछ असाधारण विशेषतायें थी, जिनके कारण वे सर्वदा स्मरणीय रहेंगे। वे "सादा जीवन उच्च विचार" के श्रेष्ठ निदर्शन थे। उनकी कविता 'मेरी भावना" सर्वदा विचारों के उच्चादर्श को प्रस्तुत करती रहेगी। उनकी अनेक समीक्षाएँ, निबन्ध परिचयात्मक विवरण जैसे कि पात्रकेसरी, समन्तभद्र, सिद्धसेन आदि स्थायी—साहित्य की अमूल्य निधियां है। उनकी वकील-प्रकृति की तर्कात्मक शक्ति बड़ी प्रबल थी और अपने तर्क-क्षेत्र को उर्बर बनाने में एकाकी निपुण थे। अन्तिम वर्षों में उनके लेख विचारात्मक श्रेणी के थे। समन्तभद्र, रामसेन, अमितगति सम्बन्धी उनके ग्रन्थ सर्वदा आदरभाव से पठनीय रहेंगे। मेरी उन्हें भावभरी श्रद्धांजलि अर्पित है।

# जैन साहित्यकार का महाप्रयाण

**पं० सरमन लाल जैन 'दिवाकर' शास्त्री**

२२ दिसम्बर १९६८ का वह दुर्दिन जिसने समाज और राष्ट्र के सुप्रसिद्ध साहित्यकार, इतिहास-सर्जक, पत्रकार, समाजसेवी अमर जिनवाणी सेवक, साहित्य महारथी, 'मेरी भावना' के अमर सृष्टा, विलुप्त इतिहास के अन्वेषक श्रद्धेय आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' को छीन लिया। काल का ऐसा क्रूर प्रहार जो हमारे बीच से प्रतिभा के धनी साहित्य जगत के सेवी को उठा ले गया और हम सबको साहित्य क्षेत्रों में अनाथ कर गया।

साहित्यिक क्षेत्र मे यह पूर्ति कई सदियों मे हुई थी और शायद अब होने की कोई सम्भावना नही है। साहित्य क्षेत्र का यह खाना अपूर्ण ही रहेगा।

आपकी अलौकिक प्रतिभा एवं विद्वत्ता ने विश्व को मेरी भावना जैसी, राष्ट्रीयता से भरी धार्मिक, आध्यात्मिक, विश्व के जन-जन की भावनाओं को उनके अन्दर से खीचकर गूँथी एक माला दी जिसे हर राष्ट्र हर कौम का व्यक्ति चाहे जो भी इसे अपने गले में पहिनता है वही खुश होकर झूम उठता है, और धार्मिकता के सागर में हिलोरे लेने लगता है। तभी अनायास ही उसके मुँह से यह शब्द निकल पड़ते है कि किस साहित्य महारथी ने यह माला गूँथी है। जिसका एक-एक फूल (शब्द) अनन्त संसार में अपनी सुरभि फैला रहा है।

श्री मुख्तार जी का सारा जीवन एक साहित्य शोधक के रूप मे भगवान महावीर की वाणी को देश-विदेश मे पहुँचाने के प्रयत्न मे लगा रहा। मुख्तार सा० उग्र सुधारक थे, उनका सुधार मार्ग केवल ऊपरी बातों तक ही सीमित नही था वे धार्मिक रीति-खोजो में भी सुधारवादी थे। इसी सुधारवाद धुनने उन्हे साहित्य का रसिक ही नही साहित्य का सृष्टा एव महारथी के पद पर आसीन कर दिया। शास्त्रो का आलोडन करके उनके आधार पर ही उन्होने सुधार मार्ग बनाया था। अपने पक्ष की पुष्टि मे वे प्रमाणो की ऐसी शृङ्खला बाँधते थे जिसे तोड़ना कठिन होता था।

आप जैनसमाज के एक मात्र साहित्य स्तम्भ थे साहित्यिक क्षेत्र मे समाज को आप पर गर्व था। आप कर्मठ निस्वार्थ साहित्यसेवी, पुरातत्ववेत्ता, महान् दार्शनिक एवं जैन इतिहास के अन्वेषक थे।

ऐसे महान् उपकारक मूक साहित्यसेवी विद्वान् के देहावसान हो जाने पर समाज की सच्ची श्रद्धांजलियाँ उनके प्रति तभी मानी जायगी जबकि उनके द्वारा संचालित जैन वाङ्मय और इतिहास का अध्ययन एवं अनुसंधान उसी प्रकार चलता रहे समाज पूरा सहयोग देता रहे। यही मुख्तार सा० के प्रति सच्ची श्रद्धांजलियाँ होंगी।

# जो कार्य उन्होंने अकेले किया वह बहुतों द्वारा सम्भव नहीं

**डा० दरबारी लाल जी कोठिया न्यायाचार्य, एम. ए., पी-एच. डी.**

वीसवी सदी को प्रणाम। इस सदी ने अनेक राष्ट्र नेताओ के साथ जैन समाज के बहुप्रवृत्तियों के जनक महान् व्यक्तियों को जन्म दिया है। उन्हीं महान् व्यक्तियों में श्रद्धेय पण्डित जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' है। मुख्तार साहब ने अकेले वह कार्य किया जो बहुतों द्वारा सम्भव नही। संस्कृति को जितना बढ़ावा उन्होंने दिया उतना किसी अन्यने दिया हो, यह हमे ज्ञात नहीं। संस्कृति का कोई छोर उनसे अछूता नही रहा। समाज जागरण, कुरीतिनिवारण, साहित्योद्धार, अनुपलब्ध ग्रन्थान्वेषण, ग्रन्थपरीक्षण, ग्रन्थ प्रकाशन इतिहास सर्जन, पुरातत्त्व और कला की ओर समाज का आकर्षण आदि सभी दिशाओं मे उन्होने स्वय प्रवृत्ति की और अन्यों को उसकी ओर प्रोत्साहित किया।

वस्तुतः आज से ६०, ७० वर्ष पूर्व का समय एक निविड अन्धकार का समय था। अपनी पुरानी परम्पराओं से सभी चिपटे थे। चाहे वे अच्छी हों या बुरी। वे उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे। उनसे ऐसा राग था कि बुरी परम्पराओं को छोड़ने के लिए कहे जाने पर वे कहने वालों पर टूट पड़ते थे। विवाह मे वेश्यानृत्य, कन्या विक्रय, छापे का विरोध,, सस्कृत-प्राकृत में लिखे जाली ग्रन्थों को जिनवाणी मानना जैसी बातों के विरुद्ध बोलना या शिर उठाना किसी का साहस नहीं था।

श्रद्धेय मुख्तार साहब जन्मजात विवेकी औ साहसी थे। उन्होंने उक्त बातों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया और इस विरोध के फलस्वरूप उनका बहिष्कार भी हुआ। पर मुख्तार साहब आधी की तरह विरोध को चीरते हुए आगे बढ़ते गये। कितने लोगों ने उनके विरोध को उचित समझा और उनका साथ दिया। उस समय उत्तर-प्रदेश में जितने मेले, समितियों की बैठकें और धार्मिक आयोजन होते थे उनमें बाबू सूरजभान जी वकील और मुख्तार साहब अवश्य पहुँचते थे तथा अपने प्रभावशाली व्याख्यानों द्वारा समाज को सम्बोधित करते थे।

सन् १६०६ मे जैन गजट में 'विवेक की आंख' शीर्षक लेख मुख्तार साहब ने लिखा था। इस लेख में एक दृष्टान्त द्वारा उस समय की अविवेकिता का चित्रण किया गया है। वेश्यानृत्य के लिए समाज खूब खर्च करने को हमेशा तैयार रहती थी और धर्मोपदेष्टा को देने के लिए नहीं या कम-से-कम देना चाहती थी। इस स्थिति का प्रदर्शक निम्न पद्य मुख्तार साहब ने स्वय रचकर प्रस्तुत किया है, जो खास तौर से जानने योग्य है।

**फूटी आंख विवेक की, कहा करै जगदीश।**
**कंचनिया को तीन सौ, मनीराम को तीस ॥**

'कचनी' एक प्रसिद्ध वैश्या थी, जिसका नृत्य विवाहों मे कराया जाता था। मनीराम जी एक पण्डित थे, जो धर्मोपदेश के लिये समाज मे आते जाते थे। मुख्तार साहब ने इस पद्य को पं० मनीराम जी के मुख से कहलवा कर तत्कालीन अविवेक का सकेत किया है। इसी लेख मे वे स्वय लिखते है—**वेश्या जैसी पापिनी और व्यभिचारिणी स्त्रियां तो मंगलामुखी और कुल देवियां समझी जाती हैं; जगह-जगह वेश्या नृत्य का प्रचार है··· खुले दहाड़े लड़कियां बेची जाती हैं; दिन-दहाड़े मन्दिरों और तीर्थों का माल हड़प किया जाता है···शराब की बोतलें गटगटाई जाती हैं, धर्म से लोग कोसों दूर भागते हैं···फिर कहिये, यदि भारतवासी दुःखी न होवें तो क्या होवें।'**

इस लेख और उद्धरण से पाठक जान सकते हैं कि मुख्तार साहब को समाज-सुधार और जागरण के लिए कितना दर्द था।

जैन ग्रन्थों के प्रकाशन का बीड़ा बाबू सूरजभान जी

ने उठाया था और उसके लिए उन्हें जानकी जोखम, तिरस्कार, बहिष्कार आदि के कष्ट उठाने पड़े। उनके इस कार्य का खूब विरोध हुआ। किन्तु उनके समधी बा० ज्ञानचन्द जी जैनी लाहौर और मुख्तार साहब ने उक्त विरोध के बावजूद खूब समर्थन किया। फलतः छापे का विरोध कम हुआ, जिसके कारण कितने ही ग्रन्थो का प्रकाशन हो सका। आज तो विरोध का नामोनिशान भी दिखाई नही देता। अनेक ग्रन्थ मालाएँ संस्थापित हो गयी और धवला, जयधवला, महाधवला जैसे सिद्धान्त ग्रन्थों का भी प्रकाशन हो सका है। मुख्तार साहब ने स्वयं अपना समन्तभद्राश्रम और उसके बाद उसके असफल होने पर वीर सेवा मन्दिर की स्थापना की थी।

मुख्तार साहब मे समाज और साहित्य सेवा की कितनी तीव्र लगन थी कि उसके लिए उन्होने १२ फरवरी १९१४ को अपनी चलती मुख्तारकारी की प्रधान आजीविका को छोड़ दिया। बा० सूरजभान जी का जब उनके मुख्तारकारी छोड देने का पता चला तो उन्होंने भी उसी दिन अपनी भरपूर आमदनी वाली वकालत को त्याग दिया और दोनों समाजसेवी महापुरुष समाज और साहित्य की सेवा में कूद पड़े। बा० सूरजभान जी तो जीवन के अन्तिम वर्षो मे समाज के व्यवहार से उससे उदासीन हो गये थे। परन्तु मुख्तार साहब रुग्ण शय्या पर पड़े-पड़े मृत्यु से जूझते हुए भी श्रुत-सेवा मे सलग्न रहे। कल्याण कल्पद्रुम, आप्तमीमासा, योगसार प्राभृत कई कृतियाँ रुग्ण शय्या पर ही तैयार की गयी। योगसार प्राभृत तो उनके जीवन के अन्तिम क्षणो, ३० नवम्बर १९६८ को जब उनका अखिल भा० दि० जैन विद्वत्परिषद् की ओर से उनके निवास स्थान एटा मे अभिनन्दन हो रहा था, प्रकाश में आया। ऐसा साहित्य तपस्वी समाज मे अन्य दिखायी नही देता।

यों तो सन् १९३७ से ही पत्र व्यवहारादि द्वारा उनके सम्पर्क में आ गया था और उन्हें व उनकी सेवाओ से परिचित होने लगा था। पर २४ अप्रेल १९४२ में जब नियुक्त होकर वीर सेवा मन्दिर मे पहुँचा और लगभग उनके तत्त्वावधान में आठ वर्ष साहित्य सेवा करने का अवसर मिला तो उनकी शोध-खोज की गहरी पैठ और अटूट साहित्य साधनाका मुझ पर अमिट असर हुआ। सुहृद्वर पं० परमानन्द जी और बा० जय भगवान जी वकील वीरसेवा मन्दिर में साहित्य-सेवा कर रहे थे। बा० जयभगवान जी तो मुझसे कुछ माह पूर्व ही पहुँचे थे। किन्तु पं० परमानन्द जी कई वर्ष से काम कर रहे थे। मेरे और बा० जय भगवान जी के भी पहुँच जाने से मुख्तार साहब को जो प्रसन्नता हुई थी उसे उन्होंने अनेकान्त वर्ष ५ किरण १-२ के टाइटिल पृ० ४ पर 'वीरसेवामन्दिर को दो विद्वानों की सम्प्राप्ति' शीर्षक से व्यक्त करते हुए लिखा था—......**आप ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम (जैन गुरुकुल) मथुरा को स्तीफा देकर प्रातःकाल २४ अप्रेल को उस समय वीरसेवामन्दिर में पधारे जब कि मैं 'वीरसेवामन्दिर ट्रस्ट' की योजना को लिए हुए अपना 'वसीयतनामा' रजिस्ट्री कराने के लिए सहारनपुर जा रहा था और इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।'** उस समय वीरसेवामन्दिर मे **'जैन-लक्षणावली'** और **'पुरातन-वाक्य-सूची'** (प्राकृत पद्यानुक्रमणी) का कार्य चल रहा था। मुझे भी यही कार्य दिया गया। इन दोनो कार्यो के अतिरिक्त 'अनेकान्त' मासिक का भी कार्य चलता था। अनेकान्त शोध-खोज की प्रवृत्तियों का माध्यम था और उसकी ओर विद्वानो तथा समाज का विशिष्ट आकर्षण था।

मुख्तार साहब उस कुशल शिल्पी के समान दक्ष सम्पादक थे, जिसके समक्ष सब तरह पाषाण-शकल पड़े रहते है और जिन्हे पैनी छैनी द्वारा तराश-तराश कर सुन्दर एवं मनोज्ञमूर्ति के रूप मे ढाल लेता है। मुख्तार साहब भी प्राप्त लेखों को अपनी पैनी दृष्टि से काट-छाँट, उचित, शब्द-विन्यास, पुष्ट तर्क और अर्थ गाम्भीर्य की पुट देकर उन्हे उत्तम लेख बना लेते थे। मै अपनी बात कहता हूँ। वीर सेवामन्दिर मे पहुँचने से पूर्व भी मै 'जैन मित्र', 'वीर' आदि पत्रों मे लेख लिखता रहता था। पर जब वहाँ पहुँचा तो मुख्तार साहब की प्रेरणा से **'परीक्षा मुख और उसका उद्गम'** (अनेकान्त ५, ३-४), **तत्त्वार्थ सूत्र का मङ्गलाचरण** (अने० ५, ६-७), **'समन्तभद्र और दिग्नाग में पूर्ववर्ती कौन'** (अने० ५, १२) जैसे शोधात्मक लेख लिखे, जो उसी वर्ष लिखे गये। इन लेखों में मुख्तार साहब ने जो परिमार्जन किया उसके सामने मेरे पूर्व के

लेख मुझे स्वयं श्रीहीन प्रतीत होने लगे थे। यह सम्पादन वे प्रत्येक लेख मे किया करते थे और तभी वे उसे अनेकान्त के योग्य समझते थे। यही कारण है कि उनकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ कभी-कभी लेख से बडी और आकर्षक होती थी। वस्तुत: उन जैसा सम्पादक दुर्लभ है।

शोध-खोज की कोई नयी बात जब उनके सामने लाई जाती थी तो वे बड़े प्रसन्न होते थे। यथार्थ में उनका समग्र जीवन शोध-खोज मे रत रहा। अनेकान्त की फाइलों को उठाकर देखे तो यही सब उनमे भरा हुआ है। चाहे कोई नया स्तोत्र मिला हो, या किसी नये ग्रन्थ की उपलब्धि हुई हो या नये आचार्य का परिचय प्राप्त हुआ हो या कोई नयी बात मिली हो, यह सब वे अनेकान्त मे देते थे। ग्रन्थों की प्रस्तावनाओं मे भी वही शोधात्मक प्रवृत्ति दिखायी देती है। विद्वान् पात्र स्वामी को ही विद्यानन्द समझते थे, परन्तु मुख्तार साहब ने अकाट्य प्रमाणो द्वारा यह प्रकट किया कि दोनों आचार्य भिन्न है, दोनो की रचनाएँ भिन्न है और दोनों का समय भी भिन्न है—दोनों मे लगभग दो सौ ढाई सौ वर्ष का अन्तर है। पात्रस्वामी ६-७वी शताब्दी के विद्वान् है और विद्यानन्द ९वीं शती के। पंचाध्यायी का कर्ता अमृतचन्द्र को माना जाता था, किन्तु मुख्तार साहब ने पुष्ट प्रमाणो द्वारा सिद्ध किया कि पंचाध्यायी के कर्त्ता प० राजमल जी है, जिन्होने लाटीसहिता आदि ग्रन्थ रचे है। स्वामी समन्तभद्र को विद्वान् और समाज नही के बराबर जानते थे, पर मुख्तार साहब ने विपुल प्रमाणो को एकत्रित कर उनके गौरव को जैसा बढ़ाया है वह सर्व विदित है। **'स्वामी समन्तभद्र'** मे उन्होंने आचार्य समन्तभद्र का ही परिचय प्रस्तुत नही किया, अपितु कुन्दकुन्द, गृद्धपिच्छ, पूज्यपाद, आदि दर्जनों आचार्यों-ग्रन्थ लेखको को प्रकाश मे लाया गया और समाज को उनसे परिचित कराया है।

ग्रन्थ-परीक्षाएँ लिखकर तो उन्होने बड़े साहस और दृढता का कार्य किया है। बड़े-बडे आचार्यों या जिनवाणी के नाम पर लिखे गये उमास्वामि श्रावकाचार, कुन्दकुन्द श्रावकाचार, जिनसेन त्रिवर्णाचार, अकलङ्क प्रतिष्ठा पाठ, पूज्यपाद उपासकाचार आदि कितने ही ग्रन्थों की परीक्षा करके मुख्तार साहब ने इन ग्रन्थों की पोल खोली तथा अमूढदृष्टि अङ्ग का प्रचार किया। मुख्तार साहब की इन परीक्षाओं से बल पाकर पं० परमेष्ठीदास जी न्यायतीर्थ ने भी **'चर्चा सागर'** जैसे ग्रन्थों की समीक्षा का साहस किया, जिसे उन्होने हाल के पत्र में स्वयं स्वीकार किया है।

मार्च १९५० मे एक बात को लेकर वीर सेवा मन्दिर मे अलग हो गया था। पर मैं उसके बाद भी उनके कार्यो का सदा प्रशसक रहा तथा वे मेरे स्वाभिमान एव खरेपन को जानते रहे। तथा मुझे पूज्य मुनि श्री समन्तभद्र जी के पास कुम्भोज बाहुबली ले गये और वहाँ से आकर उन्होने जुलाई १९६० मे अपना धर्म पुत्र बनाया। यद्यपि बीच बीच मे कभी पत्र व्यवहार द्वारा कटुता भी आयी, परन्तु मेरी उनके प्रति श्रद्धा और उनका मेरे प्रति आकर्षण बने रहे। फलत: वाराणसी आने पर भी वीर सेवामन्दिर ट्रस्ट का मत्रित्व १९६० से मुझ पर ही रहा और समाधिमरणोत्साह दीपक, युगवीरनिबन्धावली (१-२ भाग), तत्त्वानुशासन और आप्तमीमासा ग्रन्थ ट्रस्ट के द्वारा प्रकाशित किये गये तथा मत्री की हैसियत से मै उनका प्रकाशक रहा। मुझे और अन्य आठ ट्रस्टियों को जो अपने ट्रस्ट का कार्य विधिवत् उन्होंने सौपा है उसमे उनके उन उद्गारो के विश्वास की सम्पुष्टि होती है जो वीर सेवा मन्दिर मे मेरे पहुँचने पर उन्होने अपने 'वसीयतनामा' की रजिस्ट्री करने के लिए सहारनपुर जाते समय कहे थे। आशा है उनके विश्वास को हम लोग अवश्य निभा सकेंगे।

बीसवी सदी का यह साहित्य-स्वयम्भू, अनुसन्धान प्रवृत्तिका प्रेरक, लेखनी का धनी, जैन जागरण का अग्रदूत, निष्पक्ष समालोचक, निर्भीक पत्रकार, साहसी ग्रन्थ समीक्षक, जैनाचार्यों के इतिहास का निर्माता, समन्तभद्र का अनन्य भक्त और जिनवाणी का परम साधक २२ दिसम्बर १९६८ को सदा के लिए हम लोगो से विमुक्त हो गया। उन्हें हमारा श्रद्धापूर्ण एव परोक्ष शत-शत वन्दन और प्रणाम

# श्री जुगलकिशोर जी "युगवीर"

रामकुमार जैन एम. ए., बी. टी. साहित्याचार्य

युगवीर ! युग युग अमर है जग में तुम्हारी साधना ।।
है अमर "मेरी भावना" में, शुभ तुम्हारी भावना ।।

\+ + + +

तज कर वकालत क्यों भला साहित्य सेवा भा गई ।
कंचन-गली में, यह अकिंचनता-छटा क्यों छा गई ।।
सेवा के सरसिज खिल गये, सरसावा-सर सरसा गया ।
एकान्त दृढ़ संकल्प में भी, 'अनेकान्त' समा गया ।।
छोड़ा न तुमने सत्य-पथ, सह कर हजारों यातना ।
युगवीर ! युग युग अमर है जग में तुम्हारी साधना ।।

कितने निकाले रत्न थे, इतिहास-रत्नागार से ।
है "वीर-मन्दिर" सज रहा, अब भी उसी शृंगार से ।।
निर्भीक अपनी घोषणा का शंखरव करते रहे ।
जो सत्यपथ समझा उसी पर निडर हो बढ़ते रहे ।।
हे तर्क पंचानन ! तुम्हारा कौन करता सामना ।
युगवीर ! युग युग अमर है जग में तुम्हारी साधना ।।

साहित्यसेवी, दीर्घजीवी और मन से विमल थे ।
कर्तव्य में पवि, स्नेह-सौरभपूर्ण कोमल कमल थे ।।
थी रम्य सम्पादन कला, शतशः निबन्ध लिखे गये ।
मानस-जलधि से निकलते थे नित्य रत्न नये नये ।।
जो कर्मवीर, उसे भला क्या मानना, अवमानना ।
युगवीर ! युग युग अमर है जग में तुम्हारी साधना ।।

अन्तिम समय भी बन गये तुम दानवीर महामना ।
अपने कमाये द्रव्य से कर ट्रस्ट की शुभ स्थापना ।।
होकर वियुक्त चले गये हो यदपि भौतिक देह से ।
लेकिन मनीषी-मानसों में अमर हो बहु स्नेह से ।।
हम करेंगे उस कार्य को, जो थी तुम्हारी कामना ।
युगवीर ! युग युग अमर है, जग में तुम्हारी साधना ।।

—:o:—

# युग परिवर्तक पीढ़ी की अंतिम कड़ी थे युगवीर

**श्री नीरज जैन**

पहिली बार ईसरी मे पूज्य वर्णी श्री गणेशप्रसाद जी के पास मुख्तार सा० को देखा था। स्व० बाबू छोटेलाल जी से मुख्तार सा० के मतभेदों को लेकर बाबा जी के पास कुछ बाते पहुँची थीं और उन्ही की सफाई दोनो पक्षों से प्रस्तुत की जा रही थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि मतभेदो की तेजी या कडुवाहट तब तक बहुत हल्की पड चुकी थी और दोनों कर्मवीर महापुरुषों का पक्ष समर्थन बहुत सौजन्यता पूर्ण ही बाबा जी के समक्ष हो रहा था। इसके पूर्व 'मेरी भावना' के माध्यम से ही उन्हे जानता था। कुछ लेख भी पढ रखे थे और उनके कर्मठ व्यक्तित्व की जो काल्पनिक तसवीर मैने बना रखी थी, उन्हें उसके अनुरूप ही पाया। कभी इतनी सहजता से उनका दर्शन हो जायगा और इतनी निकटता से उनसे मिल सकूगा ऐसी आशा उस समय तक मैने नही की थी।

दूसरी बार दिल्ली में उनके दर्शन का सौभाग्य मिला। श्री रतनलाल मालवीय उन दिनो के केन्द्रीय शासन मे उपमन्त्री थे। उनके यहाँ ही कुछ मित्रों से चर्चा मे ज्ञात हुआ कि श्री मुख्तार सा० आजकल दिल्ली मे ही है। शाम को हम लोग मिलने चले गए। जबलपुर मे सम्प्रति "जगवाणी" के सम्पादक श्री स्वरूपचन्द जैन मेरे साथ थे।

मुख्तार सा० वीर सेवा मन्दिर के भवन मे एक छोटे कमरे मे बैठे हुए थे। सक्षिप्त से पूर्व परिचय के आधार पर उनसे थोड़ा वार्तालाप हुआ उन्होने पहिचान भी लिया और बड़ी आस्था-भक्ति पूर्वक पूज्य वर्णी जी महाराज का स्मरण किया।

इसी समय मेरे साथी स्वरूपचन्द्र जी ने मेरी भावना में दो संशोधन करने का सुझाव मुख्तार सा० को दिया। उनका प्रस्ताव था कि

**"पर धन वनिता पर न लुभाऊँ"** के स्थान पर **"पर धन पर तन पर न लुभाऊँ"** और **"धर्म निष्ठ होकर राजा भी"** के स्थान पर **"धर्म निष्ठ होकर शासक भी"** पढ़ा जाना अधिक उपयुक्त होगा।

मुझे लगा कि हम लोगों के जन्म के पूर्व से प्रचलित और सर्व स्वीकृत पाठ में परिवर्तन का सुझाव मुख्तार सा० को शायद रुचिकर न होगा; पर मुझे आश्चर्य हुआ कि उन्होंने इन सुझावों का न केवल स्वागत ही किया वरन् इन उपयुक्त सुझावों के लिये स्वरूपचन्द्र जी को धन्यवाद भी दिया।

इसके बाद भगवत् समन्तभद्राचार्य के इतिहास को लेकर उनसे पत्र-व्यवहार हुआ जो लगभग उनके जीवन के अन्त तक किसी न किसी प्रकार चलता ही रहा।

वास्तव मे हमारे गौरवमय इतिहास को देखने जानने के लिये मुख्तार सा० ने समाज के एक सजग नेत्र का काम किया। प्रसिद्ध शोधक विद्वान स्व० श्री नाथूराम प्रेमी को दूसरा नेत्र मान लें तो जैन साहित्य के इतिहास का शोध करने, उसे नई दृष्टि से परीक्षण के निकष पर कसने और उसकी टूटी तथा बिखरी कड़ियों को एकत्र करके जोड़ने के अथक अध्यवसाय की कहानी बन जाती है। निश्चय ही इस युग के साथ पुरातत्व के भूमिगत तथा विलुप्त प्राय अवशेषों तक अपनी तीक्ष्ण तथा सूक्ष्म दृष्टि पहुँचाने वाले स्व० बाबू छोटेलाल को तृतीय नेत्र की तरह स्थापित करना होगा। अनेक रूढ़ियों का उन्मूलन करने में, अनेक गलत मान्यताओं का खण्डन करने में और हमारे गौरवशाली अतीत की अनेक गौरव-गाथाओं से हमे परिचित कराने में त्रिनेत्ररूपी इन विभूतियों का जो महत्वपूर्ण योगदान रहा है उसका सही मूल्यांकन आने वाली पीढी ही कर सकेगी।

श्री जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' उस युग परिवर्तक पीढी की अन्तिम कड़ी थे। उन्होने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक अथक रूपेण कार्य करके कर्मठता का श्रेष्ठ उदाहरण हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। उनकी सद्‌गति की कामना के साथ उनके प्रति विनम्र श्रद्धांजलियां अर्पित करना हमारा कर्त्तव्य है। ●

# साहित्य-गगन का एक नक्षत्र अस्त

**श्री बलभद्र जैन न्यायतीर्थ**

मेरी भावना' के अमर उद्गाता आचार्य युगलकिशोर 'युगवीर' का ६२ वर्ष की अवस्था मे दिनांक २२ दिसम्बर को एटा में स्वर्गवास हो गया, इस समाचार को पढकर सभी स्तब्ध रह गये। अभी दि० ६-११-६८ को भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद ने एटा मे उनका सार्वजनिक सम्मान किया था। किन्तु यह किसे पता था कि सम्मान-समारोह के डेढ माह पश्चात् ही उनका आकस्मिक निधन हो जायगा। विधि का यह कैसा क्रूर व्यग्य है।

आपका जन्म मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी विक्रम संवत् १६३४ को सन्ध्या समय (सरसावा जिला सहारन पुर) में माता भूईदेवी की कुक्षि से हुआ। आप के पिता का नाम चौधरी नत्थूमल जी अग्रवाल था। तब किसे पता था कि वह बालक सरस्वती का वरदान प्राप्त करके और समाज की जीर्णशीर्ण रूढ़ियो पर वज्र प्रहार करके एक सामाजिक क्रान्ति करेगा; आचार्यो के नाम पर ग्रन्थ-रचना करने वाले भट्टारकों की प्रक्षिप्त रचनाओं की शल्यक्रिया करके; दिगम्बर जैनाचार्यो के प्रामाणिक जीवन-इतिहास की शोध खोज की दिशा में नये कीर्तिमान स्थापित करेगा; और जैन वाङ्मय की गरिमा को सरस्वती-पुत्रों के समक्ष सिद्ध करेगा।

बचपन में आपने उर्दू, फारसी, हिन्दी, सस्कृत और अंग्रेजी का अध्ययन किया। बारह वर्ष की अवस्था मे आपका विवाह हो गया। बचपन से ही जैन शास्त्रो का स्वाध्याय करने की आपकी प्रवृत्ति रही। मुख्तारकारी की परीक्षा देकर अदालत मे मुख्तार हो गये। दस वर्ष तक आपने यह व्यवसाय किया। इस काल मे अपने पेशे मे आपने पर्याप्त यश और धन अर्जित किया। यद्यपि वकालत का पेशा झूठ के बिना नही चलता, किन्तु आपका नियम था कि झूठा मुकदमा नही लेना। और आपने इस नियम का निर्वाह अन्त तक किया।

व्यवसाय के साथ-साथ आपकी ज्ञान-साधना भी चल रही थी। उन दिनों भट्टारकों की भ्रष्ट प्रवृत्तियों और अनाचार पोषक ग्रन्थों को सर्वसाधारण श्रद्धा से मान रहा था। यह देखकर आपके हृदय को अत्यन्त पीड़ा होती थी। अपनी इस पीड़ा की चर्चा आपने अपने मित्र बा० सूरजभान जी वकील से की। दोनो ने इस आचार का विरोध करने का सकल्प किया और इसके लिये एक साथ १२ फरवरी १६१४ को अपने पेशे को छोड़ दिया और जैन वाङ्मय और जैनधर्म की सेवा मे जुट पड़े।

अनेक भट्टारको ने जैन मान्यताओं के विरुद्ध ग्रन्थों की रचना कर डाली थी। उससे जैन समाज मे नाना प्रकार की मूढ़ताओं का प्रचार हो रहा था। भट्टारक समाज की श्रद्धा के पात्र रहे है। अतः उनकी रचनाओं का आदर, पठन-पाठन खूब होता था। सम्भवतः इतिहास मे प्रथम बार मुख्तार साहब ने बड़े परिश्रम से भट्टारकों की रचनाओ का अध्ययन करके जैनधर्म के विरुद्ध मान्यताओ की कड़ी आलोचना की और 'ग्रन्थ-परीक्षा' का प्रणयन किया। इस ग्रन्थ के प्रगट होते ही समाज में खलबली मच गई। जैन विद्यालयों मे से ऐसी रचनाओ का बहिष्कार हुआ। मन्दिरो मे से भट्टारकों के ऐसे ग्रन्थों का बहिष्कार हुआ। उस समय जिन पडितो ने मुख्तार साहब का विरोध किया, उन पडितो के सम्मान को भी गहरा आघात लगा। विद्वानों ने तभी मुख्तार साहब की प्रतिभा और विद्वत्ता का लोहा मान लिया।

इन्ही दिनो माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। दो पुत्रियाँ हुई—सन्मतिकुमारी और विद्यावती। और दोनो का क्रमशः ८ वर्ष और तीन माह की आयु मे निधन हो गया। और १५ मार्च १६१८ को आपकी जीवन सगिनी पत्नी भी आपका साथ छोड़कर सदा के लिये चली गई। यह घोर संकट आ पड़ा था। किन्तु साधना संकटों के बिना चलती कहाँ है। अब गार्हस्थिक झंझटों और चिन्ताओं से निराकुल होकर वे एकात्म्य भाव से जैन वाङ्मय की सेवा में ही जुट गये।

आप बहुत समय तक जैन गजट के भी संपादक रहे। आपने २१ अप्रैल सन् १६२६ में दिल्ली में समन्तभद्राश्रम

की स्थापना की। इसी आश्रम को वीरसेवामदिर भी कहते थे। इसकी ओर से 'अनेकान्त' नामक एक पत्र निकाला। वीर सेवा मदिर एक प्रकार से जैन समाज का शोध संस्थान था, जहाँ विविध शोध खोज, सपादन, ग्रन्थ-प्रणयन के कार्य चलते थे। कई विद्वान् भी रहते थे। आपने अपनी समस्त सम्पति का ट्रस्ट कर दिया और इस ट्रस्ट से वीर सेवा मदिर का सचालन होता था।

वीर सेवा मन्दिर कुछ वर्ष दिल्ली रहकर सरसावा मे चला गया। सरसावा मे इस सस्था ने शोध-खोज का बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। पुरातन जैन वाक्य सूची जैन लक्षणावली, अनेक दिगम्बर जैनाचार्यों का काल-निर्णय और उनका प्रामाणिक इतिहास, स्वोपज्ञ तत्त्वार्थाधिगम भाष्य स्वय आचार्य उमास्वामी की रचना नही है इसके सम्बध मे प्रामाणिक निर्णय, स्वामी समन्तभद्र का प्रामाणिक इतिहास आदि महत्वपूर्ण कार्य यहीं पर हुए। वास्तव मे सरसावा मे वीर सेवा मन्दिर ने जो कार्य किया, वह जैन वाङ्मय के इतिहास मे अमर रहेगा। सौभाग्य से मुख्तार साहब को प० दरबारीलालजी कोठिया, प० परमानन्द जी जैसे प्रतिभा के धनी विद्वानो का सहयोग भी मिल गया, जिससे कार्य मे पर्याप्त प्रगति हुई।

वीर सेवा मन्दिर सरसावा से दरियागंज मे निर्मित अपने भवन मे पुनः दिल्ली मे आ गया। यहा आकर कुछ वर्षों के पश्चात् वीर सेवा मन्दिर दो भागो मे बंट गया—वीर-सेवा-मन्दिर और वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट। वीर सेवा मन्दिर का सचालन बा० छोटेलाल जी सरावगी और वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट का सचालन मुख्तार साहब के नेतृत्वमे होने लगा। यह कहना शायद अधिक उपयुक्त होगा कि दिल्ली देश की राजधानी है। यहा राजनैतिक और कूट-नैतिक गतिविधियाँ प्रमुख रूप से होती है। वीर सेवा मन्दिर पर भी इन गतिविधियों का प्रभाव पड़ा और वह वर्षों तक कूटनैतिक भवर मे पड़ा रहा और जो कार्य इस संस्था से अपेक्षित था, वह शायद न हो सका।

किन्तु मुख्तार साहब की साहित्यिक प्रवृत्ति तो जैसे उनकी प्रकृति ही थी। वे सतत साहित्य निर्माण मे लगे रहे। उन्होंने दिल्ली में रहकर भी समन्तभद्र स्वामी के ग्रथों का भाष्य, अनुवाद किया, तत्वानुशासन ग्रन्थ की विस्तृत टीका की। उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि रही आचार्य सिद्धसेन दिवाकर पर एक स्वतन्त्र निबन्ध। इसमें उन्होने अनेक प्रमाणो और तर्कों से यह सिद्ध किया है कि सिद्धसेन दिगम्बर परम्परा के आचार्य थे।

मुख्तार साहब जो कुछ लिखते थे वह सप्रमाण, सयुक्तिक। उनके प्रमाण अकाट्य होते थे, उनकी युक्ति में प्रौढता रहती। उनकी भाषा प्रांजल थी। वे कवि निबंध-कार भाष्यकार, टीकाकार, समीक्षक सभी कुछ थे। उनके ग्रन्थों की प्रस्तावनायें स्वतंत्र ग्रथों से कम नहीं है। उनकी ऐतिहासिक खोजे ऐसी है जिनको इतिहास जगत में प्रमाण माना जाता है और इतिहासकार जिनके लिए मुख्तार साहब के सदा ऋणी रहेंगे। उनकी एक कृति मेरी भावना तो एक राष्ट्रीय गीत ही बन गई है, जिसका लाखो नर-नारी नित्य पाठ करते है।

मुख्तार साहब कहा करते थे कि मै सौ वर्ष तक जीऊगा। मुझे अभी बहुत कार्य करना है। जब तक वे जिए सदा कार्य करते रहे। अपने एक-एक क्षण का उपयोग उन्होने जैन साहित्य निर्माण के लिए किया। किन्तु विधि का यह क्रूर विधान ही कहना चाहिए कि उनकी सौ वर्ष जीने की इच्छा पूरी नही हो पाई और वे पहले ही चले गये। जीवन के अन्तिम वर्षों मे उनकी एक ही इच्छा रही कि समन्तभद्र-भारती के प्रचार-प्रसार के लिए विद्वानो की एक सस्था का निर्माण हो, जहा से एक पत्र का प्रकाशन हो। इस कार्य के लिए उन्होंने एक अच्छी निधि स्वय देने की इच्छा प्रकट की थी। किन्तु वे अपनी इच्छा को मूर्त रूप न दे सके। यदि वैसी सस्था का निर्माण सभव न हो और वीर सेवा मन्दिर और ट्रस्ट दोनो का एकीकरण करके उनकी इच्छा के अनुरूप वहा कार्य किया जा सके तो इससे उनकी इच्छा की कुछ पूर्ति भी हो सकेगी और उपयोगी कार्य भी हो सकेगा। क्या वीर सेवा मन्दिर और ट्रस्ट के अधिकारी हमारे इस निवेदन पर ध्यान देगे। हमारी दृष्टि से मुख्तार साहब के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि एक ही होगी—उनकी अन्तिम इच्छा की पूर्ति। ●

# इतिहास का एक युग समाप्त हो गया

**डॉ० गोकुलचन्द्र जैन एम. ए., पी-एच. डी.**

आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार के निधन से प्राचीन जैन वाङ्मय और सस्कृति के ऐतिहासिक अध्ययन का एक युग समाप्त हो गया। बीसवी शती के लगभग प्रथम चरण से जैन समाज के पुनर्जागरण तथा जैन वाङ्मय और संस्कृति के ऐतिहासिक अध्ययन का जो सूत्रपात हुआ तथा पिछले लगभग सात दशकों में जन जागरण और अध्ययन-अनुसन्धान के जो प्रयत्न हुए, उनके सूत्र-धारों की अन्तिम कड़ी थे मुख्तार सा०। बैरिस्टर चम्पतराय, अर्जुनलाल सेठी, सूरजभान वकील, ब्र० शीतलप्रसाद, अजितप्रसाद जिंदल, पं० नाथूराम प्रेमी, कामताप्रसाद जैन आदि सब प्रकारान्तर से एक ही महा-यज्ञ के होता थे। समाज सुधारकों ने उस समय सामाजिक क्रान्ति का जो बिगुल बजाया था, उसे शास्त्रीय प्रमाणो का ठोस और स्थिर आधार देकर मुख्तार सा० ने क्रान्ति के उद्घोष को और बुलन्द किया था। वे उस पीढ़ी की अंतिम कडी थे। उनके निधन से वह भी टूट गयी। और इस तरह जैन समाज के इतिहास का एक युग समाप्त हो गया।

मुख्तार सा० के निधन का समाचार मुझे दिल्ली मे मिला था। उस समय मै लक्षणावली की पाण्डुलिपि देख रहा था। लक्षणावली के साथ मुख्तार सा० का अनन्य सम्बन्ध है। वास्तव में यह उन्ही की परिकल्पना है। सयोग ही कहना चाहिए कि इस कार्य मे अनेक बड़े-बड़े विद्वानो के हाथ लगे फिर भी मुख्तार सा० के जीवनकाल मे उसका कार्य पूरा नही हो सका।

मुख्तार सा० से मैं सन् १९६० मे पहली बार दिल्ली मे मिला था। उसके बाद तो उनके साथ पत्र व्यवहार से निरन्तर सम्पर्क बना रहा। एकाधिक बार पुन: मिलना भी हुआ। मैंने उन्हें हमेशा ज्ञानोपयोग मे निरत पाया।

मुख्तार सा० की एक विशेषता ने मुझे बहुत अधिक प्रभावित किया। उनमे गुरुडम तनिक भी नहीं था। विद्वानो के प्रति उनका सहज अनुराग कई दशकों के उम्र का अन्तर भूल जाता था। उनसे लगभग एक तिहाई उम्र मे होने पर भी मैने उनकी आत्मीयता बहुत पायी। मुझे लगता "गुणीजनों को देख हृदय मे मेरे प्रेम उमड़ आवे" मुख्तार सा० के कवि मन की अन्तर्वाणी है।

मुख्तार सा० के स्वर्गवास के कुछ महीने पूर्व जैन सदेश में प० दरबारीलाल जी कोठिया ने मुख्तार सा० का एक पत्र प्रकाशित किया था। मैने उस पर एक टिप्पणी संदेश मे लिखी थी। उसमे मैंने मुख्तार सा० की समन्तभद्र स्मारक योजना तथा समन्तभद्र पत्र के प्रकाशन के सम्बन्ध में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए सुझाव दिया था कि समन्तभद्र के विचारों का देश विदेश में प्रचार हो, इसके लिए समन्तभद्र के सभी ग्रन्थों का मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरी लिपि में तथा मूलानुगामी अंग्रेजी अनुवाद के साथ रोमन लिपि मे दो जिल्दो मे ग्रन्थावली के रूप मे प्रकाशित हो तथा तीसरी जिल्द मे समन्तभद्र के शब्दो का इण्डेक्स समन्तभद्र भारती कोश के रूप मे प्रकाशित किया जाये। मेरे विचार उन्हे बहुत ही पसन्द आये इसलिए उन्होने 'स्वामी समन्तभद्र के विचारों का प्रचार" शीर्षक से उस पर एक लम्बी टिप्पणी जैन सदेश के १७ अक्तूबर १९६८ के अक मे प्रकाशित की। उनकी वह टिप्पणी अब एक ऐतिहासिक दस्तावेज बन गयी है, इसलिए मै उसे यहाँ अविकल उद्धृत करना उपयोगी और महत्त्व का समझता हूँ। वह इस प्रकार है—

जैन सदेश के गत २९ अगस्त के विशेषाङ्क नं० ३१ में डॉ० गोकुलचन्द्र जी जैन एम० ए० पी० एच० डी० का लेख प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक है 'आचार्य समन्तभद्र और प० जुगलकिशोरजी मुख्तार'। यह लेख प० दरबारीलालजी कोठिया न्यायाचार्य के उस लेख को लक्ष्य करके लिखा गया है जो गत ४ जुलाई के संदेश में प्रका-

शित हुआ है और जिसमे कोठिया जी ने मेरे एक पत्र को महत्वपूर्ण समझकर प्रकाशित किया है। लेख मे डॉ साहब ने अगस्त १९६५ मे प्रकाशित मेरी 'समन्तभद्र-स्मारक-योजना' का उल्लेख करते हुए लिखा है :—

"आचार्य समन्तभद्र के समन्तात् भद्र विचारों के प्रचार हेतु उनके (मेरे) मन में जो उत्कट भावना है वह किसी भी साहित्य और संस्कृति-प्रेमी के लिए समादर और प्रेरणास्पद है। तिरानवें वर्ष की उम्र मे भी साहित्य-सेवा के प्रति उनकी लगन और दृढता नयी पुरानी सभी पीढियों के लिए स्पृहणीय है।"

इस वाक्य में मेरी उम्र जो तिरानवें वर्ष की लिखी है उसके सम्बन्ध में मैं पहले दो शब्द लिख देना चाहता हूँ; क्योंकि यह एक गलती है, न लिखूं तो गलती का प्रचार होता है और वह रूढ बनती है। मेरा जन्म मगसिर सुदी एकादशी संवत् १९३४ का है, इससे मेरी उम्र ९१ वर्ष चल रही है—मगसिर सुदी दशमी तारीख २९ नवम्बर १९६८ को ९१ वर्ष पूरे होंगे। इससे आयु में दो वर्ष की वृद्धि ठहरती है अथवा भुज्यमान आयु मे दो वर्ष की कमी हो जाती है। यह कमी डॉ० साहब की अपनी नही किन्तु पूर्व लेख से सम्बन्ध रखती है, उसमे कोठिया जी से ९१ की जगह ९३ का अंक या तो गलत लिख गया है अथवा गलत छप गया है। उनसे पूर्व पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने भी आयु के उल्लेख मे प्राय: एक वर्ष की गलती की थी—९१ जन्मदिवस को ९१ वर्ष पूरे हुए समझकर जैन संदेश मे ९२ वर्ष की आयु लिख दी थी। सभव है उसी सिलसिले में कोई ६ छह महीने बाद ये ९२ के ९३ वर्ष बन गये हो। अस्तु, पाठको को यह गलती सुधार लेनी चाहिए।

मेरी 'समन्तभद्र-स्मारक-योजना' को जिसके साथ 'समन्तभद्र' मासिक पत्र का प्रकाशन भी है, "बहुत ही अच्छा" बतलाते हुए डॉ० साहब ने लिखा—

"पर यह एक बड़ा कार्य है। इतने बड़े कार्य के लिए कई निष्ठावान् विद्वानों एव श्रीमानों को इस कार्य में अपने को लगाना होगा। स्थिति को देखते हुए यह काम जल्दी सम्भाव्य मालूम नहीं होता।"

इसमें संदेह नहीं कि स्मारक की योजना का काम एक बडा काम है और उसमें कई निष्ठावान् विद्वानों एवं श्रीमानो की जरूरत है; परन्तु यह काम वर्तमान मे असम्भाव्य हो अथवा अधिक देरतलब हो, ऐसा कुछ नहीं है। जिस समाज मे साहू शान्तिप्रसादजी जैसे दानी प्रतिवर्ष एक ग्रन्थ पर एक लाख रुपये का पुरस्कार देने वाली भारतीय ज्ञानपीठ जैसी सस्था और श्री बाहुबलि श्रवणबेलगोल के मस्तकाभिषेक कलश की बोली प्रायः पचास हजार में लेने वाले नवनरत्न, उदारमना, शासनभक्त जैसे महाभाग्य मौजूद हों उसमे शासन-प्रभावना के ऐसे महान् कार्य में योग देने वाले श्रीमानों की क्या कमी रह सकती है? बशर्ते कि विद्वान् लोग उन्हे उसके लिए सच्ची सक्रिय प्रेरणा प्रदान करे। यह विद्वानों में निष्ठा तथा उत्साह आदि की कमी का ही परिणाम है जो आज समय की अनुकूलता और साधनों की प्रचुरता एव सुलभता होते हुए भी जिन शासन का वह प्रचार नही हो रहा है जो होना चाहिए था और जिसकी आज बडी आवश्यकता है। विदेशों मे जिन शासन-ज्ञान की मांग है परन्तु उसको देने वाले आगे नही आ रहे है। स्वामी समन्तभद्र ने साधनों की कमी और दुर्लभता के होते हुए भी अपने समय मे श्री वीर जिन-शासन की हजार गुणी वृद्धि की है· जिसका एक प्राचीन कनडी शिलालेख मे उल्लेख है; तब हमारे योग्य विद्वान् एवं त्यागी महानुभाव स्वामीजी का अनुसरण क्यों नही करते और क्यो वर्तमान साधनों से अधिकाधिक लाभ उठाकर उनसे भी अधिक प्रचार कार्य मे प्रवृत्त होते? उन्हे स्वामी जी का यह वचन, जो शासन की भरपेट निन्दा करने वालों को भी सन्मार्ग पर अथवा शासन की शरण में लाने की अपूर्व शक्ति-सामर्थ्य का सूचक है, सदा ध्यान मे रखना चाहिए और अपने हृदय मे भय, निर्बलता, कायरता, अनुत्साह को दूर भगाकर प्रबल पुरुषार्थ का आश्रय लेना चाहिए, फिर कोई कारण नही जो अनुकूल समय के होते हुए भी समन्तभद्रोदित जिनशासन के प्रचार मे सफलता प्राप्त न होवे—

**कामं द्विषन्नप्युपपत्ति चक्षुः**
**समीक्षतां ते समदृष्टिरिष्टम्।**
**त्वयि ध्रुवं खण्डित-मान-शृङ्गो**
**भवत्यभद्रोऽपि समन्तभद्रः।**

डॉ० साहब ने आचार्य समन्तभद्र के साहित्य को देश और विदेशों के विद्वानों तथा जनसामान्य के समक्ष लाने के हेतु पहली आवश्यकता तो यह व्यक्त की है कि उस साहित्य के प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध हों, दूसरी आवश्यकता यह है कि मेरे द्वारा हिन्दी अनुवाद और विस्तृत प्रस्तावना आदि के साथ प्रकाशित समन्तभद्र-ग्रंथों का एक ऐसा संस्करण प्रकाशित हो जिसमे सब ग्रन्थ मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद के साथ हो। इसी तरह सब ग्रंथों का रोमनलिपि में रूपान्तर तथा मूलानुगामी अंग्रेजी अनुवाद भी हो, जो अंग्रेजी के माध्यम से पढने वालों तथा विदेशों में प्रचार की दृष्टि से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हो। इस तरह दो जिल्दों मे ग्रंथावली के निकल जाने पर तीसरा आवश्यक कार्य 'समन्तभद्र भारती-कोश' का होगा, जिसके विषय में उन्होंने मेरी दृष्टि को जानना चाहा है और शब्दो का इन्डेक्स पहले तैयार होना आवश्यक व्यक्त किया है। इन्डेक्स तो कई वर्ष से तैयार है—१६६ पृष्ठों पर है और इसमें स्वामी समन्तभद्र के उपलब्ध पांचों ग्रन्थों के सभी शब्दो का सकलन है—कौन शब्द किस ग्रंथ में कहाँ-कहाँ पर कैसे प्रयुक्त हुआ है यह सब उसमे दर्शाया है। इसके निर्माण मे जिस दृष्टि अथवा शैली को अपनाया गया है उसका सूचक एक पर्चा भी साथ में सलग्न है जो इस प्रकार है—

(१) शुरू मे मूल शब्द अविभक्तिक दिया जाये और फिर उसके पुलिंग और स्त्री-नपुसक रूपों को अकारादि क्रम से दिया जाये।

(२) ग्रन्थ के समस्त पदों के पृथक्-पृथक् शब्द ही यथा स्थान दिये जाये और ऐसे समस्त पद भी ग्रहण किये जाये जिनका अर्थ दृष्टि से पार्थक्य हो; अन्य पारिभाषिक अपार्थक्य द्योतक शब्द भी लिये जावे।

(३) मूलरूप के ग्रहण के साथ ही शब्द की शक्ल बदलने वाले प्रत्ययों के रूप भी मात्र हाइफन देकर ले लिये जावे।

(४) सर्वनाम शब्दों के प्रत्येक विभक्ति के रूप चाहे तद्रूप हों चाहे रूपान्तरित हों मूलरूप देकर अकारादिक्रम से उसमे अन्तरित किये जायें।

(५) सोपसर्ग धातु के रूप मूलधातु के साथ नहीं किन्तु यथास्थान अनुक्रम से दिये जायें और धातु के 'धा' ब्रेकट में दिया जाये, फिर लकारो के रूप भी शब्दानुक्रम से दिये जाये।

(६) यौगिक शब्दों का पृथक्-पृथक् निर्देश हो।

(७) क्त्वा,, तु के रूप धातुओ मे दिया जाये।

स्थल के अनुरूप इसमे शब्दो के हिन्दी अर्थ की योजना करनी अवशिष्ट है, जिसके हो जाने पर कोश पूरा हो सकेगा।

इसमें सदेह नही कि सबसे पहले पांचों ग्रथों का एक प्रामाणिक शुद्ध सस्करण तैयार हो जाना चाहिए। मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद मे फिर कोई दिक्कत नही, वह एक तरह से तो प्रायः तैयार जैसा ही है—कहीं-कहीं कुछ शब्द परिवर्तन की शायद जरूरत पड़े। अंग्रेजी अनुवाद उसी के आधार पर हो जावेगा। प्रामाणिक सस्करण की व्यवस्था का काम डॉ० साहब को स्वय अपने हाथ में लेना चाहिए और उसकी चर्चा को शीघ्र ही एक दो पत्रों में चला कर विद्वानों को उसमे लगाना चाहिए। फिर ५ या ७ विद्वानो की एक समिति बैठकर उसका अतिम निर्णय कर देगी, और तब वारसेवामंदिर ट्रस्ट की ग्रथ माला में 'समन्तभद्रभारतीकोश' को भी पूरा करके प्रकाश मे ले आया जायेगा।

अब रही 'समन्तभद्र' मासिक की बात, जो स्मारक की योजना-अपेक्षा एक बहुत छोटा कार्य है, उसका उक्त कार्यों की दृष्टि से स्थगित रखना किसी तरह भी उचित नहीं है। उसे तो शीघ्र से शीघ्र निकालना चाहिए। वह पत्र ही विद्वानो तथा अन्य जनों मे चेतना उत्पन्न करेगा और उन्हे अपने-अपने कर्तव्य पालन मे जागरूक एव सावधान बनायेगा। उसके विषय में विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष को जो मैने पत्र लिखा है उसमें अपनी इच्छा को व्यक्त करते हुए मैने यह स्पष्ट कर दिया है कि विद्वत्परिषद् पूर्णतत्परता के साथ इस पत्र को शीघ्र निकालने की कृपा करे, पत्र की फार्म सख्या ४ से कम न हो, जिसके प्रायः ढाई फार्मों मे स्वामीजी के विचारो का विवेचन, व्याख्यान, स्पष्टीकरण, रहस्योद्घाटन एवं महत्व-ख्यापन रहे। ऐसे खोजपूर्ण लेख भी रहे जो स्वामी जी की जीवनी से सम्बन्ध रखते हों और उस पर अच्छा

प्रकाश डालते हों। पत्र का कागज अच्छी क्वालिटी का सफेद हो, ३२ पौण्ड से कम किस्म का न हो और उसमें छपाई की शुद्धता एवं सफाई का पूरा ध्यान रखा जाये, जिससे पत्र आकर्षक तथा रुचिकर हो। पत्र को समाज के झगड़े-टंटो से अलग रखा जाये, ऐसा कोई लेख न छापा जाये जो व्यर्थ का क्लेशकारक, वैमनस्योत्पादक, कषाय-वर्धक अथवा व्यक्तिगत आक्षेपपरक हो और वातावरण को दूषित तथा अशान्त बनाता हो : पत्र को जो भी पढ़े उसे शान्ति मिले और शुद्ध ज्ञान का लाभ हो, ऐसी दृष्टि बराबर रखी जानी चाहिए। ऐसे पत्र को शीघ्र निकालने के लिए मै विद्वत्परिषद् को दस हजार देना चाहता हूँ। इस रकम को तीन वर्ष के घाटे के रूप में समझा जावे, जो किसी तरह भी कम नही है। कम से कम तीन वर्ष उक्त पत्र को जरूर निकाला जायेगा ऐसा दृढ़ सकल्प करके ही कार्य को हाथ मे लेना चाहिए, शेष पत्र के नफे नुकसान की मालिक विद्वत्परिषद् होगी—मेरा उससे कोई संबध नहीं रहेगा।'

ऐसे पत्र की समाज में आज कितनी बड़ी आवश्यकता है। इसे समाज के सच्चे हितैषी भले प्रकार समझ सकते हैं और उसमें यथाशक्ति अपना-अपना सहयोग देने के लिए तत्पर हो सकते है। दो चार सक्रिय-सेवाभावी प्रेरकों की जरूरत है, जिन्हें शीघ्र ही स्वकर्तव्य समझकर आगे आना चाहिए। फिर पत्र को घाटे का भी कभी मुँह नहीं देखना पड़ेगा और वह समाज का एक आदर्श पत्र बन कर रहेगा।"

मुख्तार सा० नही रहे। उनके बाद उनके अनुशासकों तथा आत्मीय जनो का यह पुनीत दायित्व हो जाता है कि उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये तथा परिकल्पित शोध अनुशीलन कार्यो को आगे बढ़ाए। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

—:o:—

# आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल एम. ए., पी-एच. डी.

आदरणीय मुख्तार सा० ने जैन साहित्य की ७० से भी अधिक वर्षों तक सेवा करके समाज की तीन पीढियों को इस ओर कार्य करने के लिये सदैव प्रोत्साहित किया। मुख्तार सा० के इस प्रोत्साहन के फलस्वरूप आज हमे जैन साहित्य पर कार्य करने वाले विद्वान् दिखलाई देते है। उन्होने खोज करने की प्रणाली को विद्वानो के समक्ष उपस्थित किया और प्रमाणो के आधार पर ही किसी भी परम्परा को स्वीकार करने का आग्रह किया। मैने साहित्यिक क्षेत्र मे उस समय प्रवेश किया था जब मुख्तार सा० ७० वर्ष की आयु को पार कर चुके थे। उस समय जैन साहित्य के क्षेत्र में सर्वश्री नाथूराम जी प्रेमी, मुख्तार सा० डा० उपाध्ये एवं डा० हीरालाल जी जैन के नाम विशेष क्रम में लिये जाते थे। डा० नेमिचन्द जी शास्त्री, डा० ज्योतिप्रसाद जी, पं० परमानन्द जी शास्त्री, एवं पडित कैलाशचन्द्र श्री शास्त्री आदि कुछ और विद्वानों के नाम भी सुनाई देते थे और समाज को इन विद्वानों की विद्वत्ता एवं कार्य पर पूरा भरोसा था। सचमुच इन सब विद्वानो के अनवरत परिश्रम एवं महत्वपूर्ण उपलब्धियो के कारण ही गत ६० वर्षों मे जैन साहित्य पर कुछ कार्य हो सका है।

मुख्तार सा० से मेरा साक्षात्कार सर्व प्रथम जयपुर में हुआ। उस समय वे स्व० बाबू छोटेलाल जी के साथ यहाँ आये थे। मेरी दो पुस्तके उस समय "आमेर शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची" एवं "प्रशस्ति सग्रह" निकल चुकी थी। पुस्तकों पर जो उनकी सम्मति मिली थी वह मेरे लिये मार्गदर्शन स्वरूप थी। यद्यपि उस समय वे ७० वर्ष से भी अधिक थे लेकिन उनका कार्य करने का उत्साह युवकों जैसा था। मुझे याद है कि लश्कर के दि० जैन

मन्दिर मे वे वहाँ के शास्त्र भण्डार को देखने के लिये प्रति दिन ४-५ घण्टे जम कर बैठते थे। वह गर्मियो का समय था। शास्त्र भण्डार वाले तिवारे मे धूप भी आती थी लेकिन वे इसकी परवाह किये बिना लगातार बैठकर शास्त्रो को देखते रहते। साथ ही मे उनकी आवश्यक प्रणालियाँ आदि भी नोट करते जाते थे। वे दूसरो के कार्य मे कम विश्वास करते थे इसलिए जब तक वे स्वय किसी ग्रन्थ को नही देख लेते तब तक किसी भी बात को स्वीकार नही करते थे।

इसके बाद तो उनसे दिल्ली मे कितनी ही बार भेट हुई। जब भी दिल्ली जाता तब वीर सेवा मन्दिर मे ही ठहरता और वही उनके दर्शन हो जाते। सन् १९५९ मे दिल्ली मे आयोजित जैन सेमिनार के अवसर पर तथा इसी तरह के अन्य अवसरों पर उन्हे पास से देखने का अवसर मिला। उनकी कार्य करने की पद्धति को देखा। वे सारा कार्य स्वय ही करते थे लेकिन प्रात.काल से लेकर रात्रि तक ८५ वर्ष की अवस्था तक भी वे सतत साहित्य सेवा मे लगे रहते।

सन् १९५९ मे उन्होने अजमेर के भट्टारकजी के भडार को देखा और उस भण्डार मे से कितनी ही नवीन कृतियो की खोज की। प० परमानन्द जी भी उनके साथ थे। इन दोनों विद्वानो की प्रगाढ़ जोडी ने साहित्यिक क्षेत्र में कितने ही महत्वपूर्ण कार्यो का सम्पादन किया है। जब वे अजमेर से वापिस लौटे तो दो दिन के लिए जयपुर भी ठहरे और शाम को ही मेरे घर को अपने चरणों से पावन कर दिया। मेरे लिये ऐसे साहित्यिक महापुरुष का आतिथ्य सौभाग्य का विषय था। प्रातःकालीन भोजन के अतिरिक्त शाम को वे केवल दूध लेते अथवा साधारण-सा फलाहार करते थे। धोती, कमीज एव टोपी लगाये तथा बेत हाथ मे लिये रहते थे और कभी-कभी ऐसा मालूम होता था कि मानो ज्ञान की साक्षात्मूर्ति ही अपनी पावन रज से नगर को पवित्र करने आई हो।

मुख्तार सा० से अन्तिम भेट जनवरी १९६५ मे हुई जब मै नेशनल म्यूजियम से कुछ ग्रन्थ लेने दिल्ली गया था। उस समय भी मुख्तार सा० अपने साहित्यिक मिशन में पूर्ण दत्तचित्त थे और विभिन्न जैनाचार्यों के समय निर्धारण मे लगे हुए थे। उनमें वही आत्मीयता एव अपने काम के प्रति लगन तथा उत्साह था। यद्यपि वीर सेवा मन्दिर से उनका विशेष सम्बन्ध था लेकिन इससे उनकी साहित्यिक सेवा मे जरा भी अन्तर नही आया था।

वास्तव मे मुख्तार सा० साहित्य की जितनी भी सेवा कर सके, वह इतिहास के स्वर्ण पृष्ठो मे सदा अकित रहेगी। अनेकान्त जैसे खोज पूर्ण पत्र का उन्होने वर्षों तक सम्पादन किया। और उसके माध्यम से जैन इतिहास को नई दिशा प्रदान की। इतिहास निर्माण के अतिरिक्त वे पक्के समाजसेवी एव सुधारक थे। शिथलाचार का उन्होंने अपने जीवन मे कभी पोषण नही किया तथा अपने लेखों एव पुस्तको के द्वारा देश एव समाज मे नव चेतना जाग्रत की आपकी एक 'मेरी भावना' ही उन्हे सैकड़ो वर्षो तक जीवित रखने में पर्याप्त है।

आज सारा समाज आदरणीय मुख्तार सा० की सेवाओं के प्रति कृतज्ञ है लेकिन हमे इस बात का सदा ही पश्चाताप रहेगा कि हम उनका कोई शोभा सम्मान न कर सके, जिसमे उन्हें अपनी सेवाओं का समाज द्वारा मूल्याकन का आभास होता। वीर सेवा मन्दिर एव अनेकान्त पत्र उनकी सेवाओं की उज्ज्वल तस्वीर है। मुख्तार सा० के निधन के पश्चात् ही हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि उनकी स्मृति मे किसी ऐसी ग्रन्थमाला का शुभारम्भ करे जिससे जैनाचार्यों की साहित्य सेवा का प्रत्येक भारतीय को सही मूल्यांकन मिल सके। यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि होगी। और उनका सच्चा स्मारक होगा। अनेकान्त पत्र में उनका संस्थापक के रूप में नाम रहना चाहिए।

—:o:—

# इतिहास के एक अध्याय का लोप

**प्रो० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' एम. ए., शास्त्री**

दि० २२ दिसम्बर ६८ रविवार को भारतीय वाङ्मय और इतिहास के उस प्रदीप्त रत्न की जीवन ज्योति सदैव के लिए शान्त हो गई, जिसकी आभा समाज, धर्म, साहित्य, दर्शन और राष्ट्र का दिग्-दिगन्त मुखरित था। इसमें सरस्वती और लक्ष्मी का अद्भुत समन्वय था। इसके निधन से सभी का दु:खी होना स्वाभाविक है।

विक्रमाब्द १८३४ की मगसिर सुदी ११ का दिन धन्य है जब सहारन पुर जिले के सरसावा नगर मे स्व० चौ० नत्थूमल जी (जन्म १ मई १८४६ और मृत्यु २० नवबर १९१६) और श्रीमती भोई देवी का गृह उस बालक जुगलकिशोर के जन्म से जगमगा उठा था, जो आगे चलकर "युगवीर" कहलाया। प्रारभिक शिक्षा उर्दू-फारसी माध्यम से ५ वर्ष की छोटी सी अवस्था मे ही प्रारभ हो गई। ये बहुत कुशाग्रबुद्धि, लगनशील और परिश्रमी छात्र थे। इनके साथी और गुरुजन—सभी इनकी प्रतिभा से प्रभावित थे। उस समय की प्रथा के अनुसार इनका विवाह १३-१४ वर्ष की अवस्था मे ही हो गया था। विवाह के पश्चात् आपने जैनधर्म दर्शन के अतिरिक्त हिन्दी, अंग्रेजी, सस्कृत और प्राकृत भाषाओ का अध्ययन बडी रुचि के साथ योग्यतापूर्वक किया। धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, आध्यत्मिक और राष्ट्रीय गतिविधियो मे आरम्भ से ही आपको गहरी दिलचस्पी रही और वह क्रमश: पल्लवित, पुष्पित और फलीभूत हुई।

धुन के पक्के, लगन और सूझबूझ के धनी, विचारो मे क्रान्त छिपाये, कर्मठ बालक जुगलकिशोर के साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश—आठ मई १८९९ के "जैनगजट" मे प्रकाशित एक निबंध से होता है। तब से उनकी लेखनी उनके जीवन के अन्तिम क्षण तक अथक और अविरल गति से निरन्तर प्रवहित रहकर अनेक निबधो, कविताओ, सम्पादकीय टिप्पणियो अनूदित-ग्रथो, इतिहास और समीक्षा का प्रणयन करती रही। उनकी लेखनी से प्रसूत कतिपय महत्त्वपूर्ण ग्रंथ निम्नाङ्कित है :—

(१) जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश (२) जैनाचार्यों का शासन भेद, (३) ग्रन्थ परीक्षा (चार भाग), (४) युगवीर निबन्धावली (दो खन्ड), (५) युगवीर भारती, (६) स्वयम्भूस्तोत्र (७) समीचीन धर्मशास्त्र, (८) अध्यात्म रहस्य, (९) युक्त्यनुशासन, (१०) आप्तमीमाँसा, (११) तत्त्वानुशासन, (१२) योगसार प्राभृत, (पुरातन जैन वाक्य-सूची, (१४) जैन ग्रथ प्रशस्ति सग्रह (प्रथम भाग) (१५) कल्याण कल्पद्रुमादि।

पं० जुगकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' को निस्पृह किन्तु निष्ठावान् सामाजिक कार्यकर्त्ता, कुशल कवि, निपुण अनुवादक, समर्थ समीक्षक, विचारवान् लेखक और सफल सम्पादक के रूप में सदैव याद किया जाता रहेगा।

आपने अनेक वर्षों तक 'जैन गजट' "जैन हितैषी" और "अनेकान्त" का सम्पादन बड़ी लगन और योग्यतापूर्वक किया। सम्पादक के दायित्त्व का निर्वहण निर्भीकता के साथ किया। मितव्ययिता और सादगी के साथ उदारता की वे बेजोड नजीर थे। उनकी प्रतिभा और अध्यवसाय से जैन साहित्य और इतिहास की अनेक उलझी हुई गुत्थियां सुलझ गई हैं। वे अपने आदर्श और योजनाएँ 'अनेकान्त' तथा समन्तभद्र आश्रम' (वीर सेवा मन्दिर) के रूप मे फलीभूत देखना चाहते थे। इन दोनो के विकास उत्कर्ष के लिए जैसी आतुरता मुख्तार जी में थी वैसी अन्यत्र प्राय. नही दिखाई पड़ती।

वे जीवन भर साधक और चिन्तक रहे। शोध-खोज और समीक्षा आपके जीवन का अभिन्न अग था। भट्टारको की अनर्गल प्रवृत्तियाँ आपके अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप ही 'ग्रन्थ परीक्षा' (४ भाग) के माध्यम से सर्वविदित हो सकी है।

आज के अनुसन्धान जगत मे जैन दर्शन और साहित्य सम्बन्धी कोई भी गवेषणा और विवेचना मुख्तार श्री के विचारो की 'पुट' के बिना प्राय: अधूरी मानी जाती है। आचार्य समन्तभद्र और उनकी भारती के सम्बन्ध मे मुख्तार श्री विशिष्ट ज्ञाता और अधिकारी विद्वान् के रूप मे समादृत हुए हैं। उन्होंने स्वामी समन्तभद्र की भारती का बहुत सुन्दर सम्पादन और प्रकाशन कराया है। आचार्य

समन्तभद्र के मूल्याङ्कन और भट्टारकों की यथार्थ स्थिति की प्रस्तुति के कारण भारतीय दर्शन और जैन जगत् उन्हें और उनकी सत्यगवेषणा की प्रवृत्ति को कभी नहीं भूल सकता। वे बहुज्ञ, बहुश्रुत और बहुभाषाविद् तो थे ही, मेरे विचार में वे व्यक्ति से बढ़कर स्वयं में एक आदर्श और मूर्तमान संस्था थे। उनकी खोज में पौर्वात्य और पाश्चात्य-दोनों देशों की समीक्षा पद्धति का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। काश ! समय के साथ हम उनका समुचित मूल्याङ्कन कर पाते। उनके निधन से समाज, संस्कृत और इतिहास की महान् क्षति हुई है। उनके निधन से इतिहास का एक अध्याय लुप्त हो गया है उन्हे उनकी महान् साधना और कार्यों के प्रति मेरी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित है। जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि मुख्तार श्री की दिवंगत आत्मा उत्तरोत्तर उत्कर्ष प्राप्त करे।

वर्णी स्नातक परिषद् ने अपनी दि० २९-१२-६८ की कार्यकारिणी समिति की बैठक में (अतिशय क्षेत्र कोनी, जबलपुर में डा० हरीन्द्रभूषण जैन, विक्रम विश्वविद्यालय की अध्यक्षता मे निष्पन्न) सर्वसम्मति से प० जुगलकिशोर जी मुख्तार पर शोध कार्य प्रस्तावित कर सच्ची श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का उपक्रम किया है। ●

## युग-युग तक युग गायेगा, 'युगवीर' कहानी।

★

किया दूध का दूध और पानी का पानी ।।
आई एक हिलोर सभी डगमगा गये थे,
नहीं अज्ञ की बात विज्ञ सकपका गये थे।
धर्म-कर्म को आडम्बर से, खूब सजाया,
रचे ग्रन्थ पर ग्रन्थ, लिखा जो जी में आया।
पर सत्य पारखी, तेरी सत्य कसौटी ही तो,
बन पाई थी सत्य-स्वरूपा ग्रन्थ निशानी ।।
किया दूध का दूध और पानी का पानी ।।

हे हे उन्नत भाल, भाल उन्नत कर डाला,
सूक्ष्म दृष्टि से खोज-खोज इतिहास निकाला।
नहीं लेखनी बिकी झुकी लक्ष्मी के आगे,
तुमको पाकर भाग्य सरस्वती के थे जागे।
हे सदाचार की मूर्ति, मनुजता के अवतारी,
समन्तभद्र के भक्त और उनके थे ध्यानी ।।
युग-युग तक युग गायेगा, 'युगवीर' कहानी ।।

ऊँच-नीच के भेदभाव की गाँठें खोलो,
प्रेम-भाव से रहो, बढ़ो अमृत रस घोलो।
सबके सुख में सुख तुमने अपना दर्शाया,
धर्म-कर्म से ऊपर, मानव धर्म बताया।
गूंज रही है आज हृदय में तेरी वाणी,
'मेरी भावना' के भावों की अमर कहानी।
किया दूध का दूध और पानी का पानी।
युग-युग तक युग गायेगा 'युगवीर' कहानी।

जयन्ती प्रसाद शास्त्री

परिशिष्ट

# श्रद्धाञ्जलि

**डॉ० दरबारीलाल कोठिया**

श्रद्धेय बाबू जी (आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार) ने जीवन भर अद्भुत समाज और साहित्य की सेवा की है। वे आरम्भ से समाज सुधारक, उन्नायक और स्वय अर्जित विद्यावान् थे। मातृभूमि से उन्हे असाधारण अनुराग था। जब दिल्ली मे समन्तभद्राश्रम सफल न हुआ तो अपने जन्म स्थान सरसावा मे **'वीर-सेवा-मन्दिर,** के नाम से नई साहित्य-सस्था को जन्म दिया और उसके लिए एक ट्रस्ट की भी योजना कर दी। इस साहित्य-सस्था के द्वारा उन्होने जो संस्कृति की सेवा की है वह आश्चर्य-जनक है। उन्होंने इतना लिखा है कि व्यास के महाभारत से भी अधिक परिमाण मे है।

बाबू जी मे जो कमी थी वह यह कि उनमे मिलनसारता कम थी, उदार भी कम थे और विश्वास भी कम करते थे। इन दो-तीन बातों के कारण ही उनकी लोकप्रियता और लोकाकर्षण अवरुद्ध रहे। अन्यथा उनकी सेवा साधना, तपस्या, कर्तव्यनिष्ठा, तीव्र लगन और जिनवाणी की भक्ति जितनी थी, उनसे उन्हे सर्वातिशायी सम्मान और प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए थी। आज शोध-खोज की प्रेरणा देने वाला और निष्ठावान् साहित्यकार उन जैसा दिखलायी नही पडता। ९२ वर्ष तक श्रुतसेवा मे संलग्न यह तपस्वी हम लोगो से दूर ओझल हो गया।

समाज उनकी अमर स्मृति रखने के लिए कोई ठोस कदम उठा सके तो वह उनके ऋण से कुछ उऋण भी हो सकेगी। हम उनके प्रति हार्दिक श्रद्धाजलि प्रकट करते हुए उनके लिए शान्ति लाभ की कामना करते है। वे हमें अपने प्रशस्त मार्ग पर चलते रहने की प्रेरणा देते रहे।

—:०:—

# भावभीनी सुमनाञ्जलि

**बाबू कपूरचन्द बरैया एम. ए.**

गुरू गोपालदास जी को जहाँ अनेक सैद्धान्तिक विद्वानों के सृजन करने का सौभाग्य प्राप्त हैं वहाँ वाङ्मयाचार्य पं० जुगलकिशोर मुख्तार को कतिपय शोधार्थी विद्वानों को पैदा करने का गौरव प्राप्त है। पडित जी के समय मे साहित्यिक शोध खोज का कार्य प्रायः नगण्य-सा था। बहुत कम विद्वानो का झुकाव इस ओर था, किन्तु मुख्तार सा० ने न केवल अपनी साहित्यिक प्रतिभा से इस कमी को पूरा किया बल्कि भारत की राजधानी दिल्ली में 'वीर सेवा मन्दिर- की स्थापना करके 'अनेकान्त' पत्र द्वारा जैन पुरातत्त्व इतिहास और साहित्य की विपुल सामग्री को प्रकाशित करने में अपूर्व योगदान दिया। अब तो इस कार्य का क्षेत्र जैनसमाज में इतना बढ़-चढ़ गया है कि अनेक जैन व जैनेतर विद्वान् शोध ग्रन्थ लिखकर विश्वविद्यालयो से उपाधियाँ प्राप्त करने लगे है। निस्सन्देह इसका बहुत कुछ श्रेय मुख्तार सा० को है जिनकी कृतियो से प्रेरणा पाकर आज भी अनेक विद्वान इस कार्य में सलग्न दीख पड़ते है।

मुख्तार सा० क्या थे? इसकी अपेक्षा यह कहना अधिक श्रेयस्कर होगा कि वे क्या नही थे। उन्होने अपनी प्रतिभा से जैन साहित्य के जिस क्षेत्र को स्पर्श किया,

उसमे अपनी कलम चलाकर उस विषय का रहस्योद्घाटन करके ही पीछा छोड़ा। यह सचमुच लेखनी के धनी थे। बहुत कम विद्वान ऐसे होते है जो साहित्य के गद्य और पद्य दोनों में समान अधिकार रखते है। किन्तु मुख्तार सा० की यह विशेषता उनके ग्रन्थो मे भली प्रकार परिलक्षित होती है। 'युगवीर निबन्धावली' और 'ग्रन्थ परीक्षा' जहाँ उनके गद्य अधिकार को प्रकट करते है वहाँ 'युगवीर भारती' से उनकी काव्य कुशलता का भरपूर परिचय भी प्राप्त हो जाता है। 'मेरी भावना' का सृजन करके तो वह काव्य क्षेत्र मे अमर हो गये। यह उनकी ख्यातिप्राप्त और मौलिक रचना है जो लाखो की सख्या मे वितीर्ण होकर लोगो के हृदय का कण्ठहार बन चुकी है। इस गीत का 'राष्ट्रीय गान' के रूप मे उदित होना इसकी सर्वोत्कृष्ट प्रसिद्धि का परिचायक है, फिर भी इस दिशा मे बहुत कुछ प्रयत्न होना शेष है। 'मंगल प्रभात' से प्रत्येक भारतीय उसे कण्ठस्थ करे, यह 'मेरी भावना' है।

पडित जी जैन इतिहास के अपूर्व विद्वन रहे है। इसमे सन्देह नही कि उन्होने जैनाचार्य और उनकी कृतियो के सम्बन्ध मे अपने शोध प्रबन्धो द्वारा लम्बे अर्से से चली आ रहे कितनी ही भूल-भ्रान्तियो का निरमन किया। आ विद्यानन्द और पात्रकेसरी की भिन्नता दिखाकर प्रसिद्ध 'पञ्चाध्यायी ग्रन्थ को प० राजमल्ल विरचित बतलाकर आचार्य सिद्धसेन को दिगम्बर आम्नाय का घोषित कर अपने ऐतिहासिक पर्यवेक्षण का अद्भुत परिचय दिया। 'वीरशासन जयन्ती' को प्राचीन ग्रन्थो के आधार से ढूँढ़ निकालना, वह उनकी ही सूझ-बूझ का परिणाम है। भट्टारक नामधारी अनेक ग्रन्थो की कृत्रिमता प्रदर्शित करके उन्होने दिगम्बर परम्परा की रक्षा का जो सुदृढ प्रयत्न किया वह जैनसमाज में युग-युगो तक चिरस्मरणीय रहेगा।

अपने अन्तिम जीवन मे वह भाष्यकार बन गये थे। 'योगसार प्राभृत' यह उनकी अन्तिम कृति है। आचार्य समन्तभद्र के वे परमभक्त थे और यह चाहते थे कि दिल्ली जैसे स्थानमे 'समन्तभद्राश्रम' की स्थापना हो। इसके लिए वह अपना सर्वस्व न्योछावर करने को भी तत्पर थे किन्तु उनकी यह सद्भिलाषा कार्यान्वित न हो पाई और ९२ वर्ष की आयु पाकर 'एटा' मे दि० २२-१२-६८ को उनका निधन हो गया। जिस व्यक्ति ने समाज से कुछ न लिया बल्कि अपनी सम्पत्ति का भी ट्रस्ट बनाकर समाज और धर्म की अनन्य निष्ठा से एक अविचल योगी की तरह जीवनपर्यन्त सेवा की, उसका समाज से उठ जाना एक ऐसी क्षति है जिसकी पूर्ति निकट भविष्य मे असम्भव नही तो कठिन अवश्य है।

हमारी भावना है कि 'वीर सेवा मन्दिर' मे उनके कार्योके ही अनुरूप एक प्रस्तर या धातुकी प्रतिमा स्थापित की जाय, साथ ही उसे एक शोध सस्थान का रूप दिया जाय, इसी आशय के साथ हम स्वर्गस्थ आत्मा के प्रति अपनी भावभीनी सुमनाञ्जलि अर्पित करते है।

**दौलतराम मित्र :**

ता० २२-१२-६६ को आपका ९२ वर्ष की उम्र मे एटा मे आपके भतीजे डा० श्री चद जी सिघल के पास देहावसान हो गया। आप बेजोड विद्वान् थे। गहरे, ऊँचे, स्वतत्र, निर्भीक विचारक थे। मेरा आपके साथ पत्र व्यवहार तो लबे समय से था, परन्तु साक्षात्कार तो सिर्फ एक बार अभी पिछले दिनो जब वे इन्दौर आये थे, तब हुआ था। आपका वियोग खटक रहा है। यही मेरी आप के प्रति श्रद्धाजंलि है। मै श्री डा० श्रीचन्द जी को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होने आपकी पर्याप्त सेवा सुश्रुषा की।

—:०:—

**"मर गये जग में मनुष्य जो मर गये अपने लिए।**
**वे अमर जग में हुए जो मर गये जग के लिए।**
**जो उपजता सो विनशता यह जगत व्यवहार है।**
**पर देश-जाति-धर्म हित मरना उसी का सार है।।**

# संस्मरण

**दौलतराम 'मित्र'**

( १ )

मैंने उनसे पत्र व्यवहार द्वारा कुछ बातें सीखी उनमे से एक यह है—

एक बार मैने पं० आशाधर जी पर यह आरोप लगाया था कि उन्होने स्त्रियों के धर्म-कर्म के बारे मे 'मनु' के सिद्धान्तो का अनुकरण किया। जो कि जैन सिद्धान्तों से मेल नहीं खाता है। जैन सिद्धान्त यह है कि जो प्राणी जैसा कर्म करेगा, उसे वैसा फल मिलेगा। शुभ कर्म का फल शुभ और अशुभ का अशुभ। ऐसा नही हो सकता कि अशुभ कर्म का फल शुभ मिलेगा। किन्तु मनु—इसके विपरीत कहते है—

**"नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न व्रतं नाप्य पोषितां।**
**पति शुश्रूयते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥**

[मनुस्मृति ५–१५५]

बस इसी का अनुकरण प० आशाधर जी ने भी कर डाला कहते है—

**"नित्यं भर्तृमनीभूय, वर्तितव्य कुलस्त्रिया।**
**धर्मश्रीशर्मकीर्त्येककेतनं हि पतिव्रता: ॥"**

[सा. ध. ३-२७]

**इसकी संस्कृत टीका—**

"वर्तितव्य मनोवाक्कायकर्मभिराचरितव्य। कया, कुलस्त्रिया–कुलीन नार्या। किं कृत्वा, भर्तृमनीभूय अभर्तृ-मना भर्तृमना भूत्वा पति चिन्तानुवर्तने नैव चिन्त्य वाच्य चेष्टितव्यं च। कथ नित्य-सर्वदा। हि यस्मात्। भवन्ति। का: पतिव्रता: पति सेवैव व्रत प्रतिज्ञा शुभकर्मप्रवृत्तिर्वा यासा ता इत्यर्थः।"

[शुभ कर्म पुण्य कर्म है है—भावपाहुड ८३ और पुण्य का फल स्वर्ग-परमात्मा प्रकाश १८८]

प० आशाधर जी का यह—अनुकरण बेमेल नही तो क्या है ? क्योंकि यह व्रत के लक्षणो के विरुद्ध पड़ता है।

[देखो—सा. ध. २–८० तथा र. क. श्रा. ८६]

अब सोचिए कि यदि पति का अशुभ मन वचन काय की प्रवृति के अनुसार पत्नी प्रवृत्ति करे—याने पति यदि कल अभक्ष भोजी हो जाय तो पत्नी भी अभक्ष भोजी हो जाना चाहिए। और उसका फल पत्नी को मिलेगा शुभ-पुण्य। भला यह भी कोई व्रत है। महात्मा गाधी जी के शब्दो मे कहे तो—"ऐसी सैधव्य दशा से वैधव्य दशा क्या बुरी ?।"

मेरे उक्त आरोप पर मुख्तार सा० ने मुझे लिखा—सिखाया—कि आपका आरोप समुचित नही है। शब्दार्थ प्रकरण सगत (भावानुसार) लगाना चाहिए। सागार धर्मामृत मे प्रकरण सम्यग्दृष्टि श्रावक का है। प० आशाधर ने सम्यग्दृष्टि पती को लक्ष मे लेकर पत्नी को पति के विचार उच्चार आचार का अनुसरण करने की जो सलाह दी है वह, पत्नी के लिए अहितकर कैसे हो सकती है ?—आशा है आप मेरे विचार से सहमत हो जाएंगे।

कितनी बढिया सीख है !

( २ )

## एक कड़क संस्मरण

ता० ४-१-६४ को मुनि श्री विद्यानन्द जी ने एक पुस्तक—"दि. जैन साहित्य मे विकार" लिखी जिसमे मुख्तार साहब की लिखी रत्नकरण्ड श्रावकाचार की टीका पर कुछ आक्षेप है। उसके उत्तर मे मुख्तार साहब ने "नये मुनि विद्यानन्द जी को सूझ बूझ" यह पुस्तक ता० १३-७-६४ को लिखी जो कि सितबर १९६४ मे प्रकाशित हुई। जिसमे मुनि जी को बहुत कुछ भला बुरा कहा गया। इस पुस्तक की एक प्रति मेरे पास भी सम्मत्यर्थं आई थी। मैने सम्मति मे यह लिख भेजा कि—मुनि श्री विद्यानन्द जी को और आप की दोनो पुस्तके पढ़कर मुझे तो दुःख ही हुआ है। पहिले जब मैने मुनिजी की पुस्तक पढी तभी मेरे मन मे यह विचार आया था कि मुनि जी ने मुख्तार सा० की आलोचना करके नाहक बर्र के छत्ते मे हाथ डाला।

मेरी इस सम्मति पर उन्हे कुछ बुरा लगा और उन्होंने मुझे लिखा कि—"आपने मुझे जिस रूप मे समझा, उसके लिए धन्यवाद !" तब मैने उनसे माफी मांगी। जिसके उत्तर मे मुख्तार साहब का एक लबा चौड़ा तीन पृष्ठ का पत्र नवर २११२ ता० १८-११-६४ का इस विषय की अथ से इति तक की हकीकत वाला आया। जिसमें उन्होने अपने को निर्दोष बताया। और चाहा कि—"आप जैसे

विद्वानों को भी अब मुनि जी से प्रायश्चित्त की मांगनी करनी चाहिए।"

जैसा मुख्तार सा० ने चाहा वैसा तो नही किन्तु हाँ मुनिचर्या पर समालोचनात्मक एक लेख मैने जैन सन्देश ता० १६-५-६५ में अवश्य लिखा। मुख्तार सा० के उक्त पत्र का सारांश डा० श्रीचन्द जी एटा (मुख्तार सा० के भतीजे) की लिखी पुस्तक "मेरा नम्र निवेदन" (ता० २४-३-६५) मे पृष्ठ ६-७ पर अंकित है। [फिर भी वह पत्र (असल) मै साथ में भेज रहा हूँ।]

अच्छा होता, उब कि मुनि जी मुख्तार साहब के समाधान मे प्रकारांतर से आलोचको की प्रशसा मे एक लेख ता० १६-७-६४ को जैन सन्देश मे प्रकाशित कर चुके थे। तब सितबर मे मुख्तार सा० को "नये मुनि विद्यानन्द जी की सूझबूझ" पुस्तक प्रकाशित करने की आवश्यकता महसूस नहीं होनी चाहिए थी। अस्तु जो होना था सो हो गया।

### (३) संस्मरण

अभी इसी सन् १९६९ में मैंने उन्हें लिखा था कि आप के लिखे हुए जो—"सर्वोदय तीर्थ के कुछ सूत्र" नामक जो १२० सूत्र है, उनमें कुछ घटा बढी करके उसे ऐसी पुस्तक बना दें कि जिससे—"जैन दर्शन मे मुक्ति मार्ग तथा तत् सम्बन्धी विश्व द्रव्य व्यवस्था" का वर्णन आ जाय और उसका नाम "जिन गीता" रख दिया जाय। उत्तर में उन्होंने लिखा था कि—दूसरे काम बहुत से है फिर भी मै ऐसा भी सोच रहा हूँ।

किन्तु शायद वे यह काम न कर सके होगे? ●

# वीरसेवामन्दिर में आचार्य जुगलकिशोर मु० सा० के निधन पर शोकसभा

देश के सुप्रसिद्ध साहित्यकार एव वयोवृद्ध ऐतिहासिक विद्वान प० जुगलकिशोर जी मुख्तार के निधन पर वीर-सेवामन्दिर, राजधानी के साहित्यिक, सामाजिक एव जैन समाज ने गहरा दुख प्रकट किया।

मुख्तार साहब ने इतिहास और साहित्य का जो महत्वपूर्ण शोध कार्य किया वह महान है। उनका सारा ही जीवन जैन साहित्य के प्रचार-प्रसार और भगवान महावीर की वाणी को देश विदेश मे पहुँचाने मे लगा रहा। वीर-सेवामन्दिर उनकी शोध खोजका अनुपम कीर्ति स्तंभ है जो आज भी विचार-धारा को पुष्ट करने मे लगा हुआ है।

मुख्तार साहब के प्रति अपनी श्रद्धा भावना प्रगट करने के लिए वीर सेवामन्दिर की ओर से श्रीमान् साहू शान्तिप्रसाद जी की अध्यक्षता मे आयोजित शोक सभा मे दिल्ली के प्रतिष्ठित नागरिको, वीर सेवामन्दिर के सचा-लक तथा सदस्य गणो और जैन धर्मावलम्बियों ने दिवगत आत्मा के प्रति भावभीनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित की।

सबसे पहले मत्री प्रेमचन्द जैन कश्मीर वालो ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके कार्यो की सराहना की। और उनके साहित्य को प्रामाणिक बतलाया।

सुप्रसिद्ध विचारक श्री जैनेन्द्र कुमारजी ने कहा कि स्वर्गीय मुख्तार सा० की सेवाए अविस्मरणीय है। उन्होने जो सेवाएँ की है उनसे समाज उऋण नही हो सकता। भारतीय ज्ञानपीठ के मत्री बाबू लक्ष्मीचन्द जी ने कहा कि उन्होने जो सेवा की है वह महान है।

श्री यशपालजी ने कहा कि मुख्तार सा० के निधन से जो क्षति हुई है वह पूरी नही हो सकती। आपने सुझाव दिया कि मुख्तार सा० क प्रामाणिक जीवन चरित्र प्रकाशित किया जाय और अप्रकाशित साहित्य को प्रकाश में लाया जाय।

परमानन्द शास्त्री ने कहा कि मुख्तार सा० का

निधन जैन समाज का दुर्भाग्य है। उन जैसा साहित्य महारथी होना मुश्किल है। उनकी सतत साहित्य-सेवा जैन साहित्य को अमूल्य देन है। उनसे मैने बहुत कुछ सीखा है अनुभव किया है और उनके निर्देशानुसार कार्य किया है। तथा उनके साथ बैठकर काम करने का मुझे वर्षों अवसर मिला है। उन जैसा प्रतिभा सम्पन्न शोधक अनुवादक और सम्पादक होना वास्तव मे कठिन है। संस्थापित वीर सेवामन्दिर और अनेकान्त पत्र दोनों ही उनके जीवन के अभिन्न अंग है, और वही उनके स्मारक हैं, यद्यपि उनकी कृतियां जब तक संसार मे रहेगी उनका नाम तब तक अमर रहेगा, मैं उन्हें अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

डा० गोकुलचन्द्र जैन ने कहा कि मुख्तार सा० जिस आस्था दृढ़ता और उत्साह के साथ अन्त समय तक शोध-खोज और सम्पादन के कार्यो मे लगे रहे वह नई पुरानी सभी पीढियों के लिए प्रेरणाप्रद है। इस अवसर पर ला० राजकृष्ण, जैन राय सा. ला. उल्फतराय, बा. माई दयाल जैन, ला० श्यामलालजी ठेकेदार और बाबू महताब सिहजी आदि ने भी अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की।

अध्यक्ष साहू शान्तिप्रसादजी ने अपने भाषण में कहा कि मुख्तार सा० स्वयं एक सस्था थे। वे बडे सुधारक और विद्वान थे। साहूजी ने मुख्तार सा० की शोध और अनुसधान कार्य की सराहना करते हुए कहा कि उन्होने तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा जारी रखते हुए बहुत बड़ा कार्य किया है।

आपने कहा कि जैन समाज मे पुनर्जागरण और सुधार का जो आन्दोलन हुआ तथा महात्मा भगवानदीन जी, ब्र० शीतलप्रसाद जी, श्री अर्जुनलाल जी सेठी, बाबू ज्योतिप्रसाद जी आदि ने जो सुधारवादी विचार दिये उनको मुख्तार सा० ने शास्त्रीय प्रमाण देकर पुष्ट किया जिससे सुधारवादी दृष्टिकोण को बल मिला।

साहूजी ने कहा कि वीर सेवामन्दिर के माध्यम से मुख्तार सा० ने जैन साहित्य और इतिहास के अध्ययन अनुसन्धान का जो कार्य प्रारम्भ किया था उसे आगे बढाने का प्रयत्न किया जावेगा। अन्त में सबने खड़े होकर दिवंगत आत्मा के लिए शान्ति लाभ की कामना की। तथा निम्नलिखित शोक प्रस्ताव पारित किया।

## शोक प्रस्ताव

वीर-सेवा-मन्दिर के संस्थापक तथा जैन साहित्य और इतिहास के ख्याति प्राप्त विद्वान आचार्य श्री जुगल-किशोर जी मुख्तार के देहावसान के समाचार ज्ञातकर हमें अत्यन्त दुख हुआ है। जैन समाज के पुनर्जागरण तथा प्राचीन जैन वाङ्मय और इतिहास के अध्ययन और अनुसन्धान के क्षेत्र मे मुख्तार सा० की उपलब्धियाँ और सेवाएँ अर्ध शताब्दी से अधिक दीर्घकाल में परिव्याप्त है। जो उनके देहावसान के उपरान्त भी सदा अमर रहेगी। साहू शान्तिप्रसाद जी की अध्यक्षता मे वीर सेवामन्दिर द्वारा आयोजित दिल्ली नगर की विभिन्न सस्थाओं, प्रतिष्ठित नागरिकों तथा विद्वानों की यह सभा उनके निधन पर हार्दिक दुःख व्यक्त करती हुई कामना करती है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति तथा शोक सतप्त कुटुम्बीजनों को धैर्य प्राप्त हो।

**प्रेमचन्द जैन**
**मंत्री वीर सेवामन्दिर**

# दो श्रद्धाञ्जलियां

आचार्य शिवसागर जी महाराज का स्वर्गवास श्री महावीर जी में दिनाक १६-२-६६ को हो गया। आचार्य श्री के जीवन में अनेक विशेषताएं थी जो अन्यत्र दुर्लभ है। उनका चरित्र बल ऊँचा था। वे शान्त स्वभावी और सौम्यमूर्ति थे। वे समन्वयवाद में विश्वास रखते थे। अच्छे तपस्वी आचारनिष्ठ थे उनके चले जाने से महान क्षति हुई। हमें उनके उपदेशों से आत्म-लाभ लेना चाहिए। दिवगत आत्मा के लिए हमारी श्रद्धाजलि है।

दानवीर सेठ गजराज जी गगवाल का जयपुर में दिनांक २६-१-६६ को साधारण लम्बी बीमारी के बाद अचानक स्वर्गवास हो गया। आपके द्वारा निर्मित सुख-देवाश्रम चिरकाल तक आपकी स्मृति को उज्ज्वल करता रहेगा। आप अच्छे धार्मिक और समाजसेवी थे। हमारी कामना है कि दिवंगत आत्मा पर लोक में सुख-शान्ति प्राप्त करे।

**प्रेमचन्द जैन**
**मंत्री वीर सेवामन्दिर**

# श्री मुख्तार साहब अजमेर में

**फतेहचन्द सेठी**

श्री साहित्य मनीषी आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार समाज के उन नवरत्नों में से थे जिन्होंने अपने जीवन को वट वृक्ष के समान प्रारम्भ किया। जबकि समाज की किसी भी क्षेत्र में कोई व्यवस्थित योजना नहीं थी।

मेरे ध्यान से सबसे प्रथम वे महासभा के जैन गजट के सम्पादक के रूप मे समाज के सामने आये। उस काल में उन्होने गजट के माध्यम से जो भी सेवाये दी है वह गजट की फाइलों मे आज भी अकित है।

फिर 'जैन हितैषी' पत्रिका के माध्यम से जैनसमाज को पत्रकारिता की दृष्टि से नई दिशा प्रदान की। उनके द्वारा धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एव भौगोलिक साहित्यिक सामग्री अन्वेषण के रूप मे प्राप्त हुई है। उनके इस कार्य मे श्री नाथूराम जी प्रेमी साथी थे, प्रेमी जी के बाद मे इस क्षेत्र से अलग हो गये थे फिर भी मुख्तार सा० इस क्षेत्र में अडिग होकर आगे बढ़ते गये।

सन् १९२२ या २३ मे उन्ही की 'मेरी भावना' रचना समाज के सामने आई और उसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि बालक वृद्ध तक ने उसे अपने कण्ठ का हार बना लिया तथा इसका आज तक विविध भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। पं० धरणीधर जी साहित्याचार्य ने भी इसी का अनुवाद तदनुरूप संस्कृत साहित्य में भी किया है।

सफल डा० की भाँति उन्होंने ग्रन्थ परीक्षा द्वारा समाज को नया जीवन दिया और उसके कारण समाज मे उस समय विद्रोह की छाया और उस विद्रोह का सामना मुख्तार सा० ने डटकर किया। लेकिन इनकी लेखनी में सदा यह विशेषता रही कि वे जो भी लिखते थे उसे जमकर लिखा, जिसके कारण विरोधियों के पास भी उसका प्रत्युत्तर नहीं था।

ग्रन्थ परीक्षा ने धार्मिक जगत की आँखें खोल दी और समाज में आदर्श मार्ग की मान्यता की कसौटी को बल मिला। इससे आर्ष ग्रन्थों की बहुत बड़ी रक्षा हुई। स्वामी समन्तभद्राचार्य के सम्बन्ध में जो गवेषणात्मक पूर्ण सामग्री मुख्तार सा० ने प्रदान की, वह एक उनकी अनुपम देन है और उनके विश्वास के अनुसार अभी भी उनके साहित्य के अन्वेषक की अत्यन्त आवश्यकता है।

मुख्तार सा० की गतिविधि साहित्य के सभी क्षेत्रों में सागोपाग रही है। कवि, लेखक' शोधक, समालोचक एवं पत्रकार आदि सभी गुण उनमे पूर्णरूपेण विकसित थे। उन्होंने करीबन ४० वर्ष तक समाजकी अमूल्य सेवाये करते हुए जिनवाणी की सतत् साधना की है।

मुख्तार सा० से साक्षात्कार करने एव उनके सपर्क मे आने का कार्य इससे पहले कभी नही पड़ा। उनके साहित्य के द्वारा ही उनकी जानकारी मिली और उससे ही उनके प्रति आदर भाव का बना हुआ था।

अजमेर जैन समाज का सदा से गौरव रहा है और यहाँ के बडाधडा पचायत के मदिरजी मे हस्तलिखित शास्त्रों का अपूर्व भण्डार है। जिनके दर्शन से प्राचीन काल की हस्तलिखित कलाओ का साक्षात् दर्शन भी मिलता है। यहाँ के भण्डार की व्यवस्थित सूची नही होने से यह पता नही लगता था कि यहाँ के भण्डार मे कितने अप्राप्य एव अप्राशित ग्रन्थ आज भी विद्यमान है।

श्री दि० जैन सभा के तत्वावधान में मुख्तार सा० से अनुरोध किया गया कि वे अजमेर पधार कर यहां के शास्त्र भण्डार का भी अवलोकन करें। बराबर पत्र-व्यवहार के बाद सन् १९५६ में वे यहाँ आये और करीबन पाँच मास तक रहे तथा उन्होंने शास्त्र भण्डार का आद्योपान्त अवलोकन करके शास्त्र भंडार की परिपूर्ण सूची क्रमबद्ध तैयार की। उनके इस पुनीत कार्य मे श्री सुशीलचन्द जी पाटनी बाबू हीराचन्द जी बोहरा पं० दीपचन्द जी पाण्ड्या आदि अनेक व्यक्तियों ने सहयोग दिया।

मुख्तार साहब की कार्य पद्धति एवं निष्ठा उस समय देखने को मिली कि वे उस समय इतने तन्मय रहते थे

कि उनका उसके अतिरिक्त अन्यत्र ध्यान बढता ही नही था। साथी कार्य करते हुए थकान अनुभव करते थे लेकिन उन्होंने कभी थकान अनुभव नही की।

शास्त्र संबंधी जानकारी इतनी सूक्ष्मता से लेते थे कि उनकी दृष्टि से कोई बात छूट नही पाती थी। बडे अध्यवसाय से उन्होंने यह कार्य—शास्त्र भंडार को देखते हुए कम समय में भी परिपूर्ण किया।

शास्त्र भंडार की व्यवस्थित सूची तैयार करने या कराने में उन्ही के सामने अप्राप्य एवं अप्रकाशित शास्त्र भी आये। जिनके सम्बन्ध में उन्होने अनेकान्त मे बराबर प्रकाश डाला।

वयोवृद्ध होने पर भी वे अपने शरीर से ज्यादा से ज्यादा १६ घटे तक कार्य लेते रहते थे। यह थी उनकी जिनवाणी की सच्ची सेवा।

पं० आशाधर जी रचित ग्रन्थो का प्रकाशन हो चुका है। लेकिन उनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ "अध्यात्म रहस्य" अपरनाम "योगोद्दीपन" के सम्बन्ध मे नाम ही सुनने मे आता रहा। परन्तु उसके दर्शन का अवसर समाज को नहीं मिला। प० नाथूराम जी प्रेमी ने भी इस ग्रन्थ को पूर्व मे अप्राप्य बताया।

मुख्तार साहब को अजमेर मन्दिर के शास्त्र भडार में यह ग्रन्थ उपलब्ध हुआ और इसमें सुन्दर एवं हृदयग्राही संस्कृत में ७२ श्लोक है। जिसमें अध्यात्म का प्रारम्भिक रूप से लेकर अन्तर आत्मा से साक्षात्कार करवाता है। इस ग्रन्थ का विस्तृत हिन्दी अर्थ व व्याख्या करके मुख्तार साहब ने स्वाध्याय प्रेमियों के लिए एक अपूर्व निधि प्रदान कर दी है और इसका सबसे प्रथम प्रकाशन आपने करवा दिया। इस प्रकार एक लुप्त एवं अप्राप्य शास्त्र का उद्धार करके जिनवाणी का उद्धार किया। इन्होंने अपने जीवन में एक नही अपितु अनेक इस प्रकार के शास्त्रो का प्रकाशन करके आर्ष मार्ग का उद्योत किया।

मुख्तार के इस सेवाव्रत से मुझे भी जीवन मे प्रेरणा मिली और अजमेर में जब तक वे रहे तब तक उनके सानिध्य का सौभाग्य पाया।

वास्तव मे वे जहाँ भी रहे उनका तन, मन व धन जिनवाणी की सेवा में ही लगा रहा और जीवन का समस्त बहुत बड़ा भाग उन्होंने सरस्वती माताके चरणो मे लगाया। मुख्तार सा० के अजमेर रहते समय अजमेर जैन समाज ने अपने को कृतकृत्य समझा। बाह्य से उनका व्यक्तित्व सामान्य लगता था, लेकिन अतरग मे गूढ़ागार के समान उनका व्यक्तित्व एव प्रतिभा थी। ●

# श्रद्धाञ्जलि

राजस्थान के प्रसिद्ध एवं उद्भट विद्वान प० चैनसुखदास जी से जैन समाज भलीभाँति परिचित है। कौन जानता था कि भादवा ग्राम के साधारण कुटुम्ब में जन्म लेने वाला यह बालक अप्रतिम प्रतिभा का धनी और समाज के विद्वानो में इतना उच्चकोटि का स्थान बना सकेगा। पडितजी बाल ब्रह्मचारी, प्रखर ओजस्वी वक्ता, पत्र सम्पादक, शिक्षक और अच्छे लेखक थे। उन्होने समाज को बहुत कुछ दिया। उनमे मानवता कूट-कूट कर भरी थी। उन्होंने गरीब विद्यार्थियों को सब तरहका सहयोग देकर उच्चकोटि का विद्वान बनाया। उनके अनेक शिष्य है, जो डाक्टर, जैन दर्शनाचार्य, आयुर्वेदाचार्य और न्यायतीर्थ की डिग्रियों से अलकृत है जो समाज में सेवाकार्य कर रहे है। उनका हृदय कोमल और मानवता के रस से ओत-प्रोत था। वे पक्के सुधारक और रूढ़िवाद के कदर्थक थे। वे निर्भीक वक्ता थे। उनका भाषण एवं प्रवचन दोनों ही आकर्षक थे। उनकी सेवाएं अमूल्य हैं। उनकी विचारधारा उदार और सरस थी, उनके दिवंगत हो जाने से राजस्थानी समाज की एक विभूति सदा के लिए उठ गई। वीर सेवा मन्दिर के अनुसन्धान कार्य में उनका पूरा सहयोग रहता था। उनके स्थान की पूर्ति होना कठिन है। वीर सेवा मन्दिर और अनेकान्त परिवार उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ परलोक मे उनके सुखी होने की कामना करता है।

**प्रेमचन्द जैन**
**मंत्री वीर सेवामन्दिर**

# पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ का स्वर्गवास

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

जैन दर्शन एव साहित्य के प्रकान्ड विद्वान एव जैन संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य पडित चैनसुखदास न्यायतीर्थ का कल दिनाक २६-१-६६ को प्रातः डेढ़ बजे स्वर्गवास हो गया। वे ७० वर्ष के थे। गत कुछ दिनो से वे अस्वस्थ चल रहे थे।

पडित जी की मृत्यु के समाचार नगर में बिजली की तरह फैल गया और सबेरा होते ही सभी वर्गों के स्त्री-पुरुष उनके निवास स्थान पर एकत्रित होने लगे। शव को कुछ समय के लिए चौक मे रखा गया और वही पर सहस्रों नर-नारियों द्वारा उनको अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित की गई। ६ बजे उनकी शव यात्रा प्रारम्भ हुई। पडित जी के अतिम दर्शनों के लिए हजारों स्त्रियां गलिया एव बाजारों की छतों पर एकत्रित हो गई और पडित जी की 'जय हो' पूज्य गुरु देव अमर रहे के नारों के मध्य सभी ने अश्रुपूरित नेत्रों से पुष्पाहार एव पुष्प वर्षा के साथ श्रद्धाजलिया अर्पित की। शव यात्रा एक जुलूस मे परिवर्तित होने के पश्चात् वह त्रिपोलिया बाजार चादपोल बाजार होती हुई श्मशान स्थल पहुँची। नागरिको की भीड़ एव उनके दर्शनो की उत्कट अभिलाषा को देखते हुये पडित जी के पार्थिव शरीर को गाड़ी मे रखा गया मार्ग में जिसने भी पंडित जी की मृत्यु के बारे में सुना वही उनकी शव यात्रा के साथ हो गया।

हजारों नर-नारियों के आंसुओं से पूरित नेत्रों के साथ एवं पंडित जी अमर रहे के गगन भेदी नारों के मध्य उनके देह को चिता में रख दिया गया। और उनके छोटे भाई श्री कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने उसे अग्नि के लिए समर्पित कर दिया। सायंकाल ७ बजे महावीर भवन में श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी के प्रबन्ध कारिणी कमेटी की मीटिंग हुई उसमें पंडित जी साहब को श्रद्धांजलियां अर्पित की गई। इस अवसर पर क्षेत्र की ओर से पंडित चैनसुखदास स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन की योजना स्वीकृत की गई।

रात्रि को ७॥ बजे दीवानजी के मन्दिर मे राजस्थान जैन सभा के तत्वावधान मे जयपुर समाज की एक आम सभा श्री प्रकाशचन्द जी कासलीवाल की अध्यता में हुई। सभा मे एक स्वर से पडित जी के अधूरे कार्यों को पूरा करने का निश्चय किया गया। तथा उनके कार्यों के अनुरूप ही उनकी स्मति मे एक स्मारक निर्माण करने की योजना पर भी विभिन्न वक्ताओ ने प्रकाश डाला इसके लिए २१ सदस्यो की एक समिति का गठन किया गया तथा डा० कस्तूरचन्द जी कासलीबाल को इसका सयोजक चुना गया।

सभा मे नगर के प्रमुख व्यक्तियो एव विभिन्न सस्थाओ की ओर से पडित जी को भाव भरे शब्दो में श्रद्धाजलियां अर्पित की गई। इसमे श्री महावीर जी तीर्थ क्षेत्र कमेटी की ओर से श्री ज्ञानचन्द्र खिन्दूका, श्री पदमपुरा क्षेत्र एव जैन सयुक्त कालेज के मत्री श्री भवरलाल न्यायतीर्थ, राजस्थान जैन सभा के अध्यक्ष श्री केशरलाल अजमेरा, राजस्थान जैन साहित्य परिषद् के अध्यक्ष डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, गाधी शान्ति प्रतिष्ठान की ओर से श्री पूरणचद पाटनी, श्रमजीवी पत्रकार सघ की ओर से श्री प्रवीणचद छाबडा, दिगम्बर जैन औषधालय के मत्री श्री अनूपचद न्यायतीर्थ, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् के राजस्थान शाखा के अध्यक्ष श्री विरधीलाल सेठी, राजस्थान शिक्षासंघ के अध्यक्ष श्री माणिक्यचद जैन, भारत जैन महामंडल की राजस्थान शाखा के मत्री डा० ताराचन्द्र बख्शी, श्वेताम्बर जैन समाज एवं अणुव्रत समिति की ओर से श्री पन्नालाल बांठियां, मुल्तान जैन समाज की ओर से भी नियायतराय, श्वेताम्बर जैन नव युवक मंडल के अध्यक्ष श्री तिलकराज, श्री महावीर दिगम्बर जैन हायर सेकेन्ड्री स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री तेजकरण डांडिया, बड़े दीवान जी के मन्दिर की शाखा सभा की ओर से श्री भंवरलाल पोल्याका, जैन

(शेष पृष्ठ २८८ पर)

ओम् अर्हम्

# अनेकान्त

## सत्य, शान्ति और लोकहित का संदेश-वाहक

*नीति-विज्ञान-दर्शन-इतिहास-साहित्य-कला और*

*समाज शास्त्र के प्रौढ़ विचारों से परिपूर्ण*

## सचित्र द्वै मासिक

सम्पादक-मडल

डा० आ० ने० उपाध्ये

डा० प्रेमसागर जैन

श्री यशपाल जैन

प० परमानन्द शास्त्री

## २१वां वर्ष

(मार्च १९६८ से फर्वरी १९६९ तक)

(वि० स० २०२४ से २०२५ तक)

प्रकाशक

**प्रेमचन्द जैन बी. ए.**

मंत्री वीरसेवामन्दिर २१ दरियागज, दिल्ली-६

वार्षिक मूल्य छह रुपया

फरवरी १९६९

एक किरण का मूल्य एक रु० २५ पैसा

# अनेकान्त के २१वें वर्ष की विषय-सूची

★

(पृ० २८४ का शेषांस)

संस्कृत कालेज के छात्रावास की ओर से श्री ज्ञानचंद्र ध्रुवकर, शोध छात्रों और महिलाओं की ओर से सुधी शान्ति जैन, राजस्थान विश्व विद्यालय के विज्ञान विभाग के डा० श्री गोपीचंद पाटनी, इसके अतिरिक्त श्री सुधाकर शास्त्री, कपूरचंद पाटनी, केवलचंद टोलिया, श्री रूपचंद सौगानी, श्री बासूलाल छावडा, श्री गुलाबचंद दर्शनाचार्य, श्री केशरलाल शास्त्री, बुद्धि प्रकाश भास्कर, श्री सुभद्र कुमार पाटनी, बाबा गोविन्ददास, मास्टर बद्रीनारायण, एवं प्रेमचंद रांबंका आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। सभा की संयोजना श्री ताराचन्द्र साह ने की।

सभा में एक शोक प्रस्ताव पारित हुआ और सभी ने खडे होकर पंडित जी की आत्मा के लिए शान्ति लाभ की कामना की।

**पंडित चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ का जीवन परिचय :—**

पंडित चैनसुखदास जी का जन्म जयपुर जिला के अंतर्गत भादवा ग्राम मे माघ कृष्ण १५ स० १९५६ : २२ जनवरी १८९९ : को एक जैन परिवार मे हुआ। जब तीन वर्ष के ही थे कि पक्षाघात की बीमारी से एक पैर से लाचार हो गये। गाव में ही प्रारम्भिक शिक्षा पश्चात् संस्कृत प्राकृत की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वाराणसी चले गये और वहाँ स्याद्वाद महाविद्यालय में अध्ययन करते हुए बगाल संस्कृत एसोसियेशन की न्याय-तीर्थ की परीक्षा पास की।

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् आप पुनः अपने गांव लौट आये और जैन विद्यालय कुचामन के प्रधानाध्यापक पद पर नियुक्त हुए। सन् १९३१ में आप दि० जैन संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य बन कर जयपुर आये और ३८ वर्ष तक इस महत्वपूर्ण पद पर रहकर आपने संस्कृत शिक्षा जगत की महान सेवा की। शिक्षा जगत में महत्वपूर्ण कार्यों के लिए आपको सन् १९६७ मे राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। पंडित साहब पत्रकार लेखक एव वक्ता सभी थे। आप पहले जैन बन्धु और गत २० वर्षो से वीर वाणी पत्रिका के सम्पादक रहे। आपने जैन दर्शन सार षोडसकारण भावना, अर्हत प्रवचन, प्रवचन प्रकाशन आदि बहुमूल्य कृतिया साहित्य जगत को भेट की।

पंडित जी एक सेवा भावी विद्वान थे। नगर एव देश के विद्यार्थी वर्ग उनसे बराबर लाभ लिया करते थे। आपके निधन से एक ऐसी क्षति हुई है जिसकी निकट भविष्य मे पूर्ति होना संभव नही है।

★

# सहायता

२१) बा. निर्मलकुमार जी कलकत्ता सुपुत्र बा. नन्दलाल जी सरावगी यात्रा से वापिस लौटते समय सधन्यवाद प्राप्त।

चि० कुमारी ऊषा रानी (सुशीला ला० अजितप्रसाद जैन भूतपूर्व एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर दिल्ली नगर निगम) का पाणिग्रहण संस्कार श्री विनोदकुमार जैन (सुपुत्र ला० चम्पालाल जैन, मैसर्स चम्पालाल प्रेमचन्द जैन नया बास देहली) के साथ ११ मार्च सन् १९६६ को जैन विधि से सम्पन्न हुआ। इस शुभ अवसर पर वर-वधु दोनों पक्षो से ७०१) का दान निकाला गया जिसमे से २१) रु० अनेकान्त को सधन्यवाद प्राप्त हुए।

५) सुश्री मनोरमा सेठी और कैलाशचन्द शाह मांडलग के विवाहोपलक्ष मे धन्यवाद सहित प्राप्त।

७) श्री नथमल जी सेठी कलकत्ता ने चि० पुत्र महावीर कुमार और सुश्री कुमारी सन्तोष सुपुत्री शाह नेमीचन्द जी पाण्डया के पाणिग्रहण संस्कारके समय निकाले दान में से सधन्यवाद प्राप्त किये।

७) वृद्धिचन्द जी रारा. रिटा० टेली अकाउन्ट २६८ जयावास अजमेर ने अपने जन्मदिवस के उपलक्ष मे सधन्यवाद प्रदान किये।

व्यवस्थापक
'अनेकान्त'

## वीर-सेवा-मन्दिर और "अनेकान्त" के सहायक

१०००) श्री मिश्रीलाल जी धर्मचन्द जी जैन, कलकत्ता
१०००) श्री देवेन्द्रकुमार जैन, ट्रस्ट
श्री साहू शीतलप्रसाद जी, कलकत्ता
५००) श्री रामजीवन सरावगी एण्ड संस, कलकत्ता
५००) श्री गजराज जी सरावगी, कलकत्ता
५००) श्री नथमल जी सेठी, कलकत्ता
५००) श्री वैजनाथ जी धर्मचन्द जी, कलकत्ता
५००) श्री रतनलाल जी झांझरी, कलकत्ता
२५१) श्री रा० बा० हरखचन्द जी जैन, रांची
२५१) श्री अमरचन्द जी जैन (पहाड्या), कलकत्ता
२५१) श्री स० सि० धन्यकुमार जी जैन, कटनी
२५१) श्री सेठ सोहनलाल जी जैन,
मैसर्स मुन्नालाल द्वारकादास, कलकत्ता
२५१) श्री लाला जयप्रकाश जी जैन
स्वस्तिक मेटल वर्क्स, जगाधरी
२५०) श्री मोतीलाल हीराचन्द गांधी, उस्मानाबाद
२५०) श्री बन्शीधर जी जुगलकिशोर जी, कलकत्ता
२५०) श्री जुगमन्दिरदास जी जैन, कलकत्ता
२५०) श्री सिंघई कुन्दनलाल जी, कटनी
२५०) श्री महावीरप्रसाद जी अग्रवाल, कलकत्ता
२५०) श्री बी० आर० सी० जैन, कलकत्ता
२५०) श्री रामस्वरूप जी नेमिचन्द्र जी, कलकत्ता
१५०) श्री बजरंगलाल जी चन्द्रकुमार जी, कलकत्ता
१५०) श्री चम्पालाल जी सरावगी, कलकत्ता
१५०) श्री जगमोहन जी सरावगी, कलकत्ता
१५०) ,, कस्तूरचन्द जी आनन्दीलाल जी कलकत्ता
१५०) ,, कन्हैयालाल जी सीताराम, कलकत्ता
१५०) ,, पं० बाबूलाल जी जैन, कलकत्ता
१५०) ,, मालीराम जी सरावगी, कलकत्ता
१५०) ,, प्रतापमल जी मदनलाल पांड्या, कलकत्ता
१५०) ,, भागचन्द जी पाटनी, कलकत्ता
१५०) ,, शिखरचन्द जी सरावगी, कलकत्ता
१५०) ,, सुरेन्द्रनाथ जी नरेन्द्रनाथ जी कलकत्ता
१०१) ,, मारवाड़ी दि० जैन समाज, व्यावर
१०१) ,, दिगम्बर जैन समाज, केकड़ी
१०१) ,, सेठ चन्दूलाल कस्तूरचन्दजी, बम्बई नं० २
१०१) ,, लाला शान्तिलाल कागजी, दरियागंज दिल्ली
१०१) ,, सेठ भंवरीलाल जी बाकलीवाल, इम्फाल
१०१) ,, शान्तिप्रसाद जी जैन, जैन बुक एजेन्सी,
१०१) ,, सेठ जगन्नाथजी पाण्ड्या झूमरीतलैया
१०१) ,, सेठ भगवानदास शोभाराम जी सागर
१०१) ,, बाबू नृपेन्द्रकुमार जी जैन, कलकत्ता
१००) ,, बद्रीप्रसाद जी आत्माराम जी, पटना
१००) ,, रूपचन्दजी जैन, कलकत्ता
१००) ,, जैन रत्न सेठ गुलाबचन्द जी टोंग्या इन्दौर

## वीर-सेवा-मन्दिर के उपयोगी प्रकाशन

R. N. 10591/62

(१) पुरातन-जैनवाक्य-सूची—प्राकृत के प्राचीन ४६ मूल-ग्रन्थों की पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादिग्रन्थों मे उद्धृत दूसरे पद्यों की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। संपादक मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी की गवेषणापूर्ण महत्व की ७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलंकृत, डा० कालीदास नाग, एम. ए. डी. लिट् के प्राक्कथन (Foreword) और डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट् की भूमिका (Introduction) से भूषित है, शोध-खोज के विद्वानोंके लिए अतीव उपयोगी, बड़ा साइज, सजिल्द १५·००

(२) आप्त परीक्षा—श्री विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज्ञ सटीक अपूर्व कृति,आप्तों की परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयक सुन्दर, विवेचन को लिए हुए, न्यायाचार्य पं दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद से युक्त, सजिल्द। ८·००

(३) स्वयम्भूस्तोत्र—समन्तभद्रभारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोरजी के हिन्दी अनुवाद, तथा महत्व की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना से सुशोभित। ... ... २·००

(४) स्तुतिविद्या—स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापों के जीतने की कला, सटीक, सानुवाद और श्री जुगल किशोर मुख्तार की महत्व की प्रस्तावनादि से अलंकृत सुन्दर जिल्द-सहित। १·५०

(५) अध्यात्मकमलमार्तण्ड—पचाध्यायीकार कवि राजमल की सुन्दर आध्यात्मिकरचना, हिन्दी-अनुवाद-सहित १·५०

(६) युक्त्यनुशासन—तत्वज्ञान से परिपूर्ण समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नही हुआ था। मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादि से अलंकृत, सजिल्द। ... ·७५

(७) श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र—आचार्य विद्यानन्द रचित, महत्व की स्तुति, हिन्दी अनुवादादि सहित। ·७५

(८) शासनचतुस्त्रिंशिका—(तीर्थपरिचय) मुनि मदनकीर्ति की १३वीं शताब्दी की रचना, हिन्दी-अनुवाद सहित ·७५

(९) समीचीन धर्मशास्त्र—स्वामी समन्तभद्र का गृहस्थाचार-विषयक अत्युत्तम प्राचीन ग्रन्थ, मुख्तार श्रीजुगलकिशोर जी के विवेचनात्मक हिन्दी भाष्य और गवेषणात्मक प्रस्तावना से युक्त, सजिल्द। ... ३·००

(१०) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० १ संस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का मंगलाचरण सहित अपूर्व संग्रह, उपयोगी ११ परिशिष्टों और पं० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य परिचयात्मक प्रस्तावना मे अलंकृत, सजिल्द। ... ... ४·००

(११) समाधितन्त्र और इष्टोपदेश—अध्यात्मकृति परमानन्द शास्त्री की हिन्दी टीका सहित ४·००

(१२) अनित्यभावना—आ० पद्मनन्दीकी महत्वकी रचना, मुख्तार श्री के हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ सहित ·२५

(१३) तत्वार्थसूत्र—(प्रभाचन्द्रीय)—मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या से युक्त। ... ·२५

(१४) श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैनतीर्थ। १·२५

(१५) महावीर का सर्वोदय तीर्थ ·१९ पैसे, १६ समन्तभद्र विचार-दीपिका ·१९ पैसे, (१७) महावीर पूजा ·२५

(१८) अध्यात्म रहस्य—पं० आशाधर की सुन्दर कृति मुख्तार जी के हिन्दी अनुवाद सहित। १·००

(१९) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० २ अपभ्रंश के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थोंकी प्रशस्तियों का महत्वपूर्ण संग्रह। ५५ ग्रन्थकारों के ऐतिहासिक ग्रंथ-परिचय और परिशिष्टों सहित। सं. पं० परमानन्द शास्त्री। सजिल्द १२·००

(२०) न्याय-दीपिका—आ. अभिनव धर्मभूषण की कृति का प्रो० दरबारीलालजी न्यायाचार्य द्वारा सं० अनु० ७·००

(२१) जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ संख्या ७४० सजिल्द (वीर-शासन-संघ प्रकाशन ५·००

(२२) कसायपाहुड सुत्त—मूलग्रन्थ की रचना आज से दो हजार वर्ष पूर्व श्री गुणधराचार्य ने की, जिस पर श्री यतिवृषभाचार्य ने पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र लिखे। सम्पादक पं हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री, उपयोगी परिशिष्टों और हिन्दी अनुवाद के साथ बड़े साइज के १००० से भी अधिक पृष्ठों में। पुष्ट कागज और कपड़े की पक्की जिल्द। ... ... २०·००

(२३) Reality आ० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अंग्रेजी में अनुवाद बड़े आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६·००

---

प्रकाशक—प्रेमचन्द जैन, वीरसेवा मन्दिर के लिए, रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली से मुद्रित।